

# महर्षिभरद्वाजप्रणीत बृहद् विमानशास्त्र अर्थात्

महर्षिभरद्वाजप्रणीत “यन्त्रसर्वस्व” ग्रन्थान्तर्गत  
यतिबोधानन्दकृतश्लोकबद्धवृचिसहित “वै मानिक प्रकरण”

जिस में—

पुरातन विमानकला का शिल्पकार ( लोहार-मिस्त्री ) से लेकर ब्रह्मा ( इक्षिनियर ) पर्यन्त कार्य का वर्णन दिया है, तथा रक्षाविधान अर्थात् शत्रु के द्वारा भूतल से फेंके हुए एवं भूमि के अन्तर्गत प्रहारों से और आकाश में विमानोद्धारा किए गए आक्रमणों से रक्षा करने के उपाय साथ ही आकाशीय पदार्थों वर्षा, वात, विद्युत्, शब्द, उल्का, पुच्छलतारों तथा प्रहारों की कक्षासन्धियों से होने वाले आघातों से रक्षा करना एवं यन्त्रविधान अर्थात् भिन्न भिन्न कलुपुरुषों और अनेक आवश्यक रूपाकर्षक शब्दाकर्षक गतिमापक कालमापक आदि यन्त्रों के स्थापन तथा शक्ति, स्वम, सुन्दर, त्रिपुर आदि विविध विमानों का अपूर्व अद्भुत वर्णन है।

सम्पादक एवं भाषानुवादक—

स्वामी ब्रह्ममुनि परिच्राजक  
गुरुकुलकांगड़ी ( हरिद्वार )

सम्पादन स्थान—

गुरुकुलकांगड़ी

प्रकाशक—

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा  
दयानन्द भवन, नई दिल्ली १

प्रथम संस्करण  
१००० } }

माघ २०१५ विं  
फरवरी १९५५ ई०

{ मूल्य  
तेरह रुपये

---

सार्वदेशिक ब्रेस, दरियागंज, दिल्ली-७ में सुनित

## प्रकाशकीय निवेदन

आर्य जगत् की शिरोमणि सार्वदेशिक आयंत्रितिनिधि सभा की ओर से महर्षि भरद्वाजकृत तीन सहस्र श्लोकों से युक्त बृहद् विमानशास्त्र के भाषाभाष्य को जनता के समक्ष प्रस्तुत करते हुए मुझे बड़ी प्रसन्नता है।

यह प्रन्थ विमान-विद्याविषयक अलभ्य सामग्री से परिपूर्ण है जिसमें उक विद्या की बड़ी सूक्ष्मता से विवेचना की गई है। इस प्रन्थ में विमानों के बहुसंख्यक प्रकारों, नामों, उनके निर्माण और संचालन के विविध उपायों के वर्णन को पढ़कर मनुष्य आश्चर्यचकित हुए विना नहीं इह सकता। निश्चय ही यह प्रन्थ यन्त्रविद्या और विज्ञान के द्वेत्र में एक बड़ी क्रान्ति का सन्देशहर सिद्ध होगा।

रामायण में आए पुष्टक विमान का वर्णन विज्ञान के परिणितों द्वारा कपोलकल्पना और धर्मभीरु भोले भासे जन-समाज के द्वारा दैव चमत्कार समझा जाता था। आधुनिक काल में जब वेदोद्धारक आर्य समाज के प्रवर्तक महर्षि दयानन्द ने वेदों के आधार पर इस विद्या की चर्चा की और अपने प्रसिद्ध प्रन्थ “ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका” में एक अध्याय इस विषय के अर्पण किया तो वैज्ञानिकों को मुख्यतः पश्चात्य विद्वम्भण्डली को विश्वास न हुआ। परन्तु भौतिक विज्ञान और यन्त्रविज्ञान की ऊंचौं ऊंचौं प्रगति हुई त्यों त्यों महर्षि दयानन्द के कथन की प्रामाणिकता और प्राचीन भारत में इस विद्या के पूर्ण विकास की सम्भावनाएँ प्रतिलक्षित होती गई और वे अमरिका-वासी विदुषी लिसेज हवीलर विलोक्त के शब्दों में इन संभावनाओं को निम्न प्रकार अभिव्यक्त करने के लिये विवरण हुए:—

“हमने प्राचीन भारत के धर्म के विषय में सुना और पढ़ा है। यह उन महान् वेदों की भूमि है जहां अत्यन्त अद्भुत प्रन्थ हैं जिन में न केवल पूर्ण जीवन के लिए ही उपयोगी धर्मतत्त्व बताए गए हैं अपितु उन तथ्यों का भी प्रतिपादन किया गया है जिन्हें समस्त विज्ञान ने सत्य प्रमाणित किया है। विजली, रेडियम, एलैक्ट्रोन्स विमान ( हवाई जहाज ) आदि सब चीजें वेदों के द्रष्टा ऋषियों को ज्ञात प्रतीत होती हैं।”

अर्वाचीन काल में राहट बन्धुओं को वायु-यान के आविकार का श्रेय प्राप्त है। जब उनके बनाए हुए विमान आकाश में उड़ने लगे तब विज्ञानवेच्चाओं को वैदिक ज्ञान विज्ञान की प्रामाणिकता और महर्षि दयानन्द की स्थापनाओं की सत्यता को स्वीकार करना पड़ा।

महर्षि भरद्वाजकृत प्रस्तुत प्रन्थ में “निर्मय्य तद्वेदाम्बुद्धिं भरद्वाजो महामुनिः। नवनीतं समुद्धृत्य

यन्त्रसर्वस्वरूपकम्” श्लोक में इस विद्या का भएद्वार वेद वताए गए हैं। उपर्युक्त उद्धरण से बढ़कर महापि दयानन्द की इस स्थापना का कि “वेद सब सब्य विद्याओं का पुस्तक है” तथा विमानविद्या का स्थान स्थान पर वेदों में वर्णन है और क्या प्रमाण हो सकता है? जिस प्रकार इस प्रन्थरत्न ने महर्षि दयानन्द की वेदविषयक विशुद्ध विचारसंरण में वैदिक शोध के कार्य को प्रेरणा दी है उसी प्रकार यह विमानविद्याविषयक अनुसंधानों और आविष्कारों को महती प्रेरणा प्रदान करेगा।

श्री वामी ब्रह्मामुनि जी विवामार्तण वैदिक अनुसन्धान का मूल्यवान् कार्य कर रहे हैं। प्रस्तुत भाष्य उनके उसी प्रशासनीय कार्यों का सुफल है जिसके लिए वे आर्य जगत् और विद्वस्माज के धन्यवाद के अधिकारी हैं। सार्ववैदेशिक सभा पर उनकी सदैव कृता हाटित हहती है। सभा को उनके अनेक प्रन्थों के प्रकाशन का गौरव प्राप्त है, इस भाष्य को सभा की ओर से प्रकाशित करने का निष्पत्तिकार अवसर प्रदान करके उन्होंने अपनी उसी कृपाहाटिका परिचय दिया और सभा को उपकृत किया है।

यह प्रकाशन बड़ा व्यवसाध्य था फिर भी सभा ने इसे प्रकाशित करके अपने एक महान दायित्व की पूर्ति की है। आशा है जनता इससे यथोचित लाभ उठाएगी और शीघ्र सभा को व्यवसार से मुक्त करके इसी प्रकार के अन्य उपयोगी प्रकाशनों को दृष्टि में लेने में समर्थ बनाएगी।

स्वतन्त्र भारत में इस कोटि के अलभ्य एवं अत्यन्त मूल्यवान् प्रन्थों का प्रकाशन हमारे राज्य का एक विशिष्ट कर्तव्य है। सभा ने इस भाष्य को प्रकाशित करके राज्य और देश का ही एक बड़ा कार्य सम्पन्न किया है जो हमारे देश के गौरव को बढ़ाने वाला सिद्ध होगा। क्या हम आशा करें कि राज्य और देश, सभा के इस कार्य का सुमित्र आदर करेगा?

दयानन्द भवन, रामलीला मैदान,

नई दिल्ली—१

माघ कृष्णा २०१५ विं  
तद्वुसार २-२-१९५६ हूँ०

रामगोपाल

प्रधान मन्त्री

सार्ववैदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, दिल्ली



## \* भूमिका \*

वाल्मीकिरामायण का पुष्टक विमान आशात्वद्ध प्रसिद्ध एवं लोकविदित ही है, पुनः महाराजा भोज के “समराङ्गणमूवधार” प्रन्थ में भी पारे से उड़ने वाले विमान का उल्लेख है, ऐसे ही “युक्तिकल्पतरु” में भी विमान की चर्चा आती है। अतएव विमानकला आगों एवं आयावर्त (भारत) की पुरातनकला है। उसी पुरातनकलापरम्परा में यह प्रस्तुत प्रन्थ भी जानना चाहिए। आर्ब आस्तिक थे उनका प्रत्येक कार्य आस्तिकमाव से ओत प्रोत रहता था—ईश्वर की सुन्ति से प्रारम्भ होता था, ऐसा ही आचार इस प्रन्थ में भी उपलब्ध होता है—

यद्विमानगतास्सर्वे यान्ति ब्रह्म पर पदम् ।  
तन्नत्वा परमानन्द श्रुतिमस्तकगोचरम् ॥१॥  
(मङ्गलाचरणालोक० १)

माण्डूक्ये च यदोऽङ्गार, परापरिभागतः ।  
विमानवेन मुनिना तदेवाश्रभिषणित ॥१५॥  
वाचक प्रणवो ह्यत्र विमान इति वर्णित ॥१६॥  
तमारह्य यथाशास्त्रं गुरुवतेनैव वर्तमना ।  
ये विशन्ति ब्रह्मपद ब्रह्मचर्योदिमाघनात् ।

† यस्य तत्पुष्टक नाम विमान कामग शुभम् ।  
बीर्यावजित भद्रे येन याभि विहायसम् ॥  
(वाल्मीकिं रा० आरण्य० ४८१६)

‡ लघु दारमय महाविहङ्ग हठसुक्षिण्ठतनु विद्याय तस्य ।  
उदरे रसयन्त्रमादधीत ज्वलनाधारमयोऽस्य चाभित्तृत्यम् ॥  
(समराङ्गण० यन्त्रविं० १११५)

\* व्योमयानं विमान वा पूर्वमासीनमहीभुजाम् ॥  
(युक्तिकल्पतरु० यानप्र० ५०)

आ]

तदत्र मङ्गलश्लोकरूपेरणा प्रतिपादितः ॥२०॥  
(वृत्तिकार)

पुरातन ऋषि महर्षि चाहे वे धर्मवर्वर्तक हों किसी विद्या या कला के आविष्कारक हों वे सभी अपने विषय को वेद से अनुमादित या आविष्कृत हुआ घोषित करते हैं। धर्मवर्वर्तक मनुजद्वाराज कहते हैं “धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिं” (मनु० २।१२) धर्म का ज्ञान करने के इच्छुकों के लिये परम प्रमाण वेद है। राजतीति के व्यवस्थापक वे ही मनुजमहाराज कहते हैं “सनापत्वं च”“राज्यं च वेदशास्त्रविद्वर्तित” (मनु० २।१०) सेनाके स्वामी होने और राज्यशासन करनेकी योग्यता वेदका वेत्ता प्राप्त कर सकता है। तथा “वेदो रार्थवर्णं चिकित्सा प्राह्” (चरक० सू० ३०।२०) चिकित्सा को अर्थवर्ण वेद कहता है। इसी प्रकार इस प्रस्तुत विमानकला के प्रतीक या आविष्कारक महर्षि भरद्वाज ने भी वेद से विमानकला का आविष्कार किया है “निर्मध्यं तद्वराम्बुधिं भरद्वाजो महामुनिं। नवनीतं समुद्रत्य यन्त्रमवस्थरुकम्” (वृत्तिकार १०) भरद्वाज महामुनि ने वेद समुद्र का निर्मन्यन करके “यन्त्रसबस्त्रं” प्रन्थ (जिसका एक भाग यह वैमानिक प्रकरण है) मक्खवन्हरू में निकालकर दिया है। वेद में विमानकला के विधायक अनेक मन्त्र हैं, उदाहरणार्थ दो तीन मन्त्र यहां प्रस्तुत करते हैं—

वेदा यो वीना पदमन्तरिक्षेणा पतताम् ।

वेदा नाव समुद्रियः ॥ [ऋ० १।२।५७]

जो आकाशमें उडते हुए पक्षियों के स्वरूप को जानता है वह समुद्रिय-आकाशीय + नौकाओं को-विमानों को जानता है।

तुप्तो ह भुज्युमद्विनोदमेष्ये रथि न कठिचन्मृवां ग्रवाहा ।

तमृद्युनौ भिरात्मन्वतीभिरन्तरिक्षप्रुद्धिरपोदकाभिः ॥

[ऋ० १।१।६३]

वाहिर से सामान लानेवाला लादू-पोत (जहाज) जलतरङ्गों के उत्तापूर्ण समुद्र में कदाचित् हृतना हुआ भोगमासमी के अध्यक्ष को मरते हुए धन को छोड़ते हुए की भानि छोड़ देता है तब उस द्यायाराघ्यक को अश्विनी-ज्योतिर्मय और रसमय दो शक्तिया जलसम्पर्करहित बलवती ‘अन्तरिक्षप्रुद्धि’ आकाश में उड़नेवाली नौकाओं से वहन करती हैं-उडा ले जाती हैं।

न्यदन्यस्य मूर्धिन चक रथस्य येमयु ।

परि द्यामन्यदीयते ॥

[ऋ० १।३।०।१६]

श्रवाध्य रथ-विमान की मूर्धा में लगा अन्यत चक्र जो और चक्रों से अलग है-भूमिवाले चक्रों से अलग है जिसे दो अश्विनी शक्तियां नियन्त्रित करती हैं जो कि ‘र्दा परिईयते’ आकाश में धूमता है।

† “समुद्र-अन्तरिक्षनाम्” (निध० १।३)

इसी प्रकार 'बातरंहा, त्रिभुरेण, त्रिवृता रथेन, त्रिवकेण' इत्यादि विशेषणों से युक्त विमानकालशोतक अन्य अनेक मन्त्र हैं।

कहीं कहीं वेदमन्त्रों की प्रतीक भी विषयप्रसङ्ग में इस मन्त्र में आजाती है। यथा "यद् याव इन्द्रं ते शतम्" (ऋ० द१०४५), "नमस्ते सूर् मन्यवे" (यजु० १६।१) एवं कुछ वाहाणग्रन्थों के वचन भी आ जाते हैं।

यह "वैमानिकप्रकरण" "यन्त्रसर्वस्व" मन्त्र का एक भाग है, जिसमें ऐसे ही यन्त्रविषयक ४० प्रकरण थे। "यन्त्रसर्वस्व" मन्त्र के रचयिता महर्षि भरद्वाज होने से इस "वैमानिक प्रकरण" के भी रचयिता महर्षि भरद्वाज हुए। महर्षि भरद्वाज से पूर्वे विमानकलासम्बन्धी शास्त्रों के रचयिता अन्य भी हुए हैं जैसे नारायणपुत्र, शोनक, गर्ग, वाचस्पति, चाकायाणि, शुणिडनाथ जौकि क्रमशः विमानविद्विका, व्योमयानतन्त्र, यन्त्रकल्प, यानविन्दु, खेट्यानप्रदीपिका, व्योमयानार्कप्रकाश। इन विमानविषयक शास्त्रों के रचयिता थे। विमान के बनाने वाले विश्वकर्मी, द्यायापुरुष, मनु, सय आदि हुए हैं।

यह "वैमानिक प्रकरण" द अध्यायों १०० अधिकरणों और ५०० मूत्रों में महर्षि भरद्वाज ने रचा था, जैसा कि महर्षि भरद्वाज ने स्वयं अपने मद्भूताचरण वचन में कहा है—

मूत्रे पञ्चतन्त्रे युक्त तात्त्विकरणस्तथा ।

अष्टाध्यायसमायुक्तमतिगृह भनोहरम् ॥

† पूर्वचार्याश्च तद्यन्त्याद् द्वितीयश्लोकोत्त्रीवृद् ।  
विश्वनाशोवतनामानि तेवा वश्ये यथाक्रमम् ॥३३॥  
नारायण शोनकश्च गर्गो वाचस्पतिस्तथा ।  
चाकायाणिष्ठु शुणिडनाथस्तेति शास्त्रहृतस्त्वयम् ॥३४॥  
विमानविद्विका व्योमयानतन्त्रस्त्वयैव च ।  
यन्त्रकल्पो यानविन्दु खेट्यानप्रदीपिका ॥३५॥  
व्योमयानार्कप्रकाशदैत्ये वास्त्राणि पट् क्रमात् ।  
नारायणादिमुनिभि प्रोक्तानि ज्ञानवित्तम् ॥३६॥  
विचार्येतानि विविवद् भरद्वाज कृपानिधि ।  
वैमानिकप्रकरण सर्वलोकोपकारकम् ।  
पारिभाविकरूपेण रचयामास विस्तरात् ॥३७॥  
(त्रुटिकार)

‡ विश्वकर्मा द्यायापुरुषमनुमयादि\*\*\*\*\* ।  
(त्रुटिकार)  
कुर्तं स्वयं साधिति विश्वकर्मणा ।  
द्विव गते वायुपये प्रतिष्ठित व्यराजतादित्यपयस्य लक्ष्मवत् ।  
(वाल्मीकि रा० मुन्द्रर० ६।१२)

### विमानिप्रकरण कथ्यतेस्मिन् यथामति ।

समस्त सूत्रपाठ कहा है यह तो पता नहीं लगता, हाँ प्रारम्भ से कमशः १४ सूत्र तो इस में दिए हुए हैं, क्वचित् क्वचित् बीच में भी दिए हुए मिलते हैं और अव्यवस्थितरूप में किन्तु वृत्तिकार बोधानन्द के वृत्तिश्लोक ही मिलते हैं । वृत्तिकार बोधानन्द यति हैं लगभग तीन सद्गुरु श्लोक इस में हैं और यह प्रथ २३ कार्यों में प्राप्त हुआ है । इस प्रथ का काल क्या है यह कुछ नहीं बताया जा सकता है, मूलहस्त लेख हमें नहीं मिला किन्तु प्रतिलिपि (Transcript) इसे मिला है । ट्रांस्क्रिप्ट कापी १११ है । जो इसे बड़ों राजकीय संस्कृत लाइब्रेरी में मिली थी पुन १११ है । प्रतिलिपि (Transcript) यह अब मिली जो आज से ४० वर्ष पूर्व की है, हस्तकापी के मोटे कागज पुराने दंग के हैं जो अन्य पक्ष के कागज की पटियों में चिपके हुए हैं । पूरा कलिज (से प्राप्त कापी) के फिल्म फोटो भी प्राप्त हुए हैं उनपर लिखा है “गो वेङ्कटाचल शार्मा ११-८ १११, ३-८-११११११ तारीखे प्रतिलिपिकर्ता ने दी है । सूत्रों में ही क्या श्लोकों में भी भाषा पुरानी जचनी है, ‘एष धातु का प्रयोग वडने अर्थ में नहीं किन्तु प्राप्त होने अर्थ में आता है’ नाशमेघते, लयमेघते । सन्धिया भी आयुनिक ही नहीं आती । पतम्यदा, त्रयम् ०, एकमध्यदि, यत्त्राण्यथकमम्, केन्द्रेष्वात् ॥५॥ आदि प्रयोग आते हैं । ‘लोहनन्त्र, दृपणप्रकरण, शक्तिन्त्र’ आदि लगभग १०० पुरातन ग्रन्थों के उल्लेख भी दिए हैं । नारायण गालव आदि ३६ आचार्यों के नाम भी विमानकलावियक शास्त्रिनिर्मातृत्व और मतप्रदर्शन के प्रसङ्ग में आए हैं जिनकी सूचि साथ में दी है । विमान में अनेक अप्रसिद्ध नवीन अद्भुत यन्त्र बनाकर रखने का विधान भी किया है । इस से प्रथ की पुरातनता प्रतीत होती है ।

### विमान शब्द का अर्थ—

महर्षि भरद्वाज के सूत्र और अन्य आचार्य विश्वम्भर आदि के मत में वि-पक्षी की भाति गति के मान से एक देश से दूसरे देश एक द्वीप से दूसरे द्वीप और एक लोक से दूसरे लोक को जो आकाश में उड़कर जानेवाला यान हो वह विमान कहा जाता है ॥५॥ एक लोक से दूसरे लोक में विमान पहुँचने

†

महादेव महादेवी वाणी गणवति गुरुम् ।  
शास्त्रकार भरद्वाज ब्रह्मणपत्य यथामति ॥ ६ ॥  
बालाना सुखबोधाय बोधानन्दयतीश्वर ।  
सग्रहाद् विमानिप्रकरणस्य यथाविधि ॥  
लिलेख बोधानन्दवृत्यास्या व्यास्या मनोहराम् ॥७॥

(वृत्तिकार)

‡ पतित यथा, त्रि याम० एकमपि यदि, यन्त्राणि यथाकमम्, केन्द्रेषु वात० ।

\* वेगसाम्याद् विमानोणजानामिति ॥ ८० १ । १ ॥

देशाद् देशान्तर तद्दृ द्वीपाद् द्वीपान्तरं तथा ।

लोकाल्लोकान्तरं चापि योऽन्वे गन्तुमहंति ।

स विमान इति प्रोक्तः खेतशास्त्रविदा वरे ॥

(इति विश्वम्भर)

की कल्पना आज की ही नहीं किन्तु १६४३ई० में तो इसने इसे अपनी बड़ोदावाली “विमानशास्त्र” नामक प्रकाशित पुस्तक में आज से १६ वर्ष पूर्व दिया था और उक्त लेख का ट्रांस्क्रिप्ट (प्रतिलिपि) १६१८ई० अर्थात् आज से चालीस वर्ष पूर्व वर्तमान था पुन उस ट्रांस्क्रिप्ट के मूल भ्येन्ट्रिक्ट में न जाने कब का पुराना है। अपितु मझल, युग, शुक आदि प्रद्वारा और नज़त्रों की कक्षासन्धियों में आ जाने पर विपत्तियों से बचाने का वर्णन भी आता है।

### विमान के जातिमेद—

मान्त्रिक (योगसिद्धि से सम्बन्ध), तान्त्रिक ( औपधयुक्त एवं शक्तिमय वस्तुप्रयोग से सम्बन्ध ), कृतक—यान्त्रिक (कला मस्तिष्ठन ए जिन आदि से प्रयुक्त) ये तीन प्रकार के होते हैं। कृतक जाति में शकुन विमान (पक्षी के आकार का पंखुदालित विमान), रुक्म विमान (खनिज पदार्थों के बोग से रुक्म अर्थात् सोने जैसी आमा सम्बन्धित किंवद्दोहे जैसा विमान), युधर विमान (शुद्धाकाल से धूएं के आधार पर चलनेवाला जेट विमान) कहे हैं तथा त्रिपुर विमान (तीनों घ्यल जल गगन में चलने तरने उड़नेवाला विमान) आदि २५ कहे हैं ॥

### विमान की शरियां और मार्ग—

विमान की भिन्न भिन्न गतियाँ ‘चालन, कम्बन, ऊर्ध्वगमन, अधोगमन, मण्डल गति-चक्रगति—घूमगति, विचित्रगति, अनुलोमगति—दक्षिणगति, विलोमगति—वामगति, पराङ्मुखगति, स्तम्भनगति, तिर्यगति—तिर्छीगति, विविधगति या नानागति’ हैं जो कि विद्युत् के योग या विद्युत्-शक्ति से होती हैं। विमान के मार्ग आकाश में रेखापद, मण्डल, कक्ष्य, शक्ति, केन्द्र, ये पाच कहे हैं। विमानगति के अवरोधक भी आकाशीय पाच आवर्त्त (बव्यवहर) बतलाए हैं।

### रक्षाविधान और यन्त्रविधान—

इस वैमानिक प्रकरण में शत्रुद्वाराप्रयुक्त प्रहारक उयारों से एवं आकाशीय पदार्थों से भी स्वविमान की रक्षा का विधान है। यथा—शत्रु ने जय अपने विमान के मार्ग में डम्भोलि (तारयोड़ी जैसी वस्तु) आदि फेंक दी हो तो उसके प्रहार ऐसे बचने के लिए अपने विमान की निर्यातनि (तिर्छीगति) कर दो या अपने विमान को कृत्रिम मेंढोंगे में छिपादो अथवा शत्रुजन पर तामस यन्त्र से तम—आन्यकार छोड़ो। शत्रुद्वारा भूमि में छिपाए हुए प्रहारक अपिनगोल आदि पदार्थों को गुहागर्भादर्श यन्त्र से जानकर उन से स्वविमान को बचा लेना उस दूरविदी दौसे गोहागर्भादर्श यन्त्र से ऐसे स्थान पर सूर्यकिरणों एकसरे की भाँति अन्दर प्रविष्ट हो कर उन छिपे हुए पदार्थों को चित्रलूप में दिखलादेती है। एवं आकाश में भी शत्रुओं के आकमण से बचने के अनेक उदाय बनालाए हैं जैसे—शत्रु के विमानों ने स्वविमान को चारों ओर से घेर लिया हो तो अपने विमान की द्विचक्की कीली को बद्धाने से ८७ लिङ्ग (डिमी) की जबालाशक्ति प्रकट होगी उसे गोलाकार में भ्रामावेन पर वे शत्रु के विमान जबकर बष्ट हो जावेंगे तथा दूर से आते हुए शत्रु के विमान की ओर ४००७ तरह फेंक कर उसे छड़ने में असमर्थ कर देना। नीचे खड़ी हुई शत्रु सेना पर स्वविमान से शब्द सङ्क्षण-महाशब्दप्रहार करना जिससे वे सैनिक भयभीत हो जावेंगे वहारे बनजावें हृदयभङ्ग को प्राप्त हो जावें। एवं आकाशीय पदार्थों वर्षा, वात, विद्युत्, आवप, शब्द, उल्का,

पुच्छलतारों के अवशेषों तथा प्रह-नक्षत्रों की कक्षासनियों से रक्षा करना भी कहा है। वर्षोंपरंहार यन्त्र से विमान से समबद्ध वायु ऊपर बेग से प्रगति करेगी उससे पुरोवात (वर्षा जानेवालीवायु) संघर्ष को प्राप्तकरके दो टुकड़ों में विभक्त हो जावेगी जोकि जल की दो शक्तियाँ हैं द्रव (प्रतलापन) और प्राणन (गीला करनेवाली) पुन विमान पर जल न इवित होगा—बहेगा—गिरेगा और न गीला का सकेगा। महावात के आधात से बचने को व्यास्थातानिरसन यन्त्र लगाना उस से वायु को त्रिमुखी—तीन टुकड़ों में कर दूर भग देन। विशु न् के प्रभाव को दूर रखनेवाला शिरकीलक यन्त्र विमान के मस्तक में लगाना जो कि छत्री की भाति धूमता हुआ विशु न् के प्रभाव को कोसों दूर रखता है। आतप (धूपताप) की दृति से विमान को बचाने के लिए आतपोपसाहा यन्त्र लगाना जिस से उष्णता का नाश शीतता का प्रसार हो। शक्त्याकर्षणयन्त्र से आकाशतरङ्गों वातसूत्रों से होने वाली दृति से विमान को बचाना। एवं शब्द, उल्का, पुच्छलतारों के अवशेषों और प्रहों की कक्षासनियों के प्रभावों से विमान को बचाने के लिए विविध यन्त्र लगाना। सूर्यकिरणों को स्थाथीन करने के लिये परिवेषकियायन्त्र लगाना आदि कहा गया है। एवं सूर्यकिरणों को आकर्षित करके त्रिविष उपयोग लेना भी कहा है। इसी प्रकार रूपाकर्षणयन्त्र रूपों का

— लिये, विश्वकियादर्पण, पद्मव्रतमुख्यन्त्र, धूमप्रमाणरण, और्ययन्त्र (एजिन), त्रिपुरविमान । १००० के ज्ञान जल में भी श्वास ले सके, वायु विशु न् धूम के यथोचित उपयोगार्थ प्राणकुण्डलिनीयन्त्र नेगमापक, उत्तरानामायक शालमापकयन्त्र लगाए जाने एवं विशु न् से चालित या विशुत के योगसे ३२ यन्त्र प्रयुक्त किए जावं। विमान के प्रयोक्त अहु को भिन्न भिन्न कौट्रम लोहे से तैयार करके बनाना, लोहों का खनन से ही प्राप्त होना नहीं किन्तु उसकी प्राप्ति के १२ भाग बतलाए गए हैं। भूगर्भ में खनिज पदार्थों की सहजों रेखा पर्किया कही हैं। इत्यादि वानें इस वैमानिक प्रकरण में अपने अपने स्थान पर मिलेंगी।

### धन्यवाद—

मर्यादप्रथम हम अर्थपूर्वक दयानन्द का महान धन्यवाद करते हैं। इन्होंने ऋवेदार्दि मात्यभूमिका धन्य और वेदभाष्य में स्थान स्थान पर विमानशान और उसके द्वारा आकाश में उड़ान एवं दात्रा करने का वर्णन एसे समय भी किया। जवाकि किसी को इस युग में स्थान में भी इस वात की कल्पना न थी। उस ऋषिके वचनों से प्रसिद्ध हो विमानविषयक पुरातन प्रथाओं की खोज में हम प्रयत्न द्वाएँ। लगभग पन्द्रह वर्ष पूर्व बड़ा राजकीय संस्कृत पुस्तकभरन (लाईब्ररी) से इस्तलिलित इस वैमानिक प्रकरण का कुछ भाग हमें प्राप्त हुआ था उसका हिन्दी अनुवाद 'विमानशास्त्र' नाम से हमने प्रकाशित भी कर दिया था उसी के आवारपर अन्य खोज हृदृष्ट बडोदा, पूना, उनर, दर्जाण आदि से यह श्लोकसामग्री हमें प्राप्त हुई, एवं विमानशास्त्र जी भट्टाचार्य P H 1) अध्यक्ष राजकीय संस्कृत लाईब्ररी बडोदा का हम धन्यवाद करते हैं और श्री सुरेन्द्रनाथ जी गोयल एवर कमोडर के सहयोग की भी हम सरहाना करते हैं। पुन गुरुकूल-कांगड़ी के अधिकारियों विशेषत गुरुकूल के कुलपति श्री पं० हन्द्र जी विद्यावाचस्पति जा भी मैं अवधिक हार्दिक धन्यवाद करता हूं, जिन्होंने इस अनुवादकार्य के सम्बन्धान्तर गुरुकूल में स्थान तथा पुस्तकभवन

† अपि दयानन्द ने वेदभाष्य में "शब्दायामानाद् विमानाद्-शब्द करते हुए विमान" ऐसा भी लिखा है जैसा कि विमान उठने हुए शब्द करते हैं।

(लाईब्रेरी) से पुस्तकों के उपयोग आदि की सर्व सुविधाएँ हमें प्रदान करने की महत्वी कृपा की है। अन्त में सार्ववैशिक आर्यपतिनिधि सभा का भी मैं धन्यवाद करता हूँ। जिसने मेरे द्वारा समर्पित हम भेट का स्वागत कर हसे प्रकाशित किया है। पुन रसायनाचार्य, आयुर्वेदाचार्य, खनिजशास्त्री, भूगर्भशास्त्री, खगोल-विद्यावेत्ता उपोतिष्ठी एवं वैज्ञानिक विदान, महानुभाव इस का अवलोकन कर हम में आए विविध यन्त्रों धातुप्रसङ्गों विद्युत् शक्तियों रेडियो-सकेतों राकेट जैसी वारों का विचार कर उनके सम्बन्ध में प्रश्नान् प्रकाश ढालें और अपने विचार एवं सम्पत्तिया हमारे पास भेजने की कृपा करें। ऐनदर्थ ही हम हम कार्य में न स्थार्थ लगे और हसे प्रकाशित किया है।

विज्ञप्ति—प्रथ के सन्दिग्ध शब्दों और शब्दार्थों के आगे प्रश्न योनक चिह्न ? दे दिया गया है।

भवदीय—  
स्वामी ब्रह्ममुनि परिव्राजक  
१० ई-१६५८ है०

## वैमानिक प्रकरण में निर्दिष्ट पुरातन ग्रन्थों की सूची

१—क्रियासार	२८—वर्णसर्वस्वम्
२—यन्त्रसर्वस्वम् ( भरदाजकृतम् )	२९—मूलार्कप्रकाशिका
३—शौनकीयम् ( शौनककृतम् )	३०—चौरीपटकल्प
४—लोहत्रयम्	३१—शणनिर्णयसचिन्द्रिका
५—दृष्टिप्रकरणम्	३२—नालिकानिर्णय,
६—विमानचिन्द्रिका	३३—मारिगकल्पप्रदीपिका
७—व्योधानतन्त्रम्	३४—बृहत्काण्डम्
८—यन्त्रकल्प	३५—पटिकानिवन्धनम्
९—व्योमयानक्रमप्रकाश	३६—खेटविलासमन्थ
१०—खेटवानप्रदीपिका	३७—पर्विवापाककल्पः
११—यानविन्दु	३८—उद्दिज्जतत्त्वसारायणम्
१२—मारिणभद्रिकारिका	३९—गतिनिर्णयाध्यायः
१३—लोहप्रकरणम्	४०—लोहतन्त्रप्रकरणम्
१४—शक्तितन्त्रम्	४१—सौदामिनीकला ( ईश्वरकृता )
१५—दृष्टिशास्त्रम्	४२—शब्दनिवन्धनम्
१६—लोहसर्वस्वम्	४३—नियासिकल्प
१७—धातुसर्वस्वम् ( वोधायनकृतम् )	४४—नामार्थकल्पसूत्रम् ( अत्रिकृतम् )
१८—संस्कारतन्त्रम्	४५—सर्वशब्दनिवन्धनम्
१९—मरिणप्रकरणम्	४६—खेटसर्वस्वम्
२०—शब्दमहोदयः	४७—द्रावकप्रकरणम्
२१—पटकल्प	४८—खेटविलास
२२—यन्त्रप्रकरणम्	४९—लोहतन्त्राकर
२३—अग्रतत्त्वलहरी ( आश्वलायनकृता )	५०—निरुद्याधिकारः
२४—पटप्रदीपिका	५१—मूर्यकल्पः
२५—चारिनिवन्धनमन्थः	५२—कुण्डकल्पः
२६—शक्तिसर्वस्वम्	५३—कुण्डिनिर्णयः
२७—ऋतुकल्पः	५४—भस्त्रिकानिवन्धनम्

५५—सुकुरकल्प  
 ५६—दर्पणकल्पः  
 ५७—पराङ्कुरा:  
 ५८—समोहकियाकाण्डम्  
 ५९—अंशुबोधिनी  
 ६०—प्रपञ्चसारः  
 ६१—शक्तिशीजम्  
 ६२—शक्तिकोस्तुभ्यु  
 ६३—यन्त्रकल्पतरु ( लल्लप्रणीत )  
 ६४—मणिरुक्ताकरः  
 ६५—पटसंस्कारत्वाकरः  
 ६६—विष्वनिर्णयात्मिकार  
 ६७—आशानकल्प  
 ६८—पाकसर्वस्वम्  
 ६९—लोहाधिकरणम्  
 ७०—बोधानन्दकारिका ( बोधानन्दकृता )  
 ७१—लोहदृष्ट्यम्  
 ७२—परिभाषाचन्द्रिका  
 ७३—विश्वभरकारिका ( विश्वभरकृता )  
 ७४—संस्कारदर्पणम्  
 ७५—प्रत्ययपटलम्  
 ७६—षड्गर्भविवेकः

७७—स्वूदयः  
 ७८—शक्तिसूत्रम् ( अगस्त्यकृतम् )  
 ७९—शुद्धविद्याकलापम् ( आरवलायनकृतम् )  
 ८०—ब्रह्माएडसारः ( व्यासप्रणीत )  
 ८१—शुमत्तन्त्रम् ( भरदाजकृतम् )  
 ८२—छन्द कौसुम ( पाराशरप्रणीत )  
 ८३—कौसुदी ( सिहकोठकृता )  
 ८४—रूपशक्तिप्रकरणम् ( अद्विरस्कृतम् )  
 ८५—करकप्रकरणम् ( अज्ञिरकृतम् )  
 ८६—आकाशतन्त्रम् ( भरदाजकृतम् )  
 ८७—ज्ञोकसंभद्र ( विसरणकृत )  
 ८८—प्रपञ्चलहरी ( वसिष्ठकृता )  
 ८९—जीवसर्वस्वम् ( जैविनकृतम् )  
 ९०—कर्माचियापर ( आपस्तम्भकृत ),  
 ९१—रुक्षदयम् ( अत्रिकृतम् )  
 ९२—वायुतत्त्वप्रकरणम् ( शकटायनकृतम् )  
 ९३—वैश्वानरतन्त्रम् ( नारदकृम् )  
 ९४—धूपप्रकरणम् ( नारदकृम् )  
 ९५—ओषधिकल्प ( अत्रिकृत )  
 ९६—वाल्मीकिगणितम् ( वाल्मीकिकृतम् )  
 ९७—लोहशास्त्रम् ( शाकटायनकृतम् )



## ❀ वैमानिक प्रकरण में आये आचार्यों के नाम ❀

---

१—नारायण मुनि	१६—वाताप
२—शौनक	२०—साम्ब
३—गणी	२१—बौधानन्द
४—वाचसपति	२२—भरद्वाज
५—चाक्रायणि	२३—सिद्धनाथ
६—धुण्डिनाथ	२४—ईश्वर
७—विश्वनाथ	२५—आश्वलायन
८—गौतम	२६—व्यास
९—लङ्ग	२७—पराशर
१०—विश्वम्भर	२८—सिंहकोठ
११—अगस्त्य	२९—अङ्गिरा
१२—चुडिल	३०—विसरण
१३—गोभिल	३१—वसिष्ठ
१४—शाकटायन	३२—जैमिनि
१५—अत्रि	३३—आपस्तम्य
१६—कपर्दी	३४—बौधायन
१७—गालव	३५—नारद
१८—अग्निमित्र	३६—वात्मीकि



# बृहद् विमानशास्त्र जी संक्षिप्त विषयसूचि

कापी संख्या १--

विषय

पृष्ठ

महर्षिभरद्वाजकृत “यन्त्रसर्वस्व” ग्रन्थ का एक प्रकरण यह “वैमानिक प्रकरण” है जिसमें ऐसे ४० प्रकरण थे। “वैमानिक प्रकरण” का द अध्यायों १०० अधिकरणों ५०० सूतों में निबद्ध होना कहा गया है। यन्त्रकला जैसे इस प्रन्थमें भी आस्तिकता का प्रदर्शन करने के लिये ओडम् को सुमुक्तुओं का विमान बतलाया। वैमानिक प्रकरण से पूर्व “विमानचन्द्रिका, व्योमयानतन्त्र, यन्त्रकल्प, यानविन्दु, खेट्यानप्रदीपिका, व्योमयानार्कप्रकाश” इन विमानविषयक छँ शास्त्रों का विवाहान होना जोकि कमश नारायण, शौनक, गर्ग, वाचस्पति, चाकायणि, धृष्णिनाथ महर्षियों के रखे हुए थे। महर्षि भरद्वाज द्वारा वेद का निर्मन्यन कर “यन्त्रसर्वस्व” प्रथ को मक्खन के रूप में निकाल कर दिए जाने का कथन। विमान शब्द का अर्थ सूत्रकार महर्षि भरद्वाज तथा आचार्य विश्वमठ आदि के अनुसार वि-पक्षी की भाति गति के मान से एक देश से दूसरे देश पक्ष द्वाप से दूसरे द्वीप और एक लोक से दूसरे लोक को स्थाकाश में उडान लेने—पहुँचने में समर्थ यान है। अपितु प्रथिकी जल और आकाश में तीनों स्थानों में गारं करने वाला बतलाया गया (जिसे आगे त्रिपुर विमान नाम दिया है)। विमान के ३२ रहस्यों का निर्देश करना, यथा-विमान का अदृश्यकरण, शब्दप्रसारण, लक्ष्म, रूपाकरण, शब्दाकरण, शत्रुओं पर धूमप्रसारण शत्रु से बचाने को स्वविमान फा बेघावृत करना, शत्रु के विमानों द्वारा विर जाने पर उन पर उताराशक्ति को प्रसारित करना—फेंकना, दूर से आतेहुए शत्रुविमान पर ४०८७ तरङ्गे फेंक कर उड़ने में असमर्थ कर देना, शत्रुसेना पर असद्य महाशब्द संघरणरूप (शब्दवम) फेंक कर उसे भयभीत विधित तथा हात्रोग से पीड़ित कर देना आदि। आकाश में विमान के सम्मुख विमानविनाशक आकाशीय पाव आवर्त (बवरदरो) का

† विमन्य उडेदाम्बुधि भरद्वाजो महामुनि ।

नवनीति समुद्रत्य यन्त्रसर्वस्वप्रकम् ॥१०॥

## विषय

आना और उनसे विमान रखा का उपाय । विमान में विश्वकियादर्पण आदि ३१ यन्त्रों का स्थापन करना ॥

## कापी संख्या २—

विमानचालक यात्रियों को ऋतुओं की २५ विषयकियों के प्रभाव स बचने के लिये ऋतु ऋतु के अनुसार पहिनने और ओढ़ने के योग्य वर्णों और भिन्न भिन्न भोजनों का विधान, अन्न भोजन के अभाव में मोदक आदि तथा कदम्बलफलों एवं उनके मुख्यों रसों का विशेष सवन करना । विमान में उपयुक्त उपमप लोहों के सौम, सौंषडाल और मौर्यिक तीन बीज लोहों का वर्णन एवं शोधन तथा बीज लोहों की उत्पत्ति में भूगर्भ की आकृत्यण शक्ति तथा वृथिवी की बाह्यिक कक्षाशक्ति और सूर्यकियों भूततम्बात्राओं एवं प्रयोगों के प्रभाव को निमित्त बतलाना, तीन सहस्र भूगर्भस्थ खनिज-रेखापक्षियों का निर्वेश तथा सातवें रेखापक्षिस्तर में तीन खनिजगम्भकाशों में सौम, सौंषडाल, मौर्यिक लोहों की उत्पत्ति का कथन ॥

## कापी संख्या ३—

विमान के भिन्न भिन्न यन्त्रों, कीलों (पेंचों) को भिन्न भिन्न लोहों से बनाने का विधान । लोहे की प्राप्ति के १२ प्रकार या स्थान बतलाए जिससे कि 'खनिज, जलज, आपधिज, धातुज, कुमिज, चारज, अराडज, स्वलज, आपञ्चशक, कृतक' नामोंसे लोहे कहे गए हैं । बीज लोहे, सौम, सौंषडाल, मौर्यिक कहे और प्रत्येक के ग्यारह ग्यारह भेद होने से ३३ भेद बतलाए हैं ॥

## कापी संख्या ४—

विविध अन्तर्यामी के इनार्थ विमान में दर्पणायन्त्र 'विश्वकियादर्पण, शक्तपार्षण, बेरुत्यदर्पण, कुटिट्योदर्पण, पिङ्गुलादर्पण, गुहार्भदर्पण, रौद्रीदर्पण लगाए जाए ॥

## कापी संख्या ५—

विमान की भिन्न भिन्न १२ गतिया चलन, कम्पन, ऊर्ध्वगमन, अधोगमन, भरडलगति—चक्रगति—वृगति, विचित्रगति, अनुलोमगति—दक्षिणागति, विलोमगति—वामगति, पराइमुखगति, स्तम्भनगति, तिर्यगति—तिरछोगति, विविधगति या 'नानागति' विशुत् के योग से या विशुत्याकि से होती हैं । विशुत् से चालित या विशुत् नय विश्वकियादर्श आदि ३५ यन्त्रों का बर्णन । शत् के द्वारा किए समस्त क्रियाकलाप को दिखलाने वाला विश्वकियाकर्षणादर्श यन्त्र का विधान ॥

## कापी संख्या ६—

शक्तपार्षण यन्त्र का विधान, बिसके द्वारा आकाशतरङ्गों और वातसूत्रों से होने वाली ज्ञान से विमान बच जाता है तथा परिवेषकियादर्पण का स्थान जो कि

पृष्ठ

१—२४

२४—४३

४४—५५

५६—७०

७१—८४

( ८ )

विषय

विमान के मार्ग में आई सूर्यकिरणों को स्वाधीन करके विमान को निर्वाचित गतिशील करता है।

४८

54 - 88

कापी संख्या ७—

द्रावक तारों पर लपेटने के लिए गोणडे आदि चर्म का विधान। बातसयोजक, धूमप्रसारण आदि यत्रों का निर्माण। ३२ मणियों के १२ वें वर्ष में कही १०३ मणियों का विमान में सूर्यकिरणाकरणार्थ उपयोग लेना। परिवेपकियान्वद्वारा विमान में बातसयोजन धूमप्रसारण सूर्यकिरणाकरण आदि व्यवहार।

900-990

कापी संख्या ८—

प्रहों के चार अनिचार आदि विरोधी गतियों के संघर्ष से आकाश में बहती हुई विपरीक्ति के आकमण या प्रभाव से विमान के अङ्गों को निष्प्रभाव रखने के लिए अड्डोंप्रसंहारयन्त्र का विधान तथा भूर्गम् से उद्भूत और प्रत्यधी की वाद्यकाञ्जों से प्रकट हुए अनिंद्रों के निवारणार्थ विस्तृतास्थकियायन्त्र का स्थापन। शृंखों पर कुत्रिम विविध धूमप्रकाश को वेष्ट्यवृपणदारा फेंक कर उन्हें विरूप करना मूर्छा आदि भिन्न भिन्न रोगों में भ्रस्त करना ! आकाशीय वातावरण से विमान के अङ्गों तथा विशेषत उपर अङ्गों में शिथिलता आ जाने और उनपर मल लिप्त होजाने से व्यवहार को पदापत-मस्तिष्क का विधान ॥

१११-१२५

कापी संख्या ६—

प्रीमकाल में उत्पन्नकरणों के मेल से कुलिका नाम की शक्ति विमान को भस्म कर देने वाली उत्पन्न हो जाती है उसे कुण्डियोग्णशक्तियन्त्र के विविध अङ्गोंद्वारा पी लिये जाने का बर्यान, तथा मीमांस में विषयक वद्धशिखा नाम की घातिका शक्ति उत्पन्न हो जाती है जो कि प्रायिकों के जीवनरस का शोषण एवं आनेकविध रोगों का निर्मित है उसे नष्ट करने के लिये पुष्टियोग्णन्त्र (पुष्पाकार अशयन्त्र) लगाना, जो कि उसके विषयकत्रवाहों को वाहिर निकाल देता है। दो वायुओं के आवर्तन—चक्रघूम एवं सूर्यकिरणों के संसर्ग से वध्रसमान विशुत का पतन हो जाया करता है उससे चन्दने के लिये पिंजलादर्शयन्त्र का विमान में लगाना ॥

१२८-१४५

कापी संख्या १०—

शत्रु के द्वारा भूमि में दबाए—छिपए हुए महागोलागिन्यन्त्र का गुदागर्भदर्शी यन्त्र (दूरीन जैसे यन्त्र) द्वारा सूर्यकिरणों (ऐक्सरे की भाँति) पकड़ भूमि में प्रविष्ट कर निर्यासपृष्ठ पर प्रतिक्रिया (फोटो) लेनेता ॥

୧୪୬-୧୫୪

कापी संख्या ११--

शत्रु पर अन्यकार फैलाने वाला तमोयन्त्र । आकाशीय १३ वातावरण में हुए

( ८ )

### विषय

पृष्ठ

वातसंर्घर्ष से विमान को बचाने वाला पञ्चवातसकधनालयन्त्र लगाना जिसके नालों से वातविषयाक्तिया विमान से खिचकर बाहिर निकल जाती हैं। आवह आदि १२२ भेदों में हैं ७६ वा वातायन प्रवाह है जहा प्रीष्म ऋतु में विमान को बकराति से यात्रियों को हानि की सम्भावना है विमान की बकराति को रोकने के लिये विमान के लिये विमान के नीचे पार्श्वकेन्द्र में वातसंर्घनाल कीलयन्त्र लगाना। वर्षा ऋतु में विश्व त से उत्पन्न अग्निशक्ति की शान्ति विश्वारपणयन्त्र से हो जाना वर्फ के समान ढण्डा हो जाना। आकाशीय ३०४ शब्दों में मध्यरहन वायु विश्व त की कडक से द वे स्वर में श्रोत्र-विदीर्णता और विधरता आदि हानि से बचाने को शब्दकेन्द्रमुख्यन्त्र लगाना ॥

१५५-१७३

### कापी संख्या १२-

आकाश में रोनियो आदि १२ उल्काएँ विश्व त में भी हैं उक्त उल्काओं में स्थित विश्व त के प्रहार में विमान को बचाने के लिये विश्व द्वादशाक्यन्त्र लगाना। विमान में स्थित धूम, विश्व त और वायु को नियन्त्रित करने और उपयोग में लेने के लिये प्राणकुरुलियन्त्र लगाना। जिससे विमान की विविव गतिया सिद्ध होती है ॥

१७४-१८३

### कापी संख्या १३—

आकाश में प्रहों के प्रभाव से विमानपथरेखा में शीतरसधारा शीतधूमधारा शीतवायुधारा वेगसे आ जाया करती है जोकि विमानके कलपुजोंको शिथिल और यात्रियों को रुण तथा विमानपथ को अद्वश्य कर दिया करती है उन्हें निवृत्त करने ये उनके प्रहार से बचाने के लिये विश्वारपणमयन्त्र लगाना। शत्रुघ्ना दम्भोजि (तारपीढ़ों जैसे) आदि विधातक आठ यन्त्र स्वविमान के मार्ग में ऐके हुओं से बचाने के लिये स्वविमान की बकराति देने के निर्मित बकरप्रसारणयन्त्र लगाना। विश्वातशकि को संबंध विमानझों में प्रेरित करने के लिये विश्व त-शकि से पूर्ण तारों से विरा पित्तजरा जैसा शक्तिपञ्चरथन्त्र लगाना। मर्दों से विश्व त के पतन की आशङ्का पर विमान के शिर पर छत्रों के आकार का धूमता हुआ शिर कीलकयन्त्र लगाना जिससे विश्व त का प्रभाव कोसों दूर रहे। विविव शब्दों भाषा भाषणों वाजे स्वर सङ्कल्प आदि को खीचनेवाला शब्दाक्षरणयन्त्र लगाना ॥

१८४-१९८

### कापी संख्या १४—

भिन्न भिन्न भय आदि अवसरों पर बैसे बैसे रंग के वस्त्र का प्रसारण होना आठों दिशाओं में प्रहों और किरणों की संधियों में ऋतुकाल सम्बन्धी १५ कौवेर-विश्व त शक्तिपूर्ण वायुए हैं उनसे यात्रियों को विविव कष्ट सम्भावनीय हैं उनसे बचाने के लिये दिशास्पतियन्त्र लगाना ॥

१९६-२१२

### कापी संख्या १५—

प्रहों के सञ्चार मार्गों में प्रहों के परस्पर, एक रेखाप्रवेश से प्रहसन्वि में

## विषय

पृष्ठ

ज्वालामुखविषयकि है जिससे यात्री मर जाते तक हैं उस विषयकि के नाशार्थ पट्टिका-भ्रक्षयन्त्र लगाना । शरद् और हेमन्त ऋतु की शीतता को निवृत्त करने के लिये सूर्यशक्त्यपर्यण यन्त्र लगाना । शत्रु के विमानोद्धारा अपना विमान घर जाने पर उनके ऊपर अपमारप्यमप्रमारणार्थ अपनी रक्षा के अर्थ अप्समारप्यमप्रमारणयन्त्र लगाना । अध्रमएलों एवं वायुवर्णों के सर्वर्ष में विमान को अविचलित रखने के लिये स्तम्भनयन्त्र का होना । अग्निहोत्रार्थ और पाकार्थ वैश्वानरनालयन्त्र भी लगाना ॥

२१३-२२८

## कापी संरूपा १६--

मान्त्रिक, तान्त्रिक, कृतक ( यान्त्रिक ) नाम से विमानों के तीन जातिभेद । व्रतायुग में मान्त्रिक-यन्त्रप्रभाव योगसिद्धि से, द्वारपर में तान्त्रिक-तत्त्रप्रभाव-ओपथ युक्ति से, कलियुग में कृतक - यान्त्रिक-यन्त्रकलापरायण । मान्त्रिक विमान के २५ प्रकार “वन्नमवैस्व” ग्रन्थ में महर्षि भरद्वाज के अनुसार, किंतु “मरणभट्टिका” ग्रन्थ में गोतम के अनुसार ३२ हैं ॥

२२६-२३६

## कापी संरूपा १७--

तान्त्रिक विमान के भेद ५६ कहे हैं । कृतक अर्थात् यान्त्रिक-यन्त्रकला से चालित विमान २५ प्रकार के हैं । कृतक ( यान्त्रिक ) विमानों में प्रथम शकुन विमान है उसके पीठ पर पक्ष पुच्छ आदि २८ अङ्गों का बर्णन और रचना भिन्न भिन्न ओपथि खनिज पदार्थों के पुट से बनाए हुए भिन्न भिन्न कृत्रिम लोहों से करना । शकुन विमान की पीठ पर तीन बड़े कमरे बनाना, प्रथम में विमान के अङ्गयन्त्रों और उपकरणों को रखना दूसरे में स्तम्भ के साथ यात्रियों के बैठने को घर ( Compartments ) तीसरे में विमान के सिद्ध यन्त्र आदि साथन । शकुन विमान में चार ओपथ्य यन्त्र ( ऐंडिजन ), चार बाताकर्पण यन्त्र वायु को स्थीरने के लिये, भूमि पर सञ्चार करने को भी चक लगाना ॥

२३७-२५२

## कापी संरूपा १८--

दूसरा सुन्दर विमान है, उसमें ध्रुमोदगम आदि ८ विशेष अंग हों । पात्र से ध्रुमाड्जन तैल, हिंगुल तैल, शुकुरिंड तैल, कुलटी ( मन शिला ) का तैल भरना । विश्वात् के संयोजनार्थ मणिपेंच के अन्दर नालमार्ग से दो तार लगाना, नालस्तम्भ के अन्दर धूम को रोकने और फेंकने के अर्थ छिद्रसहित नूमने वाले तीन चक नाल सहित लगाना तैलधूम और जलधूम की नालें उन्हें बाहिर निकालने को लगाना एवं ४० यन्त्र सुन्दर विमान में लगाना । शुण्डाल—शुण्ड जैसा यन्त्र १ बालिशन मोटा १२ बालिशन लम्बा ऊँचा हो जिससे विमान दौड़ता है । दूध गोन्द वाले वृक्षों के दूध गोन्द तथा विशेष निर्दिष्ट लोहे आदिको मिला कर शुण्डाल का बनाया जाना । शुण्डाल से ध्रुम निकालने और वायुको स्थीरने के द्वारा विमान का चलाना । संघर्षण, पाकजन्य, जलपात,

( ४ )

### विषय

सायोजक, किरणजन्य आदि ३२ विद्युत्यन्त्र होते हैं परन्तु विमान में सायोजक विद्युत्यन्त्र का लगाया जाना अगम्य के शक्तिन्त्र के अनुसार कहा जाना ॥

पृष्ठ

२५३-२६६

### कापी संख्या १६---

विद्युत-शक्ति पूरक पात्र बनाने का प्रकार, विमानको भूमि से ऊपर उठानेके लिए वातप्रसारणयन्त्र (वायुके फेंकनेवाला यन्त्र) लगाना, २६०० कक्षयगति (अश्वगति) से बात को फेंकना, वायु के निकलने से विमान का वेग से दौड़ना । सुन्दरविमान का आवरण भी शक्तिविमान की भाँति राजलोहे से बनाया जाना, कमरे और शेष ३२ अंग भी वेसे ही बनाना । विमान के चलने में धूम आदि निकालने का वेगप्रमाण गणित शाव्र से निश्चित किया जाना, एक चुटकी बताने जितने काल में धूमोद्गम यन्त्र (एंटिजन) से और्म्मिय वेग ३४०० लिङ्क (डिग्री) प्रमाण में हो जाने पर विमान का एक घड़ी में ४०० योजन अर्थात् एक घट्टे में ४०० कोस (लगभग ८००० मील) परिमाण से गति करना ॥

२७५-२८०

### कापी संख्या २०---

तीसरे रुक्मविमान का राजलोहे से बनाना और पाकविशेष से रुक्म अर्थात् स्वर्ण रंग वाला बन जाना अत एव उसका रुक्म विमान नाम से कहा जाना । १२ बालिशत लम्बा चौड़ा लोहिणड चक्र श्रृंखला तन्त्री (जब्तीर) द्वारा अन्य चक्रों से युक्त होने पर गतिशील होता है, अंगठे द्वारा वटनिका दबाने से सब कलायन्त्रों का चल पड़ना और विद्युत के योग से धूम का ५०० लिंक (डिग्री) वेग हो जाना चक्रताडन-स्तम्भ के आकरण से विमान का वेग से उड़ना । रुक्म विमान में अध्रक की भिन्निया आदि बनाया जाना ॥

पृष्ठ २८१-२९१

### कापी संख्या २१—

त्रिपुर विमान अपने तीन आवरणों से पृथिवी तल आकाश में चलने वाला होने से त्रिपुर विमान नाम से प्रसिद्ध होना । प्रथम भाग से पृथिवी पर दूसरे भाग से जल में तीसरे भाग से आकाश में गमन करता है । त्रिपुर विमान में किरणजन्य विद्युत से काम लेना । त्रिपुर विमान के ऊपर नीचे चक्रों में शक्ति होने से उसका पर्वतीं पर चढ़ने तिरछे बलने में समर्थ होता । त्रिपुर विमान में अध्रक का विशेष प्रयोग करना, ब्राह्मण त्रिय वैश्य शूद्र नाम से अध्रक के चार भेद कहे गए, श्वेत ब्राह्मण रक्त त्रिय पीत वैश्य और कृष्ण शूद्र अध्रक बतलाया है । ब्राह्मण अध्रक के १६, त्रिय अध्रक के १८, वैश्य अध्रक के ७ और शूद्र अध्रक के १५ भेद । त्रिपुर विमान में दिशाओं में धूमने वाले घर लगाना । उसका प्रथम आवरण सब से बड़ा दूसरा उससे छोटा तीसरा और भी छोटा होता । प्रथम आवरण के ऊपर नीचे मुख-बाले पैंचों में धूमने वाले इन चक्रों-मण्डुक हस्तचक्रों का लगाया जाना उनका विद्युत्-वारों से युक्त हो जल में गति करना ॥

पृष्ठ ३०२-३१८

## कापी संख्या २२—

जल में गमनार्थ प्रथम आवरण का संकोच कर लेना दूसरे आवरण के नीचे यन्त्रों को ले आना जीरीपट का आवरण में वयोग । ऊर की वायु को घूमने के लिए सीतकारी यन्त्र का लगाना जिससे सर्वत्र वायु प्राप्त हो । विमान में वेणीतन्त्री—चिन्ता-सूचका डोरी लगाना । भावणाकर्त्तक दिशाप्रदर्शक, शीतोष्णत्वमापक यन्त्र भी लगाना कहा है । अत्यन्त वर्षा, बात, धूप आदि के प्रतीकार करने वाले यन्त्र भी लगाना । इस प्रकार वर्षोपसंहार यन्त्र, ऋग्यवातनिरसन यन्त्र, आतपोपसंहारयन्त्र लगाने बतलाए हैं । वर्षोपसंहार यन्त्र कौशिक (कृत्रिम) लोहे से बनाना इस यन्त्र से विमानसम्बन्धी उच्चवागमी वायु के सामने पुरोवात-वर्षावात (पुर्व छावा) का संघर्ष हो जाने से पुरोवात दो टुकड़ों में विभक्त हो जाती है जो कि जल की दो शक्तियाँ द्रव (पतलापन) और प्राणन (गीलापन) हैं जिससे विमान पर जल वरस न सकेगा और उसे गीला भी न कर सकेगा । ऋग्यवातनिरसन यन्त्र वरुण लोहे से बनता है उसके सर्वमुखी तीन पेंच ऊर आकाश में खुले रखने होते हैं जिनके द्वारा महावात को स्वशक्ति से तीन टुकड़े कर आकाश में पेंक देता है । सूर्योपसंहार यन्त्र आतपाशन कृत्रिम लोहे से बनाना इसमें आतपोपसंहारक एवं शीतप्रसारक मणियाँ उद्धृता को हटाने वाले अधक चक लगाये जाते हैं ॥

## कापी संख्या २३—

त्रिपुर विमान के तीसरे आवरण अर्थात् सबसे ऊर वाले भाग में सूर्य-किरणों का आकर्षण करने वाली मणिया अंगुष्ठा मणि घूमने वाली मणियाँ एवं घूमने वाले तार और घूमने वाले पात्र भी लगाये जाते हैं तथा वेगमापक कालमापक उद्धृतामापक यन्त्र लगाना कहा है, विशुनु स्थान में इन तीनों यन्त्रों को लगाने का निर्देश किया है ॥

३१६-३३४

३३५-३४४

## हस्तलिखितग्रन्थप्रदर्शित विषयानुक्रमणिका

### **अध्याय १**

- १—मङ्गलाचरणम् ।
- २—विमानशब्दार्थाधिकरणम् ।
- ३—यन्त्र ( त्रृ ? ) त्वाधिकरणम् ।
- ४—मार्गोधिकरणम् ।
- ५—आवर्ताधिकरणम् ।
- ६—अङ्गोधिकरणम् ।
- ७—यस्त्राधिकरणम् ।
- ८—आहाराधिकरणम् ।
- ९—कर्माधिकराधिकरणम् ।
- १०—विमानाधिकरणम् ।
- ११—जात्याधिकरणम् ।
- १२—वर्णाधिकरणम् ।

### **अध्याय २**

- १३—संज्ञाधिकरणम् ।
- १४—लोहाधिकरणम् ।
- १५—संस्काराधिकरणम् ।
- १६—दर्पणाधिकरणम् ।
- १७—शक्त्याधिकरणम् ।
- १८—यन्त्राधिकरणम् ।
- १९—तैलाधिकरणम् ।
- २०—ओषध्याधिकरणम् ।
- २१—वाताधिकरणम् ।
- २२—भाराधिकरणम् ।

२३—वेगाधिकरणम् ।

२४—चक्राधिकरणम् ।

### **अध्याय ३**

- २५—भ्रामण्याधिकरणम् ।
- २६—कालाधिकरणम् ।
- २७—चिकित्पाधिकरणम् ।
- २८—संस्काराधिकरणम् ।
- २९—प्रकाशाधिकरणम् ।
- ३०—प्रकाशाधिकरणम् ॥
- ३१—उष्णाधिकरणम् ।
- ३२—आदोलना ( न ? ) धिकरणम् ।
- ३३—तिर्यक्चाराधिकरणम् ।
- ३४—विश्वतोमुखाधिकरणम् ।
- ३५—धूमाधिकरणम् ।
- ३६—प्राणाधिकरणम् ।
- ३७—सन्ध्याधिकरणम् ।

### **अध्याय ४**

- ३८—आहाराधिकरणम् ।
- ३९—लगाधिकरणम् ।
- ४०—वगाधिकरणम् ।
- ४१—हगाधिकरणम् ।
- ४२—लहगाधिकरणम् ।
- ४३—लवगाधिकरणम् ।

---

\* हस्तलेख में कारी करने वाले के प्रमाद से पुनर्जक्ति है ।

- ४४—त्वद्वागाधिकरणम् ।  
 ४५—वान्तर्गमनाधिकरणम् ।  
 ४६—वान्तर्देशगाधिकरणम् ।  
 ४७—अन्तर्लीक्ष्याधिकरणम् ।  
 ४८—बहिलीक्ष्याधिकरणम् ।  
 ४९—वाण्णाभयन्तर्लीक्ष्याधिकरणम् ।

#### अध्याय ५

- ५०—तन्त्राधिकरणम् ।  
 ५१—विशुद्धप्रसारणाधिकरणम् ।  
 ५२—व्याप्तयाधिकरणम् ।  
 ५३—स्तम्भनाधिकरणम् ।  
 ५४—मोहनाधिकरणम् ।  
 ५५—विकाराधिकरणम् ।  
 ५६—दिक्क्लिनिदर्शनाधिकरणम् ।  
 ५७—अहंश्याधिकरणम् ।  
 ५८—तिर्यक्ष्याधिकरणम् ।  
 ५९—भारवहनाधिकरणम् ।  
 ६०—घरटारवधि ( दि ? ) करणम् ।  
 ६१—शुक्रभ्रमणाधिकरणम् ।  
 ६२—चक्रगत्याधिकरणम् ।

#### अध्याय ६

- ६३—वर्गविभाजनाधिकरणम् ।  
 ६४—वामनिण्याधिकरणम् ।  
 ६५—शक्त्युद्गमाधिकरणम् ।  
 ६६—सूतवाहाधिकरणम् ।  
 ६७—धूमयानाधिकरणम् ।  
 ६८—शिखोद्गमाधिकरणम् ।  
 ६९—अंशुवाहाधिकरणम् ।  
 ७०—तारयुवाधिकरणम् ।  
 ७१—मणिवाहाधिकरणम् ।  
 ७२—मरुस्तलाधिकरणम् ।

- ७३—शक्तिगर्भाधिकरणम् ।  
 ७४—गारुडाधिकरणम् ।

#### अध्याय ७

- ७५—सिंहिकाधिकरणम् ।  
 ७६—त्रिपुराधिकरणम् ।  
 ७७—गृद्धवाराधिकरणम् ।  
 ७८—कूर्माधिकरणम् ।  
 ७९—उवालिन्याधिकरणम् ।  
 ८०—मारुडलिकाधिकरणम् ।  
 ८१—आददोलिकाधिकरणम् ।  
 ८२—ध्रजाङ्गाधिकरणम् ।  
 ८३—वृन्दावनाधिकरणम् ।  
 ८४—वैरिञ्चिकाधिकरणम् ।  
 ८५—जलदाधिकरणम् ।

#### अध्याय ८

- ८६—दिङ्गनिर्णयाधिकरणम् ।  
 ८७—ध्रजाधिकरणम् ।  
 ८८—कालाधिकरणम् ।  
 ८९—विस्तृतक्रियाधिकरणम् ।  
 ९०—अङ्गोपसदाराधिकरणम् ।  
 ९१—तम प्रसारणाधिकरणम् ।  
 ९२—गाणकुरुदल्याधिकरणम् ।  
 ९३—हृषकर्षणाधिकरणम् ।  
 ९४—प्रतिविम्बाकर्पणाधिकरणम् ।  
 ९५—गमागमाधिकरणम् ।  
 ९६—आवासस्थानाधिकरणम् ।  
 ९७—शोधनाधिकरणम् ।  
 ९८—परिच्छेदाधिकरणम् ।  
 १००—रक्षणाधिकरणम् ।

इति विषयसूचिका समाप्ता ॥

विश्वस्ति—यह सूचिका बड़ोदा राजकीय संस्कृत पुस्तक-भवन से प्राप्त हुई है।



कापो संख्या १—

यन्त्रसर्वस्वे

## \* वैमानिकप्रकरणम् \*

मङ्गलाचरणम्

यद्विमानगतास्सर्वे यान्ति ब्रह्म पर पदम् ।  
तन्त्रत्वा परमानन्द श्रु [श्रु?] तिमस्तकगोचरम् ॥  
पूर्वार्चार्यकृतान् शास्त्रानवलोक्य यथामति ।  
सर्वलोकोपकाराय सर्वानन्दविनाशकम् ॥  
ऋग्योहृदयसन्धो [व्यो?] हमाररूप मुखप्रदम् ।  
सूत्रे पञ्चदातैर्युक्त ज्ञाताधिकरणस्तथा ॥  
अष्टाध्यायसमायुक्तमतिमृढ़ मनोहरम् ॥  
जगतामितिसन्धानकारण शुभद नृणाम् ॥  
ग्रनायामाद् व्योमयानस्वरूपज्ञानसाधनम् ।  
वैमानिकप्रकरण कथ्यतेऽस्मिन् यथामति ॥

मङ्गलाचरणवचनों की बोधानन्दकृत व्याख्या —

व्याख्यानश्लोकाः +

महादेव महादेवी वारणी गणपति गुरुम् ।  
शास्त्रकार भरद्वाज प्रणिपत्य यथामति ॥ १ ॥

× गुजराती में 'कृ' का 'र' उच्चारण करते हैं भ्रत यदा 'श्रुति' का 'श्रुति' उच्चारण बहुमता में लिपिप्रभाद है जो कि वृत्तिकार के पश्चात् किसी गुजराती कापी करने वाले का नाम है ।

† भरद्वाज महर्षि ने 'वैमानिकप्रकरण' को पात्र सौ मुक्त्रों सौ अधिकरणों और आठ अध्यायों में विकास किया है ।

+ मङ्गलाचरण वचन महर्षि भरद्वाज के हैं 'महादेव' से व्याख्यानश्लोक वृत्तिकार बोधानन्द यति के हैं ।

स्वतमिमद्दन्यायशास्त्र वात्मीकिगणित तथा ।

परिभाषाचन्द्रिका च पञ्चान्नामार्थकल्पकम् ॥ २ ॥

पञ्चवार विचार्याधि तत्प्रमाणानुसारत ।

ब्रालाना सुखबोधाय बोधानन्दयतीश्वर ॥ ३ ॥

सग्रहाद् वैमानिकाधिकरणस्य यथाविधि ।

लिलेष्व बोधानन्दवृत्त्याव्याया व्याव्याय मनोहराम् ॥ ४ ॥

व्याव्याया लक्षणगारीत्यास्य पाणिनीया [या? ] ४५दिमानत ।

परिभाषिकरूपतावाद् व्याव्यायानु नेव शब्दयते ॥ ५ ॥

महान् देव परमेश्वर महती देवतारूप वारी-वेदवारी, निज गुरुस्वर गणिति को तथा 'यन्त्र-मवेस्व' नामक शास्त्र एवं तत्रस्थ 'वैमानिक प्रकरण' के रचयिता महर्षि भरदाज को अद्वारुचक एवं यथात्रन् प्रणाम करके स्वतं सिद्ध न्यायशास्त्र तथा बालमाणिक गणित और परिभाषाचन्द्रिका ग्रन्थ को पुन नामार्थकल्प ग्रन्थ को पाच वार विचार करके तथा उनके प्रमाणानुसार विद्यार्थियों के सुखबोध-सरल ज्ञान के लिए मुकु बोधानन्द यतीश्वर से वैमानिक प्रकरण की बोधानन्दवृत्ति नाम की मनोहर व्याव्याय को सचेत से यथाविधि लिखा है । इस ग्रन्थ की व्याव्याया परिभाषिकरूप होने से पाणिनीय आर्द्ध के अनुसार लक्षणरीति से स्पष्ट नहीं की जा सकती है + ॥ ४-५ ॥

प्रारीतिस्तस्य ग्रन्थस्य निर्विघ्नेन यथाक्रमम् ।

परिसमाप्तिप्रचयगमनाभ्या यथाविधि ॥ ६ ॥

शिष्टाचारपरिप्राप्तमङ्गलाचरण स्वत ।

अनुप्राय यथाशास्त्र शिष्ट्यशिक्षार्थमादरात् ॥ ७ ॥

यद्विमानगतास्सर्वेत्युत्कृशलोकाद्याक्रमात् ।

स्वेष्टदेवनमस्काररूपमङ्गलामानोद् ॥ ८ ॥

अर्थात्सूचयति ग्रन्थादनुवन्धचतुष्टयम् ।

ब्रह्मानुग्रहसलव्यवेदराशि कृपाकर ॥ ९ ॥

प्रारम्भ करने में अभीष्ट प्रन्थ की यथाक्रम निर्विद्वरूप से यथाविधि परिसमाप्ति और विस्तार प्रचार के लिये एवं शिष्यों की शिक्षा के अर्थ शास्त्रानुसार आदर से शिष्टाचारपरम्परा से प्राप्त मङ्गलाचरण का स्वयं अनुष्ठान करके 'यद्विमानगतास्सर्वे' उक्त श्लोक से क्रमानुसार निज इष्टदेव का नमस्कार-रूप मङ्गल का महर्षि भरदाज ने सेवन किया है । परमेश्वर के अनुग्रह से समस्त वेदज्ञान को प्राप्त हुआ, दयालु प्रन्थकार निज ग्रन्थ से अनुवन्धचतुष्टय को प्रकरण एवं प्रसङ्ग से सूचित करता है ॥१६॥

निर्मयं तद्वेदाम्बुधि भरदाजो महामुनि ।

नवनीतं समुद्धृय यन्त्रसर्वस्वरूपकम् ॥ १० ॥

\* यहा हस्तवेत्र मे 'पाणिनीयादिमानत' प्रयोग से 'नीय' यकारदिव है और ऐसा अनेक स्थलो पर आया है, हो सकता है यह यौनी वाक्याणात्य हो ।

+ इस ग्रन्थ का समस्त हिन्दी भाषा का अनुवाद हमारा ( स्वामी ब्रह्मसुनि का ) है ।

प्रायच्छत्वसंबोक्तामीपितार्थकलप्रदम् ।  
 तस्मिन् चत्वारिंशतिकाधिकरे गम्पदितिनम् ॥ ११ ॥  
 नाविमानवैच्यरचनाकमबोधकम् ।  
 अष्टाद्यार्थिभाजित शताधिकरण्युर्तम् ॥ १२ ॥  
 सूत्रै पञ्चशतीयुर्क्त व्योमयानप्रधानकम् ।  
 वैमानिकप्रकरणमुक्त भगवता स्फुटम् ॥ १३ ॥

महार्प भरदाज ने उस वेदवृत्त ममुद का निर्मन्यन करके भव मनुष्यों के अभीष्ट फलप्रद 'यन्त्रमर्थम्' प्रथरूप ममकन को निकाल कर दिया। चालीस अधिकारों-प्रकरणों से युक्त उस 'यन्त्रमर्थम्' प्रथरूप में भिन्न भिन्न विमार्थों की विचित्रता और रचनाकम का बोधक आठ आवायों से विमानिति सौ अधिकरणों वाला पाच सौ सूत्रों से युक्त आकाशशायन विमान प्रधानहर से जिसमें वर्णित है गंगा 'वैमानिक प्रकरण' भगवान् भरदाज झूँप ने सम्प्रदर्शित किया एवं स्पष्ट कहा है ॥ १०-१३ ॥

तत्रादी मङ्गलशनोकतःत्पर्य (यस् ?) सन्निरूप्ये ।  
 उनरे तपानीये च शब्दव्याप्रसने च काठके (टके ?) ॥१८॥  
 माण्डुक्ये च यदोद्भाव परापरविभागत ।  
 उन स्थादास्त्वया ब्रह्मप्रात्यर्थमादरात् ॥ १५ ॥  
 विमानत्वेन मुनिना तदेवात्राभिवर्षितम् ।  
 वाच्यार्थलक्ष्यार्थमेदानददि(दि?)धा भित्ये शु (शु?)तो ॥१६॥  
 त्रूरीय एव लक्ष्यार्थं प्रगवस्येति कीर्तित ।  
 तदेवाक्याउकरस परमात्मेति चोच्यते ॥ १७ ॥  
 गन(क ?)दानमन्त शठमित्यादि शु (शु?)तिमानत ।  
 गमनार्थं साधकाना भक्त्या तत्परम पदम् ॥ १८ ॥

अब प्रथम मङ्गलश्लोकों के तात्पर्य निस्पत्ति किया जाता है उन्नर तात्परीय, मौख्य प्रश्न, मठप्रोत्ति और मारुद्वय उपनिषद् में भी ओङ्कार 'ओम्' पर अपर विभाग से बहिंत है वह आपोहण करने को उत्सुकों की ब्रह्मापति के अर्थ आदि से कहा गया है। भरद्वाज मुनि ने इस मङ्गलाचरण में उसी ओम् ब्रह्म का विमान रूप से वर्णन किया है, उक्त ओम् रूप ब्रह्म बाच्यार्थ और लक्ष्यार्थ के भेद से उपनिषद् श्रुति में दो पकारों में विभक्त हो जाता है। प्रणव अर्थात् ओम् का तुरीयरूप अर्थात् चतुर्थ अमात्र रूप या बन्तुरूप ही लक्ष्यरूप है ऐसा कहा है वही अवधारणकरण परमात्मा है ऐसा भी कहा है। यही ओङ्काररूप आत्मवन् श्रोतु इस 'पतदालम्बनं श्रेष्ठमेतदालम्बनं परम्' इत्यादि उपनिषद् वचनों के प्रमाणानन्दर उपासकों का भक्ति से प्राप्त करने योग्य वह परम पद है ॥१५-१८॥

वाचक ( ) प्रणावो ह्यत्र विमान इति वरिणत ।  
 तमारुद्ध यथाशास्त्रं गुरुक्तेनैव वर्त्मना ॥ १६ ॥  
 ये विशन्ति ब्रह्मपदं ब्रह्मचर्यादिसाधनात् ।  
 तदत्र मद्भूलश्लोकह्येषां प्रतिपादित ॥ २० ॥

यहां वाचकरूप ओम् ही विमान है ऐसा वर्णित किया है गुरुद्वारा उपदिष्ट मार्ग से उस पर शास्त्रानुसार आरोहण कर जो उत्तरक जन ब्रह्मचर्य आदि साधन द्वारा ब्रह्मपद को प्राप्त होते हैं वह ऐसा ब्रह्मपद यहां मङ्गलश्लोकरूप वचन से विमान प्रतिपादित किया है ॥ १६—२० ॥

तदर्थवोधकपदान्यष्ट श्लोके स्मृतानि हि ।  
 द्वितीय (य?)+ पदतस्तेषु सम्यगुक्ता मुख्यतः ॥ २१ ॥  
 स एव कर्तुवाची स्याज्जीववाचीति चोच्यते ।  
 यद्विमानगतेत्यत्र वाचक प्रणावस्मृत ॥ २२ ॥  
 विमानवेनात्र सम्यक्तदेव प्रतिपादित ।  
 एष एवादिमपदो भवेत् कर्तुविवेषणम् ॥ २३ ॥  
 तुरीयपदत प्रोक्तमवाइमानसगोचरम् ।  
 अखण्डकरस ब्रह्म प्राप्तव्यस्थानमुत्तमम् ॥ २४ ॥  
 उक्तमेतत्कर्मपदमिति श्लोकान्वयक्रमात् ।  
 प्रणावास्थविमानेन गमन यत्प्रकीर्तिम् ॥ २५ ॥  
 तत्तृतीयपदेनोक्त वाच्यलक्ष्यवोधकम् ।  
 क्रियापदमिति प्रोक्तम् (कत् य?) नवयक्रमत (त?) स्फुटम् ॥ २६ ॥  
 विशेषणपदानि स्यु कर्मणास्त्रीण्यथाक्रमम् । +  
 प्रसिद्धि (द?) द्योतनार्थाय पञ्चम पदमीरितम् ॥ २७ ॥  
 तथैव सप्तपद नित्यानन्दप्रबोधकम् ।  
 सर्ववेदान्तमानन्तवोधार्थ चाष्टम पदम् ॥ २८ ॥

उसके अर्थवोधक आठ पद यहां श्लोक में स्मरण किए गये हैं—कहे हैं, उनमें द्वितीय पद से मुमुक्षु भली प्रकार कहे हैं । वह ही ओम् कर्तुवाची अर्थात् जगत्कर्ता परमेश्वर का वाचक है और जीववाची अर्थात् जीव का वाचक भी कहा जाता है +, यहां जिस विमानपदप्राप्ति पर भी ओम् वाचक निश्चित है । यहा मङ्गलाचरण में विमानरूप से वह ही भली प्रकार प्रतिपादित किया है वह ही आदि का पद अर्थात् ब्रह्मात्मा का प्रथम पाद या ओम् में अकार कर्तुविशेषण है । तुरीय पद अर्थात्—ब्रह्मात्मा के चतुर्थ पाद या ओम् के अमात्ररूप से वाणी और मन के व्यवहार से रहित अर्थात्—अवर्णीय और अचिन्त्य अखण्ड एकरस उत्तम प्राप्तव्य स्थानरूप ब्रह्म कहा है । यह कर्मपद इस प्रकार श्लोकान्वय कम में कह दिया ओम् रूप विमान से गमन करना पहुँचना या प्राप्त करना जो कहा गया है । तृतीय पद से

+ यहा 'द्वितीय' में यकारद्वय पूर्व की भाति दाक्षिणात्य हो सकता है ।

† यहा 'वीण्यथाक्रमम्' वीणि व्यथाक्रमम् में वीणि के अन्तिम इकार का लोप पुरातन द्यान्दस है ।

‡ ओम् को जीववाची भी कहना ग्रह वृत्तिकार बोधानन्द का है हमारा नहीं हमने तो उसके श्लोक का अनुवाद किया है ।

वह वाक्य लक्ष्य की एकता का वोधक कहा है वह अन्वयकम से कियापद स्पष्ट कहा गया है। तीन विशेषण पद कर्म के वयाकम हैं पाचवा पद प्रसिद्ध दर्शाने के अर्थ कहा गया है। उसी प्रकार सातवा पद निःयानन्द का वोधक है और आठवा पद समस्त वेदान्त-उपनिषद् वचनों द्वारा माननीयता के दर्शने के अर्थ है॥ २१—२८॥

नत्वेति यत्पद प्रोक्त नत्पङ्क्तीभावबोधकम् ।  
 एतेन तत्त्वमस्यादिवाक्यार्थोत्तमभूत्कमात् ॥ २६ ॥  
 यद्विमानगतेत्यत्र त्वपदत्वेन वर्णितम् ।  
 तत्पदार्थंत्वेन ब्रह्मपर पदमितीरितम् ॥ ३० ॥  
 नत्वेत्यक्यपरामशर्विर्भिर्पदार्थबोधक ।  
 इत्य इलोकात्तत्त्वमसि वाक्यार्थस्सन्निरुपित ॥ ३१ ॥  
 तदर्थेत्यानुसन्धानस्तप्तमङ्गलमातन् ।  
 एव विधाय विविवम्बङ्गलाचरण मुनि ॥ ३२ ॥  
 पूर्वाक्यार्थस्त्वं तद्यन्त्वात् द्वितीयश्लोकतोत्त्रीवीत् ।  
 विवदनाव्योक्तवामानि तेषा वृथये यथाकमम् ॥ ३३ ॥  
 नारायण (गो ?) शीनकश्च गर्भो वाचस्पतिस्तथा ।  
 चाकायरिण्डु उडिनावश्चेति शास्त्रकृतस्त्वयम् ॥ ३४ ॥  
 विमानचन्द्रिका व्योमयानतन्त्रस्तथेव च ।  
 नन्त्रकलो यानविन्दु खेत्यानप्रदीपिका ॥ ३५ ॥  
 व्योमयानार्कप्रकाशशेति शास्त्राणि षट् क्रमात् ।  
 नारायणादिमुनिभि प्रोक्तानि जानवित्तम् ॥ ३६ ॥  
 विचार्येतानि विधिवद् भरद्वाज कृपानिधि ।  
 वैमानिकप्रकरण सर्वलोकोपकारकम् ।  
 पारिभाविकरूपेण रचयामास विस्तरात् ॥ ३७ ॥

मङ्गल वचनों में 'नत्वा' यह पद जो भरद्वाज ऋषि ने कहा है वह आदर-विनय भाव का दर्शक है इससे 'तत्त्वमसि' आदि उपनिषद् वाक्यार्थों से कहा हुआ ब्रह्म कम से समझना चाहिये। 'यद्विमान गतः' यहाँ वर्ते पदरूप से उपनिषद् वचन में 'तत्त्वमसि शेतकेतो' कहा गया है 'तत्' पदार्थरूप से ब्रह्मप्रक कह दे ऐसा कहा है। 'नत्वा' यह एक्य परामर्थी (जीवब्रह्म की एकता) के साथ सम्बन्ध रखने वाला 'अस्ति' का पदार्थबोधक है इस प्रकार श्लोक से 'तत्त्वमसि' वाक्य का अर्थ निरूपित किया है+। भरद्वाज मुनि ने इस प्रकार विधिवत् मङ्गलाचरण करके उस ऐक्यार्थ के अनुसन्धानरूप मङ्गल का विस्तार किया है॥ पूर्वे आचार्यों और उनके ग्रन्थों को दूसरे श्लोक से कहा है, विश्वानाथ आचार्य के + यहा जीवब्रह्म की एकता का सिद्धान्त वृत्तिकार बोधानन्द का है हमने तो उसके वचनों का अनुवाद किया है।

द्वारा कहे हुए उनके नामों को मैं कम से कहूँगा । नारायण, शौनक, गर्ग, वाचस्पति, चाकायणि और धुण्डिनाथ ये ऋषि स्वयं शास्त्रकार हैं । विमानचन्द्रिका, व्योमयानतन्त्र, यन्त्रकल्प, यानविन्दु, खेट्यान-प्रदीपिका और व्योमयानाक्रपकाश ये छः शास्त्र कम से विशेष ज्ञानवेत्ता नारायण आदि मुनियों ने कहे हैं । दयानिधि भरद्वाज ऋषि ने इन शास्त्रों को भली प्रकार विचार कर सर्वलोकोपकारक 'वैमानिक प्रकरण' पारिभाषिक रूप से विस्तार से रचा है कि ॥ २६—३७ ॥

अथ विमानशब्दार्थविचार ।—

**वेगसाम्याद् विमानोपज्ञानामिति ।** अ० १ । स० १ ॥

**सूत्रशब्दार्थ—** अरण्डजों अर्थात् पञ्चियों के वेगसाम्य से विमान कहलाता है ।  
बोधानदवृन्दि—

अण्डजैत्यत्र सूत्रेस्मिन् गृध्राद्या पक्षिणि स्मृता ।  
आकाशगमने तेपा वेगशक्तिं स्ववेगत ॥ १ ॥  
य समर्थं विशेषणा मातुं गरिणतस्यथा ।  
स विमान इति प्रोक्तो वेगसाम्याच्च शास्त्रत ॥ २ ॥

यदा—

गृध्रादिपक्षिणा वेगसाम्य यस्यास्ति वेगत ।  
स विमान इति प्रोक्तं (क्तो ?) आकाशगमने क्रमात् ॥ ३ ॥

इस सूत्र में “अरण्डज्ञानाम्” पद से गृध्र आदि पक्षी कहे गये हैं आकाशगमन में उनकी वेगशक्ति को जो स्ववेग से गरिणतसंख्या द्वारा विशेषरूपेण मानने तुलित करने में समर्थ हो वह वि-मान पक्षी के मान होने से अर्थात् वेगसाम्य से और शास्त्रानुसार ( शब्दशास्त्रानुसार ) विमान कहा गया है । अथवा आकाशगमन में गृध्र आदि पक्षियों के वेग की समता क्रमशः जिसके वेग से हो सकती है वह विमान कहा गया है + ॥ १—३ ॥

इत्यम्भावेति × शब्दस्याद् (दस्याद् ?) विमानार्थविनिर्णये—

लल्लोपि—

विसोप (म) न गमने येषामस्ति खमण्डले ।  
ते विमाना इति प्रोक्ता यानशास्त्रविशारदे ॥ ४ ॥

\* महोप भरद्वाज के रचे ‘वैमानिक प्रकरण’ से पूर्व विमानशास्त्र के ग्रन्थ ‘विमानचन्द्रिका, व्योमयानतन्त्र, यन्त्रकल्प, यानविन्दु, खेट्यानप्रदीपिका, व्योमयानाक्रपकाश’ ये द्वा ये ।

+ ऋग्वेद में भी श्येत की उपासा उड़ने से विमान यान की दी है “आ वा रथो अश्विना श्येनपत्वा सुमुलीक स्ववा यात्ववर्द् ।” ( अ० १।११८।१ )

× इत्यम्भाव इति—इत्यम्भावेति सन्धिरार्थं पुरातनप्रयोगो वा ।

**नारायणोपि—**

पृथिव्यप्तवन्तरिक्षेषु खगवदेगत स्वयम् ।  
यस्समर्थो भवेद् गन्तु स विमान इति स्मृत ॥ इत्यादि ॥५॥

**शङ्कोपि—**

स्थानात्स्थानान्तर गन्तु यस्मर्थं खमण्डले ।  
स विमान इति प्रोक्तो यानशास्त्रविशारदे ॥ ६ ॥ इत्यादि

**विश्वभर —**

देशादे शान्तर तद्दृ द्वीपाद् द्वीपान्तर तया ।

लोकालोकान्तर चापि योम्बरे गन्तुमहंति ।

स विमान इति प्रोक्त (ो?) सेटशास्त्रविदा वरं ॥७॥

विमानार्थ के निर्णय में इस प्रकार भाववाला यह विमान शब्द है । लल्ल आचार्य ने भी कहा है—आकाश-मण्डल में गमन करने में पञ्चियों के साथ जिन की उपमा एवं तुल्यता हो वे यान-शास्त्रज्ञ विद्वानों द्वारा विमान कहे गये हैं । नारायण आचार्य ने भी कहा है—पृथिवी जल आकाश में पञ्चियों के लेग की भाँति स्वयं (यन्त्रादि द्वारा) जो गमन करने को समर्थ हो वह विमान कहा गया है । आचार्य शङ्कु ने भी कहा है—आकाशमण्डल में एक ध्यान से दूसरे ध्यान पर जाने को जो समर्थ हो वह यानशास्त्रज्ञ विद्वानों द्वारा विमान कहा गया है । एवं विश्वभर आचार्य ने भी कहा है—आकाश में देश से देश को द्वीप से द्वीप को और लोक से लोक को जो जा सकता हो वह यानशास्त्रज्ञ उच्च विद्वानों द्वारा विमान कहा गया है ॥ ४—७ ॥

एवं विमानशब्दार्थं मुक्त्वा शास्त्रानुसारत ।

अथेदानी तद्रहस्यविचारस्स प्रकीर्त्यंते—

**रहस्यज्ञोधिकारी ॥ अ० १ ॥ श० २ ॥**

**सूत्रशब्दार्थ—**रहस्यों का जाननेवाला विमान चलाने में अधिकारी है ।

**बोधानन्दवृत्ति —**

वेमानिकरहस्यानि (ए?) यानि प्रोक्तानि शाखत ।

द्वात्रिशदिति तान्येव यानयन्त्रत्वकर्मणि ॥ १ ॥

साधकानि भवन्तीति यदुक्त ज्ञानिभि पुरा ।

तत्सूत्रस्यादिमपदात्मचित भवति स्फुटम् ॥ २ ॥

एतद्रहस्यविज्ञान विदित येन शास्त्रत ।

द्वितीयपदत प्रोक्त सोधिकारी भवेदिति ॥ ३ ॥

एतेन यानयन्त्रत्वे रहस्यज्ञानमन्तरा ।

सूत्रेधिकारसंसिद्धि नैति सम्यग्निर्णितम् ॥ ४ ॥

विमानरचने व्योमारोहणे चालने तथा ।  
स्तम्भने गमने चित्रगतिवेगादिनिर्णये ॥ ५ ॥  
वैमानिकरहस्यार्थज्ञानसाधनमन्तरा ।  
यतोधिकारसंसिद्धि नेति सूत्रेण वर्णितम् ॥ ६ ॥  
ततोधिकारसंसिद्धिर्थं तद्रहस्याण्याकमम् ।  
यथोक्तानि रहस्यलहर्या लङ्घादिभि पुरा ॥ ७ ॥  
तथैवोदाहरित्यमि सप्रहेणा यथामति ।

इस प्रकार शास्त्रानुसार विमानशास्त्रार्थ कहकर पुन अब विमानरहस्य विचार वर्णित किया जाता है—शास्त्र द्वारा जो वैमानिक रहस्य वक्तीस कहे हैं वे ही यान-चानककर्म में साधक होते हैं यह जो विद्वानों ने पुराकाल में कहा है वह सूत्र के आदिम पद से स्पष्ट सूचित होता है। इस वक्तीस रहस्यविज्ञान को जिससे शास्त्रद्वारा जान लिया है वह विमान का अधिकारी है यह द्वितीय पद से कहा है। इससे यानचालक कर्म में रहस्यज्ञान के विना विमानधिकार नहीं है यह भली प्रकार निर्णय दिया है ॥ विमान के रचने, आकाश में चढ़ने, चलाने, स्तम्भन करने—नियन्त्रण में रखने, उड़ाने चित्रगति और वेग आदि देने के निर्णय में वैमानिक रहस्यार्थज्ञानरूप साधन के विना अधिकारसंसिद्धि नहीं है अत उसे सूत्र में कहा है ॥ अधिकारसंसिद्धि के लिये उन रहस्यों को लल्ल आदि आचार्यों ने पुराकाल में क्रमशः जैसे 'रहस्यलहरी' प्रन्थ में कहा है वैसे ही संचेप से यहा यथावत् उदाहृत करंग ॥ १—७ ॥

उक्त हि रहस्यलहर्याम्—

मान्त्रिकसु [को ?] तान्त्रिकस्तद्वक्तुकश्चान्तरालक ।  
गृहो दृश्यमद्दृश्य च परोक्षश्चापरोक्षक ॥ १ ॥ [६]  
सङ्कोचो विस्तृतश्चैव विश्वपकरणास्तथा ।  
रूपान्तरस्मूलपृष्ठच ज्योतिभविस्तमोमय ॥ २ ॥ [६]  
प्रलयो विमुखस्तारो महाशब्दविमोहन ।  
लङ्घनस्सार्पेणगमनश्चपलस्सर्वंतो मुख ॥ ३ ॥ [१०]  
परशब्दग्राहकश्च रूपाकर्षणास्तथा ।  
क्रियारहस्यग्रहणो विक्रदर्शनमेव च ॥ ४ ॥ [११]

ऋ

...

स्तव्यक [को ?] कर्षणश्चेति रहस्यानि यथाकमम् [१२]  
एतानि द्वात्रिशद्वर्षानि [गिरि ?] मुरोमुखात् ॥ ५ ॥

\* हस्तनेत्र में इलोकार्द्धं छूटा हुआ है जो किसी कापी करने वाले से छूटा है, जिस इलोकार्द्ध में 'आकाशाकार, जलदृश्य' ये दो रहस्य में तभी पूरी सरूप्या ३२ होगी, तथा आगे रहस्यविवरण में २६ ३० सब्बा में उक्त दोनों रहस्यों को दिया हुआ भी है।

विज्ञाय विधिवत्सर्वं पश्चात् कार्यं ममारभेत् [ १३ ]

एतद्रहस्यानुभवो यस्यास्ति गुरुबोधन ॥ ६ ॥

स एव व्यामयानाधिकारी स्यान्नेतरे जना (३) [ १४ ]

एतेषा सिद्धनाथोक्तरहस्यार्थविवेचनम् ।

स प्रहेण प्रवक्ष्यामि रहस्यज्ञानसिद्धये [ १५ ]

'रहस्यलहरी' में कहा है कि—मान्त्रिक, तान्त्रिक, कृतक, अन्तरालक, गृह, दृश्य, अदृश्य, परोक्ष, अपरोक्ष, स्वेच्छ, विभृत, विरूपकरण, ऊपरन्तर, सुख्य, ज्योतिर्भव, तमोमय, प्रलय, विमुख, मठाशब्दविमोहन, लङ्घन, सार्पणमन, चपल, सर्वतोमुख, परशब्दप्राहक, रूपाकरण, क्रियारहस्यग्रहण, दिक्षप्रशीण, (आकाशाकार, जलरूप), स्त्रवरु, कंपण । वथाकम् इन वर्तीम रहस्यों को गुरुमुख से जानकर पुन विधिवत् समस्त कार्यं प्राप्तम् करना चाहिये ॥ गुरु से सीखा हुआ यह रहस्यानुभव जिसको है वह ही व्यामयान अर्यान् आकाशायान विमान चलाने का अधिकारी हो सकता है अन्य जन नहीं ॥—१५ ॥

इन वर्तीम प्रकार के विमानविधयक रहस्यों के मिद्धनाथ आचार्य द्वारा वर्णित विवेचन को मैं रहस्यज्ञानसिद्धि के लिये संक्षेप से कहूँगा ॥१५॥

( १ ) तत्र मान्त्रिकरहस्यो नाम—मन्त्राधिकारोक्तरीत्य छिन्नम-  
स्ताभेरवीवेगितोसिद्धास्त्रादिमन्त्रानुष्ठानेरूपलब्धसिद्धमाग्नोवत्पुटिकापाटुकादृश्या-  
दृश्यादिदशविक्तभिस्त (भि त ?) था सिद्धाम्बा—ओपथ्यैश्व ( धीश ? )  
र्यादिमन्त्रानुष्ठानै सम्प्राप्त ओपथिभिस्तदद्रा ( द्रा ? ) वक्तैलादिभिक्ष  
भुवनैश्व ( नेश ) वर्यादिमन्त्रानुष्ठानलब्धमन्त्रविक्तिक्रियाशवत्यादिभिक्ष कलासयो-  
जनद्रागारामेयत्वाच्छेदत्वादाह्नाविनाशित्वादिगुणविशिष्टविमानरचनाक्रिया  
रहस्यम् × ॥

( २ ) मान्त्रिक रहस्य विचार—मन्त्राधिकार में कही गीति के अनुमार छिन्नमस्ता भैरवी वेगिनी  
मिद्धाम्बा + आदि के मन्त्रानुष्ठानों से उत्तरव्य मिद्ध मार्गों में कही हुई पुटिका, पाटुका, दृश्य अदृश्य +  
आदि की शक्तियों द्वारा तथा सिद्धाम्बा ओपथियों + ऐश्वर्य आदि के मन्त्रानुष्ठानों से प्राप्त ओपथियों

× दहस्तनेत्रम् ये 'द्वारा ग्रन्तेत्वात्वच्छेदत्वात् व्रिविनाशित्वादि' ऐसा मन्त्रित हित पाठ है ।

† छिन्नमस्ता आदि चार प्रकार की विद्युत् के नाम पारिभाषिक प्रतीत होते हैं जो यन्त्र में प्रयुक्त की जाती है ।

‡ पुटिका आदि शक्तिरूप साधनों के जातिवाचक नाम हैं ।

+ राजनिष्ठादु मे 'सिद्धोपथिया' पाच ओपथियों के नाम वर्तनाये हैं ।

तैलकन्दसुधाकन्दरुदन्ता सर्वपाशीपु ।

तैलकन्दसुधाकन्द क्लोडन्टी रुदन्तिका ॥

सपनेत्रवुता पञ्च सिद्धोपथिसज्जना ॥ ( रा० नि० )

एवं उनके द्वावक तेल + आदि से मुवन ऐरवर्य आदि मन्त्रानुष्ठानों से प्राप्त मन्त्रशक्ति ( विशायुक विचारशक्ति ) एवं कियाशक्ति आदि से क्लाससेयोजन द्वारा अभेयता अच्छेदता अदायता अविनाशिता आदि गुणविशिष्ट विमानरचनारूप कियारहस्य किंचाहै ।

( २ ) तान्त्रिकरहस्यो नाम—महामायाशम्बरादितान्त्रिकशास्त्रोवता-  
नुष्ठानमार्गतत्तच्छ्वतथनुसन्धानरहस्यम् ॥

( २ ) तान्त्रिकरहस्यविचार—महामाया शम्बर आदि तान्त्रिक शास्त्र में कहे अनुष्ठान मार्ग से उस शक्ति का अनुसन्धानरहस्य विचार है ॥

( ३ ) कृतकरहस्यो नाम—विश्वकर्मद्वायामुखमनुमयादिशास्त्रानुष्ठान-  
( तु ? ) द्वारा तत्तच्छ्वतथनुसन्धानत्रूपकं तात्कालिकसङ्कल्पानुसारेण विमान-  
रचनाक्रमरहस्यम् ॥

( ३ ) कृतक रहस्य विचार—विश्वकर्मा, द्वायामुख, मनु, मय + आदि ( यन्माविष्कारक महर्विद्यों के ) शास्त्रों के अनुष्ठान द्वारा उस शक्ति का अनुसन्धान स्वेज ध्यान तात्कालिक सङ्कल्प अर्थात् तुरन्त नून कल्पना के अनुसार विमानरचनाक्रम रहस्य विचार है ।

( ४ ) अन्तरालरहस्यो नाम—आकाशपरिधिमण्डलशक्तिसन्धिस्थानेषु  
विमानप्रवेशो यदा भवति तदोभय ( तदा उभय ? ) शक्तिसम्मर्दनेन चूणितो  
भवति । अतो ( त ? ) विमानस्य तत्सन्धिप्रवेशसूचनातदन्तरालेषु विमान-  
नस्तम्भनक्रियाकरणरहस्यम् ॥

( ५ ) अन्तरालरहस्य विचार—आकाशपरिधिमण्डल की शक्तियों के सन्धिस्थानों में जब विमान-  
प्रवेश हो जाता है तो दोनों शक्तियों के सम्मर्दन से विमान चूर्णित हो जाता है दूट जाता है । अत  
विमान के उस सन्धिप्रवेश की सूचना करने से उन अन्तरालों में विमानस्तम्भनक्रिया करने रूप रहस्य का  
विचार होना चाहिये ।

( ५ ) गृहरहस्यो नाम—वायुतत्त्वप्रकरणोक्तगीत्या वातस्तम्भाष्टम-  
परिधिरेखापरस्य यासावियासाप्रयासादिवातशक्तिभि सूर्यकिरणान्तर्गतम-  
शक्तिक्रमाकृत्य तत्सज्जोजनद्वारा विमानाच्छादनरहस्यम् ॥

( ५ ) गृहरहस्यविचार—वायुतत्त्व प्रकरण में कही रीति के अनुसार वातस्तम्भ की आठवीं  
परिधि के रेखामार्ग की यासा वियासा प्रयासा आदि वातशक्तियों के द्वारा सूर्यकिरणान्तर्गत अध्यकार  
शक्ति को आकृष्ट कर उसके संयोजनद्वारा विमानाच्छादन करना रहस्य है ॥

+ यन्त्र में तेल का उपयोग आवश्यक है अत कहा गया है ।

‡ विश्वकर्मा, द्वायामुख, मनु, मय आदि प्राचीन विमान आदि यन्त्र के आविष्कारक तथा उन उन  
शास्त्रों के रचयिता थे । वात्मीकि रामायण में पुष्पक विमान का आविष्कारक विश्वकर्मा कहा ही है ।

( ६ ) हृष्णरहस्यो नाम—प्राकाशमण्डले विद्युतात्करिणशक्तयो  
परस्परगम्भेतनात्मस्तुतविम्बकबृक्षत्वेतिवामनपीठुरोभागस्य विश्वकायदर्पणविले  
प्रतिफलकृत्वा पश्चत्तत्प्रकाशमधिवेशनदारा मायाविम्बनप्रदर्शनरहस्यम् ॥

( ६ ) दृश्य रहम्य विचार—आकाशमण्डल में विद्युतिकरण वातिकरण ( वातलहर ) इन दोनों की शक्तियों के प्रस्पर सम्मेलन से उत्पन्न हुई विश्वकरणे वाली शक्ति से विमान-पीठ के सामने वाले भाग के विश्वकरणार्दणशूलिक विल में प्रतिफल छाया करके प्रश्नात् उस प्रकाश के पड़ने से माया-विमान के विम्बलाई पड़ने का दृश्य है ॥

( ७ ) अहश्यरहस्यो नाम—शक्तिन्त्रीकरीत्या सूर्यरेषादप्तग्राह-  
मुख्युष्टकेन्द्रस्थवैराग्रथ्यविकरणादिशक्तिभिरा ( भि आ ? ) काशतरद्वय्य-  
शक्तिप्रवाहमाहृष्य वातमण्डलस्थवलाहादिकरणादिशक्तिभके नियोज्य  
तददा ( दा ? ) राशवेताभ्रमण्डलाकार कृत्वा तदावरणादिमानाहश्यकरण-  
हस्यम् ॥

(५) अद्यश्य रहस्य विचार—शक्तिनंत्र की कही रीति के अनुसार सूर्यकरण के उपाधाएँ के सामने दृढ़ केन्द्र मे रहने वाले वैष्णव विकरण आदि शक्तियों से आकाशतरक के शक्तिप्रवाह को घोंच कर वायुमण्डन में रहने वाली बलाहा (बलाहाका) विकरण आदि घोंच शक्तियों को नियुक्त करके उनके द्वारा सफेद अभ्यंगडलाकार करके उस आवरण से विमान के अद्यश्य करने का रहस्य है।।।।

(८) परोक्षरहस्यो नाम—मेघोत्पत्तिप्रकरणोक्तशस्त्रमेघा। वरणपद्मेषु द्वितीया (या?) वरणपथे विमानमन्तर्धाय विमानस्थावर्कार्यसादर्पण-मुखात् मेघशक्तिमाहृत्य पश्चाद्विमानपरिवेषकमुखी नियोजयेत् । तेन स्तम्भन-शक्तिप्रसारण भवति, पश्चात्तद्वा (द्वा?) रा लोकस्तम्भनिकारहस्यम् ॥

(c) परोक्षराहस्य विचार—मेघोत्पन्न प्रकरण में कहे शरद ऋतुसम्बन्धी छ मेघवारणों के द्वितीय आवरण मार्ग में विमान छिपकर विमानरथ शक्ति का आकर्षण करने वाले दर्पण के मुख से उम मेघवारण को लेकर पश्चात् विमान के धेरे वाले चक्रमुख में नियुक्त करे उससे स्तम्भनशक्ति का फैलाव हो जाता है पन उसके द्वारा स्तम्भनशक्ति रद्द हो जाता है ॥

( ६ ) अपरोक्षरहस्यो नाम—शक्तिन्द्रोक्तरोहिणीविद्युत्प्रसारणेन  
विमानभिमखस्थवस्तुना प्रत्यक्षनिर्दर्शनक्रियारहस्यम् ॥

(६) अपरोज रहस्य विचार—शक्तिन के कहीं रोहणी विद्युत—के कैलाने से + विमान के सामने आने वाली वस्त्रओं का प्रत्यक्ष दिखालाई देना रूप अपरोज (प्रत्यक्ष) किया रहस्य है॥

अमृत युधिष्ठिर के मध्य पृथिवी की गति रेखा के अनुसार काय करने वाला सूर्य-रथ-ईवा दण्ड, यह कोई घड़ी विमान का परिभाविक नाम ने कहा गया है जिसके आगे पीछे और केंद्र से बंगारध्य आदि शक्तियां निकलती हो उनसे आकाश में प्रशिप्रवाह छीचा जाता हो।

+ यह रोहिणी विद्युत—कोई फंक्टे बाली सच्च लाईट की भाँति लाईट होगी।

( १० ) सङ्कोचनरहस्यो नाम—यन्त्राङ्गोपसहाराधिकारोक्तरीत्या  
[ अन्त ? ] इतरिक्षेति [ अति ? ] वेगात्पलायमानाना विस्तृतवेटयानानाम-  
पायसम्भवे विमानस्थसप्तमकोलीचालनद्वारा तदङ्गोपसहारक्यारहस्यम् ॥

( १० ) सङ्कोचन रहस्य विचार—यन्त्रोपसंहाराधिकार में कही रीति के अनुसार आकाश में  
दौड़ते हुए बड़े विमानों के अतिवेग से अपने विमान के नाश की सम्भावना होने पर विमानस्थ  
सतर्वीं कोली अर्यान् धुएङ्गी ( वटन पेंच ) के चलाने द्वारा उसके अङ्गों का उपसंहार अर्यान् सङ्कोचन  
किया रहस्य है ॥४॥

( ११ ) विस्तृतरहस्यो नाम—ग्राकाशतन्त्रीकृतप्रकारेणाका [ ए आ ? ]  
शत्रुणीयपञ्चमपरिधिमण्डलस्थानीय [ य ? ] मूलवानपरिधिकेन्द्रस्थविमानाना  
वाल्मीकिगणितोक्तविमानप्रभताररेखाविन्यासमनुसृत्य विमानस्थेका [ स्थ  
एका ] दशरेखामुखस्थानीयकोलीचालनद्वारा तारकानिकोपयुक्तप्रमाणमनुसृत्य  
विमानविवृतकियाकरणरहस्यम् ॥

( ११ ) विस्तृत रहस्य विचार—आकाशतन्त्र में कहे प्रकाशनुसार आकाश के नृतीय पञ्चम  
परिधिमण्डलस्थानीय मूलवान परिधिकेन्द्रस्थ विमानों का वाल्मीकी गांण्डत में कहे विमानप्रस्ताररेखा-  
विन्यास का अनुसरण कर विमानस्थ ग्राहकी रेखा के मुख्यस्थानीय कीली—धुएङ्गी ( वटन पेंच ) के  
चलाने द्वारा तात्कालिक उपयुक्त प्रमाणों का अनुसरण करके विमान का विस्तृत किया रहस्य है ॥

( १२ ) विस्तृतरहस्यो नाम—धूमप्रकरणोक्तप्रकारेण द्वात्रिशज्जातीयधूमराशि यन्त्रद्वारा परिकल्प्य तस्मिन् तरङ्गशक्तियमानक्षनितव्रकाश मेलपित्ता पश्चाद्विमानशिरोभागस्थभैरवीतैलसस्कारितवैरूपदर्पणमुने पद्मक-चक्रमुखनालद्वारा पूर्वोक्तप्रकाशशक्तिं मन्थायं द्वात्रिशदुत्तरशतकध्यप्रमाण-वेगात् परिआध्यमाणे सति मण्डलाकारेण महाभयप्रदविकाराकारो जायते विमानद्रष्टृगा तत्प्रदर्शनद्वारा महाभयोत्पादनकार्यरहस्यम् ॥

( १२ ) विस्तृतरहस्य विचार—धूमप्रकरण में कहे प्रकाशनुसार वसीम प्रकार के धूमों की  
राशि को यन्त्र द्वारा उत्तर कर उसमें नरङ्ग शक्ति की उत्पत्ता से उत्तर प्रकाश का मिलाकर पश्चात्  
विमान के स्तर वाले भाग में रहने वाले भैरवी तैल ( कोई पेट्रोल जैसा तैल होगा ) से मंसकारित वैरूप  
दर्पण मुख में पद्मक चक्रमुख की नाल द्वारा पूर्वोक्त प्रकाशशक्ति को युक्त करके एक सौ बीस घोड़ीं या  
दर्जे के त्रेता से धुमाने पर गोल धेरे रूप से महाभयप्रद विकार का आकार उत्पन्न हो जाता है, विमान  
देखने वालों को उसके देखने से महाभयोत्पादन कार्य का रहस्य है ॥

( १३ ) रूपान्तररहस्यो नाम—तैलप्रकरणोक्तप्रकारेण गृध्रजिह्वा-कुम्भणीकाकजङ्गदितैलसस्कारितवैरूपदर्पणे-एकोनविशज्जातीयधूम सयोज्य  
तस्मिन् यानस्थकृष्णशीशविक्षयोजनद्वारा विमानद्रष्टृणा सिंहव्याघ्रभल्लूक-  
मर्पिगिरिनदीवृक्षादिविकारेण [ ए आ ? ] न्यथाकल्पितरूपान्तरप्रदर्शनरहस्यम् ॥

\* इससे बचने, भाग निकलने का तात्पर्य विदित होता है ।

(१३) रुदान्तर रहस्य विचार—तेल प्रकरण में कहे प्रकारानुमार गुप्तजिहा,<sup>४</sup> कुम्भणी × काकजहा ; आदि तेल से संस्कारित वैरूप्यदर्पण में डक्रीम प्रकार के धूम को संयुक्त करके उसमें यानश्च-कुण्ठिणी शक्तिसंयोजन द्वारा विमान के देखने वालों को सिंह, बाघ, भालू, सप, पडाडी, नदी, वृच्छा आदि विकार से अन्यथा कल्पित ह्यान्तर दीखने का रहस्य ॥

(१४) मुख्यरहल्यो नाम—करकप्रकरणोक्तत्रयोदशजालीयकरकश-क्षितमार्थाय हिमोद्गारवानुना सन्धार्य पश्चाद्विमानदक्षिणकेन्द्रमुखस्थितपुणिण-रीपिच्छुलादिवर्णरामुवे पूर्वोन्नतशक्ति वातप्रकरणनालद्वारा सयोज्य तस्मिन् सुरधार्वकिरणशक्ति मन्थार्य तदद्वा [ द्वा ? ] रा विमानसन्दर्शकाना विविध-पुष्टमाल्योपसेवितदिव्याप्सरस्वरूपकृतद्वि [ कदि ? ] कारमदर्शनक्रिया-रहस्यम् ॥

(१५) मुख्य रहस्य विचार—फुरकप्रकरण में कही तेरह प्रकार की करकशक्ति को आकृप्त करके हिमोद्गार वायु अर्थात् रिफ्लेक्शन हुई ठंडी भाप के द्वारा संयुक्त कर परचात् विमान के दक्षिण केन्द्र मुख में रित्युपिणी पिंक्जुल + आदि ( के ) दर्पणमुख में पूर्व कही शक्ति को वायु फैलाने वालों नाम के द्वारा संयुक्त करके उसमें सुरया ( तीव्र गति वालों ) नाम की फुरणशक्ति को युक्त करके उसके द्वारा विमान देखने वालों को नाना पुष्टमालाओं से सेवित दिव्य आसरा स्वरूप वाले विकार के दीखने का रहस्य है ॥

(१६) ज्योतिभविरहस्यो नाम—अशुबोधित्याम् [ न्या उ ? ] कत्प्राकारेण सज्जानादिपोदशसूर्यकलानु द्वादशायापोदशान्तकलाप्रभाकर्पणं कृत्वा—आकाश-चतुर्थपथस्थमयूक्तक्षयस्थितवायुमण्डले नियोजयेत् । तथैव खतरद्वशक्तिप्रभा-माहृत्य वातमण्डलसात्मावरणस्थप्रकाशशक्त्या भम्मेलयेत् । पश्चादेतच्छक्ति-द्रय विमानस्थनालत्त्वक्कडारा विमानगुहागर्भदर्पणरायन्त्रवृतीयकोशे मन्थार्य तदद्वा [ द्वा ? ] रा विमानद्रष्टुरुणा वालानपवत्प्रकाशप्रदर्शनरहस्यम् ॥

(१५) ज्योतिर्भव रहस्य विचार—आशुवेषिणी में कहे प्रकारानुसार सूर्य को सज्जान आदि सोलह कलाओं में से वारहवी से लेकर सोलहवी तक कलाओं की प्रभा का आकर्पण करके आकाश के चतुर्थपथ में रहने वाले किरणहृषि अश्व या किरणज्वर में रित्य वायुमण्डल में नियुक्त करे । उसी प्रकार आकाशतरङ्ग की शक्ति की प्रभा का आहरण करके वातमण्डल के सातवें आवरण में रित्य प्रभाशक्ति में मिला दे । पश्चात् इन दोनों शक्तियों को विमानस्थ पाच नालों द्वारा विमानगुहा के मध्य दर्पणयन्त्र के तृतीय कोश में लाकर उसके द्वारा विमान देखने वालों को वाल सूर्य की भात प्रकाश दीखने का रहस्य है ।

\* आशुवेदिक निघट्यो मे गुप्तजिहा<sup>५</sup> नाम से कोई ओषधि नहीं कही किन्तु 'गुलपत्रा' ( धूपपत्रा ) और धूधनली ( नाखुना ) कही है ।

× कुम्भणीफल ( जग्मलघोटा ) तथा कुम्भणी कुम्भणीगूळ से धमीष्ट हो सकता है ।

‡ गुण्डा ( रत्तन्चण्ठली ) को काकजहा कहते हैं ।

+ प्रकाशरूप वैद्यत शक्ति के उत्पादक दर्पण यन्त्र ।

(१६) तमोमयरहस्यो नाम—दर्पणप्रकरणोक्ततमश्श [ मो श ? ]  
कृत्या [ कृत्यप ? ] कर्षणदर्पणद्वारा तमश्शकिमाहृत्य विमानपञ्चरवाय्य-  
केन्द्रस्थतमोयन्त्रमुखातमो विद्युति सन्धाय तत्कीलीचालनान्मध्यात्मकालेऽमा  
[ ग्रमा ? ] रात्रिवत्तंमोविकाप्रदर्शनरहस्यम् ॥

(१७) तमोमय रहस्य विचार—दर्पणप्रकरण में कही अन्यकारशक्ति के आकर्षण (या फैलाव ? )  
के द्वारा अन्यकार शक्ति का आहरण करके विमानपञ्चर के बायब्यकेन्द्रस्थ तमोयन्त्र के मुख से अन्यकार  
को विद्युत में मिलाकर उसकी कीली ( पुराणी-बटन ) के चलाने से मध्याह्नकाल में अमावस्या की रात्रि  
की भाँति अन्यकाररूप विकार के द्वाखने का रहस्य है ।

(१८) प्रलयरहस्यो नाम—ऐन्द्रजालिकप्रलयपटलोक्तरीत्या यानपुरो-  
भागकेन्द्रस्थोपत्तहारयन्त्रनालात्सप्तजातीयधूममाकृष्ण्य पड्गर्भविवेकोक्तमेघ-  
धूमेऽन्त [ अन्त ? ] धृयं तद्भूम विद्युत्सर्गात्पञ्चस्कन्धवातनालमुखेषु प्रसायं  
तदद्वा [ द्वा ? ] रा सर्वपदार्थाना प्रलयवन्नाशक्तियाकरणरहस्यम् ॥

(१९) प्रलय रहस्य विचार—ऐन्द्रजालिक प्रलयपटल में कही रीति के अनुसार यान के  
सामने के केन्द्र में रहने वाले सङ्कोचक यन्त्रनाल से सात प्रकार के धूम का आकर्षण करके 'पड्गर्भ-  
विवेक' में कहे मेघधूम में छिपा कर उस धूम को विश्वासंसर्ग से पाचस्कन्ध वाले वायुनाल मुखों में  
फैला कर उसके द्वारा सर्व पदार्थों का प्रलय जैसा नाशकियारहस्य है ॥

(२०) विमुखरहस्यो नाम—रघू [ धृ ? ] दयोक्तप्रकारेण कुवेर-  
विमुखवैश्वानरादिविष्वार्णेशक्ती [ ? ] रोद्रीदर्पणपञ्चरत्नीयनाले नियम्य  
वातस्कन्धकीलीचालनद्वारा मूर्च्छाविस्थाप्रदानेत विवरणकरणक्रियारहस्यम् ॥

(२१) विमुखरहस्य विचार—रघू दय में कहे प्रकारानुसार कुवेर विमुख वैश्वानरः आदि विष-  
चूर्ण से उत्पन्न रौद्री शक्ति दर्पणपञ्चरत्नीयनाल में नियन्त्रित करके वातस्कन्ध कीली के चालनद्वारा  
मूर्च्छाविस्थाप्रदान करने से विवरणकरणक्रिया रहस्य है ॥

(२२) ताररहस्यो नाम—वातजलसूर्यकिरणप्रभाशक्तीना दशसप्त-  
पोडशाशान् ख्तरद्वाक्त्या सयोज्य तच्छक्तिं तारमुखदर्पणद्वारा विमानमुख-  
केन्द्रशक्तिनालमुखप्रसारणात्सर्वो नक्षत्रमण्डलवत्प्रदर्शनक्रियारहस्यम् ॥

(२३) ताररहस्य विचार—बायु, जल, सूर्यकिरणप्रभा की शक्तियों के दश, सप्त, पोडश औरों  
को आकाशतद्रु की शक्ति से समुख करके उस शक्ति को तारमुखदर्पण द्वारा विमान मुख की केन्द्रशक्ति  
के नालमुख को फैलाने से समस्त नक्षत्रमण्डल के समान प्रदर्शन क्रियारहस्य है ॥

(२४) महाशब्दविमोहनरहस्यो नाम—विमानस्थसप्तनालवाप्युमेकीकृत्य  
शब्दकेन्द्रमुखेऽन्त [ अन्त ? ] धृयं पश्चात् कीली ( लि ? ) प्रचालयेत तदेगाच्छ-  
दप्रकाशकोक्तरीत्या द्विपष्ठिध्मानकलासधरहणशब्दवन्महाशब्दो जायते तद्रव-

\* कुवेरविमुख वैश्वानर ये किन्ही विषधूर्णों के पारिभाषिक नाम हैं ।

स्मरणात् सर्वेषा हृदयकम्पन भवति किञ्चुत्रयप्रमाणाकम्पन यदा भवति स्मृतिविस्मरण भवति तद्दा ( द्वा ? ) रा परेषा विमोहनकियारहस्यम् ॥

(२०) महाशब्दविमोहनरहस्य विचार—विमानस्थ सात नालों के बायु को एक करके शब्द-केन्द्रमुख में बन्द करके पश्चात् कीली (मुखी) को चलावें, उसके बेग से शब्दप्रकाशिका में कही रीति के अनुसार वासठ धौंकने वाली कलाओं के संबंधण शब्द (गूज़) के समान महाशब्द उत्पन्न होता है उस शब्द के स्मरण से सब का हृदय कांप जाता है, तोन किञ्चुओं ( तोन बालिशत या तीन हाथ-तीन पीट ) के प्रमाण-जितना कम्पन जब होता है तब स्मृतिनाश हो जाता है उसके द्वारा दूसरों को विमोहित मूर्च्छित करने का रहस्य है ।

(२१) लहूनरहस्यो नाम—वायुत्स्वप्रकरणोक्तप्रकारेण वातमण्डल-परिधिरेखामु विमानसञ्चारकाले यदा सूर्यगोलवाडवायुखकिरणज्वालाप्रवाहो (ह ? ) विमानभिमुखो भवति तेन विमान प्रज्वलितो भवति । अत तन्निवारणा ( राँ ? ) यंविमानस्थवियुद्वातशक्तिमेकीकृत्य विमानस्थप्राण-कुण्डलीस्थाने सन्धाय पश्चात् कीलीचालनेन विमानोद्दीयनद्वारा कुत्यालहून-वद्रेखाद्रेखान्तरलहूनकियारहस्यम् ॥

(२२) लहूनरहस्य विचार—बायु तत्र प्रकरण में कहे प्रकारानुसार वातमण्डल परिधि-रेखाओं में विमान संचार समय जब सूर्योलोके के बाइद्वायुखङ्क (का) किरण उत्तालप्रवाह विमान जल उठाता है, अत उसके निवारणार्थ विमानस्थ वियुन् और बायु की शक्ति को मिलाकर विमान के प्राण-कुण्डली स्थान ( मटोर मशीन ) में नियुक्त करके पीछे कीली-मुखी चलाने से विमान के ऊर्ध्वगमन-ऊर्ध्व उछलने (Jumping) द्वारा नहर नदी के लंबन की भाँति एक रेखा से दूसरी रेखा पर लहून करने-फान्दने कूदने (Jumping) का रहस्य है ॥

(२३) सार्पगमनरहस्यो नाम—दण्डवकादिसप्तविधमानतरिश्वार्किरण-शक्तीराकृष्ट्य यानमुखस्थवक्तप्रसाराकेन्द्रमुखे नियोज्य पश्चात्तदाहृत्य शक्तयुद्ग (दग ? ) मनकाले प्रवेशयेत् । तत तत्कीलीचालनाद्विमानस्थ सर्पवद् गमन-कियारहस्यम् ॥

(२४) सार्पगमनरहस्य विचार—दण्ड वक आदि सात प्रकार के बायु और सूर्यकिरण की शक्तियों को आकर्षित करके यानमुख में स्थित वकप्रसारण केन्द्रमुख में अर्थात् टेढ़ा फैकने वाले केन्द्र-मुख में नियुक्त करके पश्चात् उसका आहरण करके शक्ति को उत्पन्न करने निकालने वाले नाल में प्रवेश करे तब उस कीली ( मुखी-बटन ) को चलाने से विमान का सर्प के समान गमनकिया रहस्य है ॥

(२५) चापलरहस्यो नाम—शत्रुविमानसन्दर्शनकाले विमानमध्येन्द्र-स्थवक्तिपञ्चकीलीचालने-एकछोटिकावर्च्छन्नकाले सप्ताशीत्युत्तरचतुर्सहस्र-तरज्जुवेगो जायते तत्रप्रसारणाच्छत्रुविमानकम्पनकियारहस्यम् ॥

\* ही सकता है यह कोई विमानमेदी तोन वी विमानप्रज्वालक सर्च लाईट की भाँति का कोई ज्वालोत्पादक साधन हो ।

( २३ ) चापलरहस्य विचार—शत्रु का विमान द्विखलाई पड़ने पर अपने विमान के मध्य केन्द्रस्थ शक्तिपंडर की कीली चलाने से एक छोटिकामात्र ( तर्जनी अङ्ग छठ धनि—चुटकी—क्षणभर ) काल में चार हजार सतासी तरहों का वेग उत्पन्न हो जाता है उसके फैलाने से शत्रुविमान के ढावाडोल होने उलट गिरने का रहस्य है ॥

( २४ ) सर्वं गोमुखरहस्यो नाम—स्वविमानविनाशार्थं परविमान-शतरा ( आ ? ) बृंते सति तदा स्वविमानशिर केन्द्रकीलीचालनादैतेन-विमानवत्सर्वोमुखसचारक्रियारहस्यम् ॥

( २५ ) सर्वं गोमुखरहस्य विचार—अपने मार्ग में अपने विमान के विनाशार्थ दूसरे के सैकड़ों विमानों से धिय जाने पर अपने विमान के शिर की कीली ( बुरडी बटन ) के चलाने से अनेक विमानों की भाँति सब ओर संचार करने का क्रिया रहस्य है ॥

( २६ ) परशब्दग्राहकरहस्यो नाम—सौदामिनीकलोकतप्रकारेण विमान-स्थवर्षब्दग्राहकयन्त्रद्वारा परविमानस्थजनसभापरणादिसर्वशब्दार्कपर्यणरहस्यम् ॥

( २५ ) पर शब्दग्राहक रहस्य विचार—‘सौदामिनीकला’ ( विशुक्ता मुस्तक ) में कहे प्रकार-मुसार विमानस्थ शब्दग्राहक यन्त्र के द्वारा आकाश के प्रथम मरणल की परिवि को आरम्भ करके सात परिवि मरणलपर्यन्त परविमानस्थ जन सम्भाषण आदि समस्त शब्दों का आकर्षण रहस्य है ॥

( २६ ) रूपाकर्षणरहस्यो नाम—विमानस्थरूपाकर्षणयन्त्रद्वारा पर-विमानस्थितवस्तुओं के रूप के आकर्षण का रहस्य ॥

( २७ ) रूपाकर्षणरहस्य विचार—विमान में स्थित रूप का आकर्षण यन्त्रद्वारा परविमानस्थित वस्तुओं के रूप के आकर्षण का रहस्य है ॥

( २८ ) क्रियाग्रहणरहस्यो नाम—विमानाथ कीलीचालनाच्चुद्धपट-प्रसारण भवति । इशान्यकोगणस्थद्रावकतये शक्तिनस्योजन कृत्वा तच्छक्तिसप्तवर्गमूर्यकिरणेषु सन्वार्यं पूर्वोक्तशुद्धपटल दर्पणाभिमुखीकरण तन्मुखात्पूर्वोक्तशक्तिप्रसारणपूर्वोक्तश्चक्तिलीचालनद्वारा विमानाधोभागस्थितपृथिव्य ( व ) न्तरिक्षेषु यद्यक्तिकायरहस्यान्यन्ये क्रिय ( क्रीय ? ) न्ते तत्स्वरूपप्रतिविम्ब शुद्धपटले सूर्त्ववित्रित ( तो ? ) भवति तदद्वा [ दा ] रा क्रियाग्रहणरहस्यम् ॥

( २९ ) क्रियाग्रहण रहस्य विचार—विमान के नीचे की कीली-बुरडी के चलाने से शुद्ध पट फैल जाता है, इशान्यकोगणस्थ तीन द्रावकों के में शक्तिनस्योजन करके उम शक्ति को समवर्गसुर्यकिरणों में सन्धान करके पूर्वोक्त शुद्ध पटल को दर्पण के सामने की ओर करके उसके मुख से पूर्वोक्त शक्ति फैलने के साथ ऊर की कीली-घुण्डी चलाने के द्वारा विमान के नीचे के भाग में स्थित पृथिवी, जल, अन्तरिक्ष में जो जो क्रियाग्रहस्य अन्या द्वारा क्रिये जाते हैं उनका स्वरूपप्रतिविम्ब शुद्ध पटल पर मूर्ति के समान चित्रित हो जाता है उसके द्वारा क्रियाग्रहण रहस्य है ॥

\* ये द्रावक किसी रूप प्रादि शक्ति के फैलाने वाले द्रावक पात्र साधन प्रतीत होते हैं ।

(२५) दिवप्रदर्शनरहस्यो नाम—विमानमुखकेन्द्रकीलीचालनेत दिशास्पतिर्यन्तनालपत्रद्वारा परयानागमनदिकप्रदर्शनकियारहस्यम् ॥

(२६) दिवप्रदर्शन रहस्य विचार—विमानमुखकेन्द्र की कीली चलाने से 'दिशास्पति' नामक (दिशाओं के पति) यन्त्र के नालपत्र के द्वारा दूसरे के यान की आगमनदिशा का प्रदर्शन रहस्य है ॥

(२७) आकाशाकाररहस्यो नाम—आकाशतन्त्रोक्तरीत्या कृष्णाभ्रवारिणा पिञ्चुकन्दमूलभूतागद्रावकाभ्या यानावरणाभ्रकपट्टिकामालिप्य तस्मिन् वायुपथ्यकिरणशक्तिसयोजनद्वारा विमानाकाशाकारवप्रदर्शनरहस्यम् ॥

(२८) आकाशाकाररहस्य विचार—आकाशतन्त्र में कही रीति के अनुसार कृष्ण अध्रक जल तथा पिञ्चुकन्दमूल + और भूताग × के द्वावक रस से यान के आवरण अध्रकपट्टिका को लेप कर देने से उस वायुपथ में किरणशक्तिसंयोजनद्वारा विमान के आकाशाकार होने का प्रदर्शन रहस्य है ॥

(२९) जलदृष्टपरहस्यो नाम—करकाम्लवित्वतेलमूलवरणधूमसार-प्रथिकरससर्वपिण्डीनावरणाद्वाराए शास्त्रोवतप्रकारेण भागशसम्मेलन कृत्वा मुक्ताफलशुक्तिका लवणसारे सयोज्य सम्मिलितशक्तिधूमाकार कृत्वा विमानावरणोपरस्थितकिरणप्रभामुखसन्धी-अन्तर्धार्य पूर्वोवतधू (वत अधू<sup>२</sup>) माकार-द्रावकेण (के न?) विमानावरणलेपन कृत्वा तदुपरि धूमप्रसारणाद्वारा जलदाकारवद्विमानप्रदर्शनरहस्यम् ॥

(३०) जलदृष्टपरहस्य विचार—करकाम्ल के दाढ़िमाम्ल ( दाढ़िम का तेजाव ), वित्वतेल, शुल्वलवण्य ( ताम्बे का लवण नोलायेथा ), धूमसार ( गृहधूम ), प्रथिकरस ( गूल का द्राव या मण्डूर और पारा ), सर्वपिण्ड ( मरसों की सोडी ) मीठावरण ( मछली का आवरण ) इनके शास्त्रोक्त प्रकार से भागशक्तों को मिलाकर मुक्ताफलशुक्तिका ( मीठी की सीपी ) लवणसार में संयुक्त करके सम्मिलित शक्ति को धूमाकार करके विमानावरण के ऊरर छेनेवाली किरणप्रभामुखसन्धि में छिपाकर या लगाकर पूर्वोक्त धूमाकार के द्वावक द्वारा विमानावरण के ऊरर लेपन करके उसके ऊरर धूम फैलाने के द्वारा जलदाकार अर्थात् ( मेघाकार ) के समान विमानप्रदर्शनरहस्य है ॥

(३१) स्तब्धकरहस्यो नाम—विमानोत्तरपावर्षस्थसचिन्मुखनालादप-स्मारधूम सग्राहा स्तम्भनयन्त्रद्वारा तदधूमप्रसारणात् परविमानस्थसर्वजनाना स्तब्धीकरणरहस्यम् ॥

+ आयुर्वेदिक निष्ठद्वयों में 'पिञ्चुकन्द' नाम की घोषिति नहीं है किन्तु पिञ्चुमन्द ( निष्ठ वृक्ष ) हो या कपास की जड़ ।

× 'वैद्यक शब्द सिन्धु' कोष में 'भूताग' के जूए और सीसे बातु के लिये माया है, हो सकता है यहा सीसे धातु का रासायनिक द्रव भर्नीष्ट हो ।

\* 'करक -दाढ़िमे, शुल्वं ताम्बे, धूमसार —गृहधूमे, प्रथिक-मण्डूरे व, रस पारदे (वैद्यक शब्द सिन्धु ) त्र आयुर्वेदिक निष्ठद्वयों में लवणसार शब्द नहीं है किन्तु लवण कार' है जल से उत्पन्न नमक विशेष के लिये आया है । हो सकता है लवणसार से सोडा भर्नीष्ट हो ।

( ३१ ) स्तवकरहस्य विचार—विमान के उत्तर पार्श्वस्थ समिक्षुखनाल से अपरस्मार का धूम संग्रह करके स्तम्भन यन्त्र द्वारा उस धूम के फैलाने से परविमानस्थ सर्वमनुष्यों के स्तब्ध कर देने जड़े मूर्छित बना देने का रहस्य है ॥

( ३२ ) कर्पणरहस्यो नाम—स्वविमानसहारार्थ परविमानपरम्परागमने विमानाभिमुखस्थवैश्वानरनलान्तर्गतज्वालिनीप्रज्वालन कृत्वा सप्ताशीतिलिङ्क-प्रमाणोषण यथा भवेत् तथा चक्रदयकीलीचालनात् शत्रुविमानोपरि वर्तुलाकारेण तच्छक्तिप्रसारणद्वारा शत्रुविमाननाशनकियारहस्यम् ॥

( ३३ ) कर्पणरहस्य विचार—अपने विमान के नाशार्थ दूसरे के विमानयानों के लगातार आने पर विमान के सामने वाले वैश्वानर नाल के अन्यर्गत ज्वालिनी + जलाकर सतासी लिङ्क ( डिपी ) प्रमाण की उप्पता जिससे हो जावे वैसे दो चक्रों की कीली चलाने के द्वारा शत्रुविमान के ऊरर गोलाकार से उस शक्ति को फैलाने के द्वारा शत्रुविमान के नाश करने का क्रिया रहस्य है ॥

पञ्चलक्ष्म ॥ अ० १ । श० ३ ॥

सूत्रशब्दार्थ—‘और पांच का जानने वाला ‘धर्मिकारी’ है ।

बोधानन्दवृत्ति—

यथारहस्यविज्ञान	पूर्वसूत्रे	निरूपितम् ।
पञ्चावर्तस्वरूपव्य	तयवास्मिन्निरूप्यते ॥ १ ॥	
एतेनोभयविज्ञानादेव	यन्त्रत्वताभियात् ।	
इतिसूत्रद्वयविचारात्सद्ध भवति ध् ( ध् ? ) वम् ॥ २ ॥		
पञ्चावर्तविचारस्तु	शौनकोकप्रकारत ।	
रेखादिपञ्चमार्गानुसारादत्र	प्रक्रीत्यर्थे ॥ ३ ॥	
रेखापथो मण्डलश्च कक्षयश ( ऋश ? ) वितस्तयेव च ।		
केन्द्रश्च ( च्चे ? ) ति विमानाना मार्गा खे पञ्चधा स्मृता ॥ ४ ॥		

पूर्वसूत्र में जिस प्रकार रहस्यविज्ञान निरूपित किया गया है उसी प्रकार इस सूत्र में पञ्चावर्त-स्वरूप ( पांच आवर्तों-पैर्वर्तों-बद्धवद्धों का स्वरूप ) भी निरूपित किया जाता है । इस भाँति दोनों के विज्ञान से ही विमानचालकता को प्राप्त किया जा सकता है यह बात उक दोनों सूत्रों के विचार से निश्चित सिद्ध हो जाती है । पञ्चावर्त विचार शौनक ऋषि के कहे प्रकार से रेखा आदि पांच मार्गों के अनुसार यहां बर्णन किया जाता है । रेखापथ, मण्डल, कक्षय, शक्ति, केन्द्र ये पांच प्रकार के मार्ग विमानों के आकाश में बतलाए गये हैं ॥ १—४ ॥

तदुक्तं शौनकीये—

अयाकाशमार्गाण्यनुक्रमिष्यामो रेखामण्डलकक्षयशक्तिकेन्द्रमेदाद-भूतशक्ति-प्रवाहमार्गाण्याकृमदावास्त्रणात् वाणमवष्ट्रभैक्यक्षत्वारि धृ श ( रिं श )

+ विचुन्नय बत्ती प्रतीत होती है ।

त्कोदये ( ये ? ) कपञ्चाशलक्षणवसहस्राष्ट्रशतसस्थाकानि भवन्ति तेषु भूरादि  
सप्तलोकविमानास्प्ररन्तीति ॥

यह वात शौनकीय शास्त्र में कही है—

अब आकाशमणों का कहेंगे । रेखा, मरडल, कक्ष, शक्ति, केन्द्र के भेद से भूतशक्तिप्रवाह-  
मार्ग कूर्म से लेकर अरुण पर्यन्त ( आकूर्मदौ आ अरुणान्तं इस प्रकार पदच्छेद होने पर ) या कूर्म से  
लेकर वरुणपर्यन्त (आकूर्मदौ आ वारुणान्तं पदच्छेद होने पर ३४ ) वाण ( आयतन ) का अवघ्रस्मृत  
करके इकातीस से इक्यावन लक्ष नौ सहस्र आठ सौ होते हैं । उनमें 'भू' आदि सातलोकरूपविमान  
सञ्चार करते हैं ॥

एतेषु सूत्रोक्तपञ्चमार्गभेदा यथाक्रमम् ।

यथोक्त धुण्डिनायेन तर्येवात्र निरूपयते—

रेखामार्गस्पत्कोटित्रिलक्षाष्टातास् (ना?) स्मृता ।

+ द्वाविशत्कोट्यष्टलक्षद्विशत मण्डले क्रमात् ॥ १ ॥

द्विकोटिनवलक्षत्रिशत कक्षे निरूपिता ।

दशकोट्ये कलक्षत्रिशत शक्तिपर्येरिता ॥ २ ॥

विशलेषासाहस्रद्विशत केन्द्रमण्डले ।

एव रेखादिकेन्द्रान्तमण्डलेषु यथाक्रमम् ॥ ३ ॥

वाल्मीकिगणितान्मार्गसस्थाय श्लोकैनि (नि ?) रूपिता ।

इनमें सूत्रोक पांच मार्गभेद यथाक्रम ध्येयनाथ ने जैसे कहा है यहा निरूपित किया जाता है—

'रेखामार्ग' सात कोटि तीन लाख आठसौ कहे गये हैं, वाईस कोटि आठ लाख दो सौ 'मरडल'  
में क्रम से, दो कोटि नौ लाख तीन सौ 'कक्ष' में कहे हैं, दश कोटि एक लक्ष तीन सौ 'शक्तिपर्य' में  
कहे हैं, तीन लाख आठ सहस्र दो सौ केन्द्रमण्डल में इस प्रकार 'रेखामार्ग' से लेकर 'केन्द्र' तक मरडलों  
में क्रमानुसार वाल्मीकि गणित से मार्ग संस्थाय श्लोकों से बतलाई गई है ॥ १—३ ॥

एतेषु यानसञ्चाररामार्गनिर्णयमुच्यते ॥—

प्रथमाद्याचतुर्थन्त मार्ग [ गर्ग ? ] रेखापर्ये क्रमात् ।

भुवरोक्तसुवर्लोकमहोलोकनिवासिनाम् ॥ १ ॥

विमानसञ्चारमार्ग इति शात्रेषु वर्णिता ।

जनो लोकविमानाना गमने मार्गनिर्णय ॥ २ ॥

द्वितीयाद्यापञ्चमान्तम् (त उ ?) करा कक्षपर्ये क्रमात् ।

प्रथमाद्याषडन्तास्यु (ता स्यु ?) मार्गशक्तिपर्ये क्रमात् ॥ ३ ॥

तपोलोकविमानानामिति शास्त्रविनिर्णय ।

तृतीया (यथा ?) वेकादशान्ता ब्रह्मलोकनिवासिनाम् ॥ ४ ॥

\* इस पश्च में 'वाल्मी' में 'वा' लेखक दोष या स्वार्थ में भग्न से आकार है ।

+ 'द्वाविशत्' इयेतत्पद चिन्त्यम् । द्वाविशत् इयनेन भवितव्य किंवा द्वाविशति' इत्यस्य इकारलोप

शार्वश्चन्दस्स्थापान्तर्यंत्वाच्छान्दसो वा ।

विमानसञ्चारमार्गः शोकता केन्द्रपथे कमात् ।  
वाल्मीकिगणितेर्नवं गणितागमपारंगे ॥ ५ ॥  
विमाननायथाशक्त हृतो (त ?) मार्गविनिर्णये ।

आवर्तन निर्णय —

**आवर्तश्च ॥ अ० १ । स० ४ ॥**

एवमुक्त्वा विमानापञ्चमार्गाण्यथाकम् ।  
अथेदानी तदावर्तनिर्णयस्सञ्चल्प्यते ॥ ६ ॥  
आवर्ता (त ?) बहुधा प्रोक्ता मार्गसंख्यानुसारत ।  
तेषु यानपथावर्ता पञ्चवेति विनिर्णयता ॥ ७ ॥

इनमें यान संचारमार्गों का निर्णय कहा जाता है—

प्रथम से आदि करके चूर्थ तक मार्ग रेखापथ में कम से 'सुव' लोक, 'सुव' लोक 'मह.' लोक निवासियों के विमान सञ्चार मार्ग इस प्रकार शास्त्रों में वर्णित हैं, 'जन.' लोक विमानों के गमन में मार्ग निर्णय है। द्वितीय से आदि करके पञ्चम तक कश्यपज्ञ में कम से कहा है। प्रथम से आदि कर छ तक मार्ग शक्तिपथ में कम से कहे हैं। 'तप.' लोक विमानों का है यह शास्त्रनिर्णय है द्वितीय से आदि करके एकादश तक 'ब्रह्म' लोक निवासियों के विमान सञ्चार मार्ग केन्द्रपथ में कम से कहे हैं। इस प्रकार वाल्मीकि गणित से ही गणित शास्त्र के पारंगत विद्वानों ने विमानों का मार्गनिर्णय शास्त्रानुसार किया है ॥ १—५ ॥

आवर्त निर्णय—

इस प्रकार विमानों के पाच आवर्तों को कमानुसार कहकर अब इस समय उन आवर्तों का निर्णय निरूपित किया जाता है। मार्गसंख्या के अनुसार आवर्त बहुत कहे हैं उनमें यानपथ के आवर्त पांच ही निर्णय किये हैं ॥ ६—७ ॥

तदुक्तं शीनकीये—

प्रवाह्नद्वयससर्गादावर्तनमिति तान्यनुकमिष्याम । रेखापथे शक्तथावर्तनं  
मण्डले वातावर्तन कश्ये किरणावर्तन शक्तिपथे शैत्यावर्तन केन्द्रे घर्षणावर्तन-  
मित्यावर्ता पञ्चवा भवतीति । आवर्ता पञ्चमु पञ्चेति हि ब्राह्मणम् ॥

वह यह शीनकीय प्रथ्य में कही है—

दो प्रवाह्नों के संसागं—संवर्षे से आवर्त—होते हैं, उन्हें यहा कहेंगे। रेखापथ में शक्तिद्वावर्तं, मण्डल में वातावर्तं, कश्य में किरणावर्तं, शक्तिपथ में शैत्यावर्तं, केन्द्र में घर्षणावर्तं । इस प्रकार आवर्त पांच प्रकार के हैं। आवर्त पांच में पांच हैं ऐसा ब्रह्मण प्रथ्य में कहा है।

एव रेखादिमांगुष्ठ शक्तिद्वयसमाकुलात् ।

आवर्ता सम्प्रजापन्ते लेटयानविनाशका ॥

इस प्रकार रेखा आदि मार्गों में दो शक्तियों के टक्कर से आवर्त उत्पन्न हो जाते हैं जो कि विमानशास्त्रों के विनाशक बन जाते हैं।

‡ वहा 'मार्गाण्यि' नपुस्क लिङ्ग के इकार का लोप छन्द, पूर्ति के लिये पूर्व के समान है।

† लुनब्राह्मणम् ।

उक्तं हि मार्गनिवन्धने—

लहयोवेह्योश्चैव यह्योरह्योस्तथा ।  
 मह्योरन्तरालेषु शबतचावर्ती इतीरिता. ॥ १ ॥ (लङ्कारिका)  
 लकारेणात्र भूप्रकृता हकारादम्बर स्मृतम् ।  
 प्रोक्तास्तयोरन्तराले रेखामार्गा (ग ?) स्त्वनेकश ॥ २ ॥  
 शबत्यावर्तास्तेष्वनन्तास्स ( न्ता स ? ) भवन्त्य ( वर्त्य ? ) तिवेगत ।  
 तैर्भू लोकविमानाना विनाश इति निरूपित ॥ ३ ॥  
 अम्बरे वर्णिते स्याद्वकारात्मना क्रमात् ।  
 तयोर्मध्ये मण्डलाल्यमार्गा प्रोक्ता विशेषत ॥ ४ ॥  
 वातावर्तास्तेष्वनन्तास्स भवन्त्यतिवेगत ।  
 लोकव्यविमानाना विनाशस्तेषु वर्णित ॥ ५ ॥  
 तयैव यहवर्णाभ्या वात्वाकाशे निरूपिते ।  
 तयोर्मध्ये कक्ष्यमस्त्वनेकात्सप्रकीर्तिताः ॥ ६ ॥  
 भवन्ति किरणावर्तास्तेष्वधूना प्रवाहत ।  
 जनो लोकविमानाना विनाशस्तत्र वर्णित ॥ ७ ॥

‘मार्गनिवन्धन’ में कहा है—

ल, ह के व, ह के य, ह के तथा ए, ह के म, ह के अन्तरालों में शक्तावर्त होते हैं ऐसा कहा है। ‘ल’ से भूमि कही है ‘ह’ से अम्बर समझा गया, उन दोनों के अन्तराल में रेखामार्ग अनेक हैं। शक्तावर्त उनमें अनेक अतिवेगा से उत्पन्न हो जाते हैं। उनके द्वारा भूलोकविमानों का विनाश निश्चित हो जाता है। दो अम्बर व, ह से क्रमशः कहे हैं उनके मध्य में मण्डलनामक मार्ग विशेषत कहे गये हैं। उनमें अनन्त आवर्त अतिवेगा से उत्पन्न हो जाते हैं जिनमें तीनों लोकों के विमानों का विनाश बरांगन किया है। इसी प्रकार य, ह वर्ण से बायु आकाश की निरूपित किये हैं, उनके मध्य में कक्ष्य मार्ग अनेक हैं। उनके अन्दर किरणावर्त अंशुर्भूषी के प्रवाह से हो जाते हैं वहाँ ‘जनः’ लोक विमानों का विनाश बरांगन किया है ॥ १—७ ॥

रवणेन रवि प्रोक्तो हवर्णादम्बर स्मृतम् (त ? ) ।  
 तयोर्मध्ये शवितमार्गा बहुधा सम्प्रकीर्तिताः ॥ ८ ॥  
 शेत्यावर्तास्तेषु शक्तिस सर्गादतिवेगतः ।  
 सम्भवन्ति विशेषेण वेट्यानविनाशका ॥ ९ ॥  
 महामार्तण्डशक्तिस्थप्रवाहाशो मकारत ।  
 हकारेणाम्बरञ्चैव वर्णिता स्याद्याकमम् ॥ १० ॥  
 तयोर्मध्ये केन्द्रमार्गा बहुधा सम्प्रकीर्तिता ।  
 भवन्ति घर्षणावर्तास्तेषु नानाप्रखाः क्रमात् ॥ ११ ॥

ब्रह्मलोकविमानाना विनाशस्तैर्निरूपित ।  
शीत्योद्धणशक्तिन्यूनातिरिक्ताभ्यो मार्गसन्धिषु ॥ १२ ॥

'इ' वर्ण से रेख कहा है 'ह' वर्ण से आकाश बतलाया गया, दोनों के मध्य में शक्तिमार्ग बहुत कहे हैं। उनमें शैतानवर्त अतिवेग से शक्तियों के संसर्ग से विशेष करके उत्पन्न हो जाते हैं जो विमानयानों के नाशक होते हैं। महामातृयड शक्तिस्थ प्रवाहांश 'म' से लिया गया है और 'इ' से आकाश यथाक्रम से वर्णित किये गये हैं। उन दोनों के मध्य में केन्द्रमार्ग प्राय कहे हैं, उनमें घर्षणावृत नामाप्रकार के क्रम से होते हैं। उनसे ब्रह्मोक्त विमानों का विनाश शैत्य-उद्धणशक्तियों के न्यूनाधिक होने से मार्गसन्धियों में निरूपित किया गया है ॥ ८—१२ ॥

प्रवाहृद्यसयोगवेगादावर्तनं क्रमादिति ।  
एव रेखादिमार्ग्यु-आवर्तस्त्वनिरूपिता ॥ १३ ॥  
तैर्विनाशो विमानानामिति शास्त्रविनिर्णय ।  
पूर्वसूत्रोक्तद्विशक्तिशद्वज्ञानवत्कमात् ॥ १४ ॥  
मार्गविवर्तंस्वरूपे च सूत्राभ्या सन्त्रिस्त्वनिरूपिते +  
एतेनोभयविज्ञानादधिकारनिरूपणाम् ॥ १५ ॥  
सूत्रद्वयेन विधिवद्वर्णित यानकर्मणि ।  
आवर्तादिशक्तिवाताशुशैत्यधर्षणासज्जका ॥ १६ ॥  
उक्तावर्तेषु विधिवद्विज्ञानव्या विशेषत ।  
पञ्चावर्ती एव यानमार्गसंरुद्धका यत ॥ १७ ॥

दो प्रवाहांश के बेग से आवर्त होते हैं एवं रेखादिमार्गों में क्रम से आवर्त निरूपित किये हैं। उनसे विमानों का विनाश होता है ऐसा शास्त्र का निर्णय है। पूर्वसूत्र में कहे वनीस रहन्य ज्ञान वाजा पांच आवर्तों का स्वरूप क्रम से इस सूत्र में निरूपित किया है। इससे दोनों के विज्ञान से अधिकार निरूपण होता है। दो सूत्रों से विधिवत् यानकर्म वर्णन किया है, शक्ति, वात, अंश, शैत्य, घर्षण संज्ञावाले आवर्त कहे हैं। उक्त आवर्तों में विधिवत् विशेषत जानने योग्य पांच आवर्त ही हैं जिनसे कि ये यानमार्ग के संरेखक हैं ॥ १३—१७ ॥

अथ विमानाङ्गनिर्णय —  
अङ्गान्येकविशत् ॥ अ० १ । दू० ५ ॥

सूत्रशब्दार्थ—'विमान के' अङ्ग इकतीस होते हैं ।

वोधानन्दवृत्ति —

शास्त्रे सर्वविमानानाम (ना अ?) झाङ्गीभावतस्फु (स्फ?) टम ।

उक्त यानविदा श्रेष्ठैविमानाकारनिर्णये ॥ १ ॥

+ पञ्चावर्तस्वरूपश्च सूत्रेस्मिन्नु सन्त्रिस्त्वनिरूपितम्' वक्तव्य पाठ ।

यथा सर्वाङ्गसमुको देहस्स (ह स ?) वर्धसाधने ।  
 समर्वद्युत्प्रया (वं स्या ?) द्विमानश्च सर्वाङ्गे स्सयुतस्तथा ॥२॥  
 विश्वकियादपर्णायन्त्रमारभ्य यथाविधि ।  
 एकत्रिजट्टिमानाङ्गस्थानानुकूलनि भूरिश ॥ ३ ॥  
 तानि सर्वाणि विविवत्सग्रहेण यथाक्रमम् ।  
 छायापुरुषशास्त्रोक्तकारेणात्र वर्णने ॥ ४ ॥

## विमानाङ्ग निरीयः—

शास्त्र में समस्त विमानों के अङ्गाङ्गी भाव से स्फुट यानवेत्ता कुशल विद्वानों ने विमानाकार के निरीय में कहा है कि जैसे सब अङ्गों से युक्त देह सर्वार्थ साधन में समर्थ होता है इसी प्रकार विमान भी सब अङ्गों से युक्त होकर समर्थ होता है । यथाविधि विश्वकियादपर्णायन्त्र को आरम्भ करके इकलीस विमानाङ्ग स्थानों को अधिक करके या उत्तमता से कहा है उन सबको विविवत् सज्जेप से यथाक्रम छायापुरुषशास्त्र में कहे प्रकार से यहां वर्णित किया जाता है ॥ १—४ ॥

आदौ विश्वकियादर्शस्थानमित्यभिव्यायते ।  
 शक्तयाकरणदर्शणस्थान च तत च परम् ॥ ५ ॥  
 परिवेषस्थानमुक्त विमानावरणोपरि ॥६॥  
 अङ्गोपसहारयन्त्रस्पत्तमे विन्दुकीलके ॥ ६ ॥  
 स्थादित्वतकियास्थान रेखेकादशमध्यगे ।  
 वैरूप्यदर्शणस्थान पदमवक्तमुख तथा ॥ ७ ॥  
 शिरोभागे विजानीयाद्विमानस्य बुधः (वं ?) क्रमात् ।  
 कण्ठे तु कुण्ठिटरीशक्तिस्थानमित्युच्यते बुधे ॥ ८ ॥  
 पुष्पिणीपञ्चजुलादर्शस्थान दशिराकेन्द्रके ।  
 वामपार्श्वमुखे नालपञ्चकस्थानमुच्यते ॥ ९ ॥

आदि में विश्वकियादर्शस्थान कहा जाता है इसके आगे शक्तयाकरण स्थान कहा है । परिवेषस्थान (परिवेषस्थान) विमानावरण के चारों ओर या ऊर विमान के अङ्गों का सङ्केचनयन्त्र सातवें विन्दुकील में । विस्तृत कियास्थान ग्यारही रेखा के मध्य में होना चाहिये, वैरूप्यदर्शणस्थान तथा पद्माचक्र मुख ये दोनों विमान के शिरोभाग में तुद्विमान् क्रमशः जाने । विमान के कण्ठ में कुण्ठिटरीशक्तिस्थान होना तुद्विमाने ने कहा है । पुष्पिणीपञ्चजुलादर्श स्थान दशिराकेन्द्र में तथा नाल पञ्चकस्थान (पांच नाल का स्थान) वाम पार्श्व में कहा जाता है ॥ ५—९ ॥

गुहागर्भदर्शयन्त्रस्थान कुक्षिमुखे क्रमात् ।  
 तमोयन्त्रस्य स्थान भवेद् वायव्यकेन्द्रके ॥ १० ॥  
 पञ्चवातरक्तन्धनालस्थान पश्चिमकेन्द्रके ।  
 रोद्रीदर्पणस्थान वातस्कन्धालक्षीलकम् ॥ ११ ॥  
 अथ केन्द्रे विजानीयाद्विमानस्य यथाक्रमम् ।  
 शक्तिस्थान विमानस्य मुखदक्षिणकेन्द्रयो ॥ १२ ॥

\* च तदनन्तरम् (कविति) ।

\* यहा 'विमानावरणोपरि' में विमानावरणत परि न होकर विमानावरणत उपरि' भी हो सकता है विसर्ग लोग हो जाने पर त-उ की सन्धि छवदपति के लिये समझना चाहिये ।

शब्दकेन्द्रमुखस्थान वामभागे निरूपितम् ।

विशुद्धा (दा?) दशकस्थान विमानेशान्यकोणके ॥ १३ ॥

गुहागर्भादर्शी यन्त्र का स्थान कुचिमुख में क्रमशः कहा है, तपोयन्त्र (अन्धकार करनेवाले यन्त्र) का स्थान बायब्य केन्द्र में होना चाहिये । पञ्चवार्तस्कन्धनाल का स्थान पश्चिम केन्द्र में हो । रौद्रीदर्पण स्थान वातस्कन्ध नामक कील में विमान के अध केन्द्र में यथाकम जानना चाहिये । शब्द केन्द्रमुख स्थान वाम भाग में निरूपित किया है वारह विशुद्ध का स्थान विमान के ऐशानीकोण में होना चाहिये ॥ १०—१३ ॥

प्राणाकुण्डलिस्त्रस्थान यानमूले निरूपितम् ।

भवेच्छक्तित्यु दग्मस्थान नाभिकेन्द्रे तथैव च ॥ १४ ॥

वकप्रसारणस्थान विमानाधारावर्तके ।

मध्यकेन्द्रे भवेच्छक्तिपञ्चरस्थानकीलकम् ॥ १५ ॥

स्थान शिर कीलास्य भवेद्यानशिरोपरि । ५४

शब्दाकर्षणयन्त्रस्य स्थान पदितमपास्वके ॥ १६ ॥

रूपाकर्षणयन्त्रस्य स्थान यानभुजे क्रमात् ।

पटप्रसारणस्थान यानाधोभागमध्यमे ॥ १७ ॥

प्राणकुण्डलीस्थान (गतियन्त्र) यान के मूल में निरूपित किया है तथा शक्त्युदगमस्थान नाभिकेन्द्र में कहा है । वकप्रसारण स्थान विमानाधारावर्त में और शक्तिपञ्चरस्थान कील मध्य केन्द्र में होना चाहिये । शिरकील नामक स्थान यान के शिर के ऊपर हो, शब्दाकर्षण यन्त्र का स्थान पश्चिम पार्श्व में होना चाहिये । पटप्रसारणस्थान यान के अधोभाग के मध्य में होना चाहिये ॥ १४-१० ॥

दिशान्पतियन्त्रस्थान वामकेन्द्रभुजे विदु ।

पट्टिकाक्रमस्थान (न ?) यानावरणमध्यमे ॥ १८ ॥

विमानस्थोपरि सूर्यस्य शक्त्याकर्षणपञ्चरम् ।

अपस्मारधूमस्थान सन्धिनालमुखोत्तरे ॥ १६ ॥

अधोभागे स्तम्भनालास्ययन्त्रस्थानमितीयते ।

वैश्वानरालास्यनालस्य स्थान नाभिमुखे विदु ॥ २० ॥

इयेकविशितकस्थाननिर्णय परिकीर्तिं ।

दिशान्पति (दिशाओं के पति) यन्त्र का स्थान वामकेन्द्रभुजा में जाने पट्टिकाक्रम (अधक की पट्टिका) का स्थान यानावरण के मध्य में होना चाहिये । विमान के ऊपर सूर्य की शक्ति को आकर्षण करने वाला पञ्चर हो, अपस्मार धूम का स्थान सन्धिनालमुख के उत्तर भाग में होना चाहिये । अधोभाग में स्तम्भनालास्य यन्त्र का स्थान कहा गया है और वैश्वानर नामक नाल का स्थान नाभिमुख में जाने ॥ यह एकत्रीस अङ्गस्थानों का निर्णय कहा ॥ १८-२० ॥

—०:—

\* 'शिरोपरि' में 'शिर-उपरि' विसर्गलोप होकर सन्धि शब्द की पूति के लिये है ।

कापी संख्या २—

## अथ वस्त्राधिकरणम् ।

अब वस्त्र का अधिकरण प्रस्तुत करते हैं ।

यन्तुप्रावरणीयौ पृथक् पृथगृतुभेदात् ॥ अ० १ स० ६ ॥

व० ३०

वस्त्रप्रबोधकपदान्यन्तृणामुतुभेदत् ।

उक्तानि श्रीणि सूत्रेभिन्न तेषामर्थो विविच्यते ॥ १ ॥

धारणाच्छादनवस्त्रप्रभेदो यन्तृणा क्रमात् ।

सूत्रादिमपदेनोक्ते द्वितीयपदतस्तथा ॥ २ ॥

तेषा सस्कारतद्वर्णं पुण्यजात्यादय स्मृता ।

सूत्रवृत्तीयपदत कालभेदो निरूपित ॥ ३ ॥

इत्य सूत्रार्थमुक्त्वाथ विशेषार्थो निरूप्यते ।

अनन्तसूर्यं किरणशक्तिवैचित्रयभेदत ॥ ४ ॥

वसन्ताद्याप्यहृतव प्रभवन्त्यदितेर्दुखात् ।

यजुरार्थके सूर्यानन्तत्वप्रतिपादने ॥ ५ ॥

यद् याव इन्द्र ते + शतमितिवाक्याङ्गुतिर्जगौ ।

ऋतुभेद से विमानचालक यात्रियों के वस्त्रों के विवेचन किया जाता है। यात्रियों के पहिनने और ओढ़ने का वस्त्रभेद क्रम से सूत्र के आदिग पद से कहा दूसरे पद से संस्कार उसके वर्णं पुण्य जाति आदि कहे हैं, तीसरे पद से कालभेद कहा है इस प्रकार सूत्रार्थं कह कर विशेष अर्थ निरूपित किया जाता है, अदिति-व्याप अग्नि के मुख से एवं अनन्त सूर्यकिरण शक्तियों की विचित्रता के भेद से वसन्त आदि छः ऋतुएः होती हैं। यजुर्वेद के आरण्यक में सूर्य किरणों की अनन्तता प्रतिपादन होने से “यद् याव इन्द्र ते शतम्” (तै० आ० १ । ७ । ५ ) हे इन्द्र सूर्यं किरणों सैकड़ों सहस्रों हैं+। इस प्रकार वाक्य श्रुति ने गान किया-कहा है ॥ १-५ ॥

† “शत वहनाम्” ( निष्ठ० )

तस्मादनन्तसूर्याणामशुशक्तिसमाकृलात् ।  
 विषामृतविभागेन भिद्यन्ते ऋतुशक्तय ॥ ६ ॥  
 छेदिनोरक्तपामेधस्तिसराहारादय कमात् ।  
 पञ्चविशतिस्थ्याका ऋतूना विषशक्तय ॥ ७ ॥  
 त्वद् मासमेथामज्जास्त्वितान्युरक्तरसादिकान् ।  
 वेरबीजान् नश्यति खपथे यानगच्छाम् ॥ ८ ॥  
 तस्मात्द्वेरबीजादिरक्तणार्थं कपादिना ।  
 ऋतुशक्तयनुसारेण वस्त्रभेदा निरूपिता ॥ ९ ॥

अत अनन्त सूर्यों के शक्तिसमूह से विभाग और अमृत के विभाग से ऋतुशक्तियां भिन्न-भिन्न हो जाती हैं । छेदिनो अङ्गछेदिन करनेवाली, रक्ता-रक्त पीनेवाली, मेथा-मद मांस चिकनई सिरा आहार वाली कम से सद्बया में ऋतुओं की विषशक्तियां हैं जो कि आकाशमार्ग में विमानयात्रियों के त्वचा मांस मेद मज्जा-चर्ची हड्डी नाढ़ी रक्त सिरा आदि वेर बीजों-शरीर के तत्त्वों को नष्ट करती हैं । अत शरीर के तत्त्वों की रक्षा के अर्थ कपर्दी ने ऋतुशक्ति के अनुसार वस्त्रों के भेद निरूपित किये हैं । ६-९।

उन्तं हि पटसंस्कार रस्ताकर ग्रन्थ में—

पट्टकार्पासयैवाललोमाभ्रकत्वगादिकान् ।  
 सप्तविशतिस्तस्कारशुद्धानभ्रकवारिणा ॥ १० ॥  
 धालवोक्तविधानेन तन्तून् सन्धाय शाश्वत ।  
 गालवोक्तविधानेन तन्तून् सम्यक् प्रकल्पयेत् ॥ ११ ॥  
 केतकीवटतालार्कनारिकेलशरणादय ।  
 तत्तच्छुद्धिप्रकारेण शोधायित्वाष्टवारत ॥ १२ ॥  
 एकोनविशत्स्तस्कारस्त्स्कृत्य विधिवत् कमात् ।  
 तत्तद्लक्लमादाय यन्ते तन्तुमुखाभिधे (दे?) ॥ १३ ॥  
 समग्रेणाय सन्धायं तन्तून् कृत्वा यथाविधि ।  
 गालवोक्तेन मार्गेण कुर्याद् वस्त्राण्याकमम् ॥ १४ ॥  
 पश्चाद् वस्त्रान् समाहृत्य पञ्चतैलेस्तु पाचयेत् ।  
 अतसीतुलसीधात्रीशमीमालूरुचकिका ॥ १५ ॥

रेशम, रुई, जलकाई, बाल, अभ्रकपरत आदि को २७ संस्कार शुद्ध करे हुओं को अभ्रक-जल या कपूरजल या नागरमोथे के जल से प्रत्यालित करके सबको शास्त्र से यन्त्र में रखकर गालव की विधि से धार्गों को बनावे । केतकी—केवड़ा, ( बांस केवड़ा) वह, ताढ़, आल, नारियल, सण आदि उस उसके शुद्धिप्रकार से द वार शोध कर १४ संस्कारों से विधिवत् करके उसके उस उसके बकल लेकर तन्तुमुख नामक यन्त्र में रखकर तन्तुओं को बनाकर गालव के कहे मार्ग से चत्र यथाक्रम करे पश्चात् वस्त्रों को लेकर पांच तैलों से पकावे जो कि पांच तैल हैं अलसी, तुलसी, आमला, शमी, मालू-काली तुलसी, रुचिका-सरसों ॥ १०—१५ ॥

एतदोषधिवीजाना तैलात् सप्ताहमातपे ।  
 प्रत्यंह पञ्चशातप्त्वा शुक्र कृत्वा तत् परम् ॥ १६ ॥  
 गोपीलाक्षाचण्डमुखीमुचिपिष्ठाभ्रकास्समम् ।  
 सम्मेल्य एणाक्षारेण बृहत्सूयामुखे क्रमात् ॥ १७ ॥  
 सम्मूर्यं विधिवत् सर्वं क्रमव्यासटिकान्तरे ।  
 निशाय विमुखीभस्त्राद् धमनेऽच्छुज्जीरवेगत ॥ १८ ॥  
 तन्मध्येगस्तिपत्राणा रसप्रस्थाष्टक न्येत् ।  
 माधिकाभ्रकसिङ्गीजीवज्जटङ्गेणाकुटे ॥ १९ ॥  
 तैलमाहृत्य विधिवत् तद्विन् पश्चान्नियोगेत् ।  
 पश्चात् सगृह्य तत्काञ्ज गर्भतापनयन्त्रके ॥ २० ॥  
 सन्ताण्य ततैललित्वस्त्राण्यथ समाहरेत् ।

इन शोषधियों के जींओं के तैल से सप्ताहभर धूप में प्रतिदिन पांच बार तपाकर सुखाकर गोरी-गोपिका-कृष्ण सारिवा, लाल चण्डमुखी-इमली, मधु, पिट-तिल की खल, अब्रक ये समान लेकर एणाक्षार ?-ऐणाक्षार हरिणशृङ्ख भस्म के ज्ञार से भिला कर बड़ी मूया ( कृत्रिम बोतल ) के मुख में भर कर कूर्मव्यासटिका-कलवे के आकारवाले कुरुद के अनन्द रसकर तीन मुखवाली भस्मा से सिंजीर ? के देवा से ध्येन करे । उसके मध्य में अगस्त्य वृक्ष के पत्तों का द सेर रस ढाल दे स्वर्णमाचिक अब्रक सिंजीर ? शूर, सुडागा, वाकुट-शाकुनी ? या वाकुन-वकुत का फन वस्तुओं से विधिवत् तैल लेकर उस में ढाल दे पश्चात् लेकर भर्भगत यन्त्र में उनके कांड ?-रस तपाकर उस तैल से लिप्र वस्त्र लेले ॥१६-२०

अग्निमित्रोक्तविधिना पटजात्यनुसारात् ।  
 ऋतुघर्मनुसारेण कवचादीन प्रकृत्येत् ॥ २१ ॥  
 तत्तत्कालोचितात् वस्त्रकवचादीन् यथाक्रमम् ।  
 यानयन्त्रवादिकारवरिष्ठेभ्यो मनोहरान् ॥ २२ ॥  
 दत्त्वा स्वस्त्रयन कृत्वा रक्षाकरणपूर्वकम् ।  
 पश्चात् सम्प्रेषयेद् यानयन्त्रकर्मणि हृष्टत ॥ २३ ॥  
 सर्वदोषविनाशस्यात् तत्पटै र्वं वर्लवर्धनम् ।  
 मेघोद्विद्विष्वारुद्विद्विष्वारुद्विष्वारजाडयना ॥ २४ ॥

अग्निमित्र की कही विधि में पट जाति के अनुसार ऋतु धर्मनुसार कवच आदि बनावें, उस उस काल के योग्य वस्त्र कवच आदि यथाक्रम मनोहर विमानचालन अधिकार में श्रो ज्ञों के लिये देकर स्वरूपयन रक्षाकरणपूर्वक करके उन्हें हर्ष से विमानचालन के कार्य में प्रेरित करे, सर्व दोषों का विनाश हो उन वस्त्रों से विमानयात्रियों का बल बढ़े, मेघा बढ़े, धातु वृद्धि हो अहं पुष्टि सुर्ति अङ्गरक्षण आदि हो ॥ २१—२४ ॥

## आहाराधिकरणम् ।

भोजन का अधिकरण ।

आहारः कल्पमेदात् ॥ अ० १ स० ७ ॥

बो० बृ०

यन्तु शामाहारभेदनिर्णयार्थं पदद्वयम् ।

सूत्रेस्मिन् कथितं सम्यक् तदर्थस्सम्प्रचक्षते ॥ २५ ॥

कल्पशास्त्रोक्तरीत्यात्र ऋतुकालानुसारत ।

यन्तु शामाहारभेदात्त्रिविधा इति निर्णिता ॥ २६ ॥

चालक यात्रियों के आहारभेद के लिये इस सूत्र में दो पद कहे हैं उनका अर्थ कहा जाता है, कल्पशास्त्र में कही रीति से यहां ऋतुकाल के अनुसार चालक यात्रियों के आहारभेद तीन प्रकार के निर्णीति किए हैं ॥ २५—२६ ॥

तदुक्तमशनकल्पे—वह भोजनकल्प प्रथम् में कहा है—

रसवर्गं माहितीया धान्येष्वाढकशालिकी ।

मासेष्वाविक (कि ?) मास च वसन्तग्रीष्मयोरिति ॥२७॥

रसेषु गव्यसम्बन्धा धाये गोदूममुदगका ।

मासेषु कालज्ञानीय वर्षाशरदूतावपि ॥ २८ ॥

रसेष्वजा रसाश्चैव धान्येषु यवमुदगका ।

मासेषु कल्पिकाश्च हेमलत्यशिरे क्रमात् ॥ २९ ॥ इत्यादि

विनामिष द्विजातीना भुक्तिसम्मतीरितम् ।

दुर्घ वर्ग में भैस के दूध वान्य में अहर शाली चावल मांसों में भेड़ का मास भोजन है वसन्त और ग्रीष्म ऋतु में । दूधों में जो के दूध वान्य में गोहूं मूँग मांस में कालज्ञानीय—सुर्गों का मांस वर्षा और शरद् ऋतु में । दूधों में बकरी के दूध धायों में जो मूँग मांसों में चिह्निया कवूर का मांस हेमलत्यशिरे क्रतु में क्रम से है । द्विजों का मास के विना भोजन समान कहा है ॥ २७—२९ ॥

विष्णवाचस्पतिः ॥ अ० १ स० ८ ॥

बो० बृ०

सूत्रे पदद्वयं प्रोक्तं विष्णवाचार्थबोधकम् ।

तदर्थं सम्प्रवक्ष्यामि समासेन न विस्तरात् ॥३०॥

पञ्चविंशतिसूत्याका ऋतुजा विषशक्तय ।

पूर्वोक्ताहारभेदेन विनाशं यान्ति नान्यथा ॥३१॥

सूत्र में विष्णवाचार्थ बोधक दो पद कहे हैं उनके अर्थ संक्षेप से कहांग विस्तार से नहीं ।

ऋतु ने उपमन होने वाली २५ विषयाक्षियां हैं जो पूर्व कहे आहार के भेद से विनाश को प्राप्त हो जाती हैं अन्यथा नहीं ॥ ३०—३१ ॥

तकुं विषनिर्णयाधिकारे—वह कहा है विषनिर्णयाधिकार में—

ऋतवर्षाहृष्टवास्तेया कालशक्तयादय क्रमात् ।  
बहुधा सम्प्रभिद्यन्ते रथवास्त्राचापलात् ॥३२॥  
मरुच्चापलशक्त शाशतैक तद्देव हि ।  
वास्त्राणायाष्पोडशैकभागाशसप्तमेन्तरे ॥३३॥  
सम्मेलन यदि भवेत् तदानन्तप्रकारत ।  
सिनीवालीकुहूर्योगाद् विषामृतमेदत ॥३४॥  
प्रभिद्यन्ते विशेषेण ऋतुना कालशक्तय ।  
यास्तिनीवालिसप्रस्तास्सर्वमृतशक्तय ॥३५॥  
कुहुसंपर्सिता यास्त्युस्तास्सर्वा विषशक्तय ।  
सप्तकोट्यष्टपञ्चाशलक्षसप्तशतामृता ॥३६॥  
तावन्त्येव विषा प्रोक्ता वाल्मोकिगणितोदिता ।  
भेदिन्याचास्तेतु ? पञ्चविषास्त्युर्विषशक्तय ॥३७॥  
ऋतुकालानुसारेण यन्त्रदेहविनाशका ।  
तप्तशक्ताहारभेदादिति शातातपेश्वरीत् ॥३८॥ इति  
तस्मादाहारभेदोस्मिन् सूत्रे त्रेधा निरूपित ।  
तत्सवनात् कायपुष्टिर्यन्तृणा प्रभवेद् ध्रुवम् ॥३९॥

ऋतुएँ छ प्रकार की हैं उनकी कालशक्ति आदि कम से वर्णण—आकाश में फैले जल के वेग की चपलता से बहुत भेदों में होते हैं उसी प्रकार मरुत्—आकाशीय वायु को चपलशक्ति के भाग १०१ हैं, वारुण शक्ति के १६ अंश (सौ) सातवें अन्तर में हैं सम्मेल यदि हो तो तब अनन्त प्रकार से हो, सिनीवालीपूर्वा अमावस्या और कुहू—उत्तरा अमावस्या के योग से विष अमृत के भेद से भिन्न-भिन्न हो जाते हैं। जो तो सिनीवाली से सम्बन्ध रखती हुई है वे सब अमृत शक्तियां हैं और जो कुहू से संप्रस्त हैं वे सब विषशक्तियां हैं। मात करोड़ अठावन लाख सात सौ अमृत शक्तियां हैं और उतनी ही विष शक्तिकां वाल्मीकि गणित से कही हुई हैं, उनमें भेदिनिर्या २५ विषशक्तियां हैं जो ऋतुकालानुसार चालक यात्रियों के देह का विनाश करने वाली हैं। उनका नाश आहारभेद से हो जाता है ऐसे शतातप के पुत्र शातातप ऋवि ने कहा है। अतः आहारभेद इस सूत्र में तीन स्थानों पर कहा है, उनके सेवन से यात्रियों की शरीरगुणि निश्चित हो जावे ॥ ३२—३९ ॥

तत्कालानुसारादिति ॥ अ० १ सू० ६ ॥

पदनयं तु सूत्रे स्मिन् भुक्तिकालनिराणये ।

उक्तं स्यात् स प्रहेणाद्य तदर्थस्सन्निरूप्यते ॥४०॥

पूर्वोक्तविविधाहारास्तच्छब्देनात्र वरिणीतः ।

भुक्तिकालविधिस्सम्यग् द्वितीयपदतस्मृत ॥४१॥

इत्यम्भावेति शब्दं स्यादिति शब्दार्थनिराणय ।

आहारोत्र प्रभेदेन यन्तृणा पञ्चधा स्मृत (म् ?) ॥४२॥

इस सूत्र में भोजनकालनिराणयप्रसङ्ग में तीन पद कहे हैं, अब संक्षेप से अर्थ कहा जाता है । पूर्वोक्त तीन प्रकार के आहार तन् शब्द से यहां वरिणीत किए हैं भोजनकाल का विधान दूसरे पद से कहा है, इत्यम्भाव के अर्थ में यह शब्द है यह शब्दार्थ का निराणय है, चालक यात्रियों का आहार यहां भेद से पांच प्रकार का कहा है ॥

तदुक्तं शोनकीये—वह कहा है शोनकीय सूत्र में—

अथ भोजनकालविधि व्याख्यास्याम कालाकालविभागेन गृहिणा

द्वावेकमित्येक मस्करिणा चतुर्थतरेषा पञ्चधा यानयन्तृणा यथेच्छ

योगिनामिति ॥

अब भोजन की कालविधि को काल अकाल विभाग से कहूँगा गुहस्यों का दो काल एक काल, संन्यासियों का एक काल, अन्यों का चार बार, विमान के चालक यात्रियों का पाच बार करना और योगियों का इच्छानुसार करना ॥

ललतकारिका—ललकारिका है—

कालयोर्भोजनमिति सूत्रवाक्यानुसारत ।

अत्रि द्वितीययामान्ते रात्रौ प्राथमिकान्तरे ॥४३॥

सकालभोजने प्राहुर्गहणा कालनिराणय ।

अकालभोजने तेषामेकभुक्तविधी क्रमात् ॥४४॥

दिवि दृतीययामाद्या चतुर्थान्तमिति स्मृत ।

एकभुक्ताधिकारत्वाद् यमिनमेकमेव हि ॥४५॥

आहोरात्रविभागेन शूद्रादीना तु भोजने ।

अत्रि त्रिवैक्यादा रात्राविति कालविनिराणय ॥४६॥

भोजने नास्त्यतस्तेषा यथेच्छ भोजन वितु । इति

अत्रि त्रिवैक्यादा रात्रावाकाशे यन्तृणा क्रमात् ।

पञ्चधा भुक्तिकालस्य निराणय परिकीर्तित ॥४७॥

सूत्रवाक्यानुसार दो कालों में भोजन है । दिन में दूसरे प्रहर के अन्त में रात्रि में प्रथम प्रहर के अन्दर । गुहस्यों का कालनिराणय सकाल भोजन में अर्थात् निश्चितकाल पर करना, उनका एक

† 'इत्यम्भाव इति' उभयोरेकादेश आर्य ।

वार भोजनविधि में अकाल भोजन है दिन में तीसरे प्रहर से लेकर चतुर्थ प्रहर तक कहा है, संन्यासियों का एक वार भोजन का अधिकार होने से एक फाल पर ही करना, शूद्रों आदि का तो भोजन में दिनरात के विभाग से दिन में तीन वार रात्रि में एक वार यह कालनिर्णय है, उनका भोजन में काल नियम नहीं यथेच्छा भोजन को जानते हैं। इत्यादि । दिन में तीन वार रात्रि में दो वार भोजन आकाश में चालक यात्रियों का कम से होता है जोकि पांच वार भोजन में कालनिर्णय है ॥४७॥

तदभावे सत्त्वं गोलो वा ॥ अ० १ स० १० ॥

बो० बृ०

पदव्रय भवत्यस्मिन्नाहारान्तरबोधकम् ।

तदर्थं (ह ?) सम्प्रवक्ष्यति समासेन यथार्थात् ॥४८॥

आहारासम्भवे तेषा तत्सारेण कृतान् मृदूत् ।

प्रदद्याद् घननिस्वाकानाहारार्थं यथाविधि ॥४९॥

इस सूत्र में तीन पद हैं आहारान्तर—अन्त आहार के स्थान को बोधन करने वाले उनके अर्थ को मैं यथार्थता संज्ञे से कहूँगा, आहार की सम्भावना न होने पर उनके सार—आटे आदि के बने कोमल घननिस्वाक—पिण्डों—लड्डूओं को आहारार्थ यथाविधि दे ॥४८॥

तदुक्तमशनकल्पे—वह कहा है अशनकल्प प्रथा में—

आहारा पश्चात्रा प्रोक्ता देहुष्टिकरशुभा ।

अन्तकाञ्जिकपिष्ठद्रोटिकासाररूपतः ॥५०॥

तेषु श्रेष्ठतरी सत्त्वगोलानाविति कीर्तितौ ।

देह की पुष्टि करने वाले आहार—भोजन पाच प्रकार के कहे हैं। अन्त, काञ्जिक—धान्याम्ल (खट्टा अन्नरस), पिण्ड-लुगदी, रोटिका, सौंच-चूर्णहृप में उनमें सत्त्व—सार—चूर्ण—भुनाचून—कसार और गोल-लड्डू कहे हैं ॥५०॥

उक्तं हि पाकसर्वत्रे—कहा ही पाकसर्वत्र में—

धान्याद्याहारस्तूना स्वत्वमाहृत्य यन्त्रत ।

पाक कृत्वा पाचनाल्ययन्त्रभाण्डे यथाविधि ॥५१॥

उक्ताष्टमेन पाकेन सत्त्वगोलान् प्रकल्पयेत् ।

सुगन्धं मधुरं स्निग्धमाहारं पुष्टिवर्धनम् ॥५२॥ इति

धान्य आदि आहार वस्तुओं के चूर्ण—आटे को चक्की यन्त्र से लेकर पाचना नामक—कडाई आदि में यथाविधि पाक करके कहे आठवें भाग पाक से, सत्त्वगोल—लड्डू बनावे। उसमें सुगन्ध मधुर स्निग्ध ढालकर पुष्टिवर्धक आहार बनावे ॥ ५१—५२ ॥

फलमूलकन्दसारो वा ॥ अ० १ स० ११ ॥

बो० बृ०

पूर्वसूत्रे धान्यसत्त्वाहारमुक्त हि यन्तु णाथ ।  
 तथैवास्मिन् कन्दमूलफलसत्त्वमपीयते ॥५३॥  
 प्रथम कन्दसत्त्वस्त्वाद् द्वितीयो मूलसत्त्वकः ।  
 फलसत्त्वस्त्वतीषस्त्वादिति सूत्रार्थं इति ॥५४॥

पूर्व सूत्र में धान्य—गोहू आदि अन के चूर्ण—मुने आटे आदि का बना विमानचालक यात्रियों का आहार कहा गया है जैसे ही उस सूत्र में कन्द मूल फल के सत्त्व—गोहू मीठी आदि को आहार कहा है । प्रथम कन्दसत्त्व ही दूसरे मूल का सत्त्व ही तीसरे फलसत्त्व ही यह सूत्रार्थ है ॥५३-५४॥  
 तदुक्तमधानकल्पे—वह कहा है अशनकल्प में—

अलाभे धान्यसत्त्वस्य सत्त्वयमुदाहृतम् ।  
 कन्दसत्त्वो मूलसत्त्व फलसत्त्व इति क्रमात् ॥५५॥  
 पिण्डाकरामञ्जूषमधुक्षीरघुतादय ।  
 स्त्रिघोडुकधारकटकमञ्जूषामलम्बुचा क्रमात् ॥५६॥  
 एकमप्यदि सर्सिद्धि र्भवेत् सशोधनात् स्वत ।  
 सत्त्वाहरणाकार्यं तत्कन्द श्रेष्ठतम् विदु ॥५७॥  
 पञ्चाशादाहारकन्दवर्गेषु विधिवत्सुभी ।  
 सशोध्य सम्यक् पिण्डादिपदाधारनिनुभूतित ॥५८॥  
 निश्चित्य पश्चात् तत्कन्दवर्गात् सत्त्व समाहृते ।  
 कारयेत् तेन निस्वाकानाहारार्थं तु पूर्वावृत् ॥ ५९ ॥  
 एकमेवाहारमूलफलवर्गेषु च क्रमात् ।  
 परीक्षय सत्त्वमाहृत्य निस्वाकान् परिकल्पयेत् ॥ ६० ॥

धान्यसत्त्व के अभाव में अलाभ में न मिलने पर तीन सत्त्व कहे गए हैं जो कि कन्दसत्त्व, मूलसत्त्व, फलसत्त्व कम से हैं, पिण्डास चूर्ण आदा, शर्करा-दलिया या खारण ? मञ्जूष-गुदा एवं मीठी, मधु-रस, दूध, धूत आदि दिनिय तेल, उड्ड-जल, तार-तार जल, कटु-कटुरस, मञ्जूषमल-गुदे या मीठी का मुरब्बा, अचार, शरबत आर्क रूप में भूलुच ? ये क्रम से एक भी यदि हो जावे तो संशोधन से स्वतः सत्त्व के आहार कार्य में कन्द को श्रेष्ठतम जानें हैं । ५५ आहार के कन्दवर्गों में विधिवत् बुद्धिमान संशोधन कर के पिसे आटे आदि पदार्थों को अनुभूति से निश्चित कर पश्चात उस कन्दवर्ग से सत्त्वचूर्ण को महणा करे उस से निधाकों-लड्डुओं को लिये पूर्व की भाँति इस प्रकार आहार मूलक वर्गों में भी परीक्षा करके क्रमशः सत्त्व को लेकर लड्डु बनावे ॥ ५५—६० ॥

आहारमूलवर्गस्तु शास्त्रे षोडशधा स्मृता ।  
 तथैवाहारफलवर्गश्च द्वार्तिशति स्मृता ॥ ६१ ॥  
 मेधो मज्जास्थिवीर्यादा वर्धन्ते कन्दसत्त्वत ।  
 आजो बलकायपुष्टि प्राण कोशादय क्रमात् ॥ ६२ ॥

मूलसत्त्वाद् वृद्धिमेतीत्याहुर्जनिविदा वरा ।  
 मनोबुद्धीनियग्रामभानामृद् माससिखिरा ॥ ६३ ॥  
 फलसत्त्वाद् वृद्धिमेतीत्याहुर्शास्त्रविदा वरा ।  
 एतस्त्वत्रयाहारो यन्तु एष भोजने बुधा ॥ ६४ ॥  
 शास्त्रोक्ताहारवर्गेषु श्रेष्ठाच्छेष्टतम विदु ।  
 तस्मात् सर्वप्रयत्नेन तत्सत्त्व सप्रहेत् सुधोः ॥ ६५ ॥ इत्यादि

आहार मूल वर्ग तो शास्त्र में १६ प्रकार के कहे हैं, वैसे ही आहार फल वर्ग ३२ कहे हैं कन्दसत्त्व से मेद मउजा ही ही वीर्य आदि बढ़ते हैं मूलसत्त्व से ओज, बल काय की पुष्टि प्राप्त कोश आदि बढ़ते हैं, फलसत्त्व से मन ज्ञानेन्द्रियों का ज्ञान रक्त मास चिकित्सा-रस बढ़ते हैं ऐसा श्रेष्ठ शास्त्र कहते हैं, यह तीन सत्त्वों का आहार विमान के चालक यात्रियों के भोजन में विद्वानों ने शास्त्रोक्त आहार वर्गों में श्रेष्ठतम माना है । अत सर्व प्रयत्न से उद्धिमान उस सत्त्व का संप्रह करे ॥ ६१—६५ ॥

अथ च तृणादीनाम् ॥ अ० १, श० १२ ॥

बो० वृ०

पूर्वसूत्रे कन्दमूलफलसत्त्वमुदाहृतम् ।  
 तृणगुल्मलतादीना सत्त्वमस्मिन्हृष्यते ॥६६॥

पूर्व सूत्र में कन्द मूल फल का सत्त्व कहा है, इस सूत्र में तृण गुल्म लता आदियों का सत्त्व निरूपित किया जाता है ।

तदुकमशनकल्पे—वह कहा है अशनकल्प ग्रन्थ में—

तृणगुल्मलतादीना सत्त्वाहार च यन्तु गाम् ।  
 पूर्वोक्तसत्त्ववद् देहारोग्यागुच्यादिवर्धनम् ॥६७॥  
 तस्मात् सत्त्वमप्यन्तभोजनार्थं समाहरेत् ।  
 दूर्वापित्क मुच्यपदक कुशपट्क तथैव हि ॥६८॥  
 शीण्डीरस्याशकरण्णस्य पट्क पट्कमत परम् ।  
 शतमूलत्रयं चैव भोजनेत्यन्तशोभना ॥६९॥  
 कारुवेल्ली चन्द्रवेल्ली मधुवेल्ली तथैव च ।  
 वर्चुली माकुटीवेल्ली सुगन्धा सूर्यवेल्लिका ॥७०॥

तृण, गुल्म, लता आदि का सत्त्व—लुगारी या रस चालक यात्रियों का भोजन है । पूर्वोक्त सत्त्व—कन्द मूल फल के सत्त्व की भाँति देह का आरोग्य आयुष्य आदि बढ़ाने वाला है अत (इनका) सत्त्व भी भोजनार्थ ले ले । दूब ६ भाग, मूँज ६ भाग, कुशा ६ भाग, शीरण्डीर—कुंगोली या स्वयं उत्पन्न ऊंगी तृण धन्य ६ भाग, अशकरणी—लताशल ६ भाग, शतमूलं—शतमूलिका—महामूलाकरणी ३ भाग, भोजन में अत्यन्त अच्छेद है । कारुवेल्ली—कारुवेल्ली—छोटा करेता, चन्द्रवेल्ली—बाढ़ी, मधु वेल्ली—मुलहठी, वर्चुली ?, माकुटीवेल्ली ?, सुगन्धा—तुलमो, सूर्यवेल्ली—सूर्यवेल्ली—चीरकाकोली ॥ ६७—७० ॥

एते गुलमास्सदा यन्हेभोजने पुष्टिवर्धना ।  
 सोमवल्ली चकिकादतुम्बिकारसवल्लिका ॥७१॥  
 कृष्णाण्डवल्लिका चेकुवल्लिका पिष्टवल्लरी ।  
 सूर्यकान्ता चन्द्रकान्ता मेघनाद् पुनर्नंव ॥७२॥  
 अवन्ती वास्तु मत्स्या क्षीरशकमादा पुष्टिवर्धना ।  
 पूर्वोक्तपिष्टमञ्जूषशक्करादा यथाक्रमम् ॥७३॥  
 विधि वच्छोदिते शास्त्रमुखात् सलभ्यते यदि ।  
 यो वा को वा भवेद् गुलमलतादूर्वादिय क्रमात् ॥७४॥  
 सत्त्वाहरणयोग्यास्ते बलपुष्टिवर्धना ।  
 शाकपुष्टतत्प्रथपलवादीना तथैव हि ॥७५॥  
 सत्त्वमस्युत्तम विद्यादाहारे यन्तु गणमिति ।

ये गुलम सदा चालक यात्रियों के भोजन में पुष्टिवर्धक हैं। सोमवल्ली-सोमलता, चकिकाद, तुम्बिका-धिया लौकी, रसवल्लिका, ऐठा कहूँ लता, इक्कुवल्लिका-इक्कुरल्ली-कृष्णक्षीरविदारी, पिष्टवल्लरी-पिष्टरी, सूर्यकान्ता-आदिविषयरी, चन्द्रकान्ता-निरुग्मही-सम्भालू, मेघनाद-चौलाई, पुनर्नंवा, अवन्ती-राई, वास्तु-बथवा, मत्स्या-कुट्टी, क्षीररुक्मी ?—क्षीररुक्मी—शङ्खतुमी, ये पुष्टिवर्धक हैं। पूर्व कहे चूर्चा लुगदी—गुहा दलिया या खाएँ यथाक्रम विधिवत् शास्त्रमुख से प्राप्त होते हैं। जो भी कोई भी गुलम, लता, दूध आदि ही क्रम से सत्त्व लेने योग्य हो, वे बजपुष्टि बढ़ाने वाले हैं। जो भी कोई भी गुलम, लता, दूध आदि ही क्रम से सत्त्व लेने योग्य हो, वे बजपुष्टि बढ़ाने वाले हैं। शाक फूल परो कोपल आदि आहार में उनके सत्त्व को यात्रियों के आहार में जाने ॥ ७१-७४ ॥

### अथ लोहाधिकरणम् ॥

अब लोहे का अधिकरण प्रस्तुत किया जाता है ।

अथ यानलोहानि ॥ अ० १, स० १३ ॥

ब० ३०

यन्तु गणामाहारभेद पूर्वाधिकरणे स्मृत ।  
 अथेदानी यानलोहस्वरूपोस्मिन्निरूप्यते ॥७१॥  
 पदद्वय भवेदस्मिन् यानलोहविनिर्णये ।  
 तयोरानन्तर्वाची स्यादादिमपदस्तथा ॥७२॥  
 यानकियार्हलोहानि प्रोक्तानि स्मुदितीयत ।  
 पदार्थं वै कथित विशेषार्थोऽनुच्यते ॥७३॥  
 उक्तानि यानलोहानि शौनकीये यथाक्रमम् ।  
 ताम्बेदोदाहरित्यामि विमानरचनाविधी ॥७४॥

विमानचालक यात्रियों का आहारभेद पूर्व अधिकरण में कह दिया। अब यान के लोहे का स्वरूप इस प्रकरण में निरूपित किया जाता है। इस सूत्र में दो पद विमानलोहे के निर्णय में हैं।

उन दोनों में आदिम पद 'अथ' अनन्तरार्थ का वाची है। दूसरे पद से विमानकार्य के योग्य लोहे वहे हैं। पदों का अर्थ ऐसे कहकर अब विशेषार्थ कहा जाता है। शौनकीय सूत्र में जैसे लोहे कहे हैं वैसे ही यथाक्रम उहें विमानरचनाविधि में कहूँगा ॥ ७६—७८ ॥

तदुक्तं शौनकोये—वह कहा है शौनकीय सूत्र में—

अथ वैमानिकान् लोहानुक्रमिष्यामस्सीमकसौण्डलिकमीत्विकाशचे—  
तत्सम्मेलनादृष्ट्यपाणीडगाधा भवन्तीति ते वैमानिका इति ॥

अब वैमानिक—विमान के हितकर लोहों को कहेंगे जो कि सौमक, सौण्डलिक, मौत्तिक हैं।

इनके सम्मेलन से ऊपर लोहे १६ प्रकार के होते हैं अतः वे वैमानिक लोहे होते हैं ॥

अथ नामानि—अथ उनके नाम हैं—

उषणम्भरोषणपोषणहनराजाम्लवृद् वीरहापञ्चधनेनिनृद्भारहनशीत—  
हनोगरलघ्नाम्लहनो विषभरविशलयकृद् दिजमित्रश्वेतीत्यादि ॥

उषणम्भर, उषण, उषणहन, राजाम्लवृद्, वीरहा, पञ्चधन, अभिनृद्भ, भारहन, शीतहन, गरलधन, अम्लहन, विषभर, विशलयकृद्, दिजमित्र इत्यादि ॥

माणिभद्रकारिका—माणिभद्रकारिका—

विमानाहारिण लोहानि भारहीनानि धोडश ।

ऊषण्युक्तानि सूत्रेनिमन् शौनकेन महात्मना ॥८०॥

एतत्खोडशलोहान्येव यानरचनाविधि ।

वरिष्ठानीति शास्त्रेषु निर्णितानि महर्षिभि ॥८१॥

विमान के योग्य भारहीन लोहे १६ हैं। इस सूत्र में शौनक महात्मा ने ऊपर कहे हैं, ये १६ लोहे विमान यान रचनाविधि में ऐसे छह हैं शास्त्रों में महर्षियों ने निर्णय किए हैं ॥ ८०—८१ ॥

साम्बोधि—साम्ब आचार्य ने भी कहा है—

सौमसौण्डलमीत्विकवशजा वोजलोहका ।

तत्सयोगात्समुत्पन्ना ऊपरा इति कीर्तिता ॥

तथैव व्योमयानाङ्गरचना नान्यथा भवेत् ॥ इत्यादि ॥

सौम, सौण्डल, मौत्तिक के वंशज बीज दोहे हैं उनके संयोग से जो ऊपरन होते हैं वे ऊपरा कहे गए हैं। वैसे हि विमान के अङ्गों की रचना ढीक होगी ॥

एवमुवर्त्वाथोपराना यानाहृत्वं प्रमाणत ।

तेषा स्वरूप निर्णेतु पूर्वमार्गनुसारत ॥८२॥

तद्वीजलोहस्वरूपमादी सम्यग् विचार्यते ।

भूगर्भस्थितखनिजरेखापवित्रपु सप्तमे ॥८३॥

दृतीयखनिजस्था ये ते लोहास्सीमजातय ।

ते त्वष्ट्रियशति प्रोक्तास्तेषु लोहत्रय क्रमात् ॥८४॥

ऊपरलोहोत्पत्तिविधि मुख्यत्वेन विनिश्चिता ।

इस प्रकार उत्पम लोहों का विमान योग्य होना प्रमाण से कहकर उनके स्वरूप का निर्णय करने को पूर्व मार्गानुसार उनके बीज लोहों के स्वरूप आदि के विषय में भली प्रकार विचार किया जाता है। भूगर्भस्थित खनिज रेखाओं की पंक्तियों में सततें पंक्तिस्तर में सीन खनिज रेखास्तरों में जो लोहे सौमजातीय उत्पम लोह की उत्पन्निविधि में मुख्यत्व से निश्चित किए हैं ॥८१-८४॥

तदुकं लोहतत्रे—वह लोहतन्त्र में कहा है—

रेखासप्तमस्य वृत्तीयखनिजलोहा पञ्चशक्तिमयासौमजातीयास्ते  
बीजलोहा इति ॥

सातवीं रेखा में स्थित तीन खनिस्तर में उत्पन्न लोहे पांच शक्तियों से पूर्ण सौमजातीय बीज लोहे हैं ॥

बोधानन्दकारिका—बोधानन्दकारिका—

भूगर्भखनिजरेखास्त्रिवस्त्रहाधिकास्तमृता ।  
त्रिशतोत्तरसहस्ररेखास्तेष्टुतमा क्रमात् ॥८५॥  
रेखानुगुणतस्तमु खनिजास्तनिरूपिता ।  
तेषु सप्तमरेखास्थलखनिजास्तविश्विति ॥८६॥  
तेषु वृत्तीयखनिजगर्भकोशासमुद्भवा ।  
पञ्चशक्तिमया ये स्पुर्से लोहा बीजतत्रका ॥८७॥  
तानेव सौमसौण्डालमौर्त्विकाद्यैश्च नामभिः ।  
प्रवदन्ति विशेषेण लोहशास्त्रविशारदा ॥८८॥  
लोहेषु सौमजातीनामुत्पत्तिकमनिरोग्य ।  
लोहकल्पानुसारेण किञ्चिदत्र निरूप्यते ॥८९॥

भूगर्भ की खनिज रेखाएँ तीन सहस्र से अधिक कही हैं, उनमें कम से एक हजार तीन सौ रेखाएँ उत्तम हैं उनमें रेखानुसार खनिज कहे हैं उनमें सातवीं रेखा में स्थित खनिज २७ हैं उनमें तीन खनिज गर्भकोशों में उत्पन्न होने वाले पांच शक्तियों से पूर्ण जो लोह हैं उन्हें ही सौम सौण्डाल-मौर्त्विक आदि नामों से लोहशास्त्रविशेषतः कहते हैं। लोहों में सीम आदि के उत्पन्निक्रम का निर्णय 'लोहकल्प' शास्त्र के अनुसार कुछ वहाँ निरूपित किया जाता है ॥ ८५-८९ ॥

उकं हि लोहरहस्ये—लोहरहस्य में कहा है—

कुर्मकश्यपमार्तण्डभूतभाना तथैव हि ।  
अर्कन्दुवाडवाना च शक्तयस्त्वाशत क्रमात् ॥ ६० ॥  
अष्टट्कादशपञ्चद्विष्टचतुर्नवस्त्रस्यका ।  
खनिजान्तर्गर्भकेन्द्रशक्त्याकर्षणातस्त्वयम् ॥ ६१ ॥  
शनैश्चनैस्समागत्य गर्भकोश विशन्ति हि ।  
तत्र वारुणीशेषगजशक्त्यूष्मभि क्रमात् ॥ ६२ ॥

मिलित्वा लोहता यान्ति शक्तिसम्मेलन यथा ।  
बीजलोहित्वमे सौभग्योहा इति विनिर्णयता ॥ ६३ ॥

एतेषा नामशक्त्यादिनिर्णयस्तु यथामति ।  
यथोक्तमविणा साक्षात् तथैवात्र निरूप्यते ॥ ६४ ॥

**कूर्म-**पृथिवी गर्भ की आकर्षण शक्ति, कृष्ण के करण-पृथिवी की बाहिरी कक्षाशक्ति, मार्तण्ड-सूर्य किरण प्रवाह, भूत - तन्मात्रापं विशेषत वातप्रवाह, भ-महशक्ति, अर्क-सूर्य की आन्तरिक आकर्षण शक्ति, हनु-चन्द्रमा, वाढवा-कालगति या सूर्य और पृथिवी आदि के मध्य पृथिवी आदि को बहन करनेवाली शक्ति । ये सब अपने अपने अर्थों से ३, ८, ११, ५, २, ६, ४, ८, शक्तिया खनिज अन्तर्गत गर्भेन्द्र शक्ति के आकर्षण से स्वयं धोरे धोरे मिलकर गमकोश को प्रविष्ट हो जाती हैं । वहाँ वास्तुपी-पृथिवी की आद्र शक्ति या तिनमध्यशक्ति, रोष—मेहदण्डशक्ति—निंजो यिद्वीकरणशक्ति, गज—क्षतिज-प्रवाह शक्तियों की ऊमाओं से मिलकर लोहे के रूप को प्राप्त होते हैं जैसे ही शक्ति का सम्मेलन हो जाते । बीज लोहों में ये सीम लोहे निर्णय किए गए हैं । इनके नाम शक्ति आदि निर्णय यथामति आत्रे ने कहे हैं वैसे ही यहाँ निरूपित किए जाते हैं ॥ ६०-६४ ॥

**उक-** हि नामार्थकल्पे—कहा ही है नामार्थकल्प प्रथ मे—

सौमस्सौम्यकुमुदास्यसोम पञ्चाननस्तथा ।

उष्णारिरूपपृष्ठसूणीडीरो लाघवोर्मिष ॥ ६५ ॥

प्राणनश्चाहृकपिल इति नामान्यथाकम् ।

सौमाल्यवीजलोहस्य वरणितानि विशेषत ॥ ६६ ॥

तथैव बीजलोहाना नामसक्लृप्तशक्तय ।

एककनामतसम्यद् निरणितास्त्युर्यथाविधि ॥ ६७ ॥

सौमाल्यनामभद्रकृतशक्तीयोस्तस्मप्रकीर्तिता ।

ता एव सविरुप्यन्ते सप्रहादत्र साम्रतम् ॥ ६८ ॥

सौम, सोम्यक, सुदास्य, सोम, पञ्चानन, उष्णारि, ऊपम, शुक्र, सोण्डोर, लाघव, ऊर्मिष, प्राणन, शङ्ख, कपिल ये नाम यथाकम सोम नामक बीज लोहे के कहे हैं वैसे ही बीज लोहे की नाम द्वारा निष्पन्न शक्तिया जो कही हैं वे यहा आव निश्चित की जाती हैं ॥ ६५-६८ ॥

**उक-** हि नामार्थकल्पे—कहा है नामार्थकल्प प्रथ मे—

सू० सौमस्स ग्रीमविसर्ग+ (नुस्वार?) शक्तिभय ॥ इति

बोधानन्दकारिका—

विभानरचनार्थय ये लोहा कृतका स्मृता ।

तेषा सौमादयो बीजलोहा इति विनिर्णयता ॥ ६६ ॥

स ग्रीमविसर्ग+ (नुस्वार?) शक्तिभागसम्मेलनाद्यत ।

लोहत्वमभजत् तस्मान्नाम सोम इतीरितम् ॥ १०० ॥

\* “कूर्मो विभूति घरणी लतु चामपृष्ठे” (शुक० ४४।११)

† अनुस्वार, हस्तलेख मे प्रमादत पाठ है ( देखो श्लोक ११२ )

एतलोहस्य शक्तीना वर्णसङ्केतनिरंय ।

परिभाषाचन्द्रिकोवतरीत्या किञ्चन्निरूप्यते ॥ १०१ ॥

विमानरचना के लिये जो लोहे कृतक कहे हैं उनके बीज लोहे सौम आदि निश्चित किए गए हैं। “स, अौ, म,” अक्षरों की शक्ति भागों के मेल से इनके सहयोग के कारण लोहरूप को प्राप्त हुआ अत सौम इस नाम से कहा गया है। यह लोहे की वर्ण शक्तियों का संकेत निरंय है, परिभाषाचन्द्रिका की कही रीति से किञ्चन्निरूप्यण किया जाता है ॥ ६६-१०१ ॥

उक्त हि परिभाषाचन्द्रिकायाम्—कहा ही है परिभाषाचन्द्रिका में—

सू० साङ्केतकाशतुर्वर्णीया ॥

विश्वभरकारिका—इस पर विश्वभरकारिका है—

वारुणीसूर्यकिरणादिति ध्रुवप्रमेदत ।

सर्वेषा बीजलोहाना शक्तिवर्गश्चतुर्विधा ॥ १०२ ॥

एककवर्गसङ्कल्पाशक्तयस्तेतु शास्त्रत ।

लक्ष्मीं च सहस्राणा सप्तषष्ठितमास्तथा ॥ १०३ ॥

शताना सप्ततदुपर्यष्टुष्टितम् क्रमात् ।

इति वाल्मीकिगणितप्रमाणात् सन्निस्पिता ॥ १०४ ॥

तेषु वारुणीवर्गस्य कूर्मकश्यपशक्तिषु ।

सप्तषष्ठितमा शक्तिरूपाल्या कूर्मगम्भजा ॥ १०५ ॥

पञ्चाशीतितमा शक्ति कालाल्या काशयपी तथा ।

साङ्केतकादिमो शक्ती सकारे सन्निरूपिते ॥ १०६ ॥

वारुणी—वरुणशक्ति और सूर्यकिरण से इस प्रकाशित्य भेद से सब बीज लोहों के शक्तिवर्ग चार प्रकार के हैं। एक एक वर्ग से विभक्त शास्त्र से उनमें शक्तियां १ लाख ६७ सहस्र ७ सौ ६८ हैं यह वाल्मीकि गणित से निरूपित की गई हैं। उनमें वारुणी वर्ग की कूर्मकश्यप शक्तियों में ६७वीं शक्ति उपानामक कूर्मगर्भ से उत्पन्न होने वाली है, वृ३वीं काशयपी कालानाम की शक्ति तथा संकेतवाली आदिम दो शक्तियां ‘स’ अक्षर में कही हैं ॥ १०२-१०६ ॥

अर्का शुवर्गं मातृण्डभूतसञ्जातशक्तिषु ।

एकसप्ततिमा शक्तिमातृण्डस्याम्बरा तथा ॥ १०७ ॥

रुचिकाल्या भूतशक्तिपञ्च्युतरशतात्मिका ।

उभी साङ्केतरूपेण ओकारे सम्प्रदशिते ॥ १०८ ॥

तथैवादितिगम्भस्यसूर्यनक्षत्रशक्तिषु ।

सुदाल्या नवमी शक्तिरादित्यस्य तथैव हि ॥ १०९ ॥

ऋक्षस्य शक्तिर्भीमाल्या एकोत्तरशतात्मिका ।

एते साङ्केतकादत्र मकारेणाभिर्णिते ॥ ११० ॥

तथैव ध्रुववर्गस्योमवाडवशक्तिषु ।  
इन्दुशक्तिसोमकाल्या नवोत्तरशतात्मिका ॥ १११ ॥

सूर्यकिरणवर्ण में मार्तण्ड और भूरों से उपक्ष शक्तियों में ७१वीं शक्ति मार्तण्ड की अस्वरा है, सूचिका नामक भूतशक्ति १६०वीं है, ये दोनों शक्तियां सङ्केतलूप से 'ओ' अज्ञर में दिखलाई हैं, तथा अदितिगर्भ में रित्यत सूर्यनक्त्रों में सुन्दराल्य नौवीं शक्ति आवित्त की वैसी ही नक्षत्र की शक्ति भौमाल्य १०१ कहीं, ये दोनों शक्तियां यहाँ 'म' अज्ञर से अर्थित की रही हैं। वैसे ही ध्रुव वर्ण में रित्यत सोमवाडव शक्तियों में इन्दु-चन्द्रमा की शक्ति सौमनाम १०५वीं कही है ॥ १०७—१११ ॥

तथैव वाडवाशक्तिमन्त्वाल्या चतुर्दशी ।  
इमो साङ्केतकाद्र विसर्गे सन्तिरूपिते ॥ ११२ ॥

एव चत्वारि वर्गस्याक्षयस्ता परस्परम् ।  
खनिजाना गर्भकोशो मिलित्वा कालपाकतः ॥ ११३ ॥

सौमजातीयलोहत्व प्राप्नोत्वेव न सशय ।  
आहृत्याष्टौ शक्तयोधित्वा विचारे समग्रदृश्यन्ते ॥ ११४ ॥

एवमुक्त्वा सौमलोहशक्तिसङ्क्लेतनिराण्यम् (य ?)  
अथ सौण्डाललोहस्य शक्तिसङ्क्लेतमुच्यते ॥ ११५ ॥

कूर्मस्थयनदा नाम शक्तिरेकादशात्मिका ।  
क्रमात् साङ्केतकाद्र सकारेणाभिवर्णिता ॥ ११६ ॥

वसे ही वाडवाशक्तिमेलन नामक १४वीं है, ये दोनों शक्तियां सङ्केत से यहाँ विसर्ग ' ' से निरूपित की हैं। इस प्रकार चार वर्णों में रित्यत शक्तियां परस्पर खनिद्वारा गर्भकोशों में मिलकर कालपाक से सौम जाति के लोहपत्र को प्राप्त हो जाती हैं इसमें संशय नहीं। आठों शक्तियां मिलकर इस विचार में दिखलाई पड़ती हैं। इस प्रकार सौम लोहाशक्तियों के सङ्केत का निर्णय कहर अव सौण्डाल लोह की शक्तियों का सङ्केत निराण्यक कहा जाता है। कूर्मस्थ धनदा—कुर्वेऽतों की शक्ति ११वीं है (११ रुतों में है) सङ्केत से यहाँ 'स' अज्ञर से कही है ॥ ११२—११६ ॥

ऋद्धनामा कादयी शक्तिर्दशोत्तरशतात्मिका ।  
पूर्ववत्सङ्केतिता स्थादोकारेण यथाक्रमम् ॥ ११७ ॥

शक्तिर्द्वयमुखी नाम मार्तण्डस्य शतात्मिका ।  
आण्वी नाम तथा भूतशक्तिसप्तशतात्मिका ॥ ११८ ॥

द्वाविमी साङ्केतिते चात्रानुस्वारेण शास्त्रतः ।  
सूर्यस्यैकोनपञ्चाशच्छक्तिः कान्ताभिधा तथा ॥ ११९ ॥

नक्षत्राणा पञ्चविशज्ज्ञकिर्त्वर्चाभिधानका ।  
उभो साङ्केतिते चात्र डकारेण यथाक्रमम् ॥ १२० ॥

† प्राप्नोति—एकव वर्णं वचनव्यव्ययेन बहुवचने ।

तथैव ध्रुववर्गस्थसोमवाडवशक्तिषु ।

इन्द्रोशतुष्पञ्च्युत्तरप्रिशता शक्तिरुज्जवला ॥ १२१ ॥

साङ्केतिका डकारोपर्यकारेणात्र शाखत ।

वाडवाया पञ्चशतशक्ति कालाभिधा तथा ॥ १२२ ॥

अहू नाम वाली काशयी शक्ति ११० प्रकार की पूर्व की भाँति संकेतित कर दी है 'ओ' अच्चर से यथाक्रम । मार्तंण्ड की द्रवमुखी शक्ति १०० रूपों वाली, आखीनामक भूतशक्ति १०५ रूपोंवाली है इस प्रकार ये दोनों शक्तियों यहां अनुच्छार ' ' से संकेतित की हैं, सूर्य की ४४ शक्तियां कान्ता नाम ही है, नवत्री की २५ शक्तियां वच्चीनामवाली हैं दोनों संकेतित हैं 'ड' अच्चर से यथाक्रम । वैसे ही ध्रुववर्ग में शित्र सोमवाडव शक्तियों में चन्द्रमा की ३६४ उच्चवल हैं, डकार के ऊरर 'आ' अच्चर संकेतित किया है, वाडवा की ५०० शक्तियां कालनामक—॥ ११७—१२२ ॥

साङ्केतिता लकारेण वर्णसङ्केतनिर्णये ।

एवमुत्त्वा सौण्डालसंकेतशक्ती यथाविधि ॥ १२३ ॥

इदानी मौत्तिकलोहशक्तिसङ्केतमुच्यते ।

त्रिशतोत्तरसहस्रस्थ्याका पार्थिवाभिधा ॥ १२४ ॥

कूर्मशक्तिमंकारेण पुनस्साङ्केतिता तथा ।

एकोत्तरदिसहस्रस्थ्याका कालाभिधा ॥ १२५ ॥

सङ्केतिता काश्यपस्य शक्तिरोकारतस्तथा ।

पञ्च्युत्तरदिशतस्थ्याका लाघवाभिधा ॥ १२६ ॥

'ल' अच्चर से वर्णसंकेतनिर्णय में साङ्केतित करदी है । इस प्रकार मौण्डाल शक्तियों को यथाविधि कहकर अब मौत्तिक लोहशक्तियों का संकेत कहा जाता है । १३०० शक्तिया पार्थिव नामवाली कूर्मशक्ति 'म' अच्चर से सङ्केतित की है पुनः २००१ कालनामक काश्यप की शक्ति सङ्केत की है 'ओ' अच्चर से, तथा २६० लाघवानाम की—॥ १२३—१२६ ॥

मातंण्डशक्तिसङ्केताद्रवर्णेन निष्पिता ।

सप्तप्रिशतिस्थ्याका वर्चुलीनामिका तथा ॥ १२७ ॥

भूतशक्तिस्तकारेण सङ्केतात् सन्निष्पिता ।

त्रिष्पञ्च्युत्तरसहस्रस्थ्याका रूपमाभिधा ॥ १२८ ॥

नक्षत्रशक्तिसङ्केताद् वकारेणात्र वर्णिता ।

त्रयोदशोत्तरशतस्थ्याका वरुणाभिधा ॥ १२९ ॥

अर्कशक्तिरकारेण सङ्केतनिर्णयिता तथा ।

नवोत्तराष्ट्रसहस्रस्थ्याका रूपकाभिधा ॥ १३० ॥

निष्पितात्र सङ्केतादन्द्रशक्ति ककारत ।

द्वादशोत्तरसहस्रस्थ्याका पूष्णिकाभिधा ॥ १३१ ॥

मार्गेण्डशकि संकेत से '६' अक्षर से निरूपित की है, ३७ वर्चुली नामक भूतशकि 'त' अक्षर संकेत से निरूपित की है। १०६३ रुद्रमका नामक नज्जत शकि संकेत से 'व' अक्षर से यहाँ वर्णित है। ११३ वरुण नामक अर्क शकि 'इ' अक्षर संकेत से रुजका नामक निरूपित की है, इन्दु-शन्द्रशकि 'क' अक्षर से १०१२ पूष्यिका नाम बाली कही है। १२७-१३१ ॥

संकेतितानुसारेण तथेवात्र यथाक्रमम् ।

एव त्रिलोहस्तीकोना वर्णासंकेतनिरूपयम् ॥ १३२ ॥

निरूप्य तल्लोहगुद्धिकममत्र तत परम् ।

प्रसङ्गानुप्रसङ्गत्या किञ्चिदत्र निरूप्यते ॥ १३३ ॥ इति

संकेतों के अनुसार वैसे ही महां यथाक्रम इस प्रकार तीन लोहों की शकियों के अक्षर संकेत-निरूप्य निरूपित करके उससे आगे उन लोहों की शुद्धि यहाँ प्रसङ्गानुप्रसङ्ग से कुछ निरूपित की जाती है। १३२-१३३ ॥

तच्छुद्धिर्यथाशोधनाधिकारे ॥ अ० १ श० १४ ॥

ब० व०

तल्लोहगुद्धि निरांतु सूत्रोय परिकीर्तिं ।

पदानि त्रीणि सूत्रेस्मिन् कथितानि यथाक्रमम् ॥ १३४ ॥

तेषावादिमपदालोहत्रयगुद्धिनिरूपिता ।

तच्छोदनप्रकारस्तु द्वितीयपदत स्फुटम् ॥ १३५ ॥

तत्प्रबोधकगास्त्र तु तृतीयेनात्र सूचितम् ।

पदार्थमेव कथित विशेषार्थोधुनोच्यते ॥ १३६ ॥

सस्कारदर्पणाविधिमनुसूत्य यथामति ।

सौमसीण्डालभौतिकलोहाना शुद्धिनिरूप्य ॥ १३७ ॥

उन लोहों की शुद्धि के निरूप्य को यह सूत्र कहा गया है, इस सूत्र में तीन पद यथाक्रम कहे हैं उनमें आदिम पद से तीन लोहों की शुद्धि निरूपित की है उनका शोधन प्रकार तो दूसरे पद से स्फुट किया है उनका प्रबोधक गास्त्र तो तीसरे पद से यहा सूचित किया है। पदों का अर्थ इस प्रकार कहा है विशेष अर्थ अव कहा जाता है। सस्कार दर्पणाविधि का अनुसारण करके यथामति सौम सीण्डाल मौत्तिक लोहों की शुद्धि का निरूप्य करते हैं। १३४-१३७ ॥

प्रथक् प्रथग्निवानेन सग्रहात् सप्त्रिरूप्यते ।

तत्रादौ सौमलोहस्य शोधनाक्रममुच्यते ॥ १३८ ॥

सौमलोह समाहृत्य पाचके सम्प्रपूर्येत् ।

सप्तविशतिकक्षयोष्णवेगात् सम्पाचयेद् द्रवात् ॥ १३९ ॥

जम्बीरलिकुचव्याघ्रचिक्षाजम्बूरसेस्तथा ।

विस्तृतास्येन नालयन्त्रे पाचयेद् दिवसावधि ॥ १४० ॥

तत् सगुह्याथ विधिवत् क्षालयित्वा तत् परम् ।  
 पञ्चतैलेशचतुद्विं विद्वान् कापायैस्सप्तभिस्तथा ॥ १४१ ॥

पृथक् पृथग् गालयित्वा लोह पञ्चात् समाहरेत् ।

जो कि पृथक् पृथक् विधान से संक्षेप से निरूपित किया जाता है। उनमें प्रथम सौम लोहे के शोधन कम को कहा जाता है, सौम लोहे को लेकर पाचक यन्त्र में भर के २७ दर्जे के उच्छृंगे वेग से पकावे द्रव से जड़बीरी निम्नू, लिङ्कचत्वारलघुल, ध्याघ—करञ्जवा या लाल एरण्ड, चिङ्गा—इमली, जम्बू—जामुन के रसों से विस्तृत मुख वाले नालयन्त्र से दिन भर पकावे उसे विधिवत् लेकर धोकर पांच तैलों में चार द्राव—दुष्कण द्राव आदि से सात काढों से पृथक् पृथक् लोहे को गलाकर लेले ॥ १३८-१४१ ॥

तदुक्त दर्पणप्रकारे—वह कहा है दर्पण प्रकारो मे—

गुजारकञ्जलचन्द्रनुकुञ्जरकरञ्जादितैलेस्तथा ।

प्राणक्षारविरञ्जिकञ्चुकिलुरद्रवैश्च शुद्धे क्रमात् ॥

हिंगपूर्णिठोणिटकावरजटामासी विदाराङ्गिणी ।

मत्स्याशीरवरकृतकण्टकुवररोकापायतशोधयेत् ॥

गुजा—धूंघची, कञ्जल ?—कञ्जर—आंवला, चञ्चु—एरण्ड, कुञ्जर—पीपल या करण्डकुचई ?, करञ्ज—कारञ्जवा आदि के तैलों से प्राणक्षार—नौसादर, विरञ्जि ?—सज्जी चार ? कञ्जुकि—यव—यवज्ञार, खुत्तारसे शुद्ध हुए। हींग, पूर्णि—पूर्णी पद्मावती सुगन्धद्रव्य, योलिंद्रका—सुगारीफल, जटामासी—वालछड़, विदाराङ्गिणी ?—विदारण—कनिगर गन्ध वृक्ष या विदारीकन्द ?, मत्स्याशी—मछेछी, रक्कण्ठकुवरी—लाल रंग का धूहर के काढों से शोधे ॥

एवमुक्त्वा सौमलोहशुद्धिकममत परम् ।

सौण्डालाल्यलोहस्य शोधनक्रममुच्यते ॥ १४२ ॥

पाचनादिक्रियास्सर्वनालयन्त्रान्तमादरात् ।

सौण्डालस्य यथाशास्त्र कर्तव्य सौमलोहवत् ॥ १४३ ॥

द्रवकापायवैलादिसस्कारो भिद्यते क्रमात् ।

षड्द्रवैस्सप्ततैलेष्व कापायै पञ्चभिस्तथा ॥ १४४ ॥

प्रथेक गालयेत् ते, पञ्चाललोह समाहरेत् ।

इस प्रकार सौम लोह के शुद्धिक्रम को कह कर उससे आगे सौण्डाल लोहे का शोधन कहा जाता है। सौण्डाल की पाचन आदि किया सब नालयन्त्र तक की ठीक सौम लोहे की भाँति यथाशास्त्र कहनी चाहिये। द्रव कापाय तैल आदि संस्कार ही भिन्न होता है, ६ द्रावों ७ तैलों ५ कवायों से प्रत्येक को गलावे फिर लोह को ले ले ॥ १४२-१४४ ॥

उक्तं हि संस्कारदर्पणे—कहा ही है संस्कारदर्पण मे—

इ गालगोरीयुवराटिकास्तथा मुद्रीरत्ताप्योल्वणशुद्धतैले ।

तथैव चाङ्गलमुमुष्टिशङ्कु भल्लातकाकोलविरञ्जिक्रवै ॥

† वृक्षार या नरसार प्राण है, प्राणनामक शार या प्राणों का शार है मूत्र, अत प्राण शार मूत्र शार—“नृसार, नरसार, (नौसादर) लोहवत्तकस्तथा” (रसलरञ्जिणी) ।

कुलित्थनिष्पावकसर्वपादकगोधूमकापायकाज्ञिकंश्च ।

सशोधयेत् सौण्डालिकलोहदोप शास्त्रोक्तमागर्णय शनैश्चनै क्रमात् ॥ इति

इङ्गाल—इंगुदी, गौरी—मर्जीठ, सुरराटिका—वराटिका—कौड़ी, मूढ़ी—मुनक्का से पूर्ण तेलों से तथा अङ्गोल—अङ्गोलवृक्ष—देंग, मुष्टि घणटा—पाटलावृक्ष, शङ्ख, भिलावा, काकोल—काकोली, विरच्छक ? द्रवों से कुलित्थ—लालकुनजी, निष्पावक—श्वेतान्नफली, सरसों, अरहर, गेहूँ के कपायों और कान्जियों से शाश्वेत्कृत मार्ग से सौण्डाल लोहे के दोयों को धीरे धीरे क्रम से शोवे ॥

उत्तवा सौण्डालसशुद्धिरेव शास्त्रानुसारत ।

अथेथानी मौत्तिकाल्यलोहशुद्धिकर्मच्यते ॥ १४५ ॥

तैलद्रावककापायत्रयैस्सम्यक् मुशोधयेत् ।

सौण्डालवत् पाचनादिकियाश्वास्यापि वर्णिता ॥ १४६ ॥

सौण्डालशुद्धि इस प्रकार शास्त्रानुसार कह कर अब मौत्तिक लोहे की शुद्धि का क्रम तैलद्रावक कापायों से सम्यक् सौण्डाल की भाँति शोधन पाचन आदि किया भी उसकी कही है ॥ १४५-१४६ ॥

तदुकर्तं संस्कारदर्पणे—वर कहा है संस्कारदर्पण में—

शिवारितैलात् कुडुपस्य द्रावकाद् विषम्भरीचर्मकापायतस्तथा सशोधये-  
न्मौत्तिकलोहज मल शास्त्रोक्तमार्गक्रमतो विशेषत ॥ इत्यादि ॥

एव सशोध्य मौत्तिकलोह पश्चात् समाहरेत् ।

संस्कार बीजलोहानामेवमुक्त्वा यथाविधि ॥ १४७ ॥

अथेदानीमूलपानामुत्पत्तिकमसुच्यते ॥

शिवारि तैल ? से, कुडुप ? के द्रावक से, विषम्भरी चर्म—विषम्भरी आल ? के कापाय से सशोधन करे मौत्तिक लोहज मल को शाश्वेत्कृत मार्गक्रम से शोध कर लें । बीज लोहों का संस्कार इस प्रकार यथाविधि कहकर अब ऊपर लोहों का उत्पत्तिक्रम कहा जाता है ॥ १४७ ॥

फोटो कापी ( पूता ) संख्या १ वस्तुतः कापी संख्या ३—

अथोपमपोत्तिनिर्णयः—अब ऊमप लोहों की उत्पत्ति का निर्णय देते हैं—

ऊमपास्त्रिलोहमयाः ॥ अ० २ । सू० १ ॥

ब० ब०

ऊमपा इति ये प्रोक्ता पूर्वक्यानकियाविधौ ।  
तेषा स्वरूप निरांतु सूत्रोप परिकीर्तिः ॥ १ ॥  
पदद्वय भवेदिमन्नूपमलोहप्रबोधकम् ।  
तत्रादिमपदाद् यानलोहास्समूचिता कमात् ॥ २ ॥  
द्वितीयपदतस्तेषा स्वरूपाद्यास्तथैव हि ।  
ऊमपामोष्टामित्याहुरादित्यकिरणोद्भवम् ॥ ३ ॥  
ये पिवन्ति स्वभावेन ते प्रोक्ता ऊमपा इति ।  
सीमलोण्डालमौर्त्तिकास्त्रिलोहेत्यत्रऽवर्णिता ॥ ४ ॥  
तेषा लोहत्रयाणा तु समाहारोत्र वर्णित ।  
तत्त्वोहयोगजन्यत्वाद् विकारार्थे मयद् स्मृत ॥ ५ ॥

ऊमप जो पूर्व विमान यान कियाविधि में कहे हैं उनका स्वरूप निर्णय करने को यह सूत्र कहा है। इसमें ऊम लोहे के प्रबोधक दो पद हैं, उनमें आदिम पद से विमान यान के लोहे सूचित किये हैं द्वितीय पद से उनके स्वरूप आदि कहे हैं। ऊम नाम सूर्य किरणों से उत्पन्न उष्ण—उषणाव को कहते हैं उसे जो स्वभाव से पीते हैं ऊमपा कहे गये हैं। सौम, सौण्डाल, मौर्त्तिक ये तीन लोहे यहां कहे हैं। उन तीनों लोहों का यहां समाहार वर्णित किया है, उन लोहों से उत्पन्न होने वाला - बनने वाला होने से विकारार्थे में मयद् प्रत्यय कहा गया है ॥ १-५ ॥

यस्मात् त्रिलोहवर्गायलोहसयोगत कमात् ।

प्रभवन्त्यूपमपास्तस्मात् तन्मया इति कीर्तिता ॥ ६ ॥

\* 'पूर्व' शब्दः प्रथमाधारायमपेक्षात् द्वितीयाधाराय सूचयति ।

‡ लोहा इत्यत्र=लोहेत्यत्र एकादेश भाष्यः ।

पदार्थमेव कथित विशेषार्थोचुनोच्यते ।

सौमसोण्डालमौत्तिवकवर्गजातशास्त्रतः क्रमात् ॥ ७ ॥

ऊष्मपाणा(ना ?) बीजलोहास्त्रयस्त्रिशदितीरिता ।

जिससे त्रिवर्णीय लोहों के संयोग से क्रमशः ऊष्मप तैयार होते हैं अतः तन्मय—त्रिलोहमय कहे गये हैं । पदों का अर्थ कह दिया विशेषार्थ कहा जाता है सौम, सौण्डाल, मौत्तिव कर्ग में होने वाले लोहे शास्त्र से क्रमशः ऊष्म लोहों के बीज लोहे ३२ कहे हैं ॥ ६-७ ॥

उक्तं हि लोहरत्नाकरे—कहा हो है लोहरत्नाकर पुस्तक में—

ऊष्मपाना बीजलोहास्त्रयस्त्रिशदितीरिता ॥ ८ ॥

सौमसोण्डालमौत्तिवकवर्गभेदाद् यथाक्रमम् ।

एककवर्गसक्तुत्तलोहा एकादश क्रमात् ॥ ९ ॥

तेषा नामानि नामार्थकल्पोक्तानि यथाक्रमम् ।

सगृह्यात्र प्रवक्ष्यामि सप्रहेण यथामति ॥ १० ॥

ऊष्मप लोहों के बीज लोहे ३२ कहे हैं, सौम; सौण्डाल, मौत्तिव कर्ग भेद से यथाक्रम एक एक कर्ग से सम्बन्धित लोहे क्रम से ११ हैं । उनके नाम नामार्थकल्प प्रथम में कहे यथाक्रम ( वहा से ) लेकर संज्ञेप से यहा यथामति कहूँगा ॥ ८-१० ॥

सोमस्त्रिसोम्यकसुन्दास्यस्सोम पञ्चाननोष्मप ।

शक्तिगर्भो जाङ्गुलिक प्राणनश्चाह्वलाधव ॥ ११ ॥

इत्येकादशनामानि शक्तिसकेतवरणके ।

सौमवर्गीयलोहाना प्रोक्तान्यत्र यथाक्रमम् ॥ १२ ॥

विरच्छिसोर्यपश्चकुरुष्णासूरणशिञ्चिका ।

कङ्करञ्जिकसोण्डीरमुख्यभुण्डरकस्तथा ॥ १३ ॥

इत्येकादशनामानि शाश्वेतवतान्यत्र पूर्ववत् ।

मौण्डीरवर्गलोहाना मम्प्रोक्तानानि यथाक्रमम् ॥ १४ ॥

अणुक क्षण्युक कङ्करञ्जिकश्चकेताम्बर ।

मृदम्बरो वालगर्भकुवर्च कटकास्तथा ॥ १५ ॥

सौम, सौम्यक, सुन्दास्य, सौम, पञ्चानन, ऊष्मप, शक्तिगर्भ, जाङ्गुलिक, प्राणन, शह्वलाधव ये ११ नाम शक्ति संकेत के रंगों से युक्त सौम कर्ग वाले लोहों के यथाक्रम कहे हैं । विरच्छि, सौर्यप, शंकु, उद्धण, सूरण, शिञ्चिक, कङ्क, रञ्जिक, सौण्डीर, मुख्य, खुण्डारक, ये ११ नाम यथाक्रम सौण्डीर ( सौण्डाल ) कर्ग वाले लोहों के हैं । अणुक, द्वयणुक, कङ्क, त्रयणुक, श्वेताम्बर, मृदम्बर, वालगर्भ, कुवर्च, कटक ॥ ११-१५ ॥

दिवङ्गुलधिक इत्येकादशनामानि पूर्ववत् ।

मौत्तिवकवर्गलोहानामुक्तान्यत्र यथाक्रमम् ॥ १६ ॥

त्रयस्त्रिशद्वीजसोहा एवं वर्गत्रयास्समूता ।

पूर्वोक्तलोहत्रयशक्तय एव स्वभावतः ॥ १७ ॥

तन्मयत्वात् त्रयत्रिशद्वीजलोहेष्वपीरिता ।

एवमुक्त्वा वीजलोहस्वरूप शास्त्रतः स्फुटम् ॥ १८ ॥

अथ तेषा गातनार्थ मेलनक्रमसुच्यते ।

द्विद्वय, लघिक, ये ११ नाम पूर्ववत् मौर्त्यिक वर्ग लोहों के यथाक्रम यहा कहे हैं । ३३ वीज लोहों के हैं इस प्रकार तीन वर्ग कहे गए । पूर्वोक्त तीन लोहों की शक्तिया स्वभावत तन्मय—त्रिलोह-मय होने से ३३ वीज लोहों में भी कही गई है । इस प्रकार वीज लोहों का स्वरूप शास्त्र से स्फुट है, अब उनके गताने के लिए मेल का क्रम कहते हैं ॥ १६—१८ ॥

मेलनात् ॥ अ० २ स० २ ॥

बो० बृ०

पूर्वोक्तवीजलोहाना तत्तद्वागाशत क्रमात् ॥ १४ ॥

सयोजनक्रम वक्तुं सूत्रोय परिकीर्तिः ।

त्रिवर्गेष्वेककलोह तत्तस्तस्यानुसारत ॥ २० ॥

ऊप्मलोहोन्पतिविधी मूषाया योजयेदिति ।

सङ्क्षीर्येत्वे तत्तद्वागसत्याविचिनिरांय ॥ २१ ॥

पूर्वोक्त वीज लोहों के उस उम भागाशा से क्रम से सयोग क्रम - मेलक्रम कहने को यह सत्र कहा है । तीन वर्गों में से एक लोहो को उस उसकी संख्या के अनुसार ऊप्म लोहो की उत्तित्विधि के अर्थ उसे मूषा-कृत्रिमविग्रोहोत्तेल में डालदे इस विषय में उस उस भाग की सख्याविधि का निर्णय यहा कहा जाता है ॥ १६—२१ ॥

तदुक्त लोहतन्त्रे—वह कहा है लोहतन्त्र में—

अथेदानीमूष्मपानामुत्पत्तिक्रमनिरांये ।

सर्वेषा वीजलोहाना शास्त्रोक्तविधानात् ॥ २२ ॥

लोहानुसारतस्तेषा भागसत्या विधीयते ।

ऊप्मपेषुप्मम्भरास्यलोहोत्पत्तिक्रयाविधी ॥ २३ ॥

सौमसौण्डरलमौर्त्यिकलोहवर्गवये क्रमात् ।

एकत्रिसप्तलोहाशान् त्रय शट्टङ्गेष्वित्रितान् ॥ २४ ॥

मूषाया योजयेत् सम्यग् दशपञ्चाष्टसत्यकान् ।

ऊप्मपेषुप्मोत्पत्तिविधाने शास्त्रतः क्रमात् ॥ २५ ॥

चतुरेकाष्टलोहाशान् त्रिवर्गेषु सट्टङ्गान् ।

त्रिपञ्चसप्तसत्यकान् मूषाया मेलयेत् सुधी ॥ २६ ॥

तथैवोप्णाहनोत्पत्ती त्रिवर्गेषु यथाक्रमम् ।  
द्विपञ्चनवमलोहभागाशान् पट्टिसतकन् ॥२७॥

अब ऊपर लोहों के उत्पत्तिक्रम निर्णय में सब बीज लोहों का शास्त्रोक्त विधान से लोहानुसार उतकी भागसंख्या विधान की जाती है। ऊपरों में ऊपरनामक लोहे की उत्पत्ति-क्रियाविधि के निमित्त सौम सौएडाल मौर्यिक तीनों लोहवर्गों में क्रम से १, ३, ७ लोहारों को ३ अंश-टक्कण-सुहागा मिले हुओं को मूषा-मिट्टी आदि से बनी बोतल में युक्त करके १०, ५, ८ संख्यावालों को ऊपरों के उत्पत्ति विधान में शास्त्र से क्रम से ४, १, ८ लोहारों को तीन वर्गों में सुहागा क्रम से ३, ५, ७ भाग संख्या वालों को मूषा-बोतल में बुद्धिमान् मिलाए इसी प्रकार उत्पत्तिक्रम की उत्पत्ति में तीन वर्गों में यथाक्रम २, ५, ६ लोहारों को तथा ६, ३, ७ भागों में ॥ २२—२७ ॥

टङ्कणेन सुसयोज्य मूषाया मेलयेत तत् ।  
राजाख्योप्पत्तलोहोत्पत्त्वर्थ शास्त्रविधानत ॥ २८ ॥  
त्रयष्टिद्विनोहभागाशान् टङ्कणेन समन्वितान् ।  
मूषाया पूरयेत् पश्चात् त्रिवर्गेष्वि पूर्ववत् ॥ २९ ॥  
तथैवाम्लवृद्धुत्पत्तावृष्टेषु यथाक्रमम् ।  
नवमसैकलोहाशान् सटङ्कणान् ॥ ३० ॥  
दशसात्प्राप्तसंख्याकान् मूषाया समन्वितयेत् ।  
तथैव बीरहार्योप्तमपलोहोत्पत्तिनिर्णये ॥ ३१ ॥  
पट्चतु पश्चलोहाशान् त्रिवर्गेषु सटङ्कणान् ।  
तात्राणार्कमसंख्याकान् मूषाया सम्प्रपूरयेत् ॥ ३२ ॥

—टङ्कण-सुहागे से युक्त कर मूषा-बोतल में भिलाए, राजाख्यऊपर लोहे की उत्पत्ति के अर्थ शास्त्रविधान से सुहागे सहित ३, ८, २ लोहे भागारों को मूषा में भर दे पश्चात तीनों वर्गों में भी पूर्ण की भारत तथैव अम्लतृ? —लोहद्राव को पी लेने वाली साक्षिकी उत्पत्ति में ऊपर लोहों में यथाक्रम ६, ७, १ लोहारों को तीन वर्गों में तथा सुहागा १०, ५, ८ संख्या में मूषा में डाल दें, तथा बीरहार्यामक ऊपर लोहे की उत्पत्ति के निर्णय में ६, ४, ५ लोहारों को तीन वर्गों में ५, ५, १२ भाग संख्या सुहागे को मूषा में भर दे ॥ २८—३२ ॥

पञ्चधनाख्योप्तमपोत्पत्ती त्रिवर्गेष्वि पूर्ववत् ।  
अष्टव्युप्तवत्वारिलोहभागाशान् टङ्कणान्वितान् ॥ ३३ ॥  
विशाष्टादशपांडिवशमूषाया समन्वितयेत् ।  
ऊष्मपेवग्निरुद्ध सृष्ट्या त्रिवर्गेषु यथाक्रमम् ॥ ३४ ॥  
पञ्चद्विदशलोहाशान् त्रिवशदशान्वितान् ।  
मूषाया मेलयेत् सम्यक् टङ्कणेन समाकुलान् ॥ ३५ ॥  
एव भारहनोत्पत्ती चोष्मेषु यथाक्रमम् ।  
सप्तकादशषड्लोहभागाशान् टङ्कणान्वितान् ॥ ३६ ॥

तारभान्वविधिसंख्याकान् त्रिवर्गेषु यथाविधि ।  
 मूषाया मेलयेत् सम्यग्गालनार्थमत वरम् ॥३७॥  
 तथा शीतहनोत्पत्तावृष्टमपेषु यथाक्रमम् ।  
 दशनवत्रिलोहाशान् त्रिवर्गेष्वपि पूर्ववत् ॥३८॥  
 मूषाया मेलयेत् सम्यग् द्वाविशाष्टदश क्रमात् ।  
 एकादशादशैकादशलोहाशान् यथाक्रमम् ॥३९॥  
 गरलहनोष्पोत्पत्ती त्रिवर्गेष्वपि पूर्ववत् ।  
 विशित्रिशाष्टसंख्याकान् मूषाया मेलयेत् सुधी ॥४०॥

पञ्चदश नामक ऊपर की उत्पत्ति में तीन वर्गों में पूर्व की भाँति ८, ६, ४ लोहभागाशों को २०, १८, ६ भाग सुहाँगे सहित मूषा में डाल दे । ऊपर लोहांशों में अग्निहृत सरिट-उत्पत्ति में तीन वर्गों में यथाक्रम ५, २, १० लोहांशों को ३०, २०, १० भाग सुहाँगा से युक्त हुआंशों को मूषा में मिला दे । इसी प्रकार भारहन की उत्पत्ति में ऊपर लोहों में यथाक्रम ७, ११, ६ लोहों के भागांशों को ५, १२, ७ संख्यावाले सुहाँगे के भागों को तीन वर्गों में यथाविधि मूषा में गताने के अर्थ मिलावे, तथा शीतहन लोहों की उत्पत्ति में ऊपर लोहों में यथाक्रम १०, ६, ३ लोहांशों को तीन वर्गों में पूर्व की भाँति मूषा में मिलावे २२, ८, १० क्रम से (द्वाष्ट-सुहाँगा) मिलावे । ११, १०, ११ लोहांशों को यथाक्रम गरलन ऊपर की उत्पत्ति में तीनों वर्गों में पूर्व की भाँति २०, ३०, ८ संख्यावालों को मूषा में बुद्धिमान मिलावे ॥४३--४०॥

एवमान्वहनोत्पत्तचाष्टमपेषु यथाविधि ।  
 एकादशाष्टचत्वारिलोहभागान् सटङ्गणान् ॥४१॥  
 त्रिवर्गेष्वपि विशाष्टादशषट्क्रिशकान्तत ।  
 मूषाया पूरयेत् सम्यगिति शास्त्रविनिर्णय ॥४२॥  
 तथा विषम्भरोत्पत्त्याष्टमपेषु तथेव हि ।  
 पञ्चसप्ताष्टलोहाशान् त्रिवर्गेषु सटङ्गणान् ॥४३॥  
 एकोनविशाष्टदशमूषाया मेलयेत् क्रमात् ।  
 विशल्यक्षलीहसष्ट्याष्टमपेषु तथेव हि ॥४४॥  
 मूषाया पूरयेत् सम्यग् विशदद्वादशषट्क्रमात् ॥४५॥  
 द्विजमित्रोत्पत्तिविधावृष्टमपेषु तथेव हि ।  
 अष्टत्रिनवलोहाशान् त्रिवर्गेषु यथाक्रमम् ॥४६॥  
 ताराष्टुदशसंख्याकान् मूषाया मेलयेत् सुधी ।  
 तथेव वातमित्राहोष्पलोहक्रियाविधि ॥४७॥  
 त्रिवर्गेष्वप्त्यपञ्चलोहाशान् टङ्गणान्वितान् ।  
 मूषाया मेलयेत् सम्यग् द्वाविशाष्टदशक्रमात् ॥४८॥

एवमुक्त्वा वीजलोहमेलनादीन्यथाक्रमम् ।  
अयेदानी गालनार्थं मूषालक्षणमुच्यते ॥४६॥

इस प्रकार आम्लहन लोह की उत्पत्ति में ऊरमप लोहों में यथाविधि ११, ८, ५, लोहभागों की तीन वर्गों में से सुहागा २०, १२, ३६ भागों को मूषा-बोतल में भली प्रकार भर दे यहां शास्त्रनिर्णय है, तथा विषम्भर की उत्पत्ति में ५, ७, ८ ऊरमप लोहारों को तीन वर्गों में सुहागा १६, ८, १० भाग मिला दे । विशाल्यकृत लोह की सुष्टु-उत्पत्ति में ऊरमप लोहों में ३, ५, ११ लोह भाग और २०, १२, ६ भाग सुडागासहित मूषा में भरे । द्वितीयत्र की उत्पत्तिविधि में ऊरमप लोहों में ८, ३, ६ लोहारों को तीन वर्गों में से यथाक्रम ५, ८, १० (सुहागा) मूषा में चुदिमान् भिलावे । तथा बातमित्र नामक ऊरमप लोह की उत्पत्ति विषयाविधिमें तीन वर्गों में ८, ६, ५ लोहारों को २२, ८, १० भाग सुहागा मूषा-बोतल में भिलावे । इस प्रकार वीज लोहों के मेल यथाक्रम कहकर अब गलाने के लिये मूषा-बोतल का लक्षण करते हैं ॥४१—४६॥

### अथ मूषाधिकरणम् ।

अब मूषा का अधिकरण प्रस्तुत करते हैं ।

पञ्चमाद् द्वितीये ॥ अ० २ स० ३ ॥

बो० वृ०

मूषाव्यवृप निर्णयं तु मूषोय परिकीर्तिः ।  
पददृय भवेदस्मिन् मूषानिर्णयबोधकम् ॥५०॥  
तत्रादिमपदान्मूषा साम्यातस्सन्तिरूपिता ।  
तयैव तद्वर्गसंख्या द्वितीयपदतस्स्फुटम् ॥५१॥  
पदार्थंसेव कथित विशेषार्थोचुनोच्यते ।  
योङ्गशोष्मलोहानामुपत्पत्ती गालनक्रम् ॥५२॥  
पूर्वोक्तवीजलोहानमेतस्यामेव वरिगतम् ।

मूषाव्यवृप के निर्णय करने को यह सूत्र कहा है, इसमें दो पद मूषानिर्णय के बोधक हैं । उनमें आदि पद से मूषा को सख्या से निरूपित यिथा है, तथा द्वितीय पद से उसकी वर्गसंख्या को निरूपित किया है । पदों का अर्थ इस प्रकार कह दिया अब विशेष अर्थ कहा जाता है । सोलह ऊरमप लोहों को उत्पत्ति में गलाने का क्रम पूर्वोक्त वीज लोहों का इसी में कहा गया है ॥ ५०—५२ ॥

तदुक्तं निर्णयाधिकारे—वह कहा है निर्णय अधिकार में—

उत्तमाधममध्यापञ्च शाना गालनविधी ।  
मूषास्पदोत्तरचतुरशतमेदा इतीरिता ॥५४॥  
तासा द्वादशवर्गास्युर्जातिनिर्णयत क्रमात् ।  
लोहेषु ये वीजलोहास्तेषा गालनकर्मणि ॥५५॥  
द्वितीयवर्गोक्तमूषा एव श्रेष्ठा इतीरिता । इत्यादि

उत्तम मध्यम अधम 'लोहादि' अपभ्रंशों के गलाने की विधि में ४०७ भेद से 'मूषाएँ' कही गई हैं। उनके १२ वर्ग जाति निर्णय से हैं, लोहों में जो बीज लोहे हैं उनके गलाने कर्म में द्वितीय वर्ग में कही 'मूषाएँ' श्रेष्ठ हैं ऐसा कहा है ॥ ४५—४५ ॥

लल्लोपि—लल्ल ने भी कहा है—

कृतकापञ्च शकाद्वच स्थलजा खनिजास्तथा ।

जलजा धातुजास्तद्वदोषधोवर्गजापिक्ष्म च ॥५६॥

किमिमासक्षारबालाण्ड जलोहा इति क्रमात् ।

उक्त द्वादशाशा शास्त्रे लोहतत्वविदा वरै ॥५०॥

एतेषा गलाने मूषा प्रत्येकं वर्गतस्मृतः ।

तेषु द्वितीयर्वर्गस्थमूषाभेदा महर्विभि ॥५६॥

चत्वारिंशदिति प्रोक्ता मूषाकल्पा यथाक्रमम् ।

तामु या पञ्चमीत्युक्ता मूषान्तर्मुखनामिका ॥५६॥

गलाने बीजलोहाना सुप्रशस्ता इतीरिता ॥६०॥ इत्यादि

कृतक, अपभ्रंशक, स्थलज, खनिज, जलज, धातुज, ओषधिवर्गज, किमिज, मांसज, ज्ञारज, खालज, अरण्डज १२ लोहे क्रम से शास्त्र में लोहतत्व को जानने वालों ने कहे हैं। इनके गलाने के निमित्त मूषाएँ प्रत्येक वर्ग से कही हैं, उनमें द्वितीयर्वर्गस्थ मूषा के भेद मूषाकल्प के यथाक्रम से महर्विभो ने ४० कहे हैं। उनमें जो पञ्चमी अन्तर्मुखनामवाली मूषा कही है वह बीज लोहों के गलाने में सुप्रशस्त कही है ॥ ५६—६० ॥

तदुक्तं मूषाकल्पे—वह कहा है मूषाकल्प में—

पिष्टाष्टक किट्टचतुष्टय च लोहतत्व लाङ्गुलिकत्रय च ।

निर्यासपटक रुक्षद्वय च क्षारत्रयमोषधिपञ्चकं तथा ॥६१॥

इङ्गलिवट्क सुणिकाण्डपञ्चक शालीतुषाभस्मन्तुष्टय च ।

शिलाद्वय नागमुखद्वय च वरोलिकाटड्कणपञ्चक तथा ॥६२॥

बालद्वय पञ्चरस तर्यव गुजाद्वय केनचतुष्टय क्रमात् ।

सयोज्य चैतानय पेषणीमुखे कुर्यात् सुसूक्ष्म मृदुशुद्धिपिण्डम् ॥ ६३ ॥

निर्यासमृतपञ्चकशूसर ततस्तस्मिन् समाश मुनियोज्य पश्चात् ।

निर्यम्य तत्पाचकयन्त्रत क्रमाच्छिवारितेलाप्रहरत्रय पचेत् ॥६४॥

सवीक्ष्य पाक विधिवत् सुपक्व मूषामुखे नालमुखात् प्रपूरयेत् ।

एव कुतेन्तर्मुखनाममूषा दृढातिशुद्धा भवति स्वभावत ॥६५॥ इत्यादि ।

पिट—तिल की खल या उडव की दाल की पिटी ? = भाग, किट्ट—लोहमल—मण्डर ४ भाग, लोह ३ भाग, लाङ्गुलिक—लाङ्गूल—शालिचावल ? या लाङ्गुलिक—कौच के बीज ३ भाग,

\* वर्गंजा श्रपि, बहुवचने सन्धिरेकादेश मार्गः ।

निर्यास—गोन्द ६ भाग, सुरुक ? —बनरोहेढा २ भाग, चार—यवज्ञार—जीखार ३ भाग या सज्जीखार जीखार सुहागा मिश्रित ३ भाग, ओषधि ? —गोहै ५ भाग, इङ्गल—अङ्गारे बुमे कोयले या राख ६ भाग सुणिकाएड ? ५ भाग, शालीतुवाभरम—शालीधान के तुमों की राख ४ भाग, शिला—दूब घास या गोहै ? २ भाग, नागमुख ? —नागकेसर का मुळ ? २ भाग, वरोलिका ?—कुन्दपुष्प सुहागा ५ भाग, वाल—सुगन्धवाला २ भाग, रस ? सिन्दूर या शिरकर ५ भाग, गुडजा—धूधची ( सफेद धूधची ? ) २ भाग, समुत्तेन ४ भाग। इन्हें मिलाकर पेण्याणन्त्र-चक्री के अन्दर डाल दे अथवत् सूक्ष्म कोमल शुद्ध पीस कर उसमें गोन्द और सूचिका ५ भाग, योगी मिट्ठी बरार अंश मिलाकर पाचक—पकानेवाले यत्र से शिवारितेल ? से तीन पहर पकावे। पाक को देखकर अच्छे पके हुए को मूषा बोतल में नालमुख से भर दे। ऐसा कहने पर अन्तर्मुख खनामक मूषा उड़ अति शुद्धवभावत बन जाती है ॥ ६१—६५ ॥

एवमुत्त्वान्तमुखार्थ्यमूषोत्पत्तिविधि क्रमात् ।

अथेदानो व्यासटिकाधिकरण निरूप्यते ॥ ६६ ॥

इस प्रकार अन्तर्मुख खनामक मूषा की उत्पत्ति विधिकम से कहकर अब व्यासटिकाधिकरण निरूपित की जाती है ॥ ६६ ॥

### अथ व्यासटिकाधिकरणम्

अथ कुण्डससमे नव ॥ अ० २ स० ४ ॥

बो० ब०

पूर्वसूत्रेत्तमुखार्थ्यमूषामुक्तवा यथाविधि ।  
तथा व्यासटिका वक्तु सूक्ष्मोय परिकीर्तित ॥ ६७ ॥  
तत्सूचितपदान्त्यस्मिन्जचत्वार्युक्त्वान्यथाक्रमम् ।  
तेष्वाननन्तर्याची स्यादथशब्द इति स्मृत ॥ ६८ ॥  
तथा व्यासटिकारूप द्वितीयपदतस्मृत ।  
तृतीयपदतस्तस्यवर्गसम्या निदशिता ॥ ६६ ॥  
संस्था व्यासटिकायाच चतुर्थपदतस्मृता ।  
पदार्थमेव कथित विशेषार्थोत्तुनोच्यते ॥ ७० ॥

पूर्व सूत्र में अन्तर्मुख मूषानामक को यथाविधि कहकर व्यासटिका (कुण्ड) को कहने के लिये यह सूत्र कहा है, उसके सूचित पद इसमें चार यथाक्रम कहे हैं। उनमें अथ शब्द आनन्दर्थ—अनन्तर का वाची है। दूसरे पद से व्यासटिका का रूप कहा है, तीसरे पद से उसकी वर्ग सल्या दिखलाई है, चौथे पद से व्यासटिका-कुण्ड की मंख्या कही, इस प्रकार पदों का अर्थ कहकर विशेषार्थं अथ कहा जाता है ॥ ६७—७० ॥

द्वात्रिशदुत्तरपञ्चशतकुण्डा इति क्रमात् ।

बहुधा विणाताशास्त्रे कुण्डतत्त्वविशारदे ॥ ७१ ॥

सर्वेषां बीजलोहना गालने शास्त्रवित्तमे ।

कूर्मव्यासटिका नाम तेषु सम्यद् निरूपिता ॥ ७२ ॥

५३२ कुण्ड कम से प्राय शास्त्र में कुण्डतत्त्वकुशल जनों द्वारा कहे गए हैं। सब बीज लोहों के गलाने में शास्त्रवेत्ताओं ने उनमें कूर्मव्यासटिका को अन्त्य कहा है ॥ ७१—७२ ॥

तदुक्त कुण्डकल्पे—वह कहा है कुण्डकल्प में—

सर्वेषां बीजलोहना गालनार्थं यथाविधि ॥ ७३ ॥

द्वात्रिशदत्तत्पञ्चशतव्यासटिकास्मृता ।

तासा वर्गविभागस्तु सप्तधा वर्णितो (त ?) बुधे ॥ ७४ ॥

तेष्वेकैकवर्गस्थित्यकुण्डाप्पदमप्तति स्मृता ।

तेषु सप्तमवर्गयुक्तुण्डेषु यथाक्रमम् ॥ ७५ ॥

नवमी कुण्डिका या स्यात् कूर्मव्यासटिकेति हि ।

संवोच्यते बीजलोहगालने शास्त्रवित्तम् ॥ ७६ ॥ इति

सब बीजलोहों के गलाने के लिये यथाविधि ५३२ व्यासटिकाएँ—कुण्डिया—भट्टिया कही हैं उनमें वर्ग-विभाग तो ७ प्रकार का विद्यानों ने कहा है । उनमें एक एक वर्ग में स्थित ७६ कही हैं उनमें ज्वें वर्ग के कुण्डों में यथाकम नौवीं कुण्डिका—भट्टी जो है वह कूर्म व्यासटिका बीज लोहों के गलाने में शास्त्रवेत्ताओं ने कही है ॥ ७४—७६ ॥

नारायणोपि—नारायण ने भी कहा है—

उक्तेषु सर्वकुण्डेषु कूर्मव्यासटिका विना ।

सर्वेषां बीजलोहना गालन न कदाचन ॥ ७७ ॥

कूर्मव्यासटिकामेवमुक्त्वा शास्त्रानुसारत ।

तत्स्वरूपपरिज्ञानार्थमाकारं सम्प्रचक्षते ॥ ७८ ॥

उक्त सब कुण्डों में कूर्मव्यासटिका के बिना सब बीज लोहों का गलाना कभी नहीं होता । शास्त्रानुसार इस प्रकार कूर्मव्यासटिका कहक कउसके स्वरूप ज्ञानार्थ आकार को कहते हैं ॥ ७७—७८ ॥

उक्त हि कुण्डिनिर्णये—कुण्डिनिर्णय में कहा है—

चतुरल वर्तुल वा कूर्माकार यथाविधि ।

वितस्तिदशक कुण्ड कारयेद् भुवि शोभनम् ॥ ७९ ॥

भस्त्रिकास्थापनाय तत्पुरोभागतस्फुटम् ।

कूर्माङ्गवर्तपञ्चमुखं पीठमेकं प्रकल्पयेत् ॥ ८० ॥

तत्कुण्डस्थान्तराले तु भूषाकुण्डं च वर्तुलम् ।

कल्पयित्वा वहिभीर्णे कुण्डस्यावरणाद्यम् ॥ ८१ ॥

इङ्गालपूरणार्थीयं यथाशास्त्रं प्रकारयेत् ।

पाश्वंयोहभयोस्तस्य यन्त्रस्थापनं प्रकल्पयेत् ॥ ८२ ॥

सम्यग्गालितलोहाद्वा रससमूरणे सुधी ।

रचना कूर्मकुण्डस्य उक्तमेव महर्षिभिः ॥ ८३ ॥

एवमुक्त्वा व्यासटिका यथाशास्त्र समाप्त ।

अयेदानीं तद्भित्रिकाजातिनिर्णयमुच्यते ॥ ८४ ॥

चौरस या गोल कुर्माकार—कछुवे के आकार वाला यथाविधि भूमि में १० बालिशत सुन्दर कुण्ड बनावे भस्त्रिकास्थापन के लिये, उसके समाने वाले भाग में कुर्मज्ञी पांच मुख वाला एक पीठ बनावे, उस कुण्ड के भीतरी भाग में गोलमूर्खा कुण्ड बना कर कुण्ड के बाहिरी भाग में दो आवरण बना कर अङ्गारे भने को यथाशास्त्र करे, उसके दोनों पार्श्वों में गलाये हुए लोहे के पिघले रथ को भरने के लिए यन्त्रस्थान बनावे । इस प्रकार महर्षियों ने कुर्मकुण्ड की रचना विधि की । इस प्रकार यथाशास्त्र संकेत से व्यासटिका को कह कर अब उसकी भस्त्रिका जाति का निर्णय कहा जाता है ॥ ८५—८४ ॥

### अथ भस्त्रिकाधिकरणम्

अब भस्त्रिका का अधिकरण कहते हैं ।

स्याद् भस्त्रिकामे पोडशी ॥ अ० २ स० ५ (अ० १ । स० १२ ॥१)

बो० ब०

कुर्मव्यासटिकामुक्त्वा पूर्वसूत्रे यथाविधि ।

भस्त्रिकानिर्णयार्थं सूत्रोय प्रस्त्रीति ॥ ८५ ॥

भस्त्रप्रबोधकपदान्यस्मिन् सूत्रे चतुर्क्रमात् ।

तेष्वादिमपदात् तत्र क्रियार्थस्त्रिहरित ॥ ८६ ॥

द्वितीयपदनो भस्त्रालक्षणं सूचित भवेत् ।

तथैव तद्वर्गमूर्खा त्रुटीयपदतस्मृता ॥ ८७ ॥

एव भस्त्रकस्त्रया च चतुर्थपदत कमात् ।

पदार्थमेव कथित विशेषार्थोद्युनोच्यते ॥ ८८ ॥

द्वात्रिंशतुनरपञ्चगतभस्त्रा प्रकीर्तिता ।

कुर्मभस्त्रा तेषु मुरुखा वीजलोहविगालने ॥ ८९ ॥

पूर्वसूत्र में कुर्म व्यासटिका को यथाविधि कहकर भस्त्रिका निर्णयार्थ यह सूत्र कहा है । इस सूत्र में भस्त्राप्रबोधक चार पद हैं, उनमें आदिम पद से क्रियार्थ का निरूपण किया है, दूसरे पद से भस्त्रा का लक्षण सूचित किया, वैसे ही उसकी वर्गसंख्या तीसरे पद से कही है । इस प्रकार भस्त्रिका संख्या चौथे पद से बतलाई । इस प्रकार पदों का अर्थ कह दिया, विशेष अर्थ अब कहा जाता है । ५३२ भस्त्रिकाएँ कही हैं उनमें कुर्मभस्त्रा वीज लोहों के गलाने में मुख्य है—प्रसुत है ॥ ८५—८९ ॥

तदुक्तं भस्त्रिकानिवन्धने—वह कहा है भस्त्रिकानिवन्धन में—

यावन्त्य कुण्डिका प्रोक्तास्तावन्धेव हि भस्त्रिका ।

कुर्मभस्त्रा तातु कुर्मकुण्डिकाया प्रकीर्तिता ॥ ९० ॥

जितनी कुण्डिकाएँ—व्यासटिकाएँ कही हैं उतनी ही भस्त्रिकाएँ भी हैं । उनमें कुर्म भस्त्रिका कुर्मकुण्डिका—कूमे व्यासटिका की कही है ॥ ९० ॥

\* 'चतु' ग्रन्थमत्तिकनिवन्धनशब्दान्दस आयों वा ।

नारायणोऽपि—नारायण ने भी कहा है—

सर्वेषा लोहवर्णाणा गालनार्थं विशेषत ।  
 द्वार्तिशदुत्तरपञ्चशतभस्त्रा इतीरिता ॥ ६१ ॥  
 तासा वर्णमेदस्तु अष्टघात सम्प्रकीर्तित ।  
 वर्गेष्वल्पमवर्गयभस्त्रिकासु यथाक्रमम् ॥ ६२ ॥  
 निरणिता कूर्मकुण्डस्य घोडशी कूर्मभस्त्रिका । इति  
 सर्वेषा भस्त्रिकाना तु रचनाक्रमनिरांय ॥ ६३ ॥  
 भस्त्रिकानिवन्धनास्यग्रन्थे सम्यद् निरूपित ।  
 तत्सगुह्यं यथाकामं किञ्चिदत्र निरूप्यते ॥ ६४ ॥

सब लोहवर्णों के गलाने के अर्थ ५३२ भस्त्रिकाएँ कहे गई हैं, उनका वर्णमेद तो द प्रकार का कहा है, वर्णों में आठवें वर्ग की भस्त्रिकाओं में यथाक्रम कूर्मकुण्ड—कूर्म व्यासटिका की १६ वीं कूर्मभस्त्रिका उपयुक्त है। सब भस्त्रिकाओं का रचनाक्रम निरांय भस्त्रिका निवन्धन नामक प्रन्थ में भली प्रकार कहा है वहां से लेकर यथाकाम—जितनो इच्छा है उतना—यहां निरूपित किया जाता है ॥ ६१—६४ ॥

उक्तं हि भस्त्रिकानिवन्धने—भस्त्रिकानिवन्धन ग्रन्थ में कहा है—

मुवलकलैश्चर्मपेपत्रवर्गे क्षीरादित्वग्निभर्वंसूपावलकके ।  
 त्रिगोवशुण्डीरसुररञ्जितालमलीशोरीरमुञ्जाकरघुण्ठिकाशरणे ॥ ६५ ॥  
 कृतंसुसस्कारजराजकिमदभि पटेष्व पञ्चोत्तरपट्टशतं क्रमात् ।  
 तथेव लोहैवरदालृताभ्रविकारकीलंसुदृढं यथाविधि ॥ ६६ ॥  
 प्रकल्पयेत्त्रिविचित्रवर्णंमुखादिभिशोभितभस्त्रिका क्रमात् ॥ ६७ ॥ इत्यादि

अच्छी वृक्ष की छालों, चर्म—चमड़ों, बन्त्रों, वृक्ष के दूध की परतों, सुपारी वृक्ष की छालों से त्रिगोव ? शुण्डी ? —हाथीशुण्डी ?, मुञ्जि—मरोफकली या शेवत काकमाची ?, शालमली—सिंभल, शोरीर ?, मुञ्ज की जड़, घुण्ठिका—कंधी घास, शग्ग से किए सुसंस्कार से उत्पन्न शक्ति वाले ६०५ पटों—वर्त्रों से क्रम से लोहों से अच्छे काढ़ों, ताम्बे के पत्रों कीलों—पेंचों से सुदृढ़ चित्र विचित्र रंग मुख आदि से मुन्दर भस्त्रिका बनावे ॥ ६५—६७ ॥

कूर्मभस्त्रिकालक्षणं तु तथैवेकम्—कूर्मभस्त्रिका लक्षण तो वहां ही कहा है—

पञ्चाङ्गपञ्चास्यसुपक्षपञ्चकोशंस्तथा कीलकपञ्चकैर्युता ।  
 विचित्रवर्णेण्सुविराजिता या साकूर्मभस्त्रा इति वर्णिता स्यात् ॥

पांच अङ्गों पांच मुखों अच्छे, पक्ष वाले पांच कोशों से तथा पांच कीलों से युक्त विचित्र वर्णों से युक्त लोहे की कूर्मभस्त्रिका हो ॥

लल्लोपि—लल्ल ने भी कहा है—

शास्त्रोक्ताष्टमवर्गीयभस्त्रिकासु यथाक्रमम् ।

या बोडदी भवेद् भस्त्रा कूर्मभस्त्रेति मा स्मृता ॥ ६८ ॥

कूर्मध्यासटिकायास्तु संव भस्त्रा न चान्यथा ॥ ६६ ॥ इत्यादि ॥

शास्त्र में कहे आठवें वर्ग वाली भस्त्रिकाओं में यथाक्रम जो १६वीं भस्त्रा है वह कूर्मभस्त्रा कही है । कूर्मध्यासटिका—कूर्माकार कुण्डी की भस्त्रिका वह ही है अन्य नहीं ॥ ६६ ॥

इति महर्षिभरद्वाजप्रणीते वैमानिकप्रकरणे प्रथमोऽध्यायः ॥?

“इति महर्षिभरद्वाजप्रणीते वैमानिकप्रकरणे प्रथम अध्याय समाप्त हो गया” (यह कार्य करने वाले का वचन प्रामाण्यिक जबता है )



प्रथम रजिस्टर कापी संख्या २ वस्तुतः कापी संख्या ४—

## तृतीयाध्यायप्रारम्भः<sup>†</sup>

### दर्पणाधिकरणम्

दर्पणाधिकरण प्रस्तुत है।

दर्पणाश्च ॥ अध्याय ३ । सूत्रम् १ ॥

बोधानन्दवृत्तिभ्यास्याशलोकाः ॥

पूर्वाध्याये भस्त्रिकान्तमुक्त्वा सूत्रैर्यथाक्रमम् ।

अथ त् (द्वि?) तीव्राध्यायेऽस्मिन्नुच्यन्ते यानदर्पणा ॥ १ ॥

पदहय भवेदस्मिन् सूत्रे दर्पणाबोधकम् ।

तत्रादिमपदात् सम्यग्दर्पणास्सूचितास्तथा ॥ २ ॥

तद्विशेषप्रभेदाद्याश्चकारात् सञ्चिदशिता ।

पदार्थमेव कथित विशेषार्थोधुयोच्यते ॥ ३ ॥

बैमानिकाङ्गमुकुरास्सप्तोक्ताशास्त्रत कमात् ।

तेषां नामानि वक्ष्यामि लल्लोकानि यथाक्रमम् ॥ ४ ॥

पूर्वाध्याय में सूत्रों से भस्त्रिकापर्यन्त विषय कहकर अब इस द्वितीय अध्याय में विमान के दर्पण कहे जाते हैं। इस सूत्र में दो पद दर्पण बोधक हैं। उनमें आदिम पद से सम्यक् दर्पण सूचित किये हैं, उसके विशेष भेदादि 'च' से दिखलाये हैं। पदों का अर्थ इस प्रकार कह दिया, विशेष अर्थ अब कहा जाता है। विमान के अङ्ग मुकुर—दर्पण शास्त्र से सात कहे हैं उनके नाम लल्ल के कहे हुए यथाक्रम कहूँगा ॥ १—४ ॥

उक्तं हि मुकुरकल्पे—मुकुरकल्प में कहा है—

विश्वक्रियादर्पणोय शक्त्याकर्षणदर्पणा ।

वैरुद्धदर्पणस्तद्विष्णुष्ठिर्षीदर्पणस्तथा ॥ ५ ॥

† पूना फोटो के अनुसार यह कापी २ हाने से द्वितीयाध्याय दिया है परन्तु पूने की दक्षिण कापी होने से तृतीयाध्याय है।

पिञ्जलादर्पणसंचेव गुहागभारव्यदर्पणा ।  
 रीढ़ीदर्पणा इयेते(इत्येतत्?) सप्तोका यानदर्पणा ॥६॥  
 तेषु विश्वकियादर्श इति यत्सम्प्रकीर्तिः ।  
 तथानपीठोवंमुखस्थाने आवर्तनकमात् ॥ ७ ॥  
 प्रपञ्चे प्राणिभिस्सर्वं यत्कर्म कृत भवेत् ।  
 तत्साकाद् वीक्षणार्थं यद् यन्तु गा स्वापितो भवेत् ॥८॥  
 विश्वकियादर्श इति तमेवाहमनीविषया ।

विश्वकियादर्पण, शक्ताकारपंचदर्पण, वैरूप्यदर्पण, कुणिंशोदर्पण, पिञ्जलादर्पण, गुहागभारव्यदर्पण, रीढ़ीदर्पण ये सात विमान के दर्पण कहे हैं । उनमें विश्वकियादर्श जो कहा है उसे विमान के पीठस्थान के उपस्थान में आवर्तन कम से मनुष्यों द्वारा प्रपञ्च—सहार के निमित्त जो जो कार्य किया गया हो उसे साक्षात् देखने के लिए चालकों की ओर से स्थापित किया जाना चाहिए, इसे विश्वकियादर्श मनीषियों ने कहा है ॥ १-८ ॥

तदुन्नतं कियासारे—यह कियासार ग्रन्थ में कहा है—

सत्त्वद्वय शुणिडलकद्रय च गुधास्त्विमेक वरपारपञ्चकम् ।  
 सिङ्घोररणीपादनशुद्धद्वय तथा शुद्धाप्रयट्क वरशोणपञ्चकम् ॥ ६ ॥  
 मुक्ताष्टक सौम्यमीननेत्रमादशाङ्गारकसत्त्वमेकम् ।  
 सपंत्वगषाङ्गानिकत्रयं तथा मातृण्णपट्क वरशर्करा दश ॥ १० ॥  
 आराष्टक नागचतुष्टय च फेनद्वय गारुडवल्कलत्रयम् ।  
 वैणव्यक सात तथा सुगोघित वैराजश्वेतोदूम्बरपञ्चक च ॥ ११ ॥  
 एतानि सदोऽध्ययाविधि क्रमात् सत्तोल्य चञ्चपुटमूर्धिकायाम् ।  
 सम्पूर्यं चण्डोदरकुण्डमध्ये विन्यस्य कद्याष्टशतोष्णावेगत ॥ १२ ॥  
 सङ्गालयित्वा करदर्पणास्ययन्त्रोद्धतालस्य मुखे प्रपूरयेत् ।  
 एव कृते विश्वकियाव्यदर्पणो भवेत् मुशुदो दण्डस्मृल्प ॥ १३ ॥

सत्त्व?—ज्ञार—सज्जोलार ? २ भाग, शुणिडलक?—हापीशुण्डावृक्ष २ भाग ?, गुधास्त्वि—गिरु की हड्डी १ भाग, वरपार—शुद्धासार ५ भाग, सिङ्घोररणी ? के पैर का नाल्कून २ भाग, शुद्ध अञ्चक ६ भाग, वरशोण—अच्छा सिन्दू ५ भाग, मोती द भाग, सौम्यक मीन नेत्र ? १८ भाग, अङ्गार का सत्त्व १ भाग, सर्पत्वक—केचुली ८ भाग, आठज्ञनिक—सुरुम ३ भाग, मातृण्ण ?—कातृण्ण ?—गन्ध-तृण्ण ? ६ भाग, अच्छा पाषाण चूरा १० भाग, ज्ञार—सुशोणा द भाग, नाग—सीसा ४ भाग, फेन—समुद्रफेन २ भाग, गरुड वल्कल ?—गरुडशाति का वल्कल-छिल्के ? ३ भाग, वैणव्यक—वंशलोचन ७ भाग, शोधितवैराज श्वेत उदुम्बर का दूध या गोद या ज्ञार ? ५ भाग, हाहे कम से यथाविधि शोष कर तोल कर चञ्चपुट मूर्धिका—बोतल में भर कर चण्डोदर कुण्ड के मध्य रख कर द दर्जे की उड़ाता के देग से गला कर बड़े दर्पण के मुख्यन्त्र के उपरिनाल के मुख में भर दे । ऐसा करने पर विश्वकियादर्पण सुषुद्ध दृढ़ सूक्ष्म हो जावे ॥ ६-१३ ॥

**अथ शक्तयाकर्षणदर्पणनिर्णयः—**अब शक्तयाकर्षण दर्पण का निर्णय देते हैं—

उक्तवा विश्वक्रियादर्शस्वरूप शास्त्रस्फुटम् ।

**अथ शक्तयाकर्षणदर्पणस्त्रिलघ्यते** ॥ १४ ॥

**विश्वक्रियादर्श—**विश्वक्रियादर्पण का स्वरूप शास्त्र से मृट कह कर अब शक्तयाकर्षण दर्पण निरूपित किया जाता है ॥ १४ ॥

**तदुक्तं दर्पणकल्पे—**वह कहा है दर्पणकल्प प्रथमे—

आकाशपरिविकेन्द्रमिथतयानपथि क्रमात् ।

देहनाशकरा या स्मुखिर्वाणविषशक्तय ॥ १५ ॥

आकृत्य नास्त्वशक्तया यत्राशयति स्वभावत ।

तच्छक्तयाकर्षणादर्श इति शास्त्रान्त्रिलघ्यत ॥ १६ ॥

आकाश परिविक के केन्द्र में स्थित विमान के मार्ग में क्रम से देह को नष्ट करने वाली ओरीन विषशक्तियाँ हैं उन्हें अपनी शक्ति से स्वभावत स्थीत कर जो नष्ट करता है वह शक्तयाकर्षण दर्पण शास्त्र से निरूपित किया गया है ॥ १५-१६ ॥

**धुण्डिनाथोपि—**धुण्डिनाथ ने भी कहा है—

वानाकर्शनयशास्त्रे त्रिवर्गा इति वर्णेता ।

प्रतिवर्गसमुद्भूता यन्त्रुणा देहनाशका ॥ १७ ॥

द्राविशदुत्तरशतस्याका विषशक्तय ।

नास्त्वमाहृत्वनिदेशे स्वशक्तया यत् पिवेन् क्रमात् ॥ १८ ॥

तच्छक्तयाकर्षणादर्श इति नाम्ना प्रकीर्तित ॥ १६ ॥

वात सूर्यकिरण अविन ये तीन वर्ग शास्त्र में कहे हैं । प्रतिवर्ग में उठे हुए चालक यात्रियों के देह के नाशक हैं ॥ १२ संख्या वाली विष शक्तियाँ हैं उन्हें अपनी शक्ति से लेकर सर्वथा क्रम से जिससे पी लेता है इससे वह शक्तयाकर्षण दर्पण नाम से कहा गया है ॥ १७-१८ ॥

**पराङ्मुकुरोपि—**पराङ्मुका में भी कहा है—

आकाशपरिविकेद्रोऽवातारकार्षवग्निसम्भवा ।

द्राविशदुत्तरशतस्याका विषशक्तय ॥ २० ॥

विमानपथसम्बन्धत प्रवहन्ति विशेषत ।

विमानचारिणा देहनाशका इति तास्त्वृता ॥ २१ ॥

उक्तस्यात् तद्विनाशार्थं शक्तयाकर्षणदर्पण इति ।

एवमुक्तवा तस्य नामनिर्णयशास्त्रस्फुटम् ॥ २२ ॥

नयैव तत्पाकविधि किञ्चिदत्र निरूप्यते ॥ २३ ॥

आकाशपरिधि केन्द्रों में वातसूर्यकिरण अग्नि से उत्पन्न होने वाली विषशक्तिरा १२२ संख्या वाली हैं जो विशेषतः विमानमार्ग के सन्धियर्थत चहा करती हैं विमान के यात्रियों के देह को मार देने वाली कही गई है उनके विनाशार्थ शक्तयाकरण दर्पण कहा गया है उसका नामनिर्णय शास्त्र से मुकुट कह कर वैसे उसके पकाने को विधि यहां कही जाती है ॥ २०-२३ ॥

पञ्चालिक पञ्चविरञ्चिसन्त्व क्षाराष्ट्रक पिण्डचतुष्टय च ।

जम्भारिष्टक रजिताभ्रमेकमिह्नालसन्त्वाष्टकवालुत्रम् ॥ २४ ॥

कूर्माण्डसत्वद्वय भारग्निद्वय कन्दत्रय पोकलपञ्चक च ।

प्रवालमुक्ताकरपञ्चकद्वय पट्टगुरुकात्ववरटझाष्टकम् ॥ २५ ॥

मालूरस्वीजत्रय शवपञ्चव सयोज्य सर्व वक्त्रप्रसये ।

मण्डूककुण्डात्तरमध्यकेन्द्र सम्याय सूप्या विधिवद हठ यथा ॥ २६ ॥

पश्चाद धमनेत् पञ्चगतोष्टकध्यप्रमाणातशास्त्रविधानतस्मुद्धी ।

नेत्रान्तमगालिततद्रस ततस्सुवृद्धा पश्चाद विधिवच्छनेश्वरां ॥ २७ ॥

समूरयेद् विस्तृतदर्पणास्त्यन्त्रोवर्वनालस्य मुखं मुदृतं ।

एव कुते शक्तयपकर्णयादर्पणो भवेत् सुसूदमस्तुद्वी मनोहर ॥ २८ ॥ इत्यादि ॥

आलिक—हरिताल ५ भाग, विरञ्चिसन्त्व ?—यमासे का सन्त्र ? ५ भाग, चार—सुहागा ८ भाग या आठों चार एक एक भाग, पिटू—तिल की खत ४ भाग, जम्भारि ?—हीरा ६ भाग, रजित-अधक—लाल अधक १ भाग, अङ्गोरों का सन्त्र—चार ८ भाग, रेत ३ भाग, कूर्माण्डसन्त्व—कद्वे के अड्डे का सन्त्र २ भाग, भारणि ?—भारद्वज—भारगी या भारटी ?—नील २ भाग, कन्द—सूरण कन्द या शलजम ३ भाग, पौकल—पौखर मूल ५ भाग, प्रवाल—मूंगा ५ भाग: मुकाकर—मुकाशुकि—मोती की सीपी २ भाग, गुकिका त्वक्—सीपी की त्वचा—सीपी का पर—सीपी कटोरी ६ भाग, चर-टक्कण—चृच्छा सुहागा, मालूरवीज—विलवीज ३ भाग, शंख ५ भाग इनको मिलाकर वक्त्रप्रसा के मध्य में मण्डूक कुण्ड के भीतरी केन्द्र में सूपा को हठ संख्यापित करके पश्चात् बुद्धिमान् शास्त्रविधान से ५०० दर्जे की उपर्याता से धमन करे—पौधे के नेत्रपर्यंत गलाये हुए रस को उसमें से लेकर पश्चात् विधिवत् धीरे धीरे वैरुद्ध विस्तृत दर्पणमुख नामक यन्त्र के उपरिनाल के खुले मुख में भर दे, ऐसा करने पर शक्तयाकरण दर्पण अतिसूक्ष्म सुट्ट नमोहर हो जावे ॥ २४-२८ ॥

अथ वैरुद्धदर्पणनिर्णयः—अब वैरुद्धदर्पण निर्णय देते हैं—

एवमुक्तवा यथाशास्त्र यक्त्याकर्णयादर्पणम् ।

वैरुद्धदर्पणमय प्रवक्ष्येत्र यथामति ॥ २६ ॥

स्वविमान निरोद्धु ये परयानात् समागता ।

शत्रव क्रोधसविद्या नानोपायविशारदा ॥ ३० ॥

भयसूर्वदिभिस्तेवा य प्रवच्छति विस्मृतिम् ।

तद्वैराजितदर्पणा इति सङ्क्षीर्णते बुधे ॥ ३१ ॥

सप्तविशद्विकाराणि शास्त्रोक्तानि यथाक्रमम् ।

तत्स्वरूपप्रबोधार्थं संग्रहेण निरुप्यते ॥ ३२ ॥

इस प्रकार यथाशास्त्र शक्तिपर्वण दर्पण कहकर वैरूप्यदर्पण अब यहाँ यथामति कहूँगा । अपने विमान को रोकने को परविमान से कोष भरे भय मूर्छा आदि नाना उतारों में कुशल शत्रुजन का गये हो उनकी विसर्जिति को जो देता है वह वैराजित दर्पण—वैरूप्यदर्पण विद्वानों द्वारा कहा गया है । शास्त्रोक्ता  
२७ विकार यथाक्रम हैं उनके स्वरूप प्रबोधार्थ संक्षेप से निरूपित किया जाता है ॥ २६—३२ ॥

तदुक्तं सम्भोदनकियाकाएडे—वह कहा है सम्भोदनकियाकाएड में—

प्रगिनवाताम्बवशनिविद्युदध्यमसागरपवनं ।

संपूर्विकभल्लूकमिहव्याप्रादयतथा ॥ ३३ ॥

भूतप्रेतपिताचाक्षं पक्षिएतिक्षं भयङ्करा ।

इति सप्तदशोकतानि विकाराणि यथाक्रमम् ॥ ३४ ॥

अग्नि, बायु, जल, अशनि—पतनशील विश्वुत्, विश्वुत्—चमकने वाली विश्वुत्, धूम, सागर,  
पर्वत, सर्प; वृश्चिक, रीछ, सिंह, बाघ आदि तथा भूत, प्रेत, पिशाचः पक्षी ये १७ विकार यथाक्रम  
कहे हैं ॥ ३३—३४ ॥

एवमुक्त्वा दर्पणस्य गुणानामादय क्रमात् ।

इदानी तत्पाकविधिसंप्रहेण निरुप्यते ॥ ३५ ॥

इस प्रकार दर्पण के गुण नाम आदि क्रम से कह कर अब उसकी पकाने की विधि संक्षेप से निरूपित की जाती है ॥ ३५ ॥

तदुक्तं दर्पणप्रकरणे—वह कहा है दर्पण प्रकरण में—

शत्यक्षारं पञ्चविद्वात्रय च लाक्षात्रय सोमकाष्ठशत्रय-

राजकुरुण्ठिकाद्यमिहालसाराष्ट्रक टह्कणत्रयम् ॥ ३६ ॥

नखाक्षवालुकसप्तक च मातृण्यापट्क रविचुम्बकदयम् ।

पूरत्रय पारदपञ्चविशक तालत्रय रोप्यत्रुष्टय च ॥ ३७ ॥

क्रव्यादपट्क गरदाष्टक च विष्ट्रय कन्दचतुष्टय च ।

वाराहपिथ्यत्रयसारपञ्चक गुजातेल पञ्चविशत् कमेण ।

सगृह्यं तान् सप्तस्तकारशुद्धान् सम्मूरयेन्मूष्यकमूष्यिकायाम् ॥ ३८ ॥

मूष्यस्त्यकुण्डेष्ट्रशतोल्लाकक्षयात् सगानयेनेत्रनिमीलनात्मम् ॥ ३९ ॥

पञ्चाद गृहीत्वा वरदपेणास्ययन्त्रोर्धवनालस्य मुखे नियोजयेत् ।

एव कृते वैराजकदर्पणो हठगुद्धस्मुक्षयोभवति प्रसिद्ध ॥ ४० ॥

शत्यक्षार—हृष्टियों का ज्ञात ५ भाग, क्षिंक्षा—लोहविशेष सम्भवतः ज्ञाता ३ भाग, लाख ३ भाग,

\* पक्षिएति इति—पक्षिएति सन्धिरार्थ ।

‡ भूत, प्रेत, पिशाच यहाँ प्राणिविशेष हैं ।

सोमकी—कपूर या लोहा विशेष द भाग, शशा—बोल—गन्धबोत ३ भाग, राजकुटिटा—पीलीकटसरिया या कुट्टज २ भाग, अक्षरार्णे का सार—भस्मतार द भाग, सुहागा ३ भाग, नर्सी ओषधि द भाग, बालू ७ भाग, मातृत्व—काहुण—गन्धवर्ण द भाग, रविचुम्बक—सूर्यकान्तमणि २ भाग, पूर—दाह अगर या शीजपूर निम्नु ? ३ भाग, पारा २५ भाग, हरिताल ३ भाग, रोप्य—रुपा धातु ४ भाग, कवयाद ? द भाग, गरद—वच्छनाग द भाग, विष्ट्र—विष्ट्रा ३ भाग, कन्द—सूर्यगान्द ४ भाग, वाराहपित्व—कृष्ण मदन वृक्ष का जार या सुखर पशु का पित्त ३ भाग, सार—वफ्लार या वफ्लार या नवसार नौसादर ५ भाग, गुज्जा—रत्ति का तेल २५ भाग क्रम से इन्हें लेकर सात संस्कार काके मूषक मूषिका घोतल में भर दे । मूषार्थ कुण्ड में ८०० दर्जे की उड़णा से नेत्र निर्मीलन तक गतावे पश्चात् लेकर वह दर्शणास्य यन्त्र के ऊपर नाल के मुख में नियुक्त करे । ऐसा करने पर वैराजदर्पण—वैरूप्यदर्पण शुद्ध सूक्ष्म हो जाता है ॥३६-४०॥

अथ कुण्ठिटर्णीदर्पण निर्णय—अब कुण्ठिटर्णीदर्पण का निर्णय देते हैं—

इत्युक्त्वा वैराजकार्व्यदर्पण शास्त्रनस्फुटम् ।  
इदानीं कुण्ठिटर्णीदर्पणस्वरूप प्रचक्षते ॥ ४१ ॥  
यदशुभासनिधानात् सर्वबुद्धिविकल्पनम् ।  
भवेत् कुण्ठिटर्णीदर्पण इति प्रोच्यते बुधे ॥ ४२ ॥

इस प्रकार वैराजकार्व्यदर्पण शास्त्र से रुक्त कह कर अब कुण्ठिटर्णी दर्पण का स्वरूप कहते हैं । अंशुमा—किरणायोति के संसर्ग से मब की बुद्धियों का विपर्यास हो जाता है अत कुण्ठिटर्णी दर्पण विद्वानों ने कहा है ॥ ४१-४२ ॥

तदुक्तं पराङ्कुशो—वह कहा है पराङ्कुश में—

आकाशविद्युतरज्ञसन्धिमार्गे स्वभावत् ।  
सप्तश्लोतावर्तं वातविषयसयोगत कमात् ॥ ४३ ॥  
बुद्धेविकल्पदास्पत जायन्ते विषयक्षय ।  
तासा निवारणार्थ्य यत्कृत शाश्वतिम् ॥ ४४ ॥  
तत्कुण्ठिटर्णीदर्पण इत्युक्त नामा विशेषत ।

आकाश की विद्युतरज्ञों के सन्धिमार्ग में स्वभावत् ७ ज्ञोतोवाला आवर्त धुमेर करने वाले बायु के विषसंयोग से क्रम से बुद्धि का विपर्यास करने वाली ७ विषयकियां उत्पन्न हो जाती हैं । उनके निवारणार्थ जो शास्त्रों के विशेषज्ञों ने किया है, वह कुण्ठिटर्णीदर्पण नाम से विशेषत कहा है ॥४३-४४॥

विषयकिविनिर्णयस्तु-उक्त हि सम्मोहनकियाकाएँ—विषयकि विनिर्णय तो सम्मोहन क्रियाकारण में कहा है—

मेदोसृद्मासमजास्थितवग्वुद्धीना विकल्पदा ।  
गालिनी कुण्ठिटर्णी कालीस्पञ्जुला उल्वणामरा ॥ ४५ ॥

ग्राकाशविद्युतरङ्गसन्धिमार्गादिषु स्वत ।  
 सत्त्वोतावत्वात्तविषयसम्बन्धत कमात् ॥ ४६ ॥  
 एतास्पत प्रजायन्ते दुखदा विषयशब्दतय ।

मेद—मास के ऊपर सफेद चिकनी वस्तु, असूक—रक्त, मांस, मउजा—चर्वी, अस्थि—हड्डी, त्वचा, बुद्धि को विपरीत कर देने वाली गलियाँ कुरिटणी काली पिण्डजुला उल्वणा, मरा ये सात ज्ञात वाले आवर्त वायु के विष सम्बन्ध से कम से आकाश विशुलरङ्गों के सन्धिमार्ग आदि में स्वत ७ दुखदायक विषशक्तियाँ उत्पन्न हो जाती हैं ॥ ४५-४६ ॥

एवमुक्त्वा कुण्ठिणीर्दर्शनानामादय कमात् ॥ ४७ ॥  
 इदानी तत्पाकविधिस्प्रदेहण निरूप्यते ॥ ४८ ॥

इस प्रकार कुण्ठिणी दर्शण आदि नाम कम से कड़ कर अब उसके पकाने की विधि सकेप से कही जाती है ॥ ४७-४८ ॥

तदुकं दर्शणप्रकरणे—वह कहा है दर्शण प्रकरण में—

मृत्पञ्चक कठचुकसप्तक च केनत्रय यमुक्त्वारपञ्चकम् ।  
 क्षिवद्वाष्टक खड्गनक्षत्रय च क्षाराष्टक बालुकसप्तक च ।  
 पाराष्टक शङ्खचतुष्ट्रयच्च मादृषणपट्क वरतालकव्रम् ॥ ४६ ॥  
 गजोष्ट्रयो धारचतुष्ट्रय च सुरीघ्रिकासन्तकपञ्चतेनम् ॥ ५० ॥  
 मुक्तात्वगष्टियत च शुकिक्षार तथेन्दुचतुष्ट्रय च ।  
 एतान् शुदान् कमतो गृहीत्वा सम्पूर्येच्छिज्ञक्षमपद्ये ॥ ५१ ॥  
 संस्थाप्य शिखीरककुण्डमध्ये सगालयेत् सप्तशतार्दणकव्ये ।  
 पूर्वोक्तमार्गेण नियोजयेत् तदस्त्र यथाशास्त्रविधानतस्तत ॥ ५२ ॥  
 ग्रस्यन्तसूक्ष्म सुट्ठ भवेद् रुच वाताकंवृत् कुण्ठिणीकाल्य दर्शणम् ॥ ५३ ॥

मृत—सौराष्ट्र मुत्तिका ५ भाग, कठचुक—सर्प की केंचुली ७ भाग, समुद्रफेन ३ भाग, यमुक्त्वसार—खबूजे के बीज ५ भाग, क्षिवद्वा—लोहाविरोप—जस्ता? ८ भाग, गोडें का नालूत तुर ३ भाग, ज्ञात्यवस्थार ८ भाग या आदों ज्ञात एक एक भाग, रेत ७ भाग, पारा ८ भाग, शङ्ख ४ भाग, मातृशण?—कातुण—गन्धरुण? ६ भाग, शुदृ इरिताल ३ भाग, गज—गजपिण्डी और उष्टु—ऊरट कटीला के ज्ञात ४ भाग या गज—हाथी और उष्टु—ऊरट की हड्डी का ज्ञात ४ भाग, सुरिघ्रिका?—जंडे नलशर का ज्ञात ५ भाग, तेज—तिल तेज ५ भाग, मुक्ता त्वक—मोती की त्वचा ८ भाग, शुकित्तार—सीपी का ज्ञात ३ भाग, इन्दु—कपूर ४ भाग । इन शुदृ हड्डों को कम से लेकर शिखिज्ञ कूपा मध्य में भर कर शिखीरक कुण्ड मध्य में ७०० दर्जे की उण्ठता से गतावे । पूर्वोक्त मार्ग से पिष्ठले रस को शाकविधान से नियुक्त करे, अत्यन्त सूक्ष्म तद्वचमकदार वात सूर्य की भासि सुट्ठ तुरिणी नामक दर्शण बन जावे ॥ ५४-५३ ॥

अथ पिण्डजार्दर्शनिर्णय—अब पिण्डजार्दर्शण का निर्णय देते हैं—

अकांशयुद्धसञ्चातशक्तिस्थात् पिञ्जुलेति हि ।  
 सा नेत्रकृष्णताराग्रभाग्राहीति वर्णिता ॥ ५८ ॥  
 यतो निग्रह्य तच्छ्रवित वेगेन स्वीयशक्तित ।  
 यन्तु एव कृष्णताराग्रप्रकाशं पालयत्यत ॥ ५५ ॥  
 पिञ्जुलादर्पणं इति नाम शास्त्रे निरूपित ।

सूर्यकिरणों के युद्ध से उत्तम शक्ति पिञ्जुला है वह नेत्र के काले तारे के अप की ऊर्जेति को ले लेने वाली कही है, जिससे अपनी शक्ति से यात्रियों के कृष्णताराग्र प्रकाश को वेग से लेकर पालन करती है। इसलिए पिञ्जुलादर्पण नाम से शास्त्र में वर्णित है ॥ ५४-५५ ॥

तदुक्तमंशुबोधिन्याम्—वह कहा है अंशुबोधिनी में—

ग्रन्ते पूर्वदिश्यस्य स्थानमारभ्य सूख्यत ।  
 उपदिश्यस्य स्थानान्तमष्टवा दिग्विनिर्णयं ॥ ५६ ॥  
 यजुरारण्यके प्रोक्तमशूना जातिनिर्णयेऽ ।  
 एककदिशि सञ्चाता रथमयो भिन्नशक्तय ॥ ५७ ॥  
 इति शास्त्रे एवमिन्देवातप्रवदन्ति मनीपिण ।  
 ऋतुकालप्रभेदेन पञ्चवातप्रवेशत ॥ ५८ ॥  
 तेपामन्योत्यसंसर्गो वाहणीयोगतो भवेत् ।  
 अतोशूना भवेद् युद्ध शक्तिमेदत्वकारणात् ॥ ५९ ॥  
 तस्मिन् परस्पर वेगात् तत्तदिशि विशेषत ।  
 मध्यरेणात् प्रजायन्ते चत्वारि विषयक्तय ॥ ६० ॥  
 अन्धान्धकारपिञ्जूपतारापा इति नत् क्रमात् ।  
 रक्तजाठरताराग्रभाश्चाधिड्य हनेत् ॥ ६१ ॥ इत्यादि ॥

इस अधिन के पूर्व दिशा में स्थान को आरम्भ कर संख्या से उपदिशा में इसके स्थान के अन्त तक द प्रकार से निर्णय है, यत्तु दैर के आरप्यक में किरणों के जाति निर्णय में कहा है। एक एक दिशा में उत्तमन किरणों नेत्र-भिन्न शक्तिया शास्त्रों में अधिन के भेद से, ऋतुकाल के भेद से, पांच वायुओं के प्रवेश से उनका अन्योन्य संसंग वाहणी—मेघाथ वेशुत शक्ति के योग से होता है अत किरणों का युद्ध शक्तिभेद के कारण हो जाता है। वह परस्पर वेग से उस उस दिशा में विशेष संघर्ष से ४ विषयकियां उत्पन्न हो जाती हैं। अन्य, अन्धकार, पिञ्जूप, तारण कम से रुक जात्र ताराम प्रभा दोनों आंखों का नाश कर दे ॥ ५६-६१ ॥

उक्त सम्मोहनकियाकारांडपि—सम्मोहनकियाकारांड में भी कहा है—

सूर्यशुपुदात् (द ?) सञ्चाताशत्वारि विषयक्तय ।  
 अन्धान्धकारपिञ्जूपनेत्रवना इति वर्णिता ॥ ६२ ॥

अन्धशक्तिहन्ति रक्तमन्धकारा तु जाठरम् ।  
 पिङ्गूषा कृष्णताराप्रप्रभा नेत्रद्वय तथा ॥ ६३ ॥  
 निहन्ति तारपा शक्तिस्त्वकीयविषवेगत ॥ ६४ ॥ इत्यादि ॥

सूर्य किरणों के युद्ध से चार विषशक्तियाँ उत्पन्न हुई हुईं अन्ध, अन्धकार, पिङ्गूष, नेत्रद्वय कही गई हैं । अन्ध शक्ति रक्त को नष्ट करती है, अन्धकारा तो जटराजिन को, पिङ्गूषा कृष्णताराप्रभी ज्योति को और तारपा शक्ति अपने विष वेग से दोनों आंखों को नष्ट करती है ॥ ६२-६४ ॥

पि(म ?) झंगुलादर्पणास्यैवमुक्त्वा नामविनिर्णयं ।

इदानीं तत्पाकविषस्प्रहेण निरूप्यते ॥ ६५ ॥

पिङ्गुलादर्पणा का नाम निर्णय इस प्रकार कह कर अब उसके पकाने की विविसंकेप से कही जाती है ॥ ६५ ॥

तदुकः दर्पणप्रकरणं—वह कहा है दर्पण प्रकरण में—

वाष्णोकपटक वरशोणपञ्चक क्षाराष्ट्रक वालुकतप्तक च ।

निर्यासमृतपञ्चकटङ्गाष्ट्रक दम्भोलिसारद्यमष्टपारदम् ॥ ६६ ॥

शुद्धाष्ट्रक पञ्चकरविषपुद्वय सुरोलिकासत्त्वचतुष्टय च ।

त्वगष्ट्रक वाधुर्युक्तिक्रय तथा कन्दत्रय पिष्टचतुष्टय च ॥ ६७ ॥

तालत्रय मालिकसप्तक च वृकोदरीवीतचतुष्टय क्रमात् ।

अष्ट्रादशैतान् वरशुद्वस्तूत् सगृहा सम्यक् परशोधयेत् क्रमात् ॥ ३८ ॥

सम्मूर्यं पश्चात् सुकृपालभूषामुखे न्यसेद् व्यासटिकान्तरे दृढम् ।

सगालयेत् सप्तशतोष्णकक्षयप्रमाणातो नेत्रनिमीलनान्तम् ॥ ६८ ॥

सगृहा सगालितद्रस शनैर्यन्त्रोधर्वनालस्य मुखात् प्रपूरयेत् ।

पश्चाद् दृढं सूक्ष्ममतीवशुद्ध मनोहर पिङ्गुलदर्पणं भवेत् ॥ ७० ॥ इत्यादि ॥

वाष्णीक—वृष्टिण—भेद वा दूष ? ६ भाग, वरशोण—अच्छ्वा सिन्दूर ५ भाग, चार—यवशक्र द भाग या आठों चार एक भाग, रेत ७ भाग, निर्यासमृत—वृक्ष का दूष जमा हुआ ? ५ भाग, सुहागा द भाग, दम्भोलि—लोह विशेष का चूरा २ भाग, पारा ८ भाग, शुद्ध अष्ट्रक और ताम्बा ५ भाग, त्रिपु—सीसा २ भाग, सुरोलिका सत्त्व ?—सुदर शूलं या हल्दी का सत्त्व ? ४ भाग, त्वक्—दारचीनी द भाग, वार्षु-विक ? वाद्रुये—द्वोणीलवण ? ३ भाग, कन्द—सूराणकन्द ३ भाग, पिष्ट—तिलखल ४ भाग, हरिताल ३ भाग, सोनामाल्यी ७ भाग, वृकोदरीवीत ? ४ भाग । इन १८ शुद्ध वस्तुओं को लेकर सुकृपालभूषा मुख में भर कर व्यासटिका के अन्दर रख दे । ७०० इर्जे की उषणा के प्रमाण से नेत्र खुलने तक गलावे, गलावे हुए विश्वले रस की यन्त्र के उपरिनाल के—मुख से धीरे से भर देवे फिर सूक्ष्म अष्ट्रिक शुद्ध मनोहर पिङ्गुल दर्पण हो जावे ॥ ६६-७० ॥

अथ गुहागम्भैर्देवणिर्णयः—अथ गुहागम्भ दर्पण का निर्णय देते हैं—

वाष्णीवातकिरणशक्तिसर्वप्रणक्रमात् ।

जायन्ते रोगदा नृणा गुहादा विशेषशक्तय ॥ ७१ ॥

तासमाहत्य वेगेन विद्युत्सयोगत पुन ।  
 प्रसार्य परयानस्तजनोपरि विशेषत ॥ ७२ ॥  
 य प्रयच्छति दुखानि विषरोगादिभिस्त्वत ।  
 म गुहादर्पणा इति प्रवदन्ति मनीषिणा ॥ ७३ ॥

वाली गुहादि विषशक्तिया उत्पन्न हो जाती है। उन्हें विद्युत् के संयोग से वेग से लेकर दूसरे शब्द के विमान के ऊपर प्रमाणित करके—डाल जो विषरोग आदि से दुखों को देती है। अत गुहादर्पण—गुहागम्भदर्पण मनीषी कहते हैं ॥ ७१-७३ ॥

तदुक्त प्रयच्छसारे—वह कहा है प्रयच्छसार प्रथ में—

कश्यपोधर्वकपालाभ्या मध्ये निष्ठित वासुणी ।  
 कपालवाहसीमध्ये वाता पञ्चसहस्रका ॥ ७४ ॥  
 तथैव कश्यपारोगाकिरणाश्चाष्टकोट्य ।  
 तत्तद्वातसमायोगात् प्रभिन्ना किरणा पुन ॥ ७५ ॥  
 अनुलोमविलोमाभ्या प्रवहन्ति विशेषत ।  
 शक्तिवाताशुसयोगो यदा स्यात् खे परस्परम् ॥ ७६ ॥  
 महादुखकरास्तत्र गुहाद्या विषशक्तय ।  
 जायन्ते वेगसयुक्ता जले बुद्धुदवस्तवयम् ॥ ७७ ॥ इति

कश्यपो के ऊपर दो कपालों के मध्य वासुणी शक्ति रहती है, कपाल और वासुणी के मध्य पाच सहस्र वायुएँ हैं तथा कश्यप और रोगकिरण आठ ढोके हैं, उस उस वायु के सम्मेल से फिर किरणे पृथक् पृथक् अनुलोम और विलोम के द्वारा विशेषत चलती हैं। जब शक्ति—वासुणी शक्ति वायु और किरणों का सयोग आकाश में परस्पर हो जावे तो वहां महादुख करने वाली गुहा आदि शक्तियां नेगवश जल में मुद्रुदूद की भाँति स्वयं उत्पन्न हो जाती है ॥ ७४-७७ ॥

लक्षोपि—लक्ष ने भी कहा है—

दशोत्तरशतन्यायमनुसूत्य यथाक्रमम् ।  
 शक्तिवाताशुसयोगो यदा भवति वेगत ॥ ७८ ॥  
 तदा संघर्षण तेपामतिवेगाद् भविष्यति ।  
 जायन्ते तेन विविधा गुहाद्या विषशक्तय ॥ ७९ ॥  
 तत्प्रयोगान्नणा लोके क्षमवेशानविधामया ॥ इत्यादि ।

११० न्याय ? को अनुसरण कर यथाक्रम शक्ति—वासुणी शक्ति वायु और किरणों का सयोग जब वेग से होता है तब उनका संघर्ष वेग से होगा—हो जाता है, उससे विविध गुहादि विषशक्तिया उत्पन्न हो जाती है उनके प्रयोग से मनुष्यों के लोक में नानाविध रोग हो जावे ॥ ७८-७९ ॥

स्वतस्सिद्धन्यायमुक्तं वशिष्ठेन—स्वत सिद्धन्याय कहा है वशिष्ठ ने—

विजातीयशक्तिसाङ्कूर्यात् सजातीयविषशक्तिप्रवाहस्स्यात् क्रमाण्डवत् ॥ इति ॥  
विजातीय शक्ति के साङ्कूर्य—मेल से सजातीय विषशक्ति का प्रवाह कङ्कवे के अण्डे के समान हो जावे ॥

तदुक्तं सम्मोहनकियाकारणे—बह कहा है सम्मोहन कियाकारण में—

त्रिलक्षपञ्चसहस्रस्तथा पञ्चोत्तर शतम् ।

शक्तिवाताशुशक्तीना परस्परविघटनात् ॥ ५० ॥

रोगप्रदा प्रजायन्ते गुहाद्या विषशक्तय ।

कुष्ठापस्मारग्रह (हि ?) रुक्मि (खा ?) सशूलप्रदा क्रमात् ॥ ५१ ॥

तासु मुख्या पञ्च इति शक्तय परिकीर्तिता ।

नस्मानामानि विधिवत्सग्रहेण निरूप्यन्ते ॥ ५२ ॥

गृन्धनी गोधा कुजा रोदी गुहा इति पञ्चश्चाधा ।

एतत्प्रवोदनाद्वीपप्रदानार्थं तु यत्कृतम् ॥ ५३ ॥

तदगुहाग्नभंदर्पणं इत्युक्तं शाखावित्तम् ॥ इत्यादि ॥

तीन लाख पाँच सहस्र एक सौ पाँच शक्ति—वासुद्यो शक्ति वायु किरणो के परम्पर सघर्ष से रोग देने वाली गुहा आदि विषशक्तिया उत्तम हो जाती हैं जो कि कुठ-कोढ़, अपरमार—मूरी, संग्रहणी, स्वांसी, शूल—पीड़ा देनेवाली हैं । उनमें मुख्य पाँच शक्तियां कही हैं : उनके नाम विविवत् संक्षेप से कहे जाते हैं । वे गृन्धनी, गोधा, कुजा, रोदी, गुहा पाच हैं । इनके प्रेरणा से रोगप्रदानार्थं जो किया है वह गुहागर्भ दर्पणा शास्त्रवेत्ताओं ने कहा है ॥ ५०-५३ ॥

एवमुक्त्वा गुहादर्शदर्पणं शाखातस्फुटम् ॥ ५४ ॥

तस्येदानी पाकविधिस्सग्रहेण प्रकीर्त्यते ।

इस प्रकार गुहादर्शदर्पणा शास्त्रानुसार गुरुरूप से कह कर अब उसके पकाने की विधि संक्षेप से कही जाती है ॥

तदुक्तं दर्पणप्रकरणे—बह कहा है दर्पणप्रकरण में—

वराटिकासप्तक मञ्जुलत्रय डिम्मीरथटक रजकाष्टक तथा ।

मण्डूरथटक वरपारदाष्टक तालत्रय ब्राह्मिकसप्तक तत ॥ ५५ ॥

नागद्रव्य चाञ्जनिकाष्टक तथा माहणणषट्क वरदालुकाष्टकम् ।

किशोरपट्क मुचुकुन्दपञ्चक तेलद्रव्य लोहिकपञ्चविशति ॥ ५६ ॥

मृडाणिगर्भोद्वूवस्त्वपञ्चक मृदष्टक स्फाटिकपञ्चक तथा ।

शल्यग्रय पञ्चदर्शनन्दुसत्त्वक दम्भोलिटाकाढ्यसत्त्वपञ्चकम् ॥ ५७ ॥

एतानु क्रमाद् द्वार्विशतिवस्तूवर्गान् शुद्धानु समादय यथाविधि क्रमात् ।

सम्पूर्य चञ्चूपुटमूरमध्ये चञ्चूपुटव्यासटिकान्तरे न्यसेत् ॥ ५८ ॥

सगालयेत् सप्तोषणकृयैशास्त्रोक्तमार्गेण निमीलनान्तान् ।

पश्चात् समाहृत्य शनैश्चनै क्रमाद् यन्त्रोऽव्वनालस्य मुखे नियोजयेत् ॥६६॥

ततो गुहागर्भकदर्पणा भवेच्छुद्धं सुसूक्ष्मं सुदृढं मनोहरम् ॥ ६० ॥

वराटिका—कीर्ती उ भाग, मञ्जुत—मञ्जीठ उ भाग, डिम्मीर?—डिण्डीर—समुद्रफेन उ भाग, रजक—रघनक उ भाग, मण्डूर—लोहमल उ भाग, शुद्ध पारा उ भाग, ताल—इरिताल उ भाग, माणिक्का—भारङ्गी उ भाग, नाग—सीसा २ भाग, आच्छानिक—सुरमा उ भाग, मातृण—कातृण—गन्ध-तृण ६ भाग, अच्छा रेत उ भाग, किशोर—तेलपर्णी या घोटक शिम् ( सोंजना ) ६ भाग, मुचुकुंद—मुचुकुंद पुष्प ५ भाग, तिलतैल २ भाग, लोहिक—सफेद सुहागा २५ भाग, मृदाणिगर्भेदभव सत्त्व ? ५ भाग, मृत्—सौराष्ट्रवृत्तिका उ भाग, रक्टिकमणि या किंकरी ५ भाग, शल्य—हुड़ी या लालसैरे—कत्त्वा ३ भाग, इन्दुसत्त्व—चन्द्रकान्त का सत्त्व या कूरू १५ भाग, दस्थोलिटाका ?—लोहा विशेष ५ भाग । इन २२ वस्तुओं को शुद्ध लेकर चत्वारपुट मूर्यामध्य में चत्वारपुट व्यासटिका के अन्दर डाल दे । ७० दर्जे की उषणता से शाश्वोक मार्ग से निर्मीलन तक गतावे, पश्चात् लेकर धीरे धीरे धीरे यन्त्र के उपरिनाल के मुख में डाल दे कि गुहागर्भ दर्पणे शुद्ध सूक्ष्म सुदृढं मनोहर बन जावे ॥ ६५—६० ॥

अथ रौद्रीदर्पण निर्णय—अथ रौद्रीदर्पण का निर्णय देते हैं—

दर्शनादेव सर्वेषां द्रावणा येन जायेत् ।

तद्रौद्रीदर्पणं इति प्रवदन्ति मनीविष्णु ॥ ६१ ॥

दर्शन से ही सब का द्रावण जिससे होता है वह रौद्रीदर्पण है ऐसा मनीषी कहते हैं ॥६१॥

तदुकु पशङ्को—वह पराहृष्टा में कहा है—

रुद्राणीयोपराभ्रलिङ्गो यत्र सम्मेलनं भवेत् ।

रौद्रीनाम भवेत् काविच्छवितस्त्रोग्रस्त्रियाणि ॥ ६२ ॥

अकूश्योगतस्सा तु सर्वांत् सन्द्रावयेत् स्वयम् ।

यद् रुद्राणीयोपराभ्रलिङ्गाभ्या क्रियते क्रमात् ॥ ६३ ॥

तद् रुद्राणीदर्पणं इत्युक्तं शास्त्रविदा वरे ।

रुद्राणीयोपरा ? और अभ्रलिङ्ग ? जहाँ मिले वहाँ रौद्री नामक कोई शक्ति उग्रही प्रकट हो जाती है । सूर्येकिरणों के योग से वह सब को द्रवित कर दे, जो कि रुद्राणीयोपरा और अभ्रलिङ्ग से क्रम से किया जाता है वह रुद्राणीदर्पणं शाश्वत विदानों ने कहा है ॥ ६२—६३ ॥

उकं च समोहनकियाकारण—कहा है समोहनकियाकारण में—

रौद्री भावशसयोगाज्ञायते मारिकाभिधा ।

विषषावितस्तया सूर्यंकिरणाशनिसम्भव ॥ ६४ ॥

तत्सदर्शनमात्रे ए परयानविनाशनम् ।

यत् करोति विशेषणा तद्रौद्रीदर्पणी भवेदिति ॥ ६५ ॥

रौद्रीदर्पणामादीनेवमुक्त्वा यथाविधि ।

तत्पाकविधिमद्यात् सप्रहेणा निरूप्यते ॥ ६६ ॥

रोट्री सूर्यकिरणों के संशोग से मारिका नाम की विचाहाकि उत्पन्न हो जाती है उससे सूर्यकिरण-विशुन की उत्पत्ति हो जाती है । उसके दर्शनमात्र से परविमान का विनाश जो कर देता है वह रोट्री-दर्पण हो जाता है । रोट्री दर्पण नाम आदि व्याख्याविधि कह कर उसके पकाने की विधि अब संज्ञेप से कही जाती है ॥ ६४-६६ ॥

तदुकं दर्पणप्रकरणे—वह कहा है दर्पण प्रकरण में—

नागाष्टक शालमलिकत्रय तथा दुर्वारपटक कुदृष्टिभराष्टकम् ।  
 द्रोप्येकविषद्रविचुम्बकाष्टक रुद्राणिग्रावोषरसप्तविश्वति ॥ ६७ ॥  
 शत्याकष्टक वरकीटिलाष्टक वीराभ्लिङ्गितिरस्तथेव ।  
 क्षाराष्टक संकेतसपाक तथा मारण्णाष्टक वरडिम्बिकाव्रयम् ॥ ६८ ॥  
 क्षिङ्गाष्टक मञ्चुकमृत व्रयोदश निर्यासष्टक वरकुम्भनीत्रयम् ।  
 तैलत्रय माक्षिकसप्तविश्वतिर्गोधाम्लष्टक वरपिञ्जुलाष्टकम् ॥ ६९ ॥  
 वैरञ्जिसत्वाष्टककन्दपश्वक नालत्रय कामुकसप्तक तथा ।  
 षड्विविशदेतान् विधिवत् सुशोधितान् सम्पूरयेत् कृष्माण्डकसूष्पिकायाम् ॥ १०८ ॥  
 कृष्माण्डकुडे सुट्ठ निधाय सगालयेदष्टशतोप्पाकक्षयै ॥  
 उन्मीलिताक्षान्तमुगालित रस यन्त्रोर्ध्वनालस्य मुखे निसिञ्चेत् ॥ १०९ ॥  
 एव कृते रोट्रिकदर्पणो भवेत् सूक्ष्मसुशुद्धसुट्ठो मनोहर ॥ १०२ ॥

नाग—सीसा धातु या हाथी दान्त द भाग, शालमलिक—रोहेडा ३ भाग, दुवार—दुवरा—भारगी ६ भाग, कुपिज्जर—केटेली का सूखा पेड़ ? द भाग, द्रोणी—द्रोणीलघण २१ भाग, रविचुम्बक—सूर्यकान्त द भाग, रुद्राणि—रुद्रजटा ७ भाग, ग्रोवोपर—पाशाणज्ञार २० भाग, शत्याक—रक्तखैर या नागवली ६ भाग, कौटिल-शत्वसार द भागवीराश्रिलङ्घि ? ३० भाग, चार द या सब द चार एक एक भाग, संकेतसपाक—पक्षरेत द भाग, मानुषण ? काटण्ण-गन्धवण्ण ६ भाग, वरडिम्बिका—स्थोनाक वृक्ष या बड़ी जल मखी ३ भाग, इवक्षा लोहविशेष द भाग, कञ्जुकमृत—केंचुलीमट्टी १३ भाग, निर्यास—गोन्द ६ भाग, वरकुम्भनी—प्रवेत-इन्द्रवासुणी—सौधिनी ३ भाग, माचिक—सोना मासी २७ भाग, गोधाम्ल—मन शिलाद्राव ६ भाग, वरपिञ्जुला अच्छी रुई ? द भाग वैरञ्जि—विश्विका—कौशल का स्त्र द भाग, कन्द—सूरणकद ५ भाग, ताल—इरिताल ३ भाग, कामुक—शतेत्वदिर या महानिम्ब ७ भाग । इन विधिवत् शोधी हुई २६ वर्तुओं को कृष्माण्डसूष्पक में भर दे फिर कृष्माण्डक कुण्ड में सुट्ठ रखकर १०० दर्जे की उष्णता से गलावे आंख खोलने तक गलाया हुआ रसयन्त्र के ऊर्ध्व नाल के मुख में सोच दे—ढाल दे ऐसा करने पर रोट्रीदर्पण सूक्ष्म शुद्ध हड़ मनोहर हो जावे ॥ ६७—१०८ ॥

### शक्त्यधिकरणम् ।

शक्ति का अधिकरण प्रस्तुत है ।

शक्तयस्सप्त ॥ अ० ४ सू० १ ॥

बो० व०

एवमुक्त्वा विमानस्य दर्पणान् शास्त्रतस्फुटम् ।  
 इदानी तच्छक्तिभेदनिर्गायसंप्रचक्षते ॥ १०३ ॥  
 पदद्वयं भवेदस्मिन् शक्तिभेदप्रबोधकम् ।  
 तत्रादिमपदाच्छक्तिस्वप्नसंप्रदर्शित ॥ १०४ ॥  
 सख्यानस्तत्प्रेदमन् द्विनीयपदत स्मृत ।  
 पदार्थमेव कथित विशेषार्थपूनोच्यते ॥ १०५ ॥  
 उद्गमापञ्चरा तदन् सूर्यग्रहत्वपक्षिणी ।  
 परशक्त्याकर्वणी च तथा द्रादश गत्य ॥ १०६ ॥  
 कुण्ठिणी मूलशक्तिनेत्रेनास्त्युपस्त शक्त्य ।  
 इमा विमानकार्यांयु ग्रधानवेत वर्णित ॥ १०७ ॥

इम प्रकार विमान के दर्पणों को शास्त्र से स्पष्ट कहकर अब उनके शक्तिभेद का निर्णय कहते हैं। इस सूत्र में शक्तिभेद के बोधक दो पद हैं उनमें आदिम पद से शक्ति का स्वरूप प्रदर्शित किया दूसरे पद से उसके भेद जिताए हैं। पर्दों के अर्थ डस प्रकार कहे अब विशेषार्थ कहा जाता है। उद्गमा पञ्चरा, सूर्यशक्त्यपक्षिणी, परशक्त्याकर्वणी, द्रादशशक्त्या, कुण्ठिणी, मूलशक्ति ये ७ शक्तियाँ हैं, ये विमानकार्यों में प्रशाननहूँ से कही हैं ॥ १०३—१०७ ॥

विमानस्योक्तस्थानेषु तत्त्वान्त्राण्यथाविधि ।  
 सकीलकान् तत्त्वियुक्तानिशुद्धान् सचक्कान् ॥ १०८ ॥  
 स्थापयेत् केन्द्ररेखास्त्र्यामार्गनुसारत ।

विमान के उक्त स्थानों में उन उन चक्रों को यथाविधि कीलसहित और तारयुक्त चक्रसहित केन्द्ररेखा की संख्या के अनुसार स्थापित करे ॥ १०८ ॥

तदुक्त यन्त्रसर्वस्वे—वह कहा है यन्त्रसर्वस्वप्रथम् में—

तुनिदिलो पञ्चरस्तदगुपश्चापकर्वक ।  
 सान्धानिको दार्पणाक्षिकितप्रसवक कमात् ॥ १०९ ॥  
 सनैते † यानशक्तीना यन्त्राणीति विनिर्णिता ।  
 तत्त्वान्त्रमुखादेव तत्त्ववित्तिक्रियादय ॥ ११० ॥  
 तुनिदिलादुद्गमा शक्ति पञ्चरात् पञ्चराभिधा ।  
 शक्तिपात् सूर्यशक्त्यपक्षिणी शक्तिरीरिता ॥ १११ ॥  
 अपकर्वकयन्त्रेण परशक्त्यपक्षिणी ।  
 सन्धानयन्त्राद द्रादशशक्त्यसन्निरूपिता ॥ ११२ ॥  
 कुण्ठिणीनामिका शक्तिरूपता दार्पणिकादिति ।

† 'एते—एतानि' लिङ्गव्यतयम् ।

शक्तिप्रसवयन्त्रेण मूलशक्तिशब्दीरिता ॥ ११३ ॥  
एव क्रमात् सप्त यन्त्रशक्तय वरिकोर्त्तिः ।

तुनिदल, पञ्चर, अंशुप, अपकर्षक, साम्यानिक, दार्पणिक, शक्तिप्रसवक, ये ७ विमान शक्तियों के यन्त्र निर्णय किये गए हैं। उन यन्त्रों के मुख से ही उनकी शक्ति की किया आदि होती है जो कि तुनिदल से उद्गमा शक्ति, पञ्चर से पञ्चरा, शक्तिर से सूर्यशक्तियवकर्त्तिणी शक्ति, अपकर्षक यन्त्र से पर-शक्तयपकर्त्तिणी, सम्यान यन्त्र से द्वादश शक्तियां, दार्पणिक से कुण्डिशी नामक शक्ति, शक्तिप्रसवयन्त्र से मूलशक्ति कही है इस प्रकार कम से ७ यन्त्रशक्तियां कही हैं ॥ १६६—११३ ॥



प्रथम रजिस्टर कापी संख्या २ वस्तुत कापी संख्या ५ —

तत्र तावच्छौनकसूत्रम्—विमानस्थ यन्त्र के शक्तियों के सम्बन्ध में शैनक सूत्र है—

अदिनिक्षमावावकेन्द्रमृताम्बरशक्तयस्सप्त वै मानिका इति तासा नामान्य-  
नुक्रमित्याम । उद्गमा पञ्चरा सूर्यशक्त्यपकर्षणी विशुद्दादशका परशक्त्यप-  
कर्षणी० कुण्ठिणी मूलशक्तिश्चेति ॥

अदिति-अग्नि, द्वाषा—पृथिवी, वायु, सूर्य, हनु—चन्द्रमा, असूत—जल, अम्बर—आकाश, वे  
७ शक्तियाँ हैं जिन के नाम कहेंगे—हृते हैं जो कि उद्गमा, पञ्चरा, सूर्यशक्त्यपकर्षणी, विशुद्दादशका  
परशक्त्यपकर्षणी, कुण्ठिणी, मूलशक्ति ॥

सौदामिनीकलायामपि—सौदामिनीकला में भी कहा है—

सू० मलयरसवनशक्तयो वै मानिका इति ॥

बू० दृ०

मकारोदितिशक्तिस्स्यादुदगमेति प्रचक्षते ।

लकार पृथिवीशक्ति पञ्चरेत्यभिधीयते ॥ १ ॥

यकरो वायुशक्तिस्स्यात्सूर्यशक्त्यपकर्षणी ।

रकारस्मूर्यशक्तिस्स्याद् विशुद्दादशकस्सूत ॥ २ ॥

सकारस्त्वन्दुशक्तिस्स्यात् परशक्त्यपकर्षणी ।

जलशक्तिवंकारस्यात् कुण्ठिणीत्यभिधीयते ॥ ३ ॥

नकारोम्बरशक्तिस्स्यान्मूलशक्तिरिति सूत । इत्यादि ।

म, ल, य, र, स, व, न शक्तियाँ विमान की हैं। म अदिति—उद्गमा है ऐसा कहते हैं ल  
पृथिवी—पञ्चरा कही जाती है, य वायु—सूर्यशक्त्यपकर्षणी, र सूर्य—विशुद्दादशक शक्ति कही है, स  
हनु—परशक्त्यपकर्षणी, व जलशक्ति—कुण्ठिणी कही जाती है, न अम्बर—मूलशक्ति कही है॥१-३॥

एवमुक्त्वा संतशक्तिस्त्वरूप शास्त्रत स्फुटम् ।

तत्तत्कृत्य यथाशास्त्र सग्रहेण निरूप्यते ॥ ४ ॥

इस प्रकार ७ शक्तियों के स्त्रूप को शास्त्र से स्फुट कहकर उनके कार्य शास्त्र से संज्ञेप से कहे  
जाते हैं ।

† 'परशक्त्यपकर्षणी' शब्द स्फुट गया हस्तपाठ में ।

तदुकं कियासारे—वह कियासारमन्थ में कहा है—

विमानस्योधर्वगमनमुदगमा शवितस्मृता ।  
 ग्रधस्ताद्गमन तस्य पञ्चराशक्तितो भवेत् ॥ ५ ॥  
 अर्का शूषणापहारी स्याद् घृष्णिशक्त्यपक्षिणी ।  
 परशक्तयपर्वथ्या सर्वशक्तिविरोधनम् ॥ ६ ॥  
 विचुद्गादशकाद् यानविचित्रगमन स्मृतम् ।  
 मूलशक्तया सर्वशक्तिचलनादा प्रकीर्तिता ॥ ७ ॥  
 सप्तशक्तिक्रिया एवमुक्त्वा यानस्य शास्त्रत ॥ ८ ॥  
 अथ विचुद्गादशकविचार क्रियते क्रमात् ।

विमान का उत्तर जाना उदामा शक्ति से कहा, उसका नीचे गमन पञ्चरा शक्ति से, घर्वण-शक्तयपक्षिणी—सूर्यशक्तयपक्षिणी सूर्यकरणों की उत्थाना को हटानेवाली, परशक्तयपक्षिणी से सब शक्तियों को रोक देना होता है, विचुद्गादशक शक्ति से विमान का विचित्रगमन कहा, मूलशक्ति से सब शक्तियों का दूर हो जाना आदि, इस प्रकार विमान की ७ शक्तियों की क्रियाएं शास्त्र से कहकर—॥ ५—८ ॥

तदुकं सौदामिनीकलायाम्—वह कहा है सौदामिनीकला पुस्तक में—

विमानगतिवैचित्र्यप्रभेदा डादश स्मृता ।  
 तत्कायाकरणे विचुच्छक्तयस्तावदेव हि ॥ ९ ॥  
 तासा नामानि यानस्य गतिभेदान्यपि क्रमान् ।  
 समुच्चयान्निरूप्यन्ते सप्रहेणात्र शास्त्रत ॥ १० ॥  
 चलना कम्पनायोर्ध्वा अधरा मण्डला तथा ।  
 वेगिनी अनुलोमा च तिर्यङ्की च पराइमुखी ॥ ११ ॥  
 विलोमा स्तम्भना चित्रा चेति डादशक्तय ।  
 विमानचालन विचुच्छलनाशक्तिस्तस्मृतम् ॥ १२ ॥  
 तत्कम्पन विशेषेण कम्पनाशक्तितो भवेत् ।  
 विमानस्योर्धर्वगमनमधर्वासञ्चोदनाद् भवेत् ॥ १३ ॥  
 यानाधोगमन विद्यादधराशक्तित क्रमात् ।  
 विमानमण्डलगतिमण्डलाशक्तितस्मृता (न ?) ॥ १४ ॥

विमान की विचित्र गति के १२ भेद कहे हैं उन विचित्र गतियों में किया करने के निमित्त उन्हीं ही अर्थात् १२ विचुन् शक्तियां हैं। उन विचुन् शक्तियों और विमान के गति के भेदों के नाम क्रम से एकत्र रूप में सचेत से यहां शास्त्र से निरूपित किए जाते हैं। चलना, कम्पना, ऊर्ध्वा, अधरा, मण्डला, वेगिनी, अनुलोमा, तिर्यङ्की, पराइमुखी, विलोमा, स्तम्भना, चित्रा ये विचुन् शक्तियां हैं। विमान का चालन तो चलना विचुनशक्ति से कहा, उसका कम्पनविशेष कम्पना विशेष शक्ति से होता है,

विमान का ऊर्ध्वगमन सो ऊर्ध्वा विद्युत् शक्ति की प्रेरणा से होता है, विमान का अधोगमन—अधरगमन—बीचे आना अथवा विद्युत् शक्ति से, विमान की मरडलगति-चक्रगति मण्डला विद्युत् शक्ति से कहा—॥४ १४॥

वेगिनीशक्तितो यानगतिवैचित्र्यमुच्यते ।

अनुलोभाद् विमानस्य प्रादक्षिण्यगतिस्समृता ॥ १५ ॥

तिर्यगमनमित्यादुस्तर्यञ्चोशक्तियोगतः ।

पराङ्मुखीशक्तितस्याद् विमानस्य पराङ्मुखम् ॥ १६ ॥

विलोमशक्तया यानस्यापसव्यगतिस्समृता ।

स्तम्भनाशक्तितो यानस्तम्भन परिकीर्तिम् ॥ १७ ॥

चित्राल्यशक्तया यानस्य नानाविधगतिस्समृता ।

इति विद्युद्दादाशक्तिकार्याण्यथाक्रमम् ॥ १८ ॥

उक्तानि विमानगतीरनुसूत्य यथाविधि ॥ १९ ॥ इत्यादि

वेगिनीशक्ति से विमान के विचित्र गति कही जाती है, विमान के अनुलोभ से प्रादक्षिण्य अर्थात् अनुलोभ गति, विमान की तिर्यक—तिरछी गति तिर्यक शक्ति के सम्बन्ध से, पराङ्मुखीशक्ति से विमान की पराङ्मुखगति हो, विलोभ शक्ति से विमान की अपसव्य—विलोभगति कही है, स्तम्भनाशक्ति से यान की स्तम्भगति कही है, चित्राल्यशक्ति से विमान की नानाविध गति कही जाती है। इस प्रकार विद्युत् को १२ शक्तियों के कार्य यथाक्रम कहे हैं, विमान की गतियों का यथाविधि अनुसरण करके ॥ १५—१९ ॥

शक्तयः पञ्चेति नारायणः ॥ अ० ४ ष० २ ॥

बो० ष०

मतान्तरविचारार्थं सूत्रोय परिकीर्तिः ।

तदर्थोधकपदान्युक्तान्यस्मिन् चतु० क्रमात् ॥ २० ॥

विमानगतिवैचित्र्यक्रियाकारणशक्तयः ।

सद्योजातास्यनन्त्रेण सज्जाता पञ्च एव हि ॥ २१ ॥

इति नारायणमुनिस्स्वानुभूत्यात्रवीत् स्वयम् ।

तन्मताभिप्रायमेव सूत्रे स्मिन् सम्प्रदशित ॥ २२ ॥

तत्रादिमपदाच्छक्तिस्वरूपसन्निदर्शितः ।

सख्यया तत्प्रभेदस्तु द्वितीयपदतस्समृतः ॥ २३ ॥

मतान्तरप्रकटन द्वितीयपदतस्समृतः ।

मतप्रवर्तकमुनि तुरीयात् सम्प्रदशितम् ॥ २४ ॥

पदार्थमेव कथित विशेषार्थोनुच्यते ।

सधो जातसमुद्भूतशक्तय पञ्चधा समृता ॥ २५ ॥

विमानगतिवैचित्र्यक्रिया स्यादेभिरेव हि ॥ इत्यादि ।

मतान्तर विचारार्थं इस सूत्र में चार पद कहे, विमान की विचित्र गतियों के करने वाली शक्तिया सचोजातनामकयन्त्र से उत्पन्न हुई ५ हैं यह नारायण मुनि ने अपने आनुभव से कहा है। उसके मत के अभिप्राय को इस सूत्र में प्रदर्शित किया है उनमें आदिम पद से शक्तिस्वरूप दिखलाया, संख्या से भेद दूसरे पद से कहा, मतान्तर—अन्य मत का प्रकाश तीसरे पद से, प्रबत्तंसुनि चतुर्थ पद से दिखलाया, इस प्रकार पदार्थं कहे विशेषार्थं अब कहा जाता है, सचोजातयन्त्र से उत्पन्न हुईं पांच प्रकार की शक्तिया कहे हैं इन से विमान की विचित्र गति कियाएँ होते हैं ॥ २०-२५ ॥

तदुक्तं शक्तिसर्वस्ते—वह कहा है शक्तिसर्वस्त्र मन्त्रं मे—

चालनगालनपञ्चारस्फोरणवकापसर्पणञ्जेति ।

गतिवैचित्रियविधान यानस्योक्ता महर्षिभशास्त्रे ॥ २६ ॥ इत्यादि

चालन, गालन, पञ्चारप्रेरण, वकापसर्पण, विचित्रगति करना ये पांच बातें विमान की महाविद्यो ने कही हैं

चित्रिण्येवेति स्फोटायनः ॥ अ० ४, श० ३ ॥

ब० ३०

स्फोटायनमत वक्तु सूत्रोय परिकीर्तिः ।

तदर्थं वोधकपदान्पुक्तान्यर्थस्मन् चतु ऋ क्रमात् ॥ २७ ॥

तत्रादिमपदान्द्यक्षिणिरायस्त्रिदर्शित ।

द्वितीयपदतश्शक्तेनिर्धारणमुदाहृतम् ॥ २८ ॥

तयेत्यम्भावमुक्त स्यात् वृत्तोयपदत क्रमात् ।

मतप्रवर्तकमुनिश्चतुर्थपदत स्मृत ॥ २९ ॥

एव पदार्थं कथितो विशेषार्थं प्रकीर्त्यते ।

विमानगतिवैचित्रियकार्यनिर्वहणाक्रिया ॥ ३० ॥

एकया चित्रिणीशक्त्या भवत्येवेति विनिर्णयं ।

यह सूत्र स्फोटायन के मत को कहने के लिये कहा गया है, उसके बोधक पद क्रम से चार कहे हैं। उनमें आदिम पद से शक्ति का निर्णय दिखलाया दूसरे पद से शक्ति का निर्णयरण बतलाया, तीसरे पद से इत्यम्भाव कहा गया, चौथे पद से मतप्रवर्तक मुनि कहा है। इस प्रकार पदार्थ कहे दिया विशेषार्थ कहा जाता है, विमान की विचित्र गति कार्य करने वाली किया केवल एक चित्रिणी शक्ति से होती है ऐसा निश्चय है ॥ २७-३०॥

तदुक्तं शक्तिसर्वस्ते—वह कहा है शक्तिसर्वस्त्र मे—

वैमानिकगतिवैचित्रियादिद्वात्रिशतिक्रियायोगे ।

एकवै चित्रिणीशक्त्यलमिति शास्त्रे विनिर्णयत भवति ।

इत्यनुभवतश्शास्त्राच्च मन्त्रते स्फोटायनाचार्यं ॥ ६१ ॥ इत्यादि ॥

\* विभक्ते लुक् ग्रामं ।

विमान की विचित्र गति आदि ३२ कियाओं के सम्बन्ध में एक ही चित्रिणी शक्ति पर्याप्त है यह शास्त्र में निर्णय है । इस प्रकार अनुभव से और शास्त्र से स्फोटायन आचार्य मानता है ॥२१॥

कियासारेपि-कियासार मैं भी कहा है—

चित्रिणी नामिका विद्युञ्ज्वितस्सातदशात्मिना ।

एकेव यानटारिंशकायंनिवेद्यग्रजमा ॥२२॥ इत्यादि ॥

चित्रिणी नामक विद्युन्-शक्ति १७ रूप में है या १७ वीं हैं वह अकेली ही विमान के ३२ कार्यों के निर्वाहार्थ समर्थ है ॥२२॥

तदन्तर्भावात् सर्वैवेति भरद्वाजः ॥ अ० ४, श० ४॥

बो० व०

उक्तवा सूत्रदयरेव + मतान्तरमत परम् ।

स्वसिद्धान्तशोतनार्थं सूत्रोय परिकीर्तिं ॥३३॥

तदर्थं बोधकपदान्यस्मिन् पञ्च भवन्ति हि ।

तत्रादिमपदादन्तर्भावित्वं सप्त शक्तिषु ॥३४॥

पूर्वसूत्रोक्तशक्तीना सम्यक् सन्दर्शित भवेत् ।

तथैव सप्तशक्तीना प्रधानत्वं द्वितीयतः ॥३५॥

उक्तार्थनिर्धारणं तु दृष्टीयपदतः कृत + ।

चतुर्थं पदतस्सम्यगित्यम्भावं प्रदर्शित ॥३६॥

तथैव पञ्चमपदाद् भरद्वाजमहामुनिम् ।

स्वसिद्धान्तप्रवक्तारं सूचितं ४४ भवति कमात् ॥३७॥

पदर्थं मेव कथित विशेषार्थोऽधिनोच्यते ।

सद्योजातसमुद्भूतपञ्चग्रन्थितषु शास्त्रतः ॥३८॥

प्रधानवेन सम्प्रोक्ता पञ्चराशक्तिरेव हि ।

अग्नेस्सकाशादुपत्तिस्फुलिङ्गाना यथा भवेत् ॥३९॥

तथैव चालनादीना पञ्चराशक्तितस्मृतं ।

दो सूत्रों से अन्यों के मत को कहकर इससे आगे अपना सिद्धान्त प्रकट करने को यह सूत्र कहा है, उसके अर्थबोधक पद इसमें पाच हैं उनमें अद्विम पद से अन्तर्भाव सात शक्तियों में ही होता है । पूर्व सूत्र में कही शक्तियों का भलीभांति ज्ञान या ज्ञापन हो अतः दूसरे पद से उन ७ शक्तियों की प्रधानता कही तीसरे पद से कहे अर्थ का निर्धारण और चतुर्थ पद से इत्यम्भाव ऐसा कथन पुनः पांचवें पद से भरद्वाज मुनि सिद्धान्त प्रवक्ता अपने को सूचित किया किया है । इस प्रकार पदों का अर्थ कह दिया अब विशेष अर्थ कहा जाता है । सद्योजात यन्त्र से उत्पन्न पांच शक्तियों में शास्त्रद्वारा प्रधानता

+ 'सूत्रदये' व वनव्यत्यय । † लिङ्गव्यत्यय । \* व्यत्ययो वा लेखकप्रमादो वा

से पञ्चराशक्ति ही कही है, अग्रिन से स्फुलिङ्गा —चिनगारियों की उत्पत्ति जैसे होवे वैसे ही चालन आदियों की उत्पत्ति पञ्चराशक्ति से कही है ॥ ३३—३६ ॥

तदुक्तं शक्तिवीजे—वह कहा है शक्तिवीज प्रथ में—

सद्योजातसमुद्भूतपञ्चराशक्तित कमात् ।

उद्भवश्चालनादीनामुक्त तच्छास्त्रवित्तम् ॥४०॥

सद्योजात यन्त्र से उत्पन्न हुई पञ्चराशक्ति से क्रमशः चालनादि शक्तियों की उत्पत्ति उस शास्त्र के विद्वानों ने कही है ॥४०॥

सद्योजातात् समुत्पन्पञ्चराशक्तित कमात् ॥४१॥

चालनाद्यास्समुद्भूता क्रमाञ्चत्वारिशक्तय ।

इति शक्तिकोस्तुमे ।

सद्योजात यन्त्र से उत्पन्न पञ्चराशक्ति से क्रम से चालन आदि प्रकट हुईं क्रम से चार शक्तियां हैं । यह शक्तिकोस्तुभ प्रथ में कहा है ॥४१॥

एतेन पञ्चरोद्भूतशक्तयाचालनादय ॥४२॥

तदशत्वात् तत्स्वरूपा एवेत्युक्तास्त्फुलिङ्गवत् ।

तस्मात् प्रवानत्वमपि तासामत्र प्रदर्शितम् ॥४३॥

सा पञ्चरा चित्रिणी च पूर्वोक्तसप्तशक्तिषु ।

अन्तर्भावात् प्रधानत्वेनोक्ता एव स्वभावत ॥४४॥

यतस्तयो प्रधानत्व सप्तशक्तिषु वर्णितम् ।

तत्सप्तमञ्चासमिति मतद्वयमपि स्मृतम् ॥४५॥

द्वात्रिशत्कार्यनिर्वाहि पूर्वोक्तसप्तशक्तिषु ।

एकक्षशक्तिरेवालमिति केचिद वदन्ति हि ॥४६॥

इस कारण पञ्चराशक्ति से प्रकट हुई चालना आदि शक्तियां उसके अंश होने से तत्स्वरूप ही स्फुलिङ्ग जैसी कही हैं । अत उनकी प्रधानता भी यहां दिखलाई है, उन पूर्वोक्त ७ शक्तियों में वह पञ्चरा और चित्रिणी अन्तर्भूत होने से प्रधानता से स्वभावत कही हैं, जिसे सात शक्तियों में प्रधान वर्णित किया है इससे दोनों मत ठीक है यह कहा है, ३२ कार्य निर्वाह में पूर्वोक्त ७ शक्तियों में एक-एक शक्ति ही पर्याप्त है ऐसा कुछ कहते हैं ॥ ४२—४३ ॥

तदस्त्वत्मेव स्यात् कार्यमेवप्रदर्शनात् ।

विमानस्योर्ध्वगमनमुद्यगमाशक्तितस्मृतम् ॥४७॥

इत्यारभ्य क्रमामूलशक्तयेत्यन्त स्वभावत ।

पूर्वोक्तसप्तशक्तिना कार्यनिवृहणकम् ॥४८॥

पृथक् पृथक् क्रियासारे निर्णितत्वात् प्रमाणत ।

द्वात्रिशत्कार्यनिर्वाह कथं स्यादेकशक्तित ॥४९॥

एकशक्त्या मर्व कार्यं निर्वाहस्सर्वथा न हि ।  
प्रमादाद् यदि कुर्वीत तदनयीय केवलम् ॥५०॥  
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन पूर्वोक्तास्पत शक्तय ।  
द्वात्रिशत्कार्यनिवाहि सयोज्या इति निराय ॥५१॥

कार्यभेद प्रदर्शन से बहु असङ्गत ही है, विमान का ऊर गमन उद्गमा शक्ति से कहा है। इस कथनके आरम्भ से लूलशक्ति के लिये अत्यन्त स्वभाव से पूर्वोक्त ७ शक्तियों का कार्यनिर्वाह क्रम पृथक् पृथक् कियासार प्रन्थ में प्रमाण से निराय करने से ३२ कार्यं निर्वाह करे एक शक्ति से हो, एक शक्ति से कार्यनिर्वाह सर्वथा नहीं हो सकता, प्रमाद से यदि करे तो केवल अनर्थ के लिये हो, अत सब प्रयत्न से पूर्वोक्त ७ शक्तिया ३२ कार्यं निर्वाह में लगाने योग्य हैं ॥ ४७—५१ ॥

### अथ यन्त्राधिकरणम्

अब यन्त्रों का अधिकरण प्रस्तुत है ।

तथोपयन्त्राणि ॥ अ० ५ ख० १ ॥

बो० बृ०

वयोक्ताशक्तय पूर्वसूत्रे यानक्रियाविधी ।  
तथैव यानोपयन्त्राण्यस्मिन् सम्यग् विच्छयते ॥ ५२ ॥  
तदर्थोद्घातपदद्वयमत्र निरूपितम् ।  
तत्रादिमपदाद् रीतिवाचकस्त्रिविद्विशत ॥ ५३ ॥  
द्वितीयपदतो यानाङ्गोपयन्त्राणि च क्रमात् ।  
पदार्थमेव कथित विशेषार्थोच्चुनोच्यते ॥ ५४ ॥  
याभिविमानो द्वात्रिशत्कार्यनिर्वाहको भवेत् ।  
तच्छक्तय क्रमात् पूर्वसूत्रे सम्यक् प्रदर्शिता ॥ ५५ ॥  
तत्तत्कार्योपकरणाङ्गोपयन्त्राण्यथाक्रमम् ।  
द्वात्रिशदिति यानस्य सूत्रे स्मिन् सम्प्रदृश्यते ॥ ५६ ॥

विमान क्रियाविधि के निमित्त पूर्वसूत्र में जैसे शक्तियाँ कही हैं वैसे ही विमानयान के उप-यन्त्रों का इस सूत्र में भली प्रकार विवेचन किया जाता है। उसके अर्थोद्घात दो पद यहाँ निरूपित किए हैं, उनमें आदिपद रीतिवाचक कहा है दूसरे पद से विमान के अङ्गोपयन्त्र क्रम से कहे हैं। इस प्रकार पदों का अर्थ कह दिया अब विशेष अर्थ कहा जाता है। जिन शक्तियों से विमान ३२ कार्यों का निवाह हक होवे—होता है वे शक्तियाँ पूर्वसूत्र में भली प्रकार दिखलाई गईं, उन कार्यों के उपकरण अङ्गोपयन्त्र विमान के यथाक्रम ३२ इस सूत्र में दिखलाए जाते हैं ॥ ५२—५६ ॥

तदुक्तं क्रियासारे—वह कथन क्रियासार प्रन्थ में कहा है—

विमानाङ्गोपयन्त्राणि द्वात्रिशदिति शास्त्रत ।

यथोक्त यन्त्रसर्वस्वे भरद्वाजेन धीमता ॥ ५७ ॥

तथैवात्र प्रवक्ष्यामि सग्रहेण यथामति ।  
 यन्त्रे विश्वकियादर्शशक्त्याकर्वण्यन्त्रकः ॥ ५८ ॥  
 परिवेषकिरायन्त्रं प्रोक्तं पश्चात् तथैव हि ।  
 अङ्गोपसहारकारव्ययन्त्रं सर्वाङ्गसुन्दरम् ॥ ५९ ॥  
 पश्चाद् विस्तृतकियारव्य ततो वैरूप्यदर्पणम् ।  
 पद्मचक्रमुख नाम यन्त्रं पश्चाद् विचित्रकम् ॥ ६० ॥  
 कुण्ठिणीशक्तियन्त्रं च तथा पुष्पिणिक स्मृतम् ।  
 तर्थव पिङ्गुलादर्शयन्त्रं पश्चान्मनोहरम् ॥ ६१ ॥  
 नालपञ्चकयन्त्रं च गुहागर्भभिष्य तथा ।  
 तमोयन्त्रं पञ्चवातस्तकन्धनालमतं परम् ॥ ६२ ॥

विमान के अङ्गोपयन्त्र ३२ शास्त्र से जैसे 'यन्त्रसर्वस्व' में बुद्धिमान् भरदाव युनि ने कहे हैं वैसे ही यहां भी संक्षेप में यथामति में कहा, यन्त्र में विश्वकियादर्श, शक्त्याकर्वण्यन्त्र, परिवेषकियायन्त्र, अङ्गोपसंहारयन्त्र, सर्वाङ्गसुन्दर, विस्तृतकियानामक यन्त्र फिर वैरूप्यदर्पणा, पद्मचक्रमुखयन्त्र, फिर विचित्रक, कुण्ठिणीशक्तियन्त्र, तथा पुष्पिणिक यन्त्र कहा है, पिङ्गुलादर्शयन्त्र पश्चात् मनोहर, नाल-पञ्चकयन्त्र, गुहागर्भनामक, तमोयन्त्र, पञ्चवातस्तकन्धनालमतं परम् ॥ ५७—६२ ॥

पश्चाद् वातस्तकन्धनालकीलक यन्त्रमीरितम् ॥ ६३ ॥  
 ततो विद्युत्यन्त्रमतशब्दकेन्द्रमुखाभिष्यम् ।  
 ततो विद्युद्द्वादशकयन्त्रं प्रोक्तं ततं परम् ॥ ६४ ॥  
 प्राणकुण्डलिनीनामयन्त्रं शक्त्युद्गम तथा ।  
 वक्प्रसारणं तद्वच्छक्तिप्राप्तरकीलकम् ॥ ६५ ॥  
 शिर कीलकयन्त्रं च शब्दाकर्षणयन्त्रक ।  
 पटप्रसारणं नाम यन्त्रं तद्वद् दिशाम्पति ॥ ६६ ॥  
 पट्टिकाभ्रकयन्त्रं च सूर्यशक्त्यकर्वणम् ।  
 तथापस्मारधूमप्रसारणारूप्यमतं परम् ॥ ६७ ॥  
 तथा स्तम्भनयन्त्रं चोक्तं पश्चात् तथैव हि ।  
 वैश्वानरयन्त्रमिति द्वात्रिवाति कमात् ॥ ६८ ॥  
 विमानस्याङ्गोपयन्त्राणीति शास्त्रविनिर्णयं ॥ इत्यादि ।

पश्चात् वातस्तक्य नाल कील यन्त्र कहा है, फिर विद्युत्यन्त्र, शब्दकेन्द्रमुखनामक, फिर विद्युद्द्वादशक यन्त्र कहा है, फिर प्राणकुण्डलिनीनामक यन्त्र, शक्त्युद्गमयन्त्र, वक्प्रसारणयन्त्र, फिर शक्तिपठ्टिकरकीलक, शिरःकीलकयन्त्र, शब्दाकर्षणयन्त्र, पटप्रसारणयन्त्र, दिशाम्पतियन्त्र, पट्टिकाभ्रकयन्त्र, सूर्यशक्त्यपकर्षणयन्त्र, अपस्मारधूमप्रसारणं यन्त्र, फिर स्तम्भनयन्त्र कहा, पश्चात् वैश्वानरनाल यन्त्र। ये विमान के क्रम से ३२ अङ्गोपयन्त्र हैं यह शास्त्र का निर्णय है ॥ ६३—६८ ॥

एवमुक्तवा विमानस्याङ्गोपयन्त्राण्यथाकमम् ॥ ६६ ॥

तेषा स्वरूपविज्ञाननिर्णयार्थं यथामति ।

यथा भगवता] प्रोक्त भरद्वाजेन धीमता ॥ ७० ॥

तथैवात् प्रवक्ष्यामि सप्रहाव यन्त्रनिर्णयम् ।

इस प्रकार विमान के अङ्गोपयन्त्रों को यथाकम कहकर उनके स्वरूप विज्ञान के लिये यथामति जैसे श्रीमान् बुद्धिमान् भरद्वाज ने कहा है वैसे संज्ञेप से यन्त्रों का निर्णय कहूँगा ॥ ६६—७० ॥

तदुक्तं यन्त्रसर्वर्वे—वह कहा है 'यन्त्र सर्वव' प्रथं मे—

अथाङ्गयन्त्राणि ॥ अ० ७ ष० १ ॥

बो० वृ०

यन्त्रसस्याविमानाङ्गयन्त्राणा शास्त्रवित्तम् ।

विश्वक्रियाकर्षणदर्पणयन्त्रादित् क्रमात् ॥ ७१ ॥

वैश्वानरनालयन्त्रान्त डात्रि (वि ?) शदिति स्मृतम् ।

तेषु विश्वक्रियाकर्षणदर्पणयन्त्रं विविच्यते ॥ ७२ ॥

चतुरथं वर्तुल वा वितस्त्यैकप्रमाणत ।

पीठ प्रकल्प्य विधिवद् दारुणा दर्पणेन च ॥ ७३ ॥

पश्चात् तन्मध्यप्रदेशे केन्द्र कुर्याद् यथाविधि ।

साधाङ्गुलविहायाथ मध्यकेन्द्राद् यथाकमम् ॥ ७४ ॥

ईशान्यादिकमेणाङ्गुलिक्षु रेखान् प्रकल्पयेत् ।

प्रसारणोपसहारकीलाङ्गुल् दृढं यथा ॥ ७५ ॥

क्रमावैकरेखाया द्वौ द्वौ सस्थापयेत् तत ।

विमानाङ्गयन्त्रों की यन्त्रसश्या ऊंचे शास्त्रवेत्तश्चो ने विश्वक्रियाकर्षणदर्पण यन्त्र से आरम्भ कर वैश्वानर नाल तक ३२ कही है । उनमें विश्व क्रियाकर्षणदर्पणयन्त्र का विवेचन किया जाता है । चौकोण या गोल एक बालिशत् माप से विवित् लकड़ी से और दर्पण से बनाकर पश्चात् उसके मध्य-प्रदेश में यथाविधि केन्द्र करे—बनावे डंड अङ्गुल छोड़कर मध्यकेन्द्र से यथाकम ईशान्य आदि क्रम से आठ दिशाओं में रेखाएं बनावे, खोलने और बन्द करने के पेंचों के शङ्खओं—चावियों को ढड़ लगावे क्रम से एक एक रेखा में दो दो को संस्थापित करे ॥ ७१-७५ ॥

मध्यकेन्द्रपुरोभागादेखान्तशास्त्रत क्रमात् ॥ ७६ ॥

अन्तरावरणे पञ्चावर्तकीलसमन्वितान् ।

प्रसारणोपसहारकीलकान्तगंतान् दृढान् ॥ ७७ ॥

प्रोटुम्बरारारानागप्तिकाभिर्विराजितान् ।

प्रङ्गुलीना षष्ठितमप्रमाणेन प्रकल्पितान् ॥ ७८ ॥

विश्वोदरलोहमयात् दण्डनालात् यथाकमम् ।  
पूर्वंकर्तविप्रदर्शनरेखासंस्थितशक्तिषु ॥ ७६ ॥

सन्ध्यार्यवरण कुर्यात् तस्योपरि तत परम् ।  
मूले मध्ये तथा चास्ये दण्डनालान्तरस्य हि ॥ ८० ॥

मध्य केन्द्र के सामने वाले भाग से लेकर रेखा तक शाखा के कम से अन्दर के आवरण में पांच धूमने वाली कीलों से युक्त खोलने बन्द करने की कीलों के अन्तर्गत और ओडुम्बर—ताम्बे, आर—मुण्ड लोहे, आर—पित्तल, नाग—सीसे की पटिकाओं से युक्त ६ अब्दगुल माप बनाए हुए विश्वोदर लोहे के बने दण्ड नालों को यथाकम पूर्व कही दिशा को दिखाने वाली रेखाओं में स्थित शक्तियों में लगा कर उसके ऊपर आवरण करे फिर दण्डनाल के भीतरी भाग के मूल में तथा मध्य में—॥ ७६—८० ॥

रुचिर भास्कर विश्वकियादर्शनदर्पणम् ।  
सन्ध्यार्येद् ढड तत्तदीलकैश्वास्त्रमानत ॥ ८१ ॥  
सकीलविद्युत्यन्त तु दण्डमूले नियोजयेत् ।  
आरारानालस्त्रक्लृप्तकीलसमावर्तक पुन ॥ ८२ ॥  
कृत्वा समन्ताद् यन्त्रस्य विमाने स्थापयेद् ढडम् ।  
कान्तकाचमणीन् पश्चान्मूले मध्ये तथोध्वेक ॥ ८३ ॥  
दण्डान्तरे वा पाश्वे वा तत्तस्थाने नियोजयेत् ।  
किरणप्रकाशाकर्षणदर्पण मूलकेन्द्रके ॥ ८४ ॥  
वार्तुलयं चतुषकाकार ढड सस्थापयेत् तत ।  
रूपाकर्षणायन्त्र तु तत्पश्चाद्ग्रामतो च्यसेत् ॥ ८५ ॥

सुन्दर तथा प्रकाश करने वाले विश्वकियादर्शन दर्पण को उन उन कीलों से शाक्तमान से हड़ रूप में लगावे। दण्ड के मूल में कीलसहित विद्युत्यन्त लगावे। आरार ? आर—मुण्ड लोहे, पुन आर—पित्तल की नाल से सन्ध्यद धूपने वाली कील को बना कर यन्त्र के सभ और विमान में स्थापित कर दे। पश्चान्त—कान्त काच की बनी मणियों को मूल में मध्य में तथा ऊपरले भाग में दण्ड के अन्दर या पाश्व में या उस उस स्थान में नियुक्त कर दे। किरण—प्रकाशाकर्षण दर्पण गोल पात्र जैसे को मूल केन्द्र में संस्थापित कर दे फिर रूपाकर्षण यन्त्र को तो उसके पिछ्ले भाग में रखे ॥ ८१—८५ ॥

इति विश्वकियादर्शनदर्पणमुक्त समाप्त ।  
तत्प्रयोग प्रवक्ष्यामि सग्रहेण यथामति ॥ ८६ ॥  
दण्ड प्रसारेदादौ कीलीचालनतस्तथा ।  
मुखे तस्य कियादर्शदर्पणे योजयेद् ढडम् ॥ ८७ ॥  
तन्मूले पारदद्राव मध्यकेन्द्रसम यथा ।  
कीलकात् सन्ध्यसेत् तस्मिन् मणिमेक नियोजयेत् ॥ ८८ ॥

रन्धतन्त्रीन् द्रावशुदान् किरणाकर्षकान् तत् ।  
 एतन्मणिमुखात् पूर्वमण्णन्त् योजयेत् क्रमात् ॥ ८६ ॥  
 पुनस्तदृष्टान्तरीयमध्यभागे दृढ़ यथा ।  
 योजयेद् भास्करादर्शं सापंगे(के?)न सुशोधितम् ॥ ८० ॥

इस प्रकार विश्विकादर्शं यन्त्र संतोष से कह दिया, उसका प्रयोग संचेप से यथामति कहूँगा । प्रथम कील चला कर दण्ड-नालादण्ड को खोल दे उसके मूल में कियादर्शदर्पण लगा दे, उसके मूल में पारे का द्राव मध्य केन्द्र के समान की-रेच से स्थापित कर दे, उसमें एक मणि नियुक्त कर दे, द्राव से गुद्ध किरणाकर्षक सिद्ध तारों को इस मणिमुख से पूर्व मणि के अन्त तक युक्त कर दे फिर उस दण्ड के भीतरी मध्य भाग में—सरसों के तेल से शोशित भास्कर दर्पण—सूर्यकान्त को लगावे ॥ ८६-८० ॥

पूर्ववत्तमूलभागे विन्यसेद् हचिकद्रवम् ।  
 तस्मिन्नेकमणिं कीलतन्त्रीयोगात् सुनिधिपेत् ॥ ६१ ॥  
 तथैव हचिकादर्शं तमूले स्थापयेद् दृढ़म् ।  
 सूर्यस्य किरणाकर्षणदर्पणं मूलकेन्द्रके ॥ ६२ ॥  
 चषकाकारतस्मयवार्तुल्यं योजयेत् तथा ।  
 रूपाकर्षणायन्त्रं तत्प्रशाद्यागे प्रकल्पयेत् ॥ ६३ ॥  
 हचिरद्रावकमणे पूर्वभागे यथाविधि ।  
 विद्युत्त्रं प्रतिष्ठाप्य तन्त्रीन् तस्मिन् योजयेत् ॥ ६४ ॥  
 हचिरद्रावकमणो ताम्या शक्ति प्रसारयेत् ।  
 किरणाकर्षणादर्शो भास्कराशून् तथैव हि ॥ ६५ ॥

पूर्व की भाँति उसके मूल भाग में सज्जीकार के द्राव को ढाल दे उसमें एक मणि की कील—एच के तारों के बोग से ढाल दे, तथा सज्जीकार को उसके मूल में स्थापित करे, पात्र जैसे गोल सूर्य-कर्षणदर्पण को मूल केन्द्र में लगावे तथा रूपाकर्षण यन्त्र को उसके पिछले भाग में युक्त करे, सज्जीकार के द्रावक की मणि के पूर्व भाग में यथाविधि विद्युत्त्रं को प्रतिष्ठित करके उसमें तारों को जोड़ दे । सज्जीकार की मणि में उन तारों के द्वारा शक्ति का प्रसार करे । किरणाकर्षण आदर्श भास्कराशून्—सूर्य-किरणों को भी बैसे ही—॥ ८१-८५ ॥

सूर्यशक्यद्वयभागं च विद्युद्वादशभागकम् ।  
 हचिरद्रावकमणिमूलकात् पारदद्रवे ॥ ८६ ॥  
 प्रसारयेत् तन्त्रीमुखान्मणिकेन्द्रान्तमेव हि ।  
 तत्रत्यमणिमावृत्य तच्छ्रविततनुमार्गं ॥ ८७ ॥  
 विश्वकिरणाकर्षणदर्पणस्थानं विश्वन्ति हि ।  
 एव शक्ती समाहृत्य स्थापयित्वास्य दर्पणे ॥ ८८ ॥

पञ्चान्निर्धारयेत् सम्यग्गणितागमशोधनात् ।  
 यद्यद्देशरहस्यानि (एि ?) सप्तहेदिति निर्णयतम् ॥६६॥  
 तत्तद्विद्येशकेन्द्रान्तं रेखामार्गानुसारत ।  
 गणितोक्तविषयानेन लक्ष्यं कृत्वा यथाविधि ॥ १०० ॥

सूर्यशक्ति ? ८ भाग, विद्युत् ? १२ भाग, सूचिद्रावक-सज्जोन्नार के द्रावक की मणि के मूल से पारे के द्राव में तारों के मुखों को मारण के केन्द्रपर्यंत प्रसारित करदे, वहाँ की मणि को धर कर उसकी शक्ति लन्तुर्धों के मार्ग से विश्वकियाकर्षण दर्पण स्थान में प्रविष्ट हो जाती है, 'इस प्रकार दोनों शक्तियों को इकट्ठा करके या लेकर मुखदर्पण में स्थापित करके पञ्चात गणितशास्त्र के शोधन से निर्धारित करे जो जो देशों के रहस्य हों उन्हें संग्रहीत करे यह निरण है। उस उस दिशा देश केन्द्र तक रेखा मार्ग नुसार गणितशास्त्र में कहे विषयान से लक्ष्य करके यथाविधि—॥ ६६-१०० ॥

कीलीसञ्चालय विधिवद् दण्डनाल प्रसारयेत् ।  
 यावत्कलक्ष्यं कृतं पूर्वं तत्कलक्ष्यान्तं यथाविधि ॥ १०१ ॥  
 विश्वकियाकर्षणदर्पणमूलस्थित कमात् ।  
 तदामकेन्द्राद् विधिवच्छक्तिद्वयमत परम् ॥ १०२ ॥  
 यावत्प्रमाणं सयोज्यं तावन्मात्रं प्रसारयेत् ।  
 पूर्वोक्तदिवेशकेन्द्रलक्ष्याभिमुखतस्तत ॥ १०३ ॥  
 सन्धारयेन्मध्यकेन्द्रं दर्पणस्य यथाविधि ।  
 समसङ्कुलनं कुर्यात् तयोरभयकेन्द्रयो ॥ १०४ ॥  
 तेन दिवेशकेन्द्रान्तं व्याप्तं शक्तिद्वयं तत ।  
 तत्रत्वसर्ववस्तुप्रकाशको भवति स्वयम् ॥ १०५ ॥

कीलों-पेंचों को विधिवत् चला कर दण्डनाल को प्रसारित करदे जहाँ तक पूर्व कल्पय-सीमा-स्थान किया उस सीमास्थान तक यथाविधि विश्वकियाकर्षण दर्पण के मूल स्थित है उसके बाम केन्द्र से विधिवत् दोनों शक्तियां इससे आगे जितना प्रमाण हो युक्त कर उतना प्रसारित कर दे, पूर्वोक्त दिशा देश केन्द्र के लक्ष्य के सामने से दर्पण का मध्यकेन्द्र लगावे, उन दोनों केन्द्रों में समान सङ्कुलन-मेत करे उससे दिशा देश केन्द्र तक दोनों शक्तियां व्याप कर—व्याप जाने के अनन्तर वहाँ की सब वस्तुओं का प्रकाश स्वर्ण हो जाता है ॥ १०१-१०५ ॥

पञ्चान्निरुद्ध्यं तच्छक्तीं पारद्रवे नियोजयेत् ।  
 ततो दिवेशकेन्द्रान्तस्थितवस्तुविचारत ॥ १०६ ॥  
 तद्वावको भवेन्नानानिव्रतवर्णप्रभावुत ।  
 सूर्याशुशक्तिमाकृष्णं पारद्रवमणीं ततः ॥ १०७ ॥  
 सयोजयेत् पञ्चदशलिङ्गमात्रं यथाविधि ।  
 पञ्चात् पारद्रवे सम्यक् तच्छक्तिं सम्प्रवेशयेत् ॥ १०८ ॥

मणिप्रेरिततच्छक्ति द्रवशक्तिं तथैव च ।  
 समाहृदयं विशेषणं सूचिकद्रवस्स्थिते ॥ १०६ ॥  
 मणी सन्धारयेत् पश्चात् तच्छक्तिं पूर्ववत् कमात् ।  
 रुचिकादर्शमूलस्थरेखाकेन्द्रे नियोजयेत् ॥ ११० ॥

पश्चात् उन दोनों शक्तियों को पकड़ कर पारे के द्वाव में नियुक्त कर दें, फिर दिशा देश केन्द्र तक स्थित बस्तुओं के विचार से—प्रभाव से वह द्रावक नाना क्षित्ररंग वाली प्रभा से युक्त हो जात है, सूर्यकिरणशक्ति को खींच कर पारे के द्वाव वाली मणि में १५ लिङ्ग ( ढियो ) माप में यथाविधि युक्त कर दें, पश्चात् पारे के द्वाव में सम्यक् उस शक्ति को प्रविष्ट कर दें, मणिद्वारा प्रेरित उस शक्ति को तथा द्रवशक्ति को लेकर विशेषत सज्जीचार द्वाव में स्थित मणि में जोड़ दें, पश्चात् उस शक्ति को पूर्व की भाँति सज्जीचार द्रवदर्पण के मूल में स्थित रेखा केन्द्र में नियुक्त करें ॥ १०६-११० ॥

तच्छक्तिं रुचिकादर्शस्स्थिमन् सन्धारयेत् ( सन्धार्यते ? ) तत् ।

मुखदर्पणमारम्भं रुचिकान्तं यथाविधि ॥ १११ ॥

लक्ष्यं कुरुत्वा सप्ततिमाददोनालात् कम यथा ।

तथैव रूपाकर्षण्यन्वकेन्द्रान्तमन्तरे ॥ ११२ ॥

लक्ष्यं प्रकल्पयेत् सम्यग् रुचिकादर्शकेन्द्रत ।

पश्चात् पारद्रवमणिजक्तीं सयोजयेत् समम् ॥ ११३ ॥

विश्वक्रियादर्शवामकेन्द्रलक्ष्यात् प्रयत्नत ।

दिग्देशरेखाकेन्द्रान्तं गणितोवेतेन वर्मना ॥ ११४ ॥

पश्चात् सव्याप्तं नज्जुकी तत्रत्याना स्फुटं यथा ।

कार्यकरणाकृत्यस्वरूपमाकृष्णं वेगत ॥ ११५ ॥

उक्त शक्ति को रुचिक आदर्श अपने में धारणा कर लेता है, मुखदर्पण को आरम्भ कर रुचिक दर्पणा पर्यन्त यथाविधि लक्ष्य करके ७० वें आदर्श नाल से यथाक्रम वैसे ही रूपाकर्षण यन्त्र के केन्द्र तक अन्दर लक्ष्य को रुचिकादर्श केन्द्र से बनावे, पश्चात् क्रियादर्श वामकेन्द्र के लक्ष्य से प्रयत्न से दिशा देश रेखा केन्द्र तक गणित शास्त्र में कहे मार्ग से पारे के द्राववाली मणि की दोनों शक्तियों को समान रूप से युक्त करे पश्चात् वे दोनों शक्तियां व्याप कर वहा के कार्यकरण कर्ता के स्वरूप को वेग से आकर्षित करके—॥ १११-११५ ॥

प्रतिविम्बाकारयुक्ता सा शक्तिं पूर्ववत् पुनः ।

परा गतिमवाप्याथ मुखदर्पणकेन्द्रत ॥ ११६ ॥

आगम्य रुचिकद्रावमणी सविशति स्वयम् ।

तामाकृष्णातिवेगेन मणिशक्तिस्वभावत ॥ ११७ ॥

स्वस्थिमन् तत्प्रतिविम्बस्वरूपं सन्धार्यतेऽस्फुटम् ।

पश्चात् तत्रत्यरुचिकद्रावकस्वप्रभावत ॥ ११८ ॥

प्रत्यक्षवत् तत्स्वरूप विशदीक्रियतेऽस्तु फुटम् ।

रूपाकर्षणयन्त्रेण पश्चात् तत्प्रतिविम्बकम् ॥ ११६ ॥

समादाय विशेषेण सप्तमाभ्रकदर्पणात् ।

प्रतिविम्बस्वरूपेण कर्तुं कार्यादिकान् क्रमात् ॥ १२० ॥

वह प्रतिविम्बाकारयुक्त शक्ति पूर्व की भाँति परा गति को प्राप्त होकर मुखदर्पण केन्द्र से आकर सूचिक द्राववाली मणि में स्वयं धुस जाती है, उसे मणिशक्ति स्वभावतः अतिवेग से अपने अन्दर आकर्षित कर प्रकट रूप में प्रतिविम्बस्वरूप धारण कर लेती है, पश्चात् वहाँ के रुचिक द्राव स्वप्रभाव से प्रत्यक्ष जैसा उसके स्वरूप को विशद् करता है, पश्चात् रूपाकर्षण यत्र से उस प्रतिविम्ब को सातवें अध्रक दर्पण से लेकर प्रतिविम्बवरूप से कर्ता कार्य आदि को क्रम से—॥ ११६-१२० ॥

द्रष्टुं यथावद् योग्य स्यात् पृथक् पृथक् स्वरूपत ।

तस्मिन् द्रष्ट्वा विमानस्य सम्भवापायसञ्चयान् ॥ १२१ ॥

विजाय शास्त्रतस्सम्यक् सर्वपायनिवारणम् ।

कृत्वा निर्मूलमध्य तद्विमान प्रेषयेत् पुनः ॥ १२२ ॥

एतत्कार्योपयोगार्थं वर्णितं शास्त्रतः क्रमात् ।

विश्वक्रियाकर्षणदर्पणायन्त्रं समाप्ततः ॥ १२३ ॥

पृथक् पृथक् स्वरूपतः यथावत् देखने योग्य हो जावे, उसमें विमान के सम्भावनीय—होने वाले अनिष्ट सञ्चारों को देख कर शास्त्र से सब अनिष्टों के निवारणप्रकार को जान कर पुन निर्मूल कर उस विमान को चलावे। इस कार्य के उपयोगार्थं शास्त्र से क्रम से विश्वक्रियाकर्षण दर्पण यन्त्र संचेप से वर्णित किया है ॥ १२१-१२३ ॥



पूना फोटो संख्या ४ बस्तुतः हस्तलेख प्रथम रजिस्टर कारी संख्या ६—

अथ शक्त्याकर्षणदर्पणयन्त्रनिर्णयः—अब शक्त्याकर्षण दर्पणयन्त्र का निर्णय है—

इत्युक्त्वा विश्वकियाकर्षणयन्त्रमत परम् ।

शक्त्याकर्षणदर्पणयन्त्रमत्र प्रचक्षते ॥ १ ॥

इस प्रकार विश्वकियाकर्षण यन्त्र को कह कर इससे आगे शक्त्याकर्षण दर्पण यन्त्र यहाँ कहते हैं ॥ १ ॥

तदुक्तं यन्त्रसर्वस्य—वह कहा है यन्त्रसर्वस्य ग्रन्थ में—

वियत्तरञ्जपवनरीद्रीसञ्चातशक्य ।

ऋतुकालानुसारेण वेटयानविनाशका ॥ २ ॥

तास्समाकृत्य वेगेन नाशयित्वा खमण्डले ।

यत् स्वशक्त्या पालयति व्योमयानान् विशेषत ॥ ३ ॥

तच्छक्त्याकर्षणदर्पणयन्त्रमिति कीर्त्यते ।

वियत्तरञ्ज—आकाश के स्तरों मण्डलों और पवन रौप्री—बायु की वेग पंक्तियों से उत्पन्न शक्तियाँ ऋतुकाल के अनुसार विमान का विनाश करने वाली हैं । उन्हें अपने वेग से खीच कर आकाश में नष्ट करके जो अपनी शक्ति से विमानों की रक्षा करता है वह शक्त्याकर्षण दर्पण यन्त्र कहा जाता है ॥२-३॥

नारायणोपि—नारायण ने भी कहा है—

रीद्रवाताकाशवीचिसञ्चाता विषरूपका ॥ ४ ॥

शक्त्यक्षिविद्या प्रोक्षा व्योमयानविनाशका ।

तश्चिवृत्य स्वशक्त्या यद्मान पालयेत् स्वत ॥ ५ ॥

तच्छक्त्याकर्षणदर्पणयन्त्रमित्युरीयते ।

यन्त्रस्वभावमुक्त्वैव सग्रहेण यथामति ॥ ३ ॥

अथ तद्यन्त्ररक्षनाविधिरत्र निरूप्यते ।

वितस्तित्रयमाद्याम् वितस्तिद्यविस्तृतम् ॥ ७ ॥

पीठ प्रकल्पयेच्छुद्धकोश्लोहेन शारात् ।

वेगपंक्ति पूर्ण वात और आकाश के तरङ्गरूप मण्डलों से उत्पन्न तीन प्रकार की विषयशक्तियाँ विमान को नष्ट करने वाली कही हैं । उन्हें अपनी शक्ति से निवृत्त करके जो विमान की स्थित रक्षा करे वह शक्त्याकर्षण दर्पण यन्त्र कहा है । यन्त्र के स्वभाव को इस प्रकार संक्षेप से व्यथामति कह कर अब उस यन्त्र की रचनाविधि यहां निरूपित की जाती है । तीन बालिशत लम्बा दो बालिशत चौड़ा पीठ शुद्ध कीज्ञ लोहे से शास्त्र से बनावे ॥ ४-७ ॥

द्वाविशदड्गुलायाममड्गुलत्रयविस्तृतम् ॥ ८ ॥  
 सप्तविशतिमादर्शकृतशड्कु यथाविधि ।  
 तन्मध्ये स्थापयेत् पश्चात् तस्य पूर्वदिशि क्रमात् ॥ ९ ॥  
 केन्द्रव्य कल्पयित्वा तथैवोत्तरदक्षिणे ।  
 द्वी द्वी केन्द्रो तथा कुर्यात् समरेखाप्रमाणात् ॥ १० ॥  
 पूर्ववत् पश्चिमे केन्द्रव्य कुर्यात् यथाविधि ।  
 प्रदक्षिणावर्तकीलान् स्थापयेत् प्रतिकेन्द्रे ॥ ११ ॥  
 पश्चात् सप्तोत्तरशततमादर्शकृतान् दृढात् ।  
 नालान् सन्धारयेत् पश्चात् सतन्धीन् द्रवशोधितान् ॥ १२ ॥

१२ अंगुल लम्बे ३ अंगुल चौड़े २७ वें आदर्श से किये हुए शङ्कु को उसके मध्य में व्यथाविधि स्थापित करके फिर उसकी पूर्वदिश में क्रांति से तीन केन्द्र बनाकर वैसे ही उत्तर दक्षिण में दो दो केन्द्र समान रेखा में करे, पूर्व की भाति पश्चिम में तीन केन्द्र यथाविधि करे । प्रत्येक केन्द्र में घूमने वाली कीलों—पेंचों को स्थापित करे पश्चात् १०७ वें आदर्श से बने हड्ड नालों को तारोंसहित द्रव से शोधित लगावे—॥ ८-१२ ॥

प्रदक्षिणावर्तकीलमूलस्थानावधि क्रमात् ।  
 च (छ ?) पकाकारवत्पञ्चदशागुलप्रमाणात् ॥ १३ ॥  
 पूर्वोक्तदर्पणात् सम्यक्कृतपात्र यथाविधि ।  
 सस्थापयेच्छड्कुमूलस्थकीलकोपरि पूर्वके ॥ १४ ॥  
 वितस्त्यायामसड्क्लृप्तं विस्तृते तथाविधम् ।  
 तथैवादशंगोल च छिद्रत्रयसमन्वितम् ॥ १५ ॥  
 स्थापयेनमध्यकेन्द्रस्थकीलकोपरि पूर्ववत् ।  
 द्वादशागुलायाम द्वादशागुलविस्तृतम् ॥ १६ ॥  
 त्रिकोणकुञ्चिकारेण कृतमादर्शंत क्रमात् ।  
 दृतीयकेन्द्रस्थकीलकोपरि सस्थापयेत् तथा ॥ १७ ॥  
 कान्तोद्वन्द्वरसम्मिश्रकद्रव्य क्रमात् ।

घूमने वाली कील की अवधि तक । पात्र—लोटा गिलास के आकार जैसा १५ अंगुल माप में पूर्वोक्त दर्पण से सम्यक् यथाविधि बने पात्र को शंकुमूलस्थ पूर्व कील—पेंच के ऊपर बालिशत भर लम्बा

चौड़ा सिद्ध वैसा ही आदर्श गोल तीन छिप्रों से युक्त मध्य केन्द्रस्थ पैच के ऊपर पूर्व की भाँति खापित करे, १२ अंगुल लावे १२ अंगुल चौड़े प्रिकोण भित्ति के आकार में आदर्शदर्पण से बने हुए को तीसरे केन्द्र में स्थित पैच के ऊपर संस्थापित कर दे, तथा कान्त—अयस्कान्त लोहे, उदुम्बर अर्थात् ताढ़े से मिश्रित दो चक्रदण्ड क्रम से—॥ १३-१७ ॥

पूर्वोक्तादर्शगोलस्थ गर्भकेन्द्रे यथाविधि ॥ १८ ॥  
 सन्धारयेद् यथा सम्यग् भवेत् मध्यरंग तथो ।  
 पश्चात् तत्पश्चिमे भागे वातवादपरणात् कृतम् ॥ १९ ॥  
 पिण्डमेक विस्तृतास्यमित्यं मूलस्थकीलके ।  
 स्थापयेद् विविष्ट पश्चात् पञ्चन्तोमुख इडम् ॥ २० ॥  
 शक्तिपादपरणाकृतमन्तःप्रवाहिक तथा ।  
 मूल सूक्ष्म तथा मध्ये वर्तुल कण्ठसूक्ष्मकम् ॥ २१ ॥  
 विस्तृतास्य मध्यकोलोपरि सस्थापयेत् तत ।  
 तदत्यन्तकीलके तदद् भ्राजस्वद्रावक त्यसेत् ॥ २२ ॥  
 अथ तदक्षिणापास्वरस्वित्यकीलद्वये तत ।  
 स्थापयेदन्योन्यसंघर्षं गोचक्रत्रय क्रमात् ॥ २३ ॥  
 तथं दोदीचोदिविष्ट कीलद्वयमध्यमे ।  
 कान्तपाराभ्रसत्वार्जक चुक्रद्रावक त्यसेत् ॥ २४ ॥  
 पश्चान्मणीन् यथाशास्त्र तत्तत्स्थाने नियोजयेत् ।

पूर्वोक्त आदर्श गोल के गर्भ केन्द्र में यथाविधि लगा दे, जिससे उन दानों का संघरण हो, पश्चात् उनके परिचम भाग में वातवादपरण से बने विस्तृत मुख वाले एक पिण्ड को मूलस्थ पैच में विधिवत् स्थापित कर दे, पुन फांस औत मुख वाले दृढ़ शक्तिपा दर्पण से बने अन्दर बहाने वाले सूक्ष्म मूल वीच में गोल सूक्ष्म कण्ठ वाले विस्तृत मुख वाले को मध्य कील के ऊपर रख दे, उसी भाँति उसके अन्तिम कील पर भ्राजस्वद्रावक ?—ग्रन्थक द्राव ? डाल दे और उसके दक्षिण में पार्श्वस्थित दो कीलों में स्थापित करे, पश्चात् अन्योदय—परस्पर तीन संघरण चक्र स्थापित करे, वैसे ही उत्तर दिशा में दो कीलों के मध्य में कान्त—अयस्कान्त या सूर्यकान्त ?, पारा, अध्रक के सत्र से कन्चुक द्राव—सांप की केन्द्रुमी के द्राव ? या चुक्र—चुक्र अन्तर्वेतस के द्राव में डाल दे, फिर मणियों को यथाशास्त्र उस उस स्थान में नियुक्त करे ॥ १८-२४ ॥

उक्तं हि मणिरत्नाकरे—कहा ही मणिरत्नाकर मन्त्र में—  
 भारद्वाजो साञ्जनिकस्सोर्यपिङ्गलको तथा ॥ २५ ॥  
 शक्तिपञ्चरक पञ्चयोतिर्गंभै इति क्रमात् ।  
 मणाय षड्विधा ज्ञेयाशक्तकथाकर्त्तरायन्त्रके ॥ २६ ॥ इत्यादि ॥

भारद्वाज, साञ्जनिक, सौर्य, पिङ्गलक, शक्तिपञ्चरक, पञ्चयोतिर्गंभै, ये क्रम से छँ प्रकार की मणियां शक्तयाकर्त्तरायन्त्र में जाननी चाहिए ॥ २५-२६ ॥

स्थाननिर्णयमाह स एव—बह ही स्थाननिर्णय कहता है—

शडकुम्भलस्थच (छ?) वके न्यसेत् सोम्यमणि तथा ।

कुड्यत्रिकोणमध्ये तु मणि साञ्जनिक न्यसेत् ॥ २७ ॥

विस्तृतास्यादर्शपिण्डे न्यसेत् पंज़लक मणिम् ।

नालदण्डस्थत्रिद्वय भारद्वाजमणि तथा ॥ २८ ॥

भ्राजस्वद्रावके पञ्चज्योतिर्गर्भमणि न्यसेत् ।

कान्तपारांग्रेजक चुकद्रावे शक्षिपञ्चरमिति ॥ २९ ॥

एव मणीन् स्पापयित्वा तत्त्स्थाने यथाविधि ।

आदर्शनालसयुक्तान् सर्वकोलान्तरे कमात् ॥ ३० ॥

सौम्य मणि को शंकमूलस्थ पात्र में डाल दे, साञ्जनिक मणि को भित्तित्रिकोण के मध्य में रख दे, पैङ्गलक मणि को विस्तृतास्य आदर्श पिण्ड में धर दे, पञ्चज्योतिर्गर्भ मणि को भ्राजस्व द्रावक में रख दे, शक्षिपञ्चर मणि को कान्त पारे अत्रक से पूर्ण अस्तवेतस द्राव में रखे। इस प्रकार उस उस स्थान में यथाविधि मणियों को आदर्शनाल सहित सब कीलों के अन्दर कम से स्थापित करके—॥ २७-३० ॥

तन्त्रीद सन्धारयेत् पश्चान्तूलकेन्द्राद् यथाकमय् ।

पश्चात् सञ्जालयेच्छकत्रयकील यथाविधि ॥ ३१ ॥

तेन दर्पणगोलस्थपिण्डयोशभयोः कमात् ।

परस्परघर्षणे स्यादिति वेगात् स्वभावत् ॥ ३२ ॥

तस्मात् सञ्जायते शक्षिशतकक्षयोष्टणमानत ।

अथ तच्छक्षिमादाय स्थापयित्वा यथाकमय् ॥ ३३ ॥

मणी साञ्जनिके पश्चात् तन्त्रिभ्या नालमार्गत ।

संयोजयेत् ततशक्षिस्तन्मणी लयमेष्ठते ॥ ३४ ॥

मणिगर्भस्थशक्त्या सा मिलित्वाथ स्वय पुन् ।

निस्सरेन्मणिगर्भस्थयुक्तेन्द्राद् विशेषत ॥ ३५ ॥

पश्चात् मूल केन्द्र से यथाकम तारों को झोड़ दे, पश्चात् तीन चक्रों की कील को यथाविधि चलावे उससे दर्पण गोल में स्थित दो पिण्डों का परत्वर धर्षण अति वेग से स्वभाव से हो जावे उससे सौ दर्जे की उच्छाता मान से शक्ति उत्पन्न हो जाती है फिर उस शक्ति को लेकर यथाकम स्थापित करके पश्चात् दो तारों से नालमार्ग द्वारा साञ्जनिक मणि में संयुक्त करे फिर वह शारक उस मणि में लय को प्राप्त हो जाती है। मणिगर्भस्थ शक्ति से वह मिलकर पुनः स्वयं मणिगर्भस्थ मुख केन्द्र से विशेषत निकल जावे ॥ ३१-३५ ॥

तमाकृष्य यथाशस्त्रं नालतन्त्रीमुखात् पुन ।

संयोजयेत् सीरमणी पूर्ववत् सप्रमाणत ॥ ३६ ॥

ततस्तन्मणिगर्भस्थशक्त्या सा भिशते क्रमात् ।  
 पञ्चलोतस्वभावेन व्याप्य तथैव तिष्ठति ॥ ३७ ॥  
 तत्रत्यपञ्चलोतस्सु एकलोतस्ततः परम् ।  
 योजयेन्नालतन्त्रीभ्यां भारद्वाजमणो क्रमात् ॥ ३८ ॥  
 तथैव पिञ्जलमणावेकस्ते तत्स्थैव प्रमाणतः ।  
 पञ्चज्योतिर्गर्भमणावेकस्ते हि ॥ ३९ ॥  
 एकस्तोतेमणो शक्तिपञ्चरात्ये नियोजयेत् ।  
 एवं प्रवेशिताः पञ्च शक्तयो मणिषु स्वतः ॥ ४० ॥

इसे फिर नाल तार मुख से शाक्तानुसार खींच कर पूर्ववत् सप्रमाण सौर मणि में युक्त करे किर वह मणिगर्भस्थ शक्ति से क्रमणः विभक्त हो जाती है पञ्चलोत स्वभाव से वहां पर ही व्याप कर रहती है, वहां पांच स्रोतों में उत्सर्गे आगे एक स्रोत को दो नालतारों से भारद्वाज मणि में जोड़ दे, उसी प्रकार एक स्रोत तरफ पिञ्जल मणि में एक स्रोत पञ्चज्योतिर्गर्भमणि में पुन एक स्रोत शक्तिपञ्चरात्मक मणि में नियुक्त कर दे । इस प्रकार मणियों में प्रवेश कराहूँ द्वाइ शक्तिया स्वत.—॥ ३६-४० ॥

एकंकमणिगर्भस्थशक्तिकाकृष्ट्य वेगतः ।  
 वहि-प्रसारणं पश्चात् कुर्वन्ति स्वेन तेजसा ॥ ४१ ॥  
 मणिसञ्जालतशक्तीनां नामान्यत्र यथाक्रमम् ।  
 यथोक्तमन्त्रिणा साक्षात्क्षिरप्यन्ते तथैव हि ॥ ४२ ॥  
 राजा मीर्त्वकचुण्डीरघून्यगर्भविषोदरा ।  
 हस्तयेते मणिसञ्जालतशक्तिनामान्यथाक्रमात् ॥ ४३ ॥  
 एतच्छक्तीस्समाहृत्य भ्राजस्वद्रावके क्रमात् ।  
 पूर्ववन्ध्नालतन्त्रीभ्या योजयेत् सप्रमाणत ॥ ४४ ॥  
 इमा मणिसमुद्भूतशक्तय स्वेन तेजसा ।  
 भ्राजस्वद्रावकं प्राप्य त्रेवा तत्र प्रभिद्यतेऽपि ॥ ४५ ॥

एक एक मणि के गर्भ में स्थित शक्ति को वेग से खींच कर पश्चात् तेज से बांहर प्रसारित कर देती है । मणियों में उत्पन्न शक्तियों के नामों को यथाक्रम जैसे अत्रिने साज्जात् कहे हैं जैसे ही यहां निरूपित किये जाते हैं । जो कि राजा, मौर्त्यिक, चुण्डीर, शूद्र, गर्भ, विशेषदर ये मणियों से उत्पन्न शक्तियों के नाम यथाक्रम हैं । इन शक्तियों को लेकर कम से भ्राजस्व द्रावक?—गच्छकद्रावक? में पूर्व की भाँति दो नालतारों द्वारा सप्रमाण जोड़ दे । मणि से उत्पन्न ये शक्तियां अपने तेज से भ्राजस्व द्रावक को प्राप्त कर तीन स्थानों में भिन्न भिन्न हो जाती हैं ॥ ४१-४५ ॥

अत्रिणोक्तप्रकारेण नाम तासा निरूपयते ।  
 मातुण्डरीहणी भद्रा चेति नामान्यथाक्रमम् ॥ ४६ ॥

मार्तण्डशक्तिमाकृष्य पश्चाच्छास्त्रविधानतः ।  
 संयोजयेत् कान्तपाराभ्रोर्जकञ्चुकप्रावके ॥ ४७ ॥  
 तत्रत्यकान्तशक्त्या सा मिलित्वा चञ्चला सर्ती (मति?) ।  
 अतिवेगात् समुद्दीय गगनाभिमुखी भवेत् ॥ ४८ ॥  
 तां समाहृत्य विविवशलतन्मीमुखात् पुनः ।  
 विस्तृतास्यादर्थपिण्डगम्भेन्द्रे नियोजयेत् ॥ ४९ ॥  
 सूर्याशूर खतरञ्जस्त्वशक्तिगम्भात् यथाविधि ।  
 सच्चिद्रनालदण्डस्योवर्णनालात् तत् परम् ॥ ५० ॥

अत्रिके कहे प्रकार से उनका नाम कहा जाता है । मार्तण्ड, रौद्रिणी, भद्रा ये यथाक्रम हैं । मार्तण्डशक्ति को खींच कर पश्चात् शाश्वतिधान से कान्त पारा अभ्रक दूर्घ केंचुलीद्राव या अम्लवेतस-द्राव में युक्त कर दें, वहा की कान्तशक्ति से मिल कर चञ्चल हुई अतिवेग से उठ कर गगनाभिमुखी हो जावे । फिर इसे लेकर विधि नालतार के मुख से विस्तृत्य आदर्श पिण्ड के गम्भेन्द्र में जोड़ दें, आकाशतरङ्गी—आकाशमार्णलों में रित्य शक्तिगम्भी वाली सूर्यकिरणों को यथाविधि छिद्रसहित नाल दण्ड के ऊपर वाले नाल से—॥ ४६-५० ॥

समाहृत्य विशेषण तत्रैव स्थापयेद् दृढम् ।  
 पश्चात् तत्रात्मलस्थकेन्द्रमार्णत् प्रमाणात् ॥ ५१ ॥  
 विस्तृतास्यादर्थपिण्डमुखकेन्द्रे प्रवेशयेत् ।  
 सूर्याशूरवितत्पिण्ड पश्चात् सव्याप्य वेगत् ॥ ५२ ॥  
 तदगम्भेस्थितमार्णणशक्त्या सम्मिलिता स्वयम् ।  
 आकाशाभिमुखी भूत्वा परिभ्राम्यति वर्तुलम् ॥ ५३ ॥  
 ता समाहृत्य वेगेन विमानखपथि क्रमात् ।  
 वियत्तरञ्जप्रावहमुखमध्ये नियोजयेत् ॥ ५४ ॥  
 एव कुतेथ तच्छक्तिर्योग्यमयानविनाशकम् ।  
 आकाशवीचीसञ्चातविषयकित समूलत ॥ ५५ ॥  
 आकृष्य पीत्वा वेगेन विमान रक्षति स्वयम् ।

—लेकर विशेषत वहीं पर दृढ़ स्थापित करें, पश्चात नालमूल में रित्य केन्द्रमार्ण से प्रमाण से विस्तृतास्य आदर्श पिण्डमुख के केन्द्र में प्रविष्ट कर दें, सूर्ये किरणशक्ति उस पिण्ड को व्याप्त कर वेग से उसके गम्भीर में रित्य मार्तण्डशक्ति से भिली हुई स्वयं आकाशाभिमुखी होकर गोलरूप में भूमती है उसे वेग से लेकर विमान के आकाशमार्ण में क्रमात् आकाशतरङ्गी के प्रवाहमुख के मध्य में नियुक्त करें । ऐसा करने पर वह शक्ति आकाशतरंग से उत्पन्न विमानविनाशक विषयकी को समूलतः स्वयं वेग से सर्वथा खींच पीकर विमान की रक्षा करती है ॥ ५१-५५ ॥

अथ तद्रौद्रिणीशक्तिं समाहृत्य च पूर्ववत् ॥ ५६ ॥

सयोजयेत् कान्तपाराप्रोर्जकचुकद्रावके ।  
 तस्य पाराप्रशक्तिभ्या मिलित्वा सातिवेगत ॥ ५७ ॥  
 उड्डीयेड्डीय वेगेन गगनभिमुखी भवेत् ।  
 विधिवत् ता समाहृत्य नालतन्त्रीमुखात् पुन ॥ ५८ ॥  
 शङ्कुमूलस्थच (छ ?) षकमूलकेन्द्रे नियोजयेत् ।  
 तथा विमानसञ्चारेरेखामागदि यथाविधि ॥ ५९ ॥  
 तत्रयवतात् तत्स्वशक्तिगम्भात् सुमूलकान् ।  
 आदित्यकिरणान् पश्चाद् यथाशास्त्र मरुमूलात् ॥ ६० ॥  
 समाहृत्य प्रमाणेन च (छ ?) षकाद्ये नियोजयेत् ।

उस रोहिणी शकि को लेकर कान्त पारा अध्य से पूर्ण कंचुकद्राव में पूर्व की भाँति युक्त करे उसकी पारा अध्य शकियों से वेग से मिल कर वेग से उड उड कर आकाश के अभिमुख हो जावे उसे विधिवत् नालित के मुख से लेकर शङ्कुमूलस्थित पात्रमूल केन्द्र में युक्त करे तथा विमान के सञ्चार रेखा मार्ग से यथाविधि वहाँ के बायुमण्डल—बायुमण्डल में स्थित शकिगम्भा से मूलम सूर्यकरणों की बायुमुख से यथाशास्त्र प्रमाण से लेकर पात्र के मुख में नियुक्त कर दे ॥ ५६-६० ॥

तत्समग्र तच्छक्तिव्याप्तिं त स्वेन तेजसा ॥ ६१ ॥

तत्रयरोहिणीशक्त्या मिलित्वा वेगतस्वयम् ।

गगनभिमुखी भूत्वा वेगात् सम्भ्राम्यति स्वयम् ॥ ६२ ॥

तत्रैव स्थाप्य तच्छक्तिं तन्त्रिभ्या सप्रमाणेत् ।

उदीचीपाश्वकीलस्थमूलकेन्द्रान्तरात् पुनः ॥ ६३ ॥

शङ्कुमूलस्थच (छ ?) षकमध्यकेन्द्रे नियोजयेत् ।

तदगमेस्थितरोहिण्या मिलित्वा वेगतस्वयम् ॥ ६४ ॥

आकाशभिमुखी भूत्वा परिभ्राम्यति तेजसा ।

विधिवत् ता समाहृत्य विमानपथि क्रमात् ॥ ६५ ॥

बातावर्तमुखे पश्चाद् योजयेन्नालभागतः ।

फिर उस समग्र पात्र को वह शकि अपने तेज से व्याप्त कर वहाँ की रोहिणी शकि से स्वयं वेग से मिल कर आकाश के अभिमुख होकर वेग से घूमती है वहाँ की उस शकि को दोनों तरों से सप्रमाण स्थापित करके उत्तर दिशा के पार्श्वकीलस्थ मूलकेन्द्र से फिर शङ्कुमूलस्थ पात्र के मध्य केन्द्र में नियुक्त करे । उसके गर्भ में स्थित रोहिणी से वेग से स्वयं मिल कर आकाश के अभिमुख होकर तेज से घूमती है उसे विमान के आकाशमार्ग में लेकर पश्चात् बायु के घूममुख में नालमार्ग से युक्त कर दे ॥ ६१-६५ ॥

तच्छक्तिवात्सम्बन्धविषयशक्तिं समूलतः ॥ ६६ ॥

नाशयित्वा खेटायानं स्वभाद् रक्षति स्वयम् ।

तथैव भद्रामाकृष्ण सुरघानालतः क्रमात् ॥ ६७ ॥

सयोजयेत् कान्तपाराभ्रोजंकचुकद्रावके ।  
 तस्योजंकञ्चुकशक्त्या सा मिलित्वातिवेगत् ॥ ६५ ॥  
 आकाशाभिमुखी भूत्वा चक्रवद् भ्राम्यति स्वयम् ।  
 ततस्तच्छक्तिसमाहृत्य कुड्यमूलस्थकेन्द्रके ॥ ६६ ॥  
 सतन्त्रीनालमार्गेण योजयेद् विधिपूर्वकम् ।  
 पश्चात् ले यानसञ्चारमार्गात् प्रमाणात् ॥ ७० ॥  
 तत्र रोद्रीसम्बन्धशक्तियुक्तात् सुपृष्ठमकान् ।  
 समाहृत्यार्किरणान् पिञ्जलामार्गत कमात् ॥ ७१ ॥

वह शक्ति वात सम्बन्ध विशक्ति को समूलतः नष्ट करके स्वयं विमान की रक्षा करती है, उसके प्रकार सुरधा नाल से भट्ठा को क्रम से खींच कर कान्त पारा अब्रक पूर्ण कञ्चुकद्राव में युक्त करते, उसके ऊर्जा कञ्चुक शक्ति से वह मिल कर अतिवेग से आकाश के अभिमुख होकर चक्र की भाँति स्वयं घूमती है फिर उस शक्ति को लेकर भिन्नमूलत केन्द्र में तारोंसहित नालों के मार्ग से विधिपूर्वक युक्त कर दें पश्चात् आकाश में विमान के सञ्चाररेखामार्ग से प्रमाण से वहां के रोद्री सम्बन्ध शक्तियुक्त सूक्ष्म सूर्य-किरणों को पिञ्जलामार्ग से—॥ ६६-७१ ॥

सच्छिद्रनालाष केन्द्रमूले नियोजयेत् ।  
 दण्डकेन्द्रात् पुनरस्तन्त्रीनालमार्गात् प्रमाणात् ॥ ७२ ॥  
 समाकृष्य किरणशक्तिं सम्यग् यथाविधि ।  
 त्रिकोणादशकुड्याधो दक्षकेन्द्रमूले न्यसेत् ॥ ७३ ॥  
 पश्चात् समग्र तत्कुड्य व्याप्त वेगन सा कमात् ।  
 तच्छक्त्याकर्षणात् तस्या मिलित्वा भ्राम्यति स्वयम् ॥ ७४ ॥  
 पश्चात् तां तन्त्रिनालेन सप्रमाणाद् यथाविधि ।  
 समादाय विदोषेण वाह्यवायुविवर्जिताम् ॥ ७५ ॥

छिद्रसहित नालों के नीचे केन्द्रमूल में नियुक्त करे, फिर दण्डकेन्द्र से तन्त्रीनालमार्ग से प्रमाण से किरणशक्ति को यथाविधि सम्यक् खींचकर त्रिकोणादर्पण की भित्ति से नीचे केन्द्रमूल में लगावे पश्चात् वह समग्र उस भित्ति को वेग से क्रम से न्याप कर उस शक्ति के आकर्षण से उस में मिलकर स्वयं घूमती है पश्चात् उस शक्ति को तारों के नाल से सप्रमाण यथाविधि विशेषतः वायु वायु से रहित होकर—॥ ७२-७५ ॥

कुड्यदक्षिणापादवंस्थमुखकेन्द्रे नियोजयेत् ।  
 तदगर्भकुड्यादुडीय तच्छक्त्या मिलिता सती ॥ ७६ ॥  
 परिभ्राम्यति वेगेन गगनाभिमुख यथा ।  
 तामादायाय विधिवद् विमानखपथि कमात् ॥ ७७ ॥

रोद्धधार्वतमुखे सम्यग् योजयेन्नालमार्गं ।  
 एव कृतेय तत्रीदीविषाक्ति समूलतः ॥ ७५ ॥  
 स्वतेजसा निवार्यथ विमान रक्षति स्वयम् ।  
 एव शक्त्याकर्षणदर्शणायन्त्र च तत्क्रियाम् ॥ ७६ ॥  
 यथाकास्त्रं निरूप्याय सग्रहेण यथाविधि ।  
 परिवेषकियायन्त्रमुच्यतेत्र यथाक्रमम् ॥ ८० ॥

भित्ति के दक्षिणार्द्धस्थ मुखकेन्द्र में नियुक्त करे। उस गम्भेभित्ति से—मध्यभित्ति से उड़कर उस शक्ति से मिली हुई गतात्मिकमुख वेग से भूमती है फिर उसे विवितत लेकर विमान के आकाशमार्ग में क्रम से रोटी के घूमसुख में भूमी प्रकार नालमार्ग से युक्त करे, ऐसा करने पर वह रोटी विषाक्ति को समूलत अपने तेज से निवृत्त करके स्वयं विमान की रक्षा करती है। इस प्रकार शक्त्याकर्षण दर्शणायन्त्र और उसकी क्रिया को शास्त्रानुसार संजेप से यथाविधि निरूपित करके परिवेषकियायन्त्र यहा यथाक्रम कहा जाता है ॥ ७६-८० ॥

परिवेषकियायन्त्र विचार,—परिवेषकियायन्त्र का विचार करते हैं—

तदुकं यन्त्रसर्वस्ते—वह यन्त्रसर्वस्थ में कहा है—

पञ्चवशक्तिसमायोगात् परिवेषो यथा भवेत् ।  
 तथाम्बरे विमानस्य कृत्वा शास्त्रविधानतः ॥ ८१ ॥  
 अविनाभावतस्तेनाकंकिरणाविमयो ।  
 परिवेषमुवेनैव सयोजयथ परस्परम् ॥ ८२ ॥  
 विधायाधीनता सूर्यकिरणाना यथाविधि ।  
 विमानाकर्षणे रेखामार्गातिकमण् विना ॥ ८३ ॥  
 यथा भवेत् तथा सम्यग् य करोति स्वभावत ।  
 परिवेषकियायन्त्र इति तत्सम्प्रचक्षते ॥ ८४ ॥

पांच शक्तियों के सम्बन्ध से विमान का आकाश में परिवेष जिससे हो जावे वैसे शास्त्र-विधान से अनिवार्य भाव से कक्षे सूर्यकिरणों और विमान के बीच में परिवेष मुख से ही परस्पर संयुक्त करके सूर्यकिरणों को यथाविधि रेखामार्ग के अधीन करके अतिक्रमण किए विना विमान का आकर्षण जिससे हो जावे वैसे भूमी प्रकार जो स्वभावत करता है वह परिवेषकियायन्त्र है ऐसा कहते हैं ॥८१-८४॥

नारायणोपि—नारायण ने भी कहा है—

पञ्चवशक्तिप्रयोगेण (न ?) परिवेष स्वभावत ।  
 कल्पयित्वा विमानस्य तेनाकंकिरणात् क्रमात् ॥ ८५ ॥  
 समाकृष्ट विशेषेण विमानोपरि वेगतः ।  
 संयोज्य पश्चात् तत्सूर्यकिरणाधीनतां क्रमात् ॥ ८६ ॥  
 कृत्वा सम्यग् विमानाना स्वपथातिकमण् विना ।  
 यत्प्रयच्छति सञ्चारे वेग तच्छास्त्रतः स्फुटम् ॥ ८७ ॥

परिवेषक्रियायन्त्रमिति संकीर्त्यते तुथं ॥ ५५ ॥ इति  
पाचशक्तियों के प्रयोग से विमान के परिवेष को स्वभावतः बनाकर उस से सुर्यकिरणों को क्रम से पूर्णांग से खींचकर विमान के ऊर वेग से संयुक्त करके परचात् उन सुर्यकिरणों की आधीनता को क्रम से करके—सुर्यकिरणों को क्रम से अवीन करके सम्यक् विमानों के स्वपथ के अतिक्रमण के विना जो सञ्चार में वेग प्रदान करता है वह शास्त्र से सुट् परिवेषक्रियायन्त्र विद्वानोंद्वारा कहा जाता है ॥ ५५-५६ ॥

सौदामिनीकलायामपि—सौदामिनीकला में भी कहा है—

मू० धजलभहशक्तिसयोगात् किरणाकर्षणम् ॥ इति ।

ज ज ल भ ह शक्तियों के संयोग से किरणों का आकर्षण होता है ।  
गोपथकारिका—गोपथकारिका है—

शिरीषमेघभूताराकाशाना शक्तय क्रमात् ।

शास्त्रेस्मिन् ध ज ज ल भ ह वर्णेस्साङ्केततस्स्मृत ॥ ५६ ॥

आसा सम्मेलन कृत्वा प्रयोगदम्बरे स्फुटम् ।

परिवेषोऽभवेत्सम्यगादित्यस्य यथा धने ॥ ५० ॥

तेनाकंकिरणाकर्षणं भवेनात्र सशय ॥ इति

शिरीष ?—हन्द्र ?—विद्युत् ?, मेघ, भू-प्रथिवी, तारा-प्रह, आकाश इन पार्वों की शक्तियां क्रम से इस शास्त्र में च, ज, ल, भ, ह वर्णों-अक्षरों से सङ्केतकृत की हैं । इनका सम्मेलन करके प्रयोग से आकाश में सूर्य के घनों ?—किरणों ? से परिवेष हो जावे, तिस से किरणों का आकर्षण हो जावे इस में सन्देह नहीं ॥ ५८-५९ ॥

तदुक्तं कियासारे—वह कहा है कियासार प्रथं में—

शिरीषशक्तेद्वारा भागो धनस्याष्टावितीरित ॥ ६१ ॥

भूशक्ते पश्च नक्षत्रशक्तेस्सप्त तथैव हि ।

दशान्तरिक्षशक्ते स्यादिति शास्त्रविनिर्णय ॥ ६२ ॥

शक्तया कर्षणायन्त्रे गौव सम्यग् यथाविधि ।

समाहृत्य विशेषण निर्वात स्थापयेत् क्रमात् ॥ ६३ ॥

पश्चातदृघोमयानोच्चकेन्द्रादशान्तरे स्फुटम् ।

प्रतिविम्बितसूर्यस्य प्रकाशकिरणैसह ॥ ६४ ॥

सयोजयेत् तत्पूर्वकं पश्चात्तीर्थयाविधि ।

एव कृतेम्बरे सम्यक् परिवेषो भवेद् ध्रुवम् ॥ ६५ ॥

तेनाम्बरमणेशशक्तिकिरणाकर्षणं क्रमात् ।

वेगाद् भवति तात्र पश्चाद् विमानोपरिशास्तः ॥ ६६ ॥

परिवेषमुखेनैव योजयेच्चेद् यथाविधि ।

भवेत् तत्सूर्यकिरणैस्सूत्रबद्धाण्डजादिवत् ॥६७॥

विमानाकर्षणं सम्प्रगति शास्त्रविनिर्णयं । इत्यादि ।

शिरीषशक्ति के दोभाग मेवशक्ति के आठ भाग कहे हैं भू-पृथिवी शक्ति के पांच भाग तारा-शक्ति के सात आकाशशक्ति के दरा भाग हों, यह शास्त्र का निर्णय है, शक्तयाकर्षण यन्त्र से ही भली प्रकार यथाविधि इन्हें विशेषतः स्थीर कर निर्वात स्थापित करे । १३८. विमान के ऊपर केन्द्र आदर्श के अन्दर प्रतिविमित सूर्य की प्रकाशकिरणों के साथ पूर्वोक्त पांच शक्तियों को संयुक्त कर दे ऐसा करने पर आकाश में सम्यक् परिवेष छोड़ावे उस आकाशमणि शक्ति से किरणों का आकर्षण कम से होजाता है, परिवेषमूल से ही यथाविधि युक्त करे तो सूर्य-किरणों से विमानाकर्षण सम्यक् सूत्र से बन्धे अरण्डज—पही की भाँति होजावे यह शास्त्र का निर्णय है ॥ ६१—६७ ॥

परिवेषकियान्त्रमुक्त्वा यथाविधि ॥६८॥

अथ तद्यन्त्ररचनाविधिरत्र निरूप्यते ॥६९॥

परिवेषकियान्त्र इस प्रकार यथाविधि कह कर अब उस यन्त्र की रचनाविधि यहां कही जाती है ॥ ६८—६९ ॥

तदुक्तं यन्त्रसर्वस्ये—वह कहा है यन्त्रसर्वस्य प्रत्य मै—

अथ यन्त्राङ्गाणिष्ठ ॥ अ० स० ॥ १

अब यन्त्र के अङ्ग कहे जाते हैं ।

पीठ तत्र त्रयोविशालकेन्द्राणिष्ठ च तत्येव हि ।

रेखाप्रसारणं तद्वकेन्द्रसंख्यानुसारत ॥ १०० ॥

तावदेवार्तांकीलास्तन्त्रीनालास्तयैव हि ।

त्रिवक्तनालस्तम्भश्च द्रावकाष्टकमेव च ॥ १०१ ॥

तथा मण्यष्टक द्रावप्रात्राष्टकमत परम् ।

शिरीषघनभूम्यादिशक्त्याकर्षणादर्पणा ॥ १०२ ॥

पञ्च विद्युच्छक्तिर्यन्त्र तु (त्वत् ?) पञ्चकमत परम् ।

श्रीदुम्बरावृत्तन्त्रीरध्नगर्भा सकीलका ॥ १०३ ॥

आमणीकोलकाश्चैव सतन्त्रीकीलकान्विता ।

शक्तिस्थापनापात्राणिष्ठ तत्सम्मेलनपात्रकम् ॥ १०४ ॥

धूमप्रसारणान्त्र वातसयोजक तथा ।

परिवेषकियानाल क्षीरचम्भप्रकल्पितम् ॥ १०५ ॥

पीठ, उसमें १३ केन्द्र तथा केन्द्र संख्यानुसार रेखाएँ बनाना, उतने ही धूमने वाले पेंच और तारों के नाल, त्रिवक्तनाल का स्तम्भ, ८ द्रावक, ८ मणियां, ८ द्रावक पात्र, शिरीष मेघ भू आदि शक्तियों का आकर्षण दर्पण, ५ विशुद्धशक्ति, ५ यन्त्र, नाम्बे के बने लिपटे तारों और अन्दर छिद्रवाली कीले, धूमने वाले पेंच तारों सहित कीलों से युक्त, शक्तिस्थापन पात्र, उनके मिलाने वाला पात्र, धूम फैलाने वाला यन्त्र और वातसंयोजक यन्त्र, धूष के चर्म से बना हुआ परिवेषकियानाल ॥ १००—१०५ ॥

तथाकंकिरणाकर्षणदर्पणप्रकल्पितम् ।  
 नालमेक ततो यानस्थीर्वेकेन्द्रस्य दर्पणे ॥१०६॥  
 प्रतिविभित्तूर्यस्य किरणाकर्षकाद्वतम् ।  
 नालमेक व्योमयानविशिरोमणिरत परम् ॥१०७॥  
 सन्धानकीलक सूर्येकिरणाना विमानके ।  
 इति त्रयोविशद्वाग्नुकानि स्युर्याकमम् ॥१०८॥  
 एवमुक्त्वा विमानाङ्गान्यथ तद्रचनाक्रमम् ।  
 सप्रहेण यथाशास्त्र समालोड्य प्रचक्षते ॥१०९॥  
 वितस्तिद्वादशायाम विस्तुत नावदेव हि ।  
 आदौ प्रकल्पयेत् कृष्णपिप्पलदाशणा ॥११०॥

तथा सूर्य के किरणाकर्षणदर्पण से बना एक नाल, फिर ऊर्व केन्द्र के दर्पण में प्रतिविभित्त सूर्य के किरणाकर्षक से युक्त एक नाल, विमान को शिरोमणि, विमान में सूर्य किरणों को जोड़ने वाली कील, ये २३ अङ्ग कहे हैं। इस प्रकार विमान के अङ्गों को कड़कर उनके रचना-क्रम को सचेप से शास्त्रानुसार आलोड़न करके कहते हैं। १२ बालिशत लम्बा उतना ही चौड़ा पहिले कृष्णपिप्पल की लकड़ी से बनावे ॥ १०६—११० ॥

पञ्चविशतिमादशाविरणोनावृत यथा ।  
 पश्चात् तस्मिन् त्रयोविशाकेन्द्राणि परिकल्पयेत् ॥१११॥  
 तत केन्द्रानुसारेण कुर्याद् रेखाप्रमाणणम् ।  
 रेखानुसारत केन्द्रस्थानेष्वय यथाविधि ॥११२॥  
 प्रदधिष्ठानवर्तकीलाद् स्थापयेत् सुदृढ यथा ।  
 दर्पणेन कृतान् नालान् गर्भं तन्त्रीसमन्विताद् ॥११३॥  
 केन्द्रात् केन्द्रान्तरावर्तकीलमूलावधिकमात् ।  
 रेखामार्गानुसारेण प्रत्येक योजयेत् तत ॥११४॥  
 वितस्तिपञ्चाकायाम गात्रे त्वेकवितस्तिकम् ।  
 मध्ये वितस्तिपञ्चकमःनगात्रेण समाकुलम् ॥११५॥

३५ वें आदर्श-दर्पण के बने आवरण से आवृत-टका या चिरा हुआ, फिर उसमें २३ केन्द्र बनावे, फिर केन्द्रानुसार रेखा प्रसारण करे, रेखानुसार केन्द्र स्थानों में यथाविधि घूमने वाले पेंच छड़ स्थापित करे, दर्पण से बनाए नालों को जिनके गर्भ में तार हों उन्हें केन्द्र से केन्द्र की आवधि तक क्रम से रेखामार्गानुसार अप्येक को रखे जो पांच बालिशत लम्बा मोटा एक बालिशत मध्य में द बालिशत मोटाई से युक्त हो ॥ १११—११५ ॥

तथेव कण्ठेष्ट्रादशाऽगुलगात्रसमन्वितम् ।  
 मूले वितस्तिप्रमाणणगात्रदण्डविराजितम् ॥११६॥

विस्तिदशविस्तारास्ययुक्तं मनोहरम् ।  
 सप्तविशतिमादर्थनालस्तम्भ यथाविधि ॥११७॥  
 त्रिचक्कीलेस्योदयं तन्मध्ये स्थापयेद् दृढम् ।  
 तस्येशान्यकमाददृष्टद्रावकान् दिक्षु विन्यसेत् ॥११८॥  
 तद्द्रावकाभिधानानि यथोक्तान्यत्रिणा क्रमात् ।  
 तान्येवात्र प्रवक्ष्यामि समालोच्य यथामति ॥११९॥  
 कवणाक कान्तजस्ताश्यो नागो गीरी विषन्थय ।  
 खद्योतो ज्वलनवेति वरणिता द्रावका क्रमात् ॥१२०॥

उसी प्रकार कहने में १८ अंगुल मोटा, मूल में बालिशभर मोटे दण्ड से युक्त १० बालिश चौड़े मुखवाला सुंदर ३७ वें आदर्शी से बना नालस्तम्भ यथाविधि, तोन चक्रोंवाले कोलों से युक्त करके उनके मध्य में स्थापित करे, उसके ईशान्य कम से द द्रावकों को द दिशाओं में रखे उन द्रावकों के नाम जैसे अत्रि ने कहे हैं कम से उन्हें ही यहा विचार कर यथामति कहूँगा वे हैं ‘रुद्रएक, कान्तज, ताश्य, नाग, गौरी, विषन्थय, यथोत, ज्वलन,’ ये द्रावक कहे हैं ॥ ११६-१२० ॥

विज्ञप्ति—१२१ से १२७ श्लोक अग्राप्त हैं ।

कान्तजद्रावक पारादर्शपात्रे प्रपूरयेत् ॥ १२५ ॥  
 विरिच्छ्यादर्शपात्रे य नागद्रावक तयेव हि ।  
 स्फुटिकादर्शपात्रे तु खद्योतद्रावक न्यसेत् ॥ १२६ ॥  
 बालुकादर्शपात्रे य गौरीद्राव प्रपूरयेत् ।  
 सुरग्रन्थिकादर्शपात्रे विषन्थयद्रावकम् ॥ १२७ ॥  
 पञ्चमृद्युपंणपात्रे ज्वलनद्रावक न्यसेत् ।  
 अष्टपात्रे दृष्टद्रावान् सम्पूर्य विधिवत् क्रमात् ॥ १२८ ॥  
 उक्ताष्ट्रिदिक्षु विधिवत् विन्यसेत् मुहूर्ण यथा ।  
 अष्टदिक्षवष्टप्रावस्थाष्टद्रावकेष्वध क्रमात् ॥ १२९ ॥  
 सयोजयेदष्टमणीन् मणिप्रकरणेऽरितान् ।  
 तेषा नामानि वक्ष्यामि समालोच्य यथामति ॥ १३० ॥

कान्तज द्रावक को पारादर्शपात्र में भर दे, नागद्रावक को विरिच्छ—आदर्श पात्र में, खद्योत-द्रावक को स्फुटिकादर्श पात्र में रख दे, गौरीद्रावक को बालुकादर्श पात्र में, विषन्थयद्रावक को सुरग्रन्थिकादर्श पात्र में, ज्वलनद्रावक को पञ्चमृद्युपंणपात्र में, भर कर कम से उक्त आठ दिशाओं में रख दे । आठ दिशाओं में आठ पात्रय आठ द्रावकों में नीचे के कम से मणिप्रकरण में कही आठ मणियों को संयुक्त करे, उनके नाम विवेचन करके यथामति कहूँगा ॥ १२८-१३० ॥

तदुक्तं मणिप्रकरणे—वह कहा है मणिप्रकरण में—

धूमास्यो घनगर्भस्थ शल्याकशारिकस्तथा ।  
 तुषास्यस्सोमकशशङ्गोशुपश्चेत्यष्टवा स्मृता ॥ १३४ ॥  
 मणीना नामधेयानि एवमुक्त्वा यथाकमम् ।  
 विनियोग प्रवक्ष्यामि तेषा शास्त्रोक्तवर्तमना ॥ १३५ ॥  
 रुदण्डावे तु धूमास्यमणि मध्ये विनियिपेत् ।  
 तथैव कान्तज्ञावे घनगर्भमणि न्यसेत् ॥ १३६ ॥  
 कार्ण्यद्वावेय शल्याक शारिक नागद्रावके ।  
 गौरीद्रावके तुषास्य च शङ्गं ज्वलनद्रावके ॥ १३७ ॥  
 विषयद्वावकेय सोमक तद्वदेव हि ।  
 ख्यातद्रावके पश्चादशुपाल्यमणि क्रमात् ॥ १३८ ॥  
 एवमष्टमणीनष्टद्रावकेषु नियोजयेत् ।  
 पश्चात् तेषा पुरोभागे समरेखान्तरे क्रमात् ॥ १३९ ॥  
 स्थापयेद् विधिवच्छुद्धान् शक्त्याकर्षणादपर्णान् ।  
 भरद्वाजोक्तनामानि तेषामत्र यथाकमम् ॥ १४० ॥  
 प्रवक्ष्यामि समालोच्य सप्रहेण यथामति ॥ १४१ ॥

धूमास्य, घनगर्भ, शल्याक, शारिक, तुषास्य, सोमक, शङ्ग, अशुप ये आठ प्रकार की कही हैं । यथाकम मणियों के नाम कहे हैं उनके विनियोग के शास्त्रोक्त मार्ग से कहूँगा । धूमास्य मणियों को तो सुबण्ड द्राव में ढाल दें, घनगर्भ मणियों को कान्तज्ञ द्राव में, शल्याक मणियों को कार्ण्यद्वावक में, शारिक मणियों को नागद्राव में, तुषास्य मणियों को गौरीद्रावक में, शङ्गमणि को ज्वलनद्रावक में, सोमक मणियों को विषयद्वावक में, अशुप मणियों को ख्यात द्राव में । इस प्रकार आठ मणियों को आठ द्रावकों में नियुक्त करे फिर उनके सामने वाले भाग में समान रेखान्तर में क्रम से विधिपूर्वक शुद्ध दर्पणों को स्थापित करे । भरद्वाज के कहे उनके नाम यथाक्रम विवेचन कर संचेप से यथामति कहूँगा ॥ १३४-१४१ ।

तदुक्त दर्पणप्रकरण—वृद्ध कहा है दर्पणप्रकरण में—

तारास्योपवनास्यश्च धूमास्यो बाहुणास्यक ।  
 जलगर्भोग्निमित्रश्च छायास्यो भानुकण्ठक ॥ १४२ ॥  
 इति दर्पणानामानि कीर्तितान्यष्टवा क्रमात् ।  
 एवमुक्त्वाऽन्नामानि दर्पणाना यथाक्रमात् ॥ १४३ ॥  
 ग्राष तेषा यथाशास्त्र विनियोगक्रमोच्यतेष्व ।  
 धूमास्यमणिरेखाया विहायाथ षड्गुलम् ॥ १४४ ॥  
 तारास्यदर्पण तत्र मणोरभिमुख यथा ।  
 स्थापयेद्वृद्धप्रदेशे कीलकपुकशलाक्या ॥ १४५ ॥

घनगर्भमणे प्रान्तरेखायामणि पूर्ववत् ।  
 स्थापयेत् पवनास्थास्थदर्पणा मुट्ठ यथा ॥ १४६ ॥  
 घूमास्थदर्पणा शल्याकरेखाया तथेव हि ।  
 वारुणास्थदर्पणा तु रेखाया शारिकामणे ॥ १४७ ॥  
 तथा सोमरेखाया जलगभृत्यदर्पणाम् ।  
 तुपास्यमणिरेखायामनिमित्रास्थदर्पणाम् ॥ १४८ ॥

तारास्थ, उपवनास्थ, घूमास्थ, वारुणास्थ, जलगर्भ, अग्निमित्र, छायास्थ ये आठ प्रकार के दर्पण नाम कहे हैं । इस प्रकार दर्पणों के यथाक्रम नाम कह कर उनका यथाशास्त्र विनियोग कर्म कहा जाता है । घूमास्थ मणि की रेखा में छ अ गुल छोड़ कर तारास्थ दर्पण को मणि के सम्मुख ऊपर प्रदेश में कीज ल से युक्त शालाका से रखें, चनार्भ मणि की प्रान्त रेखा में पवनास्थ दर्पण को स्थापित करे, घूमास्थ दर्पण को शल्याक मणि की रेखा में तथा वारुणास्थ दर्पण को शारिकमणि की रेखा में तथा जलगर्भ नामक दर्पण को सोमक मणि की रेखा में अग्निमित्र नामक दर्पण को तुषास्थ मणि की रेखा में सीध में रखे ॥ १४२-१४८ ॥

छायास्थदर्पणा शङ्खमणिरेखान्तरे तथा ।  
 अ शुपमणिरेखाया भानुकण्ठदर्पणाम् ॥ १४६ ॥  
 एव क्रमेण विधिवत् पूर्वोक्तेनैव वर्तमना ।  
 स्थापयेच्छुक्त्याकर्षणात् मुट्ठान् क्रमात् ॥ १५० ॥  
 अथ तत्पश्यमि केन्द्रे शक्तितन्त्रे भिवर्णितम् ।  
 नवम स्थापयेद् विद्युच्छक्तियन्त्र सकीलकम् ॥ १५१ ॥  
 अथ ताम्रावर्तन्त्रीन् चर्मपञ्चके वेष्टितान् ।  
 प्रमारयेच्छुक्त्यक्यन्त्रात् सर्वत्र विधिवत् समम् ॥ १५२ ॥  
 त्वक्पञ्चकस्य नामानि सग्रहेण यथामति ।  
 क्रियामारोक्तरीत्यात्र कथ्यत्तेन्विष्य च क्रमात् ॥ १५३ ॥  
 गे (वे ?) षडाकूर्मशब्दाख्यशब्दनकाणा च यथाक्रमम् ।  
 चर्माणि पञ्च प्रोक्तानि मुनिभिश्शास्त्रवित्तम् ॥ १५४ ॥

छायास्थ दर्पण को शङ्ख मणि की सीध में तथा भानुकण्ठ दर्पण को अशुप मणि की रेखा में रखे । इस प्रकार विधिपूर्वक पूर्वोक्त मार्ग से शक्त्याकर्षण दर्पणों को स्थापित करे । किं उनके पश्चिम केन्द्र में शक्तितन्त्र में वर्णित नवम क्रियान्—शक्तित यन्त्र को कीलसहित स्थापित करे, पुन ताम्बे से घिरे तारों को पाच चर्म में लिपटे हुओं को शक्तित यन्त्र से विधिवत् समानरूप में प्रसारित करे, पांच चर्मों के नाम संक्षेप से यथामति क्रियासार प्रथ की रीति से यहां स्लोजकर कहे जाते हैं । गोण्डा, कछुवा, श्वासु, शशा, नाका यथाक्रम पांच चर्म शास्त्रमुनियों ने कहे हैं ॥ १४६-१५४ ॥

हस्तलेख रजिस्टर २, कापी मंड़वा ७—

त्वद्निर्णयाधिकारेषि—त्वचा के निर्णय-अधिकार में भी कहा है—

आसनार्थ द्रावकाणा तन्त्रीणा वेष्टनाय च ।

उच्च चर्माणि शास्त्रे तु प्रोक्तानि ज्ञातवित्तम् ॥ १ ॥

गेण्डाकूर्मश्वालुशशनकाणा च यथाक्रमम् ।

चर्माणि पञ्च प्रोक्तानि वेष्टनासननिर्णये ॥ २ ॥ इत्यादि ॥

विमान में आसनर्थ और द्रावकारों के लपेटने के लिए पांच चर्म शास्त्रों में विशेष ज्ञानी जनों  
ने कहे हैं ; गेण्डा, कछुवा, कुना, चूहा शश, मगर के यथाक्रम पांच चर्म वेष्टन आसन के निर्णयप्रसंग  
में कहे हैं ॥ १-२ ॥

चर्मवेष्टितन्त्रीभिविद्युच्छवित्प्रसारणम् ।

कुर्याच्चास्त्रानुसारेण समयोचितकर्मसु ॥ ३ ॥

आमरणीकीलक पश्चात् स्थापयेद् द्वादशान्तरे ।

एतत्सञ्चालनात् सर्वकेन्द्रीकीलप्रबालनम् ॥ ४ ॥

यथा भवेत् तथा सम्यक् शास्त्रहृष्टेन वर्तमना ।

अथ तच्चलनमार्गमनुमत्य यथाविधि ॥ ५ ॥

चर्म से जिरटे तरों से चिद्युन्—शक्ति का प्रसार शास्त्रानुसार समयोचित कार्यों में करे,  
द्वादश ( वातिश ) के अन्तर पर या १२ कीलों के मध्य आमणी—युमाने बाली कील स्थापित करे इसके  
सञ्चालन से सब केन्द्र कीलों का प्रबालन जिससे हो जावे वैसे सम्यक् शास्त्रहृष्ट मार्ग से उनके चलन-  
मार्ग का यथाविधि अनुमरण करके—॥ ३-५ ॥

नवमे चाष्टमे केन्द्रे दशमेय त्रयोदशे ।

द्वादश्याङ्गे षोडशे पञ्चदशे कादशकेन्द्रके ॥ ६ ॥

एतेष्वष्टु केन्द्रे तु तत्त्रेखानुसारत ।

शक्तिस्थापनपात्राणि स्थापयेत् सुटु यथा ॥ ७ ॥

एवमष्टु केन्द्रे तु शक्तिपात्राण्ययाक्रमम् ।

सस्थाप्य पञ्चात् तत्सम्मेलपात्रं यथाविधि ॥ ८ ॥

त्रयोदिविशत्केन्द्रेरेखावर्तकीलमुखे न्यसेत् ।  
अथ तद्विशिष्टे पाइवे एकोनविशकेन्द्रके ॥ ६ ॥

वातसंयोजक पात्र स्थापयेत् सुट्ठु यथा ।

नोवे आठवें दशवें बारहवें सोलहवें पन्द्रहवें ग्यारहवें केन्द्र में, इन आठ केन्द्रों में उस उस रेखानुसार शक्तिव्यापन यत्र सुट्ठु क्रम में स्थापित करे । इस प्रकार आठ केन्द्रों में शक्तिपात्र यथाक्रम स्थापित करके पश्चात उनके सम्मेलन पात्र को भी यथाविधि तेहवें केन्द्र रेखावर्तकीलमुख—रेखा पर धूपने वाले देव के मुख में लगा दे । फिर दक्षिण पार्श्व में उड़ीसवें केन्द्र में वातसंयोजक यन्त्र को सुट्ठु स्थापित करे ॥ ६-६ ॥

तदुक्तं यन्त्रसर्वस्वे—वह यन्त्रसर्वस्त्र प्रथ में कहा है—

विद्युतन्त्रीसमायोगाच्छ्रुतलिङ्गप्रमाणात् ॥ १० ॥  
भ्राम्यमारणे पञ्चचक्रस्सयुत मध्यकेन्द्रके ।  
पूर्वपञ्चमकेन्द्रस्य मुखभागे यथाक्रमम् ॥ ११ ॥  
सभस्त्रिकादण्डनालयुग्मकीलंविराजितम् ।  
वातकोशद्याविष्ट्रमायत्रयसमन्वितम् ॥ १२ ॥  
वातस्तम्भनपद्वक्तीलकेस्मुविराजितम् ।  
तथा प्रसारणीनालकीलकद्ययमण्डितम् ॥ १३ ॥  
वेगातिवेगसूक्ष्मातिसूक्ष्मान्तादिकीलके ।  
सचककैर्भ्रजिमान कमठाकारवत् स्थितम् ॥ १४ ॥  
भारद्वयसमयुक्तमुर्ध्वं चक्रविराजितम् ।  
वातसंयोजकयन्त्रमित्युच्यते बुधे ॥ १५ ॥ इत्यादि ॥

विशुन्—तारों के सम्बन्ध से सौ छिप्री माप से घुमाये हुए—घमते हुए पांच चक्रों से संयुक्त मध्य केन्द्र में पूर्व पश्चिम केन्द्र स्वमुख भाग में यथाक्रम भस्त्रिका दण्ड की दो नालों की कीलों से विराजित दो वात कोश में आविष्ट तीन मुखों से युक्त वातस्तम्भन छ चक्र कीलों से सुविराजित तथा प्रसारणी—वातप्रसारणी नाल की दो कीलों से सुविराजित चक्रसहित वेग अतिवेग सूक्ष्म अतिसूक्ष्म शान्त आदि कीलों से प्रकाशमान कमठाकार कच्छुवे या थंडे के आकार की भाँति स्थित दो भागों से युक्त ऊपर चक्रवाला वातसंयोजक यन्त्र दुद्धिमार्नों द्वारा कहा जाता है ॥ १०-१५ ॥

धूमप्रसारणयन्त्रविचार—धूमप्रसारणयन्त्र विचार प्रस्तुत करते हैं—

एवमुक्तवा वातसंयोजकयन्त्रमत परम् ।

धूमप्रसारणयन्त्र सप्रेहण निरूप्यते ॥ १६ ॥

आस्थयत्रये पञ्चगम्भकोशं (श ?) शक्रावर्ते (के ?) युर्तम् ।

कीलकत्रयसयुक्त शक्तिनालेन वेष्टितम् ॥ १७ ॥

धूमकुन्मणिसयुक्तपञ्चद्रावसमाकुलम् ।  
 मथनोन्मथनचकद्वयकीलविराजितम् ॥ १५ ॥  
 धूमकोशाद्वयेषुं कृ भस्त्रनालेन सयुतम् ।  
 धूमप्रसारणालमुभकीलविराजितम् ॥ १६ ॥  
 एतलव्याप्तयुक्त यन्त्र धूमप्रसारणम् ।  
 एतद्यन्त्रं विशितमे केन्द्रे सस्थापयेद् ददम् ॥ २० ॥  
 धूमप्रसारण यन्त्रमेवमुक्त्वा तत परम् ।  
 परिवेषकियानालस्वरूप कथ्यते क्रमात् ॥ २१ ॥  
 पञ्चक्षीराम्बिकापटकवल्कलद्वयनिमितम् ।  
 क्षीरिकापटमित्युक्त यानकार्यक्षम मृदु ॥ २२ ॥  
 तेन निर्मितनाल यतदेवात्र विशेषत ।  
 परिवेषकियानालमिति सम्यद्निरूप्त्यते ॥ २३ ॥

इस प्रकार वातसंयोजक यन्त्र कहकर इससे आगे धूमप्रसारण—धूआं छोड़नेवाला यन्त्र संक्षेप में निरूपित किया जाता है । तोन मुख्याले पांच गर्भकोशाले वातचकों से युक्त तीन कीलों से युक्त शक्तिनाल से लपेटा हुआ धूम करनेवाली मणि से संयुक्त पाच द्राव (ऐसिड) से पूर्ण मथन उन्मथन दो चकों की कीली से विराजित दो धूमकोशों से युक्त भस्त्रनाल से संयुक्त धूमप्रसारण नाल मुखकील से युक्त हो, इन लक्षणों से युक्त यन्त्र धूमप्रसारण है । इस यन्त्र को वीसर्वे केन्द्र में दृढ़ संस्थापित करे । धूमप्रसारण यन्त्र इस प्रकार कहकर उससे आगे परिवेषकियानाल का स्वरूप क्रम से कहे जाते हैं । पञ्च क्षीरा छ अविका (आगे आने वाली) दोनों वल्कल (आगे कहे जाने वाले) से बना क्षीरिकापट यानकार्य में समर्थ कहा, उससे बना नाल जो है वही यह विशेषत, परिवेषकियानाल सम्यक् निरूपित किया जाता है ॥ १६—२२३ ॥

उक्तं हि क्षीरीपटकल्पे—क्षीरीपटकल्प में कहा है—

दुर्घ्रप्रणालीपटपादपाश पयोध (द ?) री पञ्चवटी विरच्छिव  
 वृक्षेषुतक्षीरिकावृक्षवर्णे इमा पञ्चक्षीरदृक्षा क्रमेण ॥ २४ ॥  
 उक्ता प्रशस्ता इति क्षीरवस्त्रक्रियाविधि शास्त्रविदा वरिष्ठै ॥ २५ ॥

दुर्घ्रप्रणाली ? पटपादप—सिम्भल ?, पयोधरी—तारियल वृक्ष ? या पयोविदारी—क्षीर विदारी ? रञ्जवटी—विल्व पीपल बढ़ अशोक गूलब, विरच्छि ? वृक्षों में उक्त क्षीरिका वृक्षत्रयों में ये पांच क्षीरवृक्ष क्रम से श्रेष्ठ शास्त्रवेच्छा जनों ने क्षीरवस्त्र क्रियाविधि में प्रशस्त कहे हैं ॥ २४—२५ ॥

पटप्रदीपिकायामणि—पटप्रदीपिका में भी—

उक्तेषु क्षीरदृक्षेषु क्षीरिकापटकर्मणि ।  
 पयोध (द ?) री पञ्चवटीविरच्छि: पटपादप ॥ २६ ॥

दुष्प्रणालिका चेति पञ्चेमा क्षीरपादपा ।

सुप्रशस्ता इति प्रोक्ताशास्त्रे तु ज्ञानवित्तम् ॥२७॥ इत्यादि

क्षीरपटकम् में उक्तक्षीरयज्ञों में पयोदरी-नारियलवृत्त ? या पयोदरी-पयोचिदारी-क्षीरचिदारी ? पञ्चवटी-विलव शीघ्रल वट अशोक गूत्र, विरच्छि ?, पटपादप-सिम्बल ? दुष्प्रणालिका ? ये पांच क्षीरवृत्त शास्त्रों में ऊँचे विद्वानों ने सुप्रशस्त कहे हैं ।

अभिकापटक्मुक्तं क्रियासारे—इस अभिका क्रियासार प्रथम में कहे हैं—

गोदाकन्दकुरङ्गकनिर्यामान्दोलिकावियत्सारम् ।

लविकपुष्टकमामलमिति शास्त्रे व्यम्बिकापटकम् ॥२८॥

एतत्सम्मेलनतः पञ्चक्षीरेतु गणितमार्गेण ।

प्रभवेत् क्षीरीवसनशुद्धसंहृष्टोतिमृदुलश्च ॥२९॥ इत्यादि ॥

गोदाकन्द-गोदासकन्द-दुर्गमध्यवैर, कुरङ्ग के निर्याम-अकर्कारोद ?, आदोलिकावियत्सार ?, लविकापुष्टक ?, क्षमाल ?, शास्त्रों में अभिकापटक हैं । पाच क्षोरों में गणितरीति से इनके मिलाने से क्षीरवस्त्र सुदृढ़ हो जाते ॥ २८—२९ ॥

वल्कलदृष्ट्यमुक्तमगतत्त्वलहर्याम्—दो वल्कल कहे हैं अगतत्त्वलहरी में—

शारिकाश्च पञ्चमुखी वल्कलान्त यथाक्रमम् ।

उक्तास्त्यु पञ्चसाहस्रवल्कलाशास्त्रवित्तम् ॥३०॥

तेतु मिहिकपञ्चाङ्गवल्ककद्यमेव हि ।

विमानसयोजनाहृ क्षीरिकापटनिर्णये ॥३१॥

अत्यन्तयेष्ठिमित्याहृ पटलतत्त्वविदा वरा ॥ इत्यादि ॥

शारिका-शारी—मुख्यतुरुग्म आदि पञ्चमुखी पञ्चमुख—वासा के वल्कलपयन्त यथाकम कहे हैं । पाचसाहस्र वल्कल शास्त्रवेत्ताओं ने कहे हैं उनमें मिहिक वासा या केली पञ्चाङ्ग वल्कल दोनों विमान संयोग के योग्य क्षीरिकापट—पटनिर्णय में अत्यन्त श्रेष्ठ पटलतत्त्ववेत्ताओं ने कहे हैं ॥ ३०—३१ ॥

पटस्वरूपमुक्तं क्रियासारे—पटक्रियासार प्रथम में कहा है—

दुष्प्रणालिकाक्षीरभागमत परम् ।

पटवृक्षक्षीरभागा दश प्रोक्तास्तथा क्रमम् ।

पयोदरीक्षीरभागासप्त इत्युच्यते तथा ॥३३॥

क्षीरस्याश्वादशाश्वस्यात्पञ्चवट्या यथाक्रमम् ।

द्वादशाश विरचिक्षीरमुक्त शास्त्रत क्रमात् ॥३४॥

एवमुक्तवा क्षीरिकाशान् सरूप्याशास्त्रतस्फुटम् ।

अथेदानी यथाशास्त्र क्षीरिकापटनिर्णये ॥३५॥

दुष्प्रणालिका का दूध ८ भाग, पटवृत्त का दूध १० भाग पयोदरी का दूध ७ भाग पञ्चवटी का दूध १८ भाग विरच्छि ( दूधवाला वृत्त ) का दूध १२ भाग शास्त्र से क्रमशः कहा है । इस प्रकार

जीरीबूँझों के दूध संख्या से शास्त्र से सुट कहकर अब जीरिकापटनिर्णय में—॥ ३२-३५ ॥

अभिवकापट्कभागाशान् संख्यातसम्प्रचक्षते ।  
गोदाकन्दस्य भागाशा दश इत्यभिवर्णिता ॥ ३६ ॥  
कुरञ्जकनिर्णयाशा प्रोक्तास्सप्तदश कमात् ।  
आन्दोलिकाविवत्सारभागा पञ्चदश तथा ॥ ३७ ॥  
लविकस्य द्वादशाशा पृष्ठकाशास्तु विशिति ।  
धमामलाशा पञ्चदश इति शास्त्रेण निरिता ॥ ३८ ॥  
अभिवकापट्कभागाशानिर्णयुक्त्वा शास्त्रत कमात् ।  
वल्कलद्वयभागाशानिदानी सम्प्रचक्षते ॥ ३९ ॥

६ अभिवकार्यों के भागों को संख्या से कहते हैं । गोदाकन्द के वरिष्ठ किए १० भाग, कुरञ्ज निर्णय ७ कहे हैं, आन्दोलिकाविवत्सार के १५ भाग, लविक १२, पृष्ठन के नो २० भाग, क्षमामल के १५ भाग शास्त्र से निर्णय किए हैं । अभिवकापट्क भागों को कहकर दो वल्कल के भागों को अब कहते हैं ॥ ३६—३९ ॥

तदुक्तं शणनिर्णयचन्द्रिकायाम्—वह कहा है शणनिर्णयचन्द्रिका में—

सिहिकावल्कलस्थाष्टविशद्वागास्तर्थं व हि ।  
पञ्चाङ्गवल्कलस्थाष्टादश भागा इतीरिता ॥ ४० ॥  
पञ्चक्षीराभिवकापट्कवल्कलद्वयमेव च ।  
एतेषा विधिवत् तत्तद्वागसंख्यानुसारत ॥ ४१ ॥  
यथावत्समेल्य पाकाधानयन्त्रमुखे क्रमात् ।  
क्षीरिकापटनिर्णयांकलोक्तेनैव वर्तमना ॥ ४२ ॥  
वार वार पाचित्वा मर्दयित्वा पुनः पुनः ।  
कृत्वा द्वादशस्सकारात् पश्चाद् द्रावकदुर्वेकम् ॥ ४३ ॥  
पटगर्भक्रियायन्त्रमुखे सयोजयेत् तत ।  
क्षीरिकापटनिर्णय भवेदेव कृते ध्रुवम् ॥ ४४ ॥ इत्यादि ॥

सिंहिका के वल्कल—छाल का २८ भाग तथा पञ्चाङ्ग वल्कल के १८ भाग कहे जीरिभिवका ५ भाग दोनों वल्कल के ६ भाग इनके विधिवत् उस उस भाग को संख्यानुसार यथावत् मिलाकर पाकाधान-यन्त्रमुख में क्रम से जीरिकापटनिर्णयांकल्प में कहे भाग के अनुसार वार वार पकाकर पुनः पुनः मर्दन करके १२ संकार करके फिर द्रावकपूर्वक पटगर्भक्रियायन्त्रमुख में संयुक्त करे जीरिकापटनिर्णय हो जावे ऐसा करने पर निश्चय—॥ ४०-४४ ॥

परिवेषकियानालमेतत्पटविनिर्मितम् ।  
कीलीप्रचालनाद् धूमो यानमावरयेद् यथा ॥ ४५ ॥

विमानमध्यकेन्द्रस्थाकुत्तकीलाद् यथाविधि ।  
 यानवाह्ये प्रदेशे तु अनुलोमविलोमत ॥ ४६ ॥  
 वेष्टयेद् विधिवत् सम्यक् कीलकैस्सुट्ठ यथा ।  
 परिवेषकियानालमित्युक्त्वा शास्त्रत स्फुटम् ॥ ४७ ॥  
 किरणाकर्णणादर्शनालमद्य निरूप्यते ॥ ४८ ॥

पट से निर्मित यह परिवेषकियानाल कीली चलाने से धूवा विमान को ढकेलता है विमान मध्यकेन्द्रस्थ धूमनेवाली कील से यथाविधि विमान के बाहिरी प्रदेश में हो अनुलोम विलोम से कीलों से सम्यक् विधिवत् लपेटे, शास्त्र से स्फुट्ठा में परिवेषकियानाल कहकर किरणाकरण आदर्शनाल अब निरूपित करते हैं ॥ ४४—४८ ॥

तदुक्तं नालिकानिर्णये—वह कहा है नालिकानिर्णय में—

पञ्चोत्तरत्रिशतदर्पणोदशाश कांडोलिकाभरणसत्त्वः पञ्चभागम् ।  
 सर्पास्यपाटवसुरज्ञिक्षसन्त्वयट्क हैरण्यकान्तजटसः रचतुष्टय च ॥ ४९ ॥  
 शुद्धीकृत टड्काएमष्टभाग सिङ्जाणसत्त्व वरकुण्जलद्रवम् ।  
 आ (मा ?) वृण्णचूर्णं मणिकुड्मलास्यादश च क्षारत्रय बालुका च ॥ ५० ॥  
 सुरज्ञिकासत्त्वविरञ्जिपिष्ट घोणाशमकृष्णाभ्रकसत्त्वक च ।  
 शैलूपसत्त्व वरकुड्मलद्रवम्, एते कमात् द्वादश वस्तु वर्णितम् ॥ ५१ ॥  
 नक्षत्रवालांकुमुनियाष्टशलाभिनरुद्रा वमुराशिपञ्च ।  
 एव कमाद द्वादशवस्तुभागानाहृत्य शुद्धात् विधिवद् यथाक्रमम् ॥ ५२ ॥  
 भेकास्यप्रयामुखरन्धनाले सम्पूर्णभेकोदरकुण्डमध्ये ।  
 सस्थापयेद् वेगेन द्विपक्षभस्त्रया सगालयेत् कद्यशतव्रयोप्त्तात् ॥ ५३ ॥  
 पश्चात् समाहृत्य च तद्रस वर सम्पूरयेद् दर्पणायन्त्रनाले ।  
 एव कृते किरणाकर्णणाल्यादर्शादर्शो भवेत् सूक्ष्मरूप च शुद्धम् ॥ ५४ ॥ इत्यादि

तीन सौ पाँचवें दर्पण के १६ भाग कांडोलिकाभरणसत्त्व ? पांच भाग, सर्पास्यपाटव सुरज्ञिकासत्त्व ?—सर्पाहृत्य—नालकेसर, सुरज्ञिका—सुरज्ञिका—भूर्वलता द्विभाग, हैरण्यकान्तजटसार ?—हैरण्य—कौड़ी, कान्त—सूर्यकान्त, जटा—जटामासी का सार ४ भाग, शुद्ध किया सुड्गां द्व भाग, सिङ्गाण ? सिङ्गाण—लोह-किटु ? का सत्त्व, अच्छा कुञ्जललग्नुन का त्राव, आत्रण—कात्रण—गम्भत्रण का चूर्ण, कुड्मलाश्यमणि—पद्मरागमणि ? का आदर्श, तीनों ज्ञार—सउजीज्ञार यवज्ञान नौसादर और यातु-रेत, सुरज्ञिकासत्त्व, विरञ्जिकी विट्ठी या चूर्ण, घोणाशमकृष्णाभ्रकसत्त्वक—घोणाशमनामक कुण्डा भ्रकुड का सत्त्व, शैलूपसत्त्व—विल्व का सत्त्व, वरकुड्मलद्रव, क्रम से ये १२ वस्तुएँ कही हैं । जो कि २८, ५, ६, ३ या ७, ३, ८, ७, ३, ११, ८, १२, ५ इस क्रम से १२ वस्तुओं के भागों को लेकर विधिवत् भेकास्य—मेहडकुमुख नामक मूष्मासुरज्ञिद्रवाले नाल में भरकर भेकोदरकुण्ड के मध्य में संस्थापित करे वेग से दो पक्षभवासे तीन सौ द्वंज की उच्चाता से गला दे । पश्चात् उस अच्छे गले रस को लेकर दर्पणायन्त्रनाल में भर दे । ऐसा करने पर सूक्ष्मरूप किरणाकर्णणामक हो जावे ॥ ४८—५४ ॥

यदेतदर्पणकृतनाल तच्छास्त्रत स्फुटम् ।  
 किरणाकर्षणादर्शनालभित्युच्यते बुधे ॥ ५५ ॥  
 यन्त्रस्योद्यमुले पश्चान्नालभेतन्नियोजयेत् ।  
 किरणाकर्षणादर्शनालमुक्त्वा यथाविधि ॥ ५६ ॥  
 प्रतिबिम्बाकंकिरणाकर्षणादर्शनालकम् ।  
 विविच्यतेऽत्र विधिवत् सप्तहेण यथामति ॥ ५७ ॥

जो यह दर्पण से बना नाल शास्त्र से स्फुट है किरणाकर्षणादर्शनाल बुद्धिमानों के द्वारा कहा जाता है । पश्चात् यन्त्र के ऊपरिमुख में इस नाल को युक्त करे किरणाकर्षणादर्शनाल यथाविधि कहकर प्रतिबिम्बकिरणाकर्षणादर्शनाल का विविच्यत् संग्रह से विवेचन करते हैं ॥ ५५ - ५७ ॥

तुक्तं नालिकानिर्णये—यह बात नालिकानिर्णय में कही है—

कूष्माण्डसत्त्वं कुडुहिंचिद्राव द्विचककन्दद्यक्षारसत्त्वकम् ।  
 पञ्चवास्यमूलत्रयक्षारमीर्यं चन्द्रद्रवं चौलिकसारसत्त्वम् ॥ ५८ ॥  
 द्वाविशदुत्तरशतादर्शकं च श्वेताभ्रसत्त्वं शकरा टङ्गण च ।  
 गोरीमुखं वैयुक्तपृष्ठशत्यकं गोदास्यदन्तं वरनागपारदम् ॥ ५९ ॥  
 एते पदार्थं पञ्चवदश कमेण सम्यक् प्रोक्तास्स्युशशास्त्रन्त्वविद्धि ।  
 बाणांकवेदज्ञवलनाम्भुधिर्णु गोरुद्वौवर्णप्रहराशिविशति ॥६०॥  
 अष्टादशद्वादशपञ्चविशतिस्तेषा विभागकम् इत्युदीरित ।  
 एतान् पदार्थान् पञ्चदशातिशुद्धान् समाहृत्य सवर्गिकमूषिकायाम् ॥६१॥

कूष्माण्ड-पेटाकदू का सत्त्व, कुडुहिंचि-कुडुहुआ-छोटा करेला, द्विचककन्दद्यक्षारसत्त्व ?, पञ्चवास्यमूलत्रयक्षार ? मौर्य-मौर्धी-मेडासिंगी का सार, चन्द्रद्रव-कवीलारस, चौलिकसारसत्त्व-जूलिक-केले के सार मध्यभाग का चाता । एकसौ वाईसवें आदर्श, श्वेत अध्रक का सत्त्व, शकरा-पत्थर का चूरा, सुदागा, गौरीमुख-मझीठ-मूल ? वैयुक्तपृष्ठशत्यक-चांस की पीठ के तन्तु, गोदास्यदन्त ?—अच्छा सीसा, परा ये १५ पदार्थ कम से शास्त्रविवेत्ताओं ने सम्यक् कहे हैं । ५, १०, ४, ३, ७, २, ११, ४, ६, १२, २०, १८, १२, ५, २० उन कहे विभागकम में कहे हैं । इन १५ शुद्ध पदार्थों को लेकर संवर्गिकमूषा बोतल में—॥ ५८—६१ ॥

सम्पूर्णवर्गिककुण्डमध्ये सस्थाप्य पश्चात् सुरघात्यभस्त्रया ।  
 सगलयेत् पञ्चदशोत्तरप्रिशतोष्णकद्यादतिवेगत कूमात् ॥६२॥  
 पञ्चात्समाहृत्य विशुद्धतद्रस सम्पूरयेद दर्पणयन्त्रनालके ।  
 एवं कृते शास्त्रविवानतो भवेद् विम्बाकंघृण्याकर्षणदर्पणम् ॥६३॥  
 प्रत्यन्तसूक्ष्मं सुहृदमेतद् दर्पणविनिर्मितम् ।  
 विम्बाकंकिरणादर्शनालभितीयंते (बुधे) ॥६४॥

विमानमध्यभागेथदशमे केन्द्रकीलके ।  
स्थापयेत् सुहृदं कीलं पञ्चावर्तमुखं कृपात् ॥६५॥ इत्यादि ॥  
एवं विम्बार्ककिरणादर्शनाल यथाविधि ।  
निरूप्य पञ्चाद् यानस्य शिरोमणिसूचीयंते ॥६६॥  
किरणान्तरेया (खलु) नतचक्रस्त्यपकर्षये ।  
विमानाना श्रुतरशतशिरोमण्य ईरिता ॥६७॥

—भरकर, वर्गिकुड में संस्थापित करके पश्चात् सुखा नामक भूमा से ३१५ दर्जे के बेग से गलावे, पश्चात् पिंचले शुद्ध रस को लेकर दर्पणग्रन्थनाल में भर दे । शास्त्रविधान से ऐसा करने पर विम्बार्कद्विणिकिरण का आकर्षण करनेवाला दर्पण हो जावे जो अत्यन्त सूक्ष्म सुदृढ़ दर्पण से बनी विम्बार्क-किरणादर्शनाल यह कहा जाता है । विमान के अप्रभाग में और दशवें केन्द्रकील में पाच धूमनेवाले मुखवाली कीलों से सुदृढ़ ध्यापित करें । इस प्रकार विम्बार्ककिरणादर्शनाल यथाविधि स्थापित करके पश्चात् विमानयान की शिरोमणि कही जाती है । अन्य किरणों के उस उस शक्ति के खीचने में विमानों की शिरोमणियां कही हैं ॥ ६८—६९ ॥

तदुक्तं मणिकल्पप्रदीपिकायाम्—वह कहा है मणिकल्पप्रदीपिका प्रन्थ में—

द्वार्तिवानमणिवर्गेषु वर्गे द्वादशके कमात् ।  
ये प्रोक्षासन्तुतरशतमण्यस्ते महर्विभि ॥६८॥  
शिरोमणाय इत्युक्तविमानाना विशेषत ।  
तेषा नामानि वक्ष्यामि शास्त्रोक्तानि यथाकृमम् ॥६९॥  
शङ्कुरो ? शन्तक खर्वो भास्करो मण्डलस्तथा ।  
कलात्को दीप्तिकश्च नन्दको चक्रकण्ठक ॥७०॥  
पञ्चनेत्रो राजमुखो राकास्य कालभैरव ।  
चिन्तामणि कौशिकश्च चित्रकौशिको भास्करक ॥७१॥  
उद्धुराजो विराजश्च कल्पक कामिकोद्घट ।  
पञ्चशीर्षं पार्वणिक पञ्चाक्ष पारिभद्रक ॥७२॥  
इष्टीक, काशभृतको कञ्जास्य कौटिकस्तथा ।  
कलाकर कौर्मिकश्च विषधन पञ्चपावक ॥७३॥  
संहिकेयो रोदमुखो मङ्गोरो दिम्मकोर्जक ।  
पिङ्गक कर्णिक, कूषधो कृव्याद कालकौलिक ॥७४॥  
विनायको विश्वमुख पावकास्य कपालक ।  
विजयो विष्वलव, प्राणजह्निको कामुक (ख ?) पृष्ठु ॥७५॥  
शिङ्गीरशिविकश्चण्डो जम्बाल कुटिलोर्मिक ।  
जृम्भकशाकमित्रश्च विशाल्य कङ्गोरभ ॥७६॥

सुरघस्सूर्यमित्रश्च                            शशकश्चाकलस्तथा ।  
 शक्तयाकरशाभविकशिष्माणशिविकाणुक ॥७७॥  
 भेकण्डो मुण्डक काण्ड्यो पुरुहूत पुरञ्जय ।  
 भम्बालिको शार्द्धकश्च चम्बीरो धनवर्धक ॥७८॥  
 चञ्चवाकश्चापको नज्ज विशद्ग्रो वार्षिकस्तथा ।  
 राजराजो नागमुखस्सूधाकरविभाकर ॥७९॥  
 त्रिरो त्रो भूर्जं कूर्मं कुमुदं कार्मुखस्तथा ।  
 कपिलो ग्रन्थिकं पाशधरो डमुररो रवि ॥८०॥  
 मुञ्जको भद्रकश्चेति शतञ्च त्रीण्याक्रमम् ।  
 विमानशिरोमणीना नामान्युक्तानि शास्त्रत ॥८१॥

३२ मणिवरों में वारहवें वर्ग में कम से जो १०३ मणियां महर्षियों ने कही हैं वे उक्त विमान की शिरोमणिया—योवेष्ट शीर्षस्थान पर योजनीय हैं । उनके नाम यथाक्रम कहना जो शास्त्रोल्लास्त्र है—शङ्खर, शान्तक, खर्ष, भास्कर, मण्डल कलान्तक, दीप्तिक, नन्दक, चक्रकण्ठ, पञ्चनेत्र, राजमुख, राकास्य, कालभैरव, चिन्तामणि, कौशिक, चित्रकौशिकभास्कर, उड (हु ?) राज, विराज, कल्पक, कामिकोद्व, पञ्चरोपणी, पार्वणिक, पञ्चाच, पारिभृद्व, इषोक, काशभृत्काक, कजास्य, कौटिक, कलाकर, कौमिंक, विष्णुन, पञ्चावक, सैहिकेय, रौप्रयुख, मुखीर, द्विष्मक, जर्क, पिञ्चक, कणिक, कोथ, कव्याद, कालकौलिक, विनायक, विश्वमुख, पावकास्य, कपालक, विजय, विष्णुल, प्राणजङ्गिक, कार्मुक(ख्लौ?), पुष्टु, शिर्जीर शिविक, मित्र, शशक, शाकल, शत्याकर, शाम्भविक, शिष्माण, शिविक, शुक, भेकाण्ड, मुण्डक, कार्षण्य, पुरुहूत, पुरञ्जय, जम्बालिक, शार्द्धिक, जम्बीर, धनवर्धक, चञ्चवाक, चापक, गङ्ग, पिशङ्ग, वार्षिक, राजराज, नागमुख, सुधाकर, विभाक, त्रिनेत्र, भूर्जं, कूर्म, कुमुद, कार्मुख, कपिल, ग्रन्थिक पाशधर, डमुरग, रवि, मुखाक, भद्रक । ये १०३ विमान की शिरोमणियों के नाम शास्त्र में कहे हुए हैं ॥८२—८१॥

व्योमयानोर्ध्वभागस्य शिर केन्द्रे यथाविधि ।  
 स्थापयेदुक्तमणिएकैकं सुहृद यथा ॥८२॥  
 विद्युत्यन्तमुखात्सर्वतन्त्रीनाहृत्य शास्त्रत ।  
 तन्मूले योजयेत्सम्यगेभ्यशक्त्यपकर्षणम् ॥८३॥  
 तस्योर्ध्वमुखपाशर्वेयं किरणाकर्षणान् द्वादान् ।  
 पूर्ववद् योजयेत् पश्चान्मेलनार्थं द्वयोः कमात् ॥८४॥ इत्यादि ॥  
 एवमुक्त्वा यानशिरोमणिकार्यमतः परम् ।  
 वक्ष्ये किरणसन्धानकीलके शास्त्रतः स्फुटम् ॥८५॥  
 पञ्चविशदित्स्थाताशक्तिसन्धानकीलका ।  
 तेष्वकं किरणायानसन्धाने कीलकं कृमात् ॥८६॥  
 कीर्त्यते सप्रहादत्र समालोच्य यथामति ।

विमान यान के उत्तरभाग में स्थित शिर केन्द्र में यथाविधि उक्त मणियों में से एक एक मणि सुखद स्थापित करे । विशुद्धत्र के मुख से सब तारों को शास्त्रानुसार लेकर उनके मुख में जोड़े और इन तारों से शक्त्यपकर्षण—शक्ति को खींचने वाले यन्त्र को उसके उपरि मुख के पास किरणों के आक- बंधा करने वालों के पूर्व की भाँति पश्चात् कम से दोनों के मेलनाथे जोड़ दे । इस प्रकार विमान के शिर की मणियों को कह कर इससे आगे किरणसन्वानकीलों—किरणों के धारण करने वाले पेंचों को शास्त्र से गुट कहूँगा, शक्तिसन्धान कोले २५ ख्यात हैं प्रसिद्ध हैं कही गई हैं, उनमें से सूर्यकिरणों के यानसन्धान में कीलकम से संतोष से यथामति आलोचना करके कही जाती हैं ॥ ८२-८६ ॥

तदुक्तं बृहत्कार्णिडके—यह बात बृहत्कार्णिडक मन्त्र में कही है—

सन्धानकीलका पञ्चविंशति परिकीर्तिः ॥ ८७ ॥

सूर्यशुयानसन्धाने नवमस्तेषु वर्णितः ।

तत्क्षीलकविवक्षार्थं तेषा नामान्यनुक्रमात् ॥ ८८ ॥

बृहत्कार्णिडकरीत्या तु सुविचार्यं निरूप्यते ।

पिञ्जुलीक कि (की ?) रणको डिन्मकोपवितीयक ॥ ८९ ॥

कच्छपो गारुडो द्विढो शक्तिपो गोविदारकः ।

पवनास्य पञ्चवक्त्रो वज्रक कङ्कणस्तथा ॥ ९० ॥

अहिर्दुर्ध्य (ध्य ?) कुण्डलिको नाकुलश्चोर्णाभिक ।

त्रिमुखसप्तशीर्षयो पञ्चावर्तं परावत ॥ ९१ ॥

आवर्ननाभिकोध्वास्यशिलावर्तं इति क्रमात् ।

विमानशक्तिसन्धानकीलका पञ्चविंशति ॥ ९२ ॥

एतेषु गोविदारकस्तु कीलकस्युपकाशक ।

सूर्यशुयानसन्धानकार्यनिर्वाहिको भवेत् ॥ ९३ ॥ इति ॥

सूर्यकिरणों के यान में जोड़ने में सन्धानकीले २५ कही हैं, उनमें से नवम कील कही है, उस कील की विवरा के लिए उनके नाम अनुक्रम से बृहत्कार्णिडकी रीति से यहां सुविचार कर निरूपित किया जाता है जो कि पिञ्जुलीक, किरणक, डिन्म, कोप, वितीयक, कच्छप, गारुड, उद्दल, शक्ति, गोविदारक, पवनास्य, पञ्चवक्त्र, वज्रक, कङ्कण, अहिर्दुर्ध्य, कुण्डलिक, नाकुल, ऊर्णाभिक, त्रिमुख, सप्तशीर्षय, पञ्चावर्त, परावत, आवर्त, नाभिक, उर्ध्वास्य, शिलावर्त ये क्रम से विमान शक्तिसन्धानकीले २५ हैं । इनमें गोविदारक कीलक अच्छी प्रकाशक है सूर्यकिरण या यानसन्धान कार्य का निर्वाहक है ॥ ८७-९३ ॥

अङ्गोपसंहारयन्त्रविचार.—अङ्गोपसंहार यन्त्र का विचार—

एवमुक्त्वा परिवेषकियायन्त्रमतं परम् ।

अङ्गोपसंहारयन्त्रसंग्रहेण प्रचक्षते ॥ ९४ ॥

सूर्यादिसवंग्रहाणा शशिस्थानतस्था ।

चारातिचारवक्रातिवक्रसञ्चारकारणात् ॥ ९५ ॥

भवेन्मेषादिराशिस्थशक्तिसम्मथनं क्रमात् ।  
 तेनाकाशतरङ्गस्यशक्तयुद्रे को भवेत्स्वत ॥ ६६ ॥  
 तयोस्सङ्घर्षण पश्चाज्जायतेत्यन्तवेगत ।  
 तस्माच्छक्तिप्रवाहाश्चाग्निजवालाप्रवाहवत् ॥ ६७ ॥  
 अनुलोभविलोमाया वक्रगत्यतिवेगत ।  
 प्रवहन्ति विशेषण रांझभोगानुसारत ॥ ६८ ॥  
 सञ्चारकाले स्वपयि विमानाङ्गोपरि क्रमात् ।  
 तत्प्रवाहोषणसयोगे यदङ्गो स्याद् विशेषत ॥ ६९ ॥  
 दग्धवा भस्मीकृत (तो ? भयात् तदङ्गमतिशीघ्रत ।  
 उषणप्रमापकाद् यन्त्रात् तदिङ्गायाश वेगत ॥ १०० ॥  
 तदङ्गमुपसहरेत् ।  
 तस्मादङ्गोपसहायन्त्रमत्र प्रचक्षते ॥ १०१ ॥

इस प्रकार परिवेषकिया यन्त्र कह कर इससे आगे अङ्गोरसंहार यन्त्र संक्षेप से कहते हैं।  
 सूर्य आदि सब मढ़ों के राशिसंस्थान से चार अतिचार वक्र अतिवक्र सञ्चार के कारण मेष आदि राशिश्च  
 शक्ति का मन्दनकम से हो जावे—हो जाता है उससे आकाशतरङ्गों में स्थित शक्ति का उद्रेक—  
 आयिक्य—प्रावल्य स्वत ही जाता है फिर उन दोनों का संयोग—टकाव अत्यन्त वेग से हो जाता है  
 अत शक्तिप्रवाह अग्निजवालाप्रवाह की भावि सीधे उलटे ठंग से वक्रगति के अतिवेग से राशिभोगा-  
 नुसार विशेषरूप से प्रवाहित हो जाने हैं। सञ्चारकाल में अपने मार्ग में विमानाङ्गों के ऊपर कम से  
 उम प्रवाह का उषण संयोग जिस अङ्ग में विशेष हो जावे तो वह अङ्ग अतिशीघ्र जल कर भस्म हो  
 जावे, उषणतामापक यन्त्र से उसको जान कर शीघ्र उस अग्निष्ट की निवृत्ति के बार्थ उस अङ्ग का  
 उपसहार करे अत। अङ्गोरसंहार यन्त्र यहां कहते हैं ॥ ६४-१०१ ॥

## इस्लेख कारी संस्था ८—

तदुकं यन्त्रसर्वसे—वह अङ्गोपसंहार यन्त्र ‘यन्त्रसर्वस्व’ मन्थ में कहा है—

सुमूलीक शोधित्वा लोह माझीरमिश्रितम् ।  
 वितस्तिद्वादशायाम घनमष्टादशाङ्गुलम् ॥ १ ॥  
 चतुरख वर्तुल वा पीठ कुर्याद् यथाविधि ।  
 कान्तदिभ्वक्सस्मिन्नश्वलोहाद् द्रावकशोधितात् ॥ २ ॥  
 त्रिशट्वितस्त्वयन्त च वितस्तित्रयगात्रकम् ।  
 मूले मध्ये तथा चान्ते छत्रीवत्कीलकान्वितम् ॥ ३ ॥  
 दण्डमेक कल्पयित्वा पीठमध्ये हठ न्यसेत् ।  
 कीलकत्रयमारभ्य दण्डस्याधो यथाविधि ॥ ४ ॥  
 विमानमूलमध्यान्तस्त्वस्थाङ्ग्यन्त्रावधि क्रमात् ।  
 पञ्चकीलसमायुक्तान् सुडान् मृदुलानुजून् ॥ ५ ॥

माझीर ? मिले सुमूलीक लोहे को शोधकर १२ बालिशत लम्बा चौड़ा व अङ्गुल मोटा चौकोन  
 या गोल पीठ यथाविधि करे—बनवावे, कान्त अयस्कान्त, डिभ्वक ? मिश्रलोह द्रावक शोधित से  
 ३० बालिशत ऊंचा ३ बालिशत मोटा मूल में मध्य में और अन्त में छत्री की भाँति कीलों से युक्त एक  
 दण्ड बनाकर पीठ के मध्य में लगा दे तीन कीलों से आरम्भ करके दण्ड के नीचे यथाविधि विमान के  
 मूल मध्य अन्त में स्थित अङ्गयन्त्रों तक कम से पांच कीलों से युक्त सुदृढ़ मृदुल सरल—॥ १—५ ॥

उपसहारोद्वारकावर्तकीलैविराजितम् ।  
 मिथ्लोहकृतान् शुद्धान् शलाकान् विरल यथा ॥ ६ ॥  
 छत्रीशलाकावर्ततत्कीलकेभ्य पृथक् पृथक् ।  
 तत्तद्रेखानुसारेण योजयेतदनन्तरम् ॥ ७ ॥  
 त्रिचक्कीलकसयुक्त मुखत्रयविराजितम् ।  
 नालद्वयसमायुक्त भ्रामणीकीलकद्वयम् ॥ ८ ॥  
 सस्थापयेद् दण्डमूलकीलकद्वयमध्यमे ।  
 तदुत्तरे रक्षमत्तेल नलिकापात्रपूरितम् ॥ ९ ॥

लेपनार्थं कीलकानां स्थापयेद् विशिवत्तत् ।

यदज्ञस्योपसहारः कर्तव्यमिति रोचते ॥१०॥

उपसंहार—सङ्कोच और उद्धार—विकास के साधनभूत कीलों—रेंडों से विराजित भिन्नलोहे से किए शुद्ध शलाकाओं को छीढ़ से लगों की शलाकाओं की भाँति उन उन कीलों से अलग अलग जोड़ दे पुनः उन उनकी रेखानुसार जोड़ दे, तीन चक्र की कीलों से युक्त तीन मुखों से विराजित दो भाम-र्णीकील स्थापित करे, दण्डे के मूल की दो कीलों के मध्य में उनके उत्तर में रुक्षतैल—नागकेशर का तैल नलिकापात्र में भरा हो कीलों को लपेटने के लिये विशिवत् स्थापित करे । जिस अङ्ग का उपसंहार करना रुचिकर हो—॥५—१०॥

तत्कर्त्ताद् दण्डमूलस्थ्यभ्रामणी चालयेद् यदि ।

तेनाङ्गुष्ठन्त्रशलाकीलसञ्चालन भवेत् ॥११॥

छत्रीशलाकवत्तेन तच्छ्वलाकमपि क्रमात् ।

प्रत्यज्ञमुख भवेत् तस्माद्गुण्ठनोपसहृति ॥१२॥

प्रभवेदतिवेगेन न्यग्रावत्तच्छ्वलाकत ।

पश्चात् प्राप्तायायनाशो भवत्येव न सशय ॥१३॥

एव क्रमेणाङ्गुष्ठन्त्रोपसहारश्वलाकत ।

तत्तक्तीलप्रचालनात् कर्तव्य स्थात् पृथक् ॥१४॥

यदज्ञस्योपरि भवेद् यानस्यापायसम्भव ।

तदज्ञस्योपसहारात् तदपायनिवारणम् ॥१५॥

अनुलोमविलोमाभ्यां तत्तक्तीलकचालनम् ।

तत्तद्वन्द्वोपसहारोद्घारश्वलाकपि भवेत् क्रमात् ॥१६॥

यदि तुरन्त दण्डमूलस्थ्यभ्रामणी को चलावे तो उससे अङ्गयन्त्र शलाका की कील का सञ्चालन होजावे, छत्रीशलाका की भाँति उससे वह शलाका भी कम से अङ्गमुख की ओर होजावे उससे अङ्गयन्त्र का उपसंहार अतिवेग से होजावे उस शलाका से नीचे सङ्कोच होजावे पश्चान् प्राप्त अनिष्ट का नाश हो जाता ही है संशय नहीं । इस प्रकार क्रम से अङ्गयन्त्र का उपसहार शलाका से उस उस कील के चलाने से पृथक् पृथक् करना चाहिए, विमान के जिस अङ्ग के उपसहार शलाका से उस उस कील के उपसंहार से उस अनिष्ट का निवारण होजाता है । सीधे उलटे ढंग से उस कील का चलाना उस उस यन्त्र का उपसंहार—सङ्कोच और उद्धार—विकासप्रसार भी क्रम से होता है ॥ ११—१६ ॥

एवमुक्त्वा यन्त्रोपसहारश्वलाकमत परम् ।

विस्तुतास्यक्रियायन्त्र क्रयतेत्र यथाविधि ॥१७॥

कूर्मदिग्गजभूमेघविद्युद् (१) रुणशक्तय ।

यदा पद्ममुखे समयङ् मेलयन्ति परस्परम् ॥१८॥

तदा विषम्भरी नाम काचिच्छक्ति प्रजायते ।

सा भित्त्वा भूमुख पश्चादत्यन्तोष्णास्वभावत् ॥१९॥

लिङ्गविशतवेगेनोहुयोहुयातिवेगत

धवस्त्युच्च खमात्रित्य व्योमयान यथाविधि ॥२०॥

इस प्रकार यन्त्रोरसंदार यन्त्र कहकर इससे आगे विस्तृतास्य क्रियायन्त्र यथाविधि यहां कहा जाता है। कूर्म (भूगर्भशक्ति ?), विग्रज (पृथिवी की बाढ़ दिशाशक्ति ?), भूमि, मेघ, विशुद्ध, वरुण की शक्तियां जब पद्ममुख में भली पकार परसर मिल जाती हैं तब विषम्भरी-विरुद्ध प्रयोगको धारण करने वाली कोई शक्ति प्रकट हो जाती है वह भूमि के मुख को तोड़कर—भूमि से टकराकर अत्यन्त उष्णस्वभाव से ३०० डिग्री के बेग से उड़ उड़ कर अतिवेग से ऊपर दौड़ती है आकाश को प्राप्त हो विमान के मार्ग की अवधि तक—॥१७—२०॥

व्याप्त यानपथ पश्चाद् विमान स्वशक्तिः ।

तत्रस्थसर्वलोकाना मेधशक्ति निमेषत ॥२१॥

विभज्य तत्कणात् तस्मिन्नुदागार कुरुते कमात् ।

बुद्धिमान्यशिरोवाधज्वरदाहविरे (रो?) चना ॥२२॥

सम्भवन्ति विशेषणा तत्कणात् तद्विकारत ।

तद्विलयाय विधिवद् यन्त्राद्यशास्त्रत कमात् ॥२३॥

उद्धरेत् तद्विनाशार्थं व्योमयाने यथाविधि ।

विस्तृतास्यक्रियायन्त्रमिति शास्त्रविनिर्णय ॥२४॥

तस्माच्चास्त्रोक्तविधिना विस्तृतास्यक्रियाभिध (द?) म ।

यन्त्रमत्रातिसक्षेपात् प्रसङ्गत्या निरूप्यते ॥२५॥

—यानपथ में व्याप्त होकर पश्चात् विमान को भी व्याप्त हो अपनी शक्ति से विमानस्थित जनों की मेधशक्ति को भिन्न भिन्न करके तुरन्त उद्गार कर देती है बुद्धिमन्त्रा शिरीङ्गा ज्वरदाह विरेचन रोग विशेषत उत्पन्न हो जाते हैं उनके विकार से—पूर्वरूप से तुरन्त विधिवत् यन्त्र आदि से शास्त्रानुसार जानकर कम से उसके नाशार्थ विमान में यथाविधि उद्गार करे—उपाय करे। वह विस्तृतास्य क्रिया यन्त्र है, यह शास्त्र का निर्णय है, अत शास्त्रोक्त विधि से विस्तृतास्यक्रियानामक यन्त्र को अतिसंचेप से प्रसङ्ग से निरूपित किया जाता है ॥ २१—२५ ॥

तदुक्तं यन्त्रसर्वस्ये—वह यह ‘यन्त्रसर्वव्याप्ति’ में कहा है—

बाहुप्रमाण विस्तारे गावे द्वाविशद्गुलम् ।

वतुंलाकारत् पीठ कुर्यात् पिप्पलदारणा ॥२६॥

बाहुप्रमाणगात्र च द्वाविशद्गुरुन्तम् ।

स्तम्भ कृत्वा दारुमय तन्मध्ये स्थापयेद् दृढम् ॥२७॥

व्योमयानाङ्गोपयन्त्रसंस्थया विधिवत् कमात् ।

अङ्गोपयन्त्रदिग्रेण्वामनुसृत्य यथाविधि ॥२८॥

† “कूर्मो विभति वरुणी लतु चात्मपृष्ठे” (शुक्र० ४४ । ३१)

‡ “विष विषयोगे”

स्तम्भमूलाद्यशिरोभागान्त केन्द्रानुसारत ।  
 प्रदक्षिणावर्तकीलानुग्रुलोमिलोमत ॥ २६ ॥  
 स्तम्भस्य प्रतिकेन्द्रेय स्थापयेद् दृन्दत कमात् ।  
 पश्चाद् विमानाङ्गोपयन्त्रमध्यकेन्द्रमुखान्तरे ॥ ३० ॥  
 भस्त्रिकानालतस्तम्भकीलद्वन्द्वावधिकमात् ।  
 सर्वत्र योजयेन्नालान् कीलसंख्यानुसारत ॥ ३१ ॥

बाहुभर माप लम्बाई चौड़ाई में, २२ अंगुल मोटाई में गोलाकार पीठ पिपल की लकड़ी से बनावे, बाहुभर माप मोटा ३२ अंगुल कंचा स्तम्भ काटा का बना कर उसके मध्य में ढाँड स्थापित करे, व्योमयान के अङ्गोपयन्त्र संख्या से विविन्त क्रम से अङ्गोपयन्त्र की दिशा रेखा का अनुसरण करके यथाविधि स्तम्भमूल से शिरोभाग तक केन्द्र के अनुसार घूमने वाली कील के भीष्मे उलटे ढग से स्तम्भ के प्रति केन्द्र में स्थापित करे। दो दो करके पश्चात् विमानाङ्गोपयन्त्र के मध्य केन्द्रमुख में भस्त्रिकानाल से स्तम्भ की दो कीलों की अवधि के क्रम से सर्वत्र कील संख्यानुसार नालों को जोड़े ॥ २६-३१ ॥

तत्तदावर्तकीलाना सन्धिषु क्रमत. पुन ।  
 द्विचक्कीलान् शुद्धान् योजयेत् सुट्ठ यथा ॥ ३२ ॥  
 तदधस्ताद् यथाशास्त्रं पक्षाधातकभस्त्रिकान् ।  
 सयोजयेत् तत् पीठमूलकेन्द्रमुखे क्रमात् ॥ ३३ ॥  
 त्रिचक्क्रामणरीकीलयन्त्रं सस्थापयेद् ढगम् ।  
 तत्पश्चादुपसहारकीलक च तर्यव हि ॥ ३४ ॥  
 सन्धारयेद् यथाशास्त्रं सम्प्रदायानुसारत ।  
 आदौ पीठस्ततस्तम्भं पश्चादावर्तकीलका ॥ ३५ ॥

उस उस घूमने वाली कीलों की संख्यों में क्रम से फिर द्विचक्कीलों को ठीक सुट्ठ लगावे, उसके नीचे शास्त्रानुसार पक्षाधातक भस्त्रिकाओं को जोड़े फिर पीठ मूल के केन्द्रमुख में तीन चक्रों वाले घूमने वाले पैंच को संस्थापित करे उसके पीछे उपसंहार कील को शास्त्रानुसार अपनी कलापरम्परा के अनुसार लगावे प्रथम पीठ क्रम स्थापयेद् घूमने वाली कीले—॥३२-३५॥

सन्धिनाला द्रावशुद्धासुट्ठाश्च तत् परम् ।  
 द्विचक्कीलका पश्चात् पक्षाधातकभस्त्रिका ॥ ३६ ॥  
 तथा त्रिचक्क्रामणरीकीलयन्त्रमत. परम् ।  
 उपसहारकील चेत्यष्ट्वा सम्प्रकीर्तिता ॥ ३७ ॥  
 यन्त्राङ्गायेवमुक्त्वाच्य तत्प्रयोगोभविष्यते ।  
 स्वतो विषम्भराशक्तिरूपमि भित्वातिवेगत ॥ ३८ ॥  
 व्योमयानस्य सर्वाङ्गमाकम्य व्याप्यते यदा ।  
 व्योमयानाङ्गयन्त्राणि विस्तृतास्यानि तत्कणात् ॥ ३९ ॥

कुर्यात् सम्पूर्णं तशाखविधिनातिप्रयत्नत ।  
 प्रिचकभ्रामणीकीलमादौ तस्मात् प्रचालयेत् ॥ ४० ॥  
 तेन द्विचककोलकाश्च सम्यग्भ्राम्यन्ति वेगत ।  
 अतस्सम्यग्भ्रामकास्त्वयस्तम्भस्यावर्तकीलका ॥ ४१ ॥  
 ततो द्विचककीलस्थपक्षाधातकभस्त्रिका ।  
 तच्चकभ्रमणादेव विस्तृतास्या भवन्ति हि ॥ ४२ ॥  
 ततोत्तिवेगतो वायुस्तनुखाद् सम्प्रधावति ।  
 पश्चाच्छ्रवासोच्छ्रवासवत्सन्धिनालान्तरे क्रमात् ॥ ४३ ॥

सन्धिनालें द्राव से शुद्ध और सुदृढ़ करें फिर दो चक्रों वाली कीले पश्चात् पक्षावात् भस्त्रिकाएं तथा इससे तीन चक्रों वाली भ्रामणीकील यन्त्र और उपसंहार कील आठ प्रकार या आठ स्थानों में कहे हैं । यन्त्रों के अङ्ग इस प्रकार कहकर अग उनका प्रयोग वर्णित करते हैं, विश्वभरा शक्ति स्वतः भूमि को वेग से तोड़ कर विमान के सारे अङ्गों पर आकर्षण करके जब व्याप जाती है तो विमान के अङ्गयन्त्रों को पूर्णाहृप से शास्त्रविधि से अतिप्रयत्न से तुरन्त विस्तृतास्य करदे, प्रथम तीन चक्रों वाली भ्रामणी कील को चलावे उससे दो चक्रों वाली कीले सम्यक् वेग से घूमने हैं अतः स्तम्भस्थ घूमनेवाले पैच भली प्रकार घूमने वाले हो जाते हैं । फिर दो चक्र वाली कीलों में स्थित पक्षाधातक भस्त्रिकाएं उन चक्रों के भ्रमण से ही विस्तृतास्य हो जाती हैं फिर अति वेग से उसके मुख से वायु दीड़ता है पश्चात् क्रम से श्वास उच्छ्रवास की भाँति सन्धिनाल के अन्दर—॥ ३६-४३ ॥

प्रविश्य चातिवेगेन तदायुश्चरति स्वत ।  
 तदाताधातत षट्चादञ्जयन्वमुविष्टिता ॥ ४४ ॥  
 भखनाला मध्यकेन्द्रे विस्तृतास्त्वेकद्वयं हि ।  
 भवन्ति तन्मुखात् पश्चाद् भस्त्रिकावद् विशेषत ॥ ४५ ॥  
 फूल्कारपूर्वकं वायुर्भाति पूर्णप्रवाहवत् ।  
 तत्प्राहोत्तिवेगेन शक्ति सम्यग् विष्वभराम् ॥ ४६ ॥  
 अपहृत्याकाशावातमण्डले नियोजयति ।  
 ततो विष्वभरा शक्तिस्तर्त्रव लयमेवते ॥ ४७ ॥  
 ततो विमानस्थजनमेषोरुद्नाशन भवेत् ।  
 एव विष्वभरायक्ति नाशयित्वा यथाविधि ॥ ४८ ॥  
 चालयेदुपसहारकीलकं तदनन्तरम् ।  
 तेन यानाञ्चोपयन्त्रायभूवत् पूर्ववत् क्रमात् ॥ ४९ ॥  
 विस्तृतास्यक्रियायन्त्रप्रयोगश्चैवमीरित (तम) ।  
 एवमुक्त्वा विस्तृतास्यक्रियायन्त्र यथाविधि ॥ ५० ॥  
 सप्रहाद् वै हृष्पदर्पणायन्त्रमयोच्यते ।

—प्रविष्ट होकर वह बायु स्वत अतिवेग से सञ्चार करती है पश्चात् इस बायु के आघात से अङ्ग-यन्त्रों के मुख में स्थित भस्त्रानालै मध्य केन्द्र में एक साथ—एक दम विस्तृत हो जाती है फिर उनके मुख से भवित्वा की भाँति विशेषत फूलकारपूर्वक बायु पूर्ण प्रवाह से चलती है वह ग्रवाह अति वेग से विषम्भरा शक्ति को खोच कर आकाशमण्डल में नियुक्त कर देता है तब विषम्भरा शक्ति वहां ही लय को प्राप्त हो जाती है । फिर विमान में स्थित मनुष्यों के मेघरोग का नाश हो जाता है । इस प्रकार विषम्भरा शक्ति को यथाविधि नष्ट करके अनन्तर उपसंहार कील को चलावे उससे विमानांगों के उपर्यन्त पूर्व जैसे हो जाते हैं । विस्तृतारथक्यायन्त्र कह कर वैरूप्यदर्पण यन्त्र अब संज्ञेप से कहा जाता है ॥ ४४-५० ॥

वैरूप्यदर्पणयन्त्रनिर्णय.—वैरूप्य दर्पणयन्त्र का निर्णय—

- विमाननाशनार्थ ये समागच्छन्ति शत्रव ॥ ५१ ॥
- तेषा देहविरूपत्व यस्य सन्दर्शनाद् भवेत् ।
- वैरूप्यदर्पण इति तमाहु पण्डितोत्तमा ॥ ५२ ॥
- तदूरणकृत यन्त्र वैरूप्यादर्शयन्त्रकम् ।
- इति शास्त्रेषु निर्णीत यन्त्रतत्त्वविदा वरै ॥ ५३ ॥
- सप्रहेणात्र विधिवत् वक्ष्ये तद्रचनाविधिम् ।

विमान के नाशार्थ जो शत्रजन आ जाते हैं उनके देह की विरूपता जिसके देखने से हो जावे उसे वैरूप्य दर्पण इस नाम से ऊँचे विद्वान् कहते हैं । वह दर्पण ने किया यन्त्र वैरूप्यादर्श यन्त्र शास्त्रों में यन्त्रतत्त्ववेत्ताओं ने निर्णय किया है । उसकी रचनाविधि को संज्ञेप से विधिवत् कहूँगा ॥ ५१-५३ ॥

तदुक्तं यन्त्रसर्वस्वे—वह यन्त्रसर्वस्व प्रथ में कहा है—

- यदा तु व्योमयानस्य विनाशार्थ तु शत्रव ॥ ५४ ॥
- आगत्यावृत्य तिष्ठन्ति विमान कूरकमणि ।
- तेषा रूपविकारार्थ यन्त्रोय परिकीर्तित ॥ ५५ ॥
- पीठकेन्द्रावर्तकीलज्योतिस्तम्भास्त्यैव च ।
- विद्युद्यन्त्रावर्तधूमनालभ्यापि तत परम् ॥ ५६ ॥
- धौणिकातैलभित्तकीलकोशात्रय तथा ।
- धूमदीपोपसहारनालो चापि यथाकममम् ॥ ५७ ॥
- वैरूप्यादर्शयन्त्रस्याङ्गानीत्याहुर्मनीविरण ।
- वितस्तिद्वयविस्तार वितस्तिद्वयमु(ह?) अतम् ॥ ५८ ॥
- बैल्वेन वतुंलं पीठ कुर्याच्छालविधानतः ।
- तस्मिन् द्वादशकेन्द्राणि कल्पयेत् समरेत्वतः ॥ ५९ ॥

आवर्तकीलकान् पश्चात् स्थापयेत् प्रतिकेन्द्रके ।  
चतुर्विशत्यद्गुलावर्तगात्र चोन्नते तथा ॥ ६० ॥

जबकि विमान के विनाशार्थ कूरकर्मी शत्रु आकर विमान को घेर कर लड़े हो जावे तो उनके रूप के विकारार्थ यह यन्त्र कहा है । पीठ, केन्द्र, आवर्तकील, ज्योतिस्तम्भ, विश्वान्वावर्त, धूमनाल, धोटिका तैल,—सुपारीतैल, त्रिचक कील, तीन कोश, धूमदीप, उरसंहारनाल ये वैरूप्य आदर्श यन्त्र के अङ्ग मनीषी विद्वानों ने कहे हैं । २ वालिश्त ऊँचा पीठ गोल त्रिलकाष्ठ ( बेल वृक्ष की लकड़ी ) से शाखानुसार करे । उसमें वारह केन्द्र समरेखा से बनावे पश्चात् धूमने वाले पेंच प्रतिकेन्द्र स्थापित करे, २४ अंगुल मोटा तथा ऊँचा - ॥ ५४-६० ॥

वैरूप्यदर्पणाङ्कुत ज्योतिस्तम्भ यथाविधि ।  
मध्यकेन्द्रे प्रतिष्ठाप्य विश्वान्त्र तदग्रत ॥ ६१ ॥  
द्वितीयकेन्द्रे विधिवत् स्थापयेत् कीलवन्धनात् ।  
क्रमात् केन्द्रवये पश्चादावर्तधूमनालकम् ॥ ६२ ॥  
प्रदक्षिणाकारतन्त्रीन् स्थापयेत् मुण्ड यथा ।  
घोणिटकातैलपात्र तु कीलके पञ्चमे न्यसेत् ॥ ६३ ॥  
मुखत्रयसमायुक्त कोशवयमत् परम् ।  
वितरस्तपेक्रमाणेन निर्मित दुग्धचर्मणा ॥ ६४ ॥  
पट्सप्ताष्टमकेन्द्रादिधूमनालावधिकमात् ।  
स्थापयेद् विधिवत् पश्चाद् हठ नवमकेन्द्रके ॥ ६५ ॥

वैरूप्यदर्पण से किया ज्योतिस्तम्भ यथाविधि मध्यकेन्द्र में प्रतिष्ठित करके उसके आगे विश्वान्त्र दूसरे केन्द्र में विधिवत् कीलवन्धन से स्थापित करे, क्रम से तीन चक्रों में धूमने वाली धूमनालों को गोलाकार तारों को मुण्ड स्थापित करे, धोटिका—मैनफल के तैल या सुपारी तैल का पात्र पांचवें कील में रखे, इससे आगे तीन मुँबों से युक्त तीन कोश एक वालिश्त माप से दुग्धचर्म—दूध के पनीर से बनाया हूदा ६, ७, ८, संख्या वाले केन्द्र आदि धूमनाल विधानक्रम से नवम केन्द्र में विधिवत् स्थापित करे ॥ ६१-६५ ॥

धूमोपसहारनाल पश्चाद् दशमकेन्द्रके ।  
दीपोपसहारनाल तथैकादशके न्यसेत् ॥ ६६ ॥  
आवृत्ततन्त्रीनालकीलक द्वादशकेन्द्रके ।  
एव सन्वार्थ विधिवद् विनियोगस्त्वत् परम् ॥ ६७ ॥  
शत्रुरूपविकारार्थ कर्तव्य शाश्वत क्रमात् ।  
निरूपयैव यथाशास्त्र यन्त्रस्य रचनाविधिम् ॥ ६८ ॥  
तत्प्रयोगविधि वक्ष्ये सप्रहेण यथामति ।  
विश्वान्त्रात् समाहृत्य शक्तिमादौ यथाविधि ॥ ६९ ॥

त्रिचक्रकीलयन्त्रे थं चोदयेत् सप्रमाणात् ।

तेन भ्राम्यति तद्यन्तं स्वनो वेगात् स्वकेन्द्रके ॥ ७० ॥

पश्चात् धूमोपसंहार नाल दशम केन्द्र में तथा द्वीपोपसंहार नाल घ्यारहवें केन्द्र में रखे, धूमने वाले तारों की नालकील बारहवें केन्द्र में इस प्रकार विधिवत् प्रसङ्गत लगा कर इसके आगे शत्रु का रूप बिगड़ने के अर्थ करना चाहिये क्रम से शाक से निरुपण करके यन्त्र की रचनाविधि को संचाप से यथामति करूंगा, विशुद्धन से शक्ति को लेकर यथाविधि तीन चक्रों वाले यन्त्र में सप्रमाण प्रेरित करे, इससे वह यन्त्र स्वतः त्वंके न्द्र में धूमता है ॥ ६६-७० ॥

तद्वेगात् सर्वकेन्द्रस्थतत्त्वनीमुखात् पुनः ।

शक्तिसञ्चोदनात् सर्ववृत्तकीला भवन्ति हि ॥ ७१ ॥

त्रिचतु पञ्चकेन्द्रस्थयन्त्रीमागांद यथाकमय ।

शक्तिसयोजन कृत्वा कीलकभ्रमरण तत् ॥ ७२ ॥

कुर्यात् तेन क्रमान्तरालत्रय विकसित भवेत् ।

पञ्चमव्रमकेन्द्रावर्तकीलभ्रमरण तथा ॥ ७३ ॥

पूर्ववत् कारयेत् पश्चात् तेन कोशत्रय क्रमात् ।

विस्तृत स्यात् तत् पञ्चमकेन्द्रस्थावर्तकीलकम् ॥ ७४ ॥

पूर्ववद् आमयित्वाथ शक्ति तन्मागंत क्रमात् ।

योजयेत् सप्रमाणेण घोण्टिकातैलपात्रके ॥ ७५ ॥

उसके बेग से स्वर्वं केन्द्रस्थ उस उस तार के मुख से पुन शक्ति के प्रेरण से सब और धूमने वाली कीले—पैच धूमते हैं, तीन चार पांच केन्द्रों में स्थित हुए तारों के मार्ग से यथाकम शक्तिसयोजन करके फिर कीलभ्रमण करे—पैच को धूमावे उससे तीनों नाल खुल जावेंगे पश्चात् नवम केन्द्र की कीली का भ्रमण पूर्व की भाँति करे पश्चात् उससे क्रम से तीनों कोश विस्तृत हो जावें फिर पांचवें केन्द्र की धूमने वाली कील पूर्ववत् धूमा कर उस मार्ग से शक्ति को सप्रमाण घोण्टिका तैल—मैनफल या सुपारी के तैल के पात्र में युक्त कर दे ॥ ७१-७५ ॥

तत्तैल विषधूमस्थात् समग्र शक्तिवेगत ।

कोशत्रयेथ विधिवत् तदधूमं पूरयेत् तथा ॥ ७६ ॥

एकैकोशस्थधूममेकैकधूमनालके ।

पूरयेद् विधिवत् पश्चात् तत्तत्कालानुसारत ॥ ७७ ॥

अनुतोलमविलोमाभ्या धूमनालद्वयात् तत् ।

विषधूम समाहृत्य द्वी भागी शत्रुमण्डले ॥ ७८ ॥

सयोजयेत् ततस्तेनावरण परिवेषवत् ।

बाह्यप्रदेशे शत्रूणा मण्डलस्थ भवेत् क्रमात् ॥ ७९ ॥

घोण्टिकातैलत पश्चात् दीप कृत्वा यथाविधि ।

ज्योतिस्तम्भान्तरे कीलबन्धनात् स्थापयेत् दृढम् ॥ ८० ॥

वह तैल शक्ति वेग से सब विषैला धुएं हो जावे—हो जावेगा, उस धुएं को तीनों कोशों में भर दे फिर एक कोश में रिथत धूएं एक पक्ष धूमनाल में विधिनन् भर दे, पश्चात् उस उसके समयानुसार अनुग्रह विलोम—सीधे उलटे ढंग से दो धूमनालों से विषयूम दो भाग लेकर शत्रुमण्डल में संयुक्त कर दे फिर परिवेषकिया की भाँति वाहा प्रदेश में शत्रुओं के मण्डल का आवाहाकम से हो जावे। पश्चात् घोरिटिका तैल—मैनकल या सुपारी के तैल से वथाविधि दीपक करके ज्योतिस्तम्भ के अनंदर कीतवन्धन से खारित कर दे ॥ ७६-८० ॥

ज्योतिस्तम्भान्तर व्याप्त तत्प्रकाशसमग्रत ।  
 आसमन्ताद रक्तवर्ण जपाकुसुमवत् क्रमात् ॥ ८१ ॥  
 करोति पश्चात् तज्जयेतिस्तम्भस्योपर्यथाविधि ।  
 सयोजयेत् सप्रमाणा विद्युदभासनमत् परम् ॥ ८२ ॥  
 ज्योतिर्भवन् समाहृत्य विद्युदभासस्त्ववेगत ।  
 हरितश्वेतपीतादिसप्तवर्णविकारताम् ॥ ८३ ॥  
 करोति तत्क्षणात् पश्चात् समग्र स्तम्भकेन्द्रके ।  
 ज्योतिस्तम्भे भासमानविद्युतप्रकाशयो ॥ ८४ ॥  
 दृतीयधूमनालेन धूममाकृष्य कोशत ।  
 विषवद् योजयेद् वातनालमार्गात् प्रमाणत ॥ ८५ ॥

ज्योतिस्तम्भ के अनंदर व्याप कर उसका समग्र प्रकाश सब ओर से जयापूर्त की भाँति रक्तवर्ण—लाल रंग वाला कर देता है पश्चात् इस ज्योतिस्तम्भ के ऊपर यथाविधि सप्रमाण विद्युदान्त्र—विजुली के प्रकाश को संयुक्त कर दे। इसके आगे ज्योतिर्भवन—ज्योति के भान को विद्युत् का भास रक्त लेकर हरा सफेद पीला आदि सात रंगों की विकासता को तत्क्षण करता है। पश्चात् स्तम्भ केन्द्र में ज्योतिस्तम्भ में भासमान विद्युत् और दीपप्रकाश में तीसरे धूमनाल से कोश से धूम को खींच कर विविवत् वातनाल मार्ग से प्रमाण में झोड़ दे ॥ ८१-८५ ॥

दीपवत्त्व प्रकाशते ।  
 तद्वीपभानमाहृत्य नालमार्गाद् यथाविधि ॥ ८६ ॥  
 ज्योतिस्तम्भपुरोभागस्त्वयत्वैरूप्यदर्पणम् ।  
 सयोजयेत् ततो दीपप्रकाशस्त समग्रत ॥ ८७ ॥  
 व्याप्त वेगाद् विशेषेण कलाप्रिशतभास्वर ।  
 भवेद् द्रष्टुमशक्य च शत्रुणा स्तम्भन तथा ॥ ८८ ॥  
 पुन बोशात् त्रयाद् धूममाहृत्य विविवत् क्रमात् ।  
 शत्रुमण्डलबाह्यस्थपरिवेशान्तरे पुन ॥ ८९ ॥  
 सयोजयेत् पश्चविशालिङ्गमात्र यथाविधि ।  
 पश्चात् धूमं तत्प्रकाशे धूमनालान्तरात् पुन ॥ ९० ॥

फिर धूम दीपवत्ता को प्रकाशित करता है उस दीपप्रकाश को लेकर नालमार्ग से यथाविधि ज्योतिस्तम्भ के सामने आते भाग में स्थित वैरूप्य दर्पण संयुक्त कर दें फिर वह दीपप्रकाश उस “वैरूप्य-दर्पण” को समग्र रूप से व्याप्त कर विशेषरूप से ३०० कलाओं में भास्वर—सूर्यजैसा प्रकाशवाला हो जावे और शत्रुओं के लिए देखने में अशक्य तथा स्तब्ध करने वाला ही जावे, फिर तीनों कोशों से विधिवत् धूम को लेकर कम से शत्रुपाण्डल के बाहिरी परिवेष के अन्दर २५ डिग्री प्रमाण में यथाविधि युक्त कर दें, पक्षान उस प्रकाश में धूमनाल के अन्दर से धूम को—॥ ८६-८० ॥

सयोजवेदष्टविशलिङ्गमात्रमत् परम् ।

तदद्वृभेनावृत् भान् शत्रुग्नामुपरि क्रमात् ॥ ६१ ॥

व्याप्य तेषामङ्गसन्धिमधोस्थानं च वैगत ।

मनविकाराता नेत्रमान्यं देहाङ्गवन्धनम् ॥ ६२ ॥

दग्धद्वृन्ताकवद् देह ज्वरदाहादिपीडनम् ।

करोति तत्करणात् सर्वं मूर्च्छिताश्च भवन्ति हि ॥ ६३ ॥

पश्चाद् विमानं शास्त्रोक्तविधिना लाघवान् पुनः ।

आकाशपथरेखाया चोदयेत् पूर्ववत् सुधी ॥ ६४ ॥

एवमुक्त्वा वैरूप्यदर्पणायन्त्रक्रिया तत् ।

पश्चचन्द्रमुखं नाम यन्त्रमद्य प्रचक्षते ॥ ६५ ॥

अठाईस लिङ्ग—डिग्री प्रमाण में युक्त करें, इससे आगे उस धूम से आच्छादित या पूर्ण-भान—प्रकाशकम से शत्रुओं के ऊपर व्याप कर वेग से उनके अंगों की सभ्यि मेद-स्थान और मनो-विकारता को नेत्रमन्दता देहांगों का वयन्त्र—जकड़ाव को जले बैंगन के समान देह को ज्वरदाह आदि पीड़ा को तुरन्त कर देता है और सब मूर्च्छित हो जाते हैं । पक्षान विमान को शास्त्रोक्तविधि से लाघव से फिर आकाशमार्गी की रेखा में दुर्द्विमान प्रेरित करे—उड़ावे । इस प्रकार वैरूप्य दर्पणमन्त्र क्रिया को कह कर पश्चचन्द्रमुख नाम का यन्त्र अब कहते हैं ॥ ६१-६५ ॥

तदुक्तं यन्त्रसर्वते—वह कहा है यन्त्रसर्वत्वं प्रथम में—

पीठशशड्कुनैलदण्डो विद्युतन्त्री तयेव च ।

सूक्ष्मदर्पणपत्राणि तथा पदक्रियाविधि ॥ ६६ ॥

पदप्रतिष्ठास्थानानि तद्यन्त्रेयं यथाक्रमम् ।

वाताकर्पणत्वरभस्त्रकीलकाश्च तयेव हि ॥ ६७ ॥

सङ्घोचनविकासनकीलको च तत परम् ।

त्रिचक्रभामणीयन्त्रस्थापनानिर्णयस्तथा ॥ ६८ ॥

वातप्रवाहमार्गाणि चोपसहारकीलकम् ।

एते द्वादशा यन्त्राङ्गानीति शास्त्रविनिर्णय ॥ ६९ ॥

वितस्त्यष्टकमायाम वितस्तित्रमुप्रतम् ।

चतुरस्त्रवर्तुलं वा पीठं पिष्पलदाशणा ॥ १०० ॥

प्रकल्प्य तस्मिन् द्वादश केन्द्रस्थानानि कारयेत् ।

रेखाप्रसारणं कुर्यान्मध्यकेन्द्रात् समग्रत ॥ १०१ ॥

थीं, शंकु, नालदण्ड, विद्युत्तार, सूक्ष्मदर्पणयन्त्र, पद्मप्रतिष्ठा के स्थान, वाताकर्षण कले वाजी खाल की भरत्रिकाओं की कीले—पेंच, सङ्कोच विकास की दो कीले—पेंच, त्रिचक आमणी यन्त्र स्थापन का निर्णय, बायुपवाह के मार्ग, उपसंहार कील, ये १२ यन्त्राङ्ग हैं यह शास्त्र का निर्णय है । ८ थालिश्ट लम्बा ३ थालिश्ट ऊँचा चौकोण या गोल धीठ पिण्ठल की लकड़ी से बना कर उसमें १२ केन्द्रस्थान बनावे, मध्य केन्द्र से एक ओर रेखा खीचे ॥ ६६—१०१ ॥

मध्ये शड्कुनलिंगणी शड्कुनोभयपाशवर्यो ।

विशुतन्त्री पूर्वकेन्द्रे पद्मपत्राण्यथोत्तरे ॥ १०२ ॥

पत्रारणा पद्मरचना दक्षिणोत्तरकेन्द्रयो ।

पद्मप्रतिष्ठा ईशान्यादाग्नेयान्तमत परम् ॥ १०३ ॥

तत्पुरस्तादा वातापकर्षणत्वभस्त्रिका स्मृता ।

सङ्कोचशोलक तद्वत्स्य वायव्यकेन्द्रके ॥ १०४ ॥

तथा विकासकील च भवेन्नैऋत्यकेन्द्रके ।

त्रिचकुञ्चामणीकीलयन्त्र पूर्वमुख स्मृत ॥ १०५ ॥

वातप्रवाहमार्गाण्णिं प्रतिपद्मादध क्रमात् ।

उपसहारकील तद्विक्षणे स्यादितीरितम् ॥ १०६ ॥

एतद् (म?) झट्टादशक केन्द्रद्वादशके स्मृतम् ।

अथाञ्जरचनामार्गसंसद्ग्रहणं निरूप्यते ॥ १०७ ॥

द्वादशाङ्गुलगात्र च वित्तित्रयमुन्नतम् ।

अभ्रमृद्दर्पणात् कुर्याच्छड्कु यास्त्रविधानत ॥ १०८ ॥

मध्य में शकुं, शकुं के सहारे दोनों पाशबों में दो नालदण्ड, पूर्व केन्द्र में विशुत् की दो तारे, उत्तर में पद्मपत्र, पत्रों की पद्मरचना दक्षिण उत्तर केन्द्रों में, पद्मप्रतिष्ठा ईशानी कोण से आग्नेय कोण तक इससे आगे उससे पूर्व वायु को खोचने वाली चर्मभरित्रिका कही है । उसी भाति सङ्कोचनकील उसके वायव्यकेन्द्र में तथा विकासनकील नित्रिति कोण के केन्द्र में, त्रिचक आमणीकील यन्त्र पूर्वमुख में कहा है । बायुपवाहामार्ग प्रतिपद्म के नीचे कम से, उपसंहारकील उसके दक्षिण में हो ऐसा कहा है । ये १२ अङ्ग १२ केन्द्रों में कहे हैं । अब अङ्गरचना का मार्ग—प्रकार संस्त्रेर से निरूपित किया जाता है । १२ अङ्गुल मोटा ३ थालिश्ट ऊँचा अभ्रमृद्द दर्पण से शंकु यास्त्रविधान से बनावे ॥ १०२—१०८ ॥

तदुकं दर्पणप्रकरणे—वह दर्पणप्रकरण में कहा है—

रम्भासत्त्व पञ्चभाग तथैव मञ्जूप्रकाराष्टक पञ्च कान्तम् ।

कृद्यादसत्त्वाष्टकमाढकस्य सत्त्वत्रय झर्मकसप्ततारम् ॥ १०९ ॥

† 'तत्पुरस्ताद' हस्तेष्वेण ।

भल्यत्वगप्रादश कुडमलस्य क्षारत्रय वैरणविकाष्टसत्त्वम् ।  
 खुरत्रय शून्यमृदधीविशत् त्रिविकृमकारचतुष्टयम् ॥११०॥  
 शङ्खद्वय पारदपञ्चकं च क्षाराङ्कक बीरुषसारमेकम् ।  
 रौप्यत्रय चाञ्जनिकत्रय चाष्टादशीते विभिवद् यथाकृमम् ॥१११॥  
 सशोद्य शास्त्राद् वरपरण्मूलवेद्य सम्पूर्णं वि (व?) राट्कुण्ठे ।  
 निक्षिप्य वेगाद् द्विशतोष्णेकक्षयप्रमाणातो गालयित्वाथ शीघ्रम् ॥११२॥  
 शनैश्चनैरूप्यरस लु (स?) वाङ्गात् सम्पूरयेद् यन्त्रमुखोर्ध्वनले ।  
 एव कृते त्वभ्रमृदर्पण स्याद् हठ मुसूक्षम सुमनोहर च ॥११३॥ इत्यादि ॥

रम्भासत्त्व—केले का सत्त्व (ज्ञार या कारूर ५ भाग, मञ्जूषज्ञार—मञ्जीठ का ज्ञार द भाग, कान्त—सूर्यकान्त ५ भाग; क्रव्यादसत्त्व ?—क्रव्यादा—जटामांसी का सत्त्व या क्रव्यादरस—तावे लोहे गन्धक पारे आदि से बता योग ? द भाग, आढक—अरहर का सत्त्व ३ भाग, कूर्मसार ?—कछुवे की खोपड़ी की भरम या कूर्मपृष्ठ—चाण पुष्प का सार ? ७ भाग, भल्यत्वक्—भल्ल—भिलावे की छाल १० भाग, कुडमल—पुष्पकोरक शीतल चीनी का ज्ञार ३ भाग, वैरणविक—वैरणु—बांस का सत्त्व वंशलोचन या वंशज्ञार द भाग, सुर—नस्ती गन्धवेद्य ३ भाग, शून्यमृद् ३—अन्नकमिट्टी या अन्नकभरम ? २द भाग, त्रिविक्रम ज्ञार ?—त्रिविक्रमरस ?—तावा भरम पारा गन्धक कृत्रिम योग ? ४ भाग, शङ्ख २ भाग, पारा ५ भाग, ज्ञार—सज्जीखार द भाग, बीरुषसार ? १ भाग, रोप्य—चान्दी ३ भाग, आञ्जनिक—सुरमा ३ भाग, ये अठारह वतुएँ विभिवत् यथाक्रम शोषकर शास्त्रीति से वरपण्मूला बोतल के मुख में भर कर विराट् कुड में रख कर वेग से २०० दर्जे उष्णता प्रमाण से शीघ्र गलाकर धीरे धीरे उष्णरस को ल वा अङ्ग से यन्त्रमुख की ऊरवाली नाल में भर दे, ऐसा करने पर अन्नमृत—दर्पण सूक्ष्म मनोहर हो जावे ॥ १०६—११३ ॥

वाहुदण्डप्रमाणेन तद्पर्णाविनिर्मिती ।  
 नालदण्डो तथैवास्य वामदक्षिणापार्शवो ॥१४॥  
 सस्थापयेद् हठ पश्चाद् विद्युत्तन्नीन् यथाकृमम् ।  
 पूर्वकेन्द्रविदत्सवंत्रानु द सूत यथा भवेत् ॥१५॥  
 स्थापयेत् कीलनालाना मध्यकुम्भो यथाविधि ।  
 अन्नमृदर्पणकृतपथपाप्यतः परम् ॥१६॥  
 पञ्चाशादुत्तरशतमुदीनीकेन्द्रतन्त्रिषु ।  
 योजयित्वाथ विभिवद् स्थापयेद् विरल यथा ॥१७॥  
 लल्लोक्तेनव विधिना तत्प्राणिं प्रकल्पयेत् ।

वायुदण्ड प्रमाण से उस दर्पण से दो नाल दण्ड इसके बाम दक्षिण पारवें में हठ संस्थापित करे पञ्चान् विशुत्तार-विजुली के तारों को यथाक्रम पूर्व केन्द्र के आदि से सर्वत्र पहुंचे हुए हो जावें ऐसे

<sup>†</sup> सर्वत्रानस्मृत हस्तलेखे (सर्वत्र-मनसि-ऊत) यदि तदा हस्तेन भवितव्यमुकारेण ।

कीलों के मध्य कुक्कि में अभ्यूत दर्पण से बनाए हुए पद्मपत्रों को स्थापित करे, इससे आगे १५० उत्तर दिशा की केन्द्रतारों में विधिवत् युक्त करके छोड़ेरूप में स्थापित करे, आचार्य ललता की कही विधि से उन पत्रों को बनावे ॥११४—११७॥

तदुकं पट्टिकानिवन्धने—वह पट्टिकानिवन्धन में कहा है—

अभ्यमृद्धर्पणं पश्चदशभागं तयैव च ।

चत्वारि सौरिकाक्षारं मेलयित्वा परस्परम् ॥११८॥

गालयित्वा यथापक्वं पट्टिकायन्त्रके न्यसेत् ।

लघुनत्वगिवात्यन्तं (य?) सूक्ष्माप्यावर्तरूपत ११९॥

पश्चाद् भवन्ति पत्राणि पद्मपत्रमिव क्रमात् । इत्यादि ॥

अभ्युर्धर्पणं १५ भाग, सौरिकाक्षार—गजपिण्डीया मजीठ या हुलहुल का ज्ञार ४ भाग भिन्नाकर पक जाने पर पट्टिकायन्त्र पर ढालदे फिर लघुन की त्वचा की भाँति अत्यन्त सूक्ष्म गोलरूपों से पत्र-पत्रं पद्मपत्र की भाँति क्रम से ढो जाते हैं ॥११८—११९॥

तै पद्मरचनार्थं तदामदक्षिणकेन्द्रयो ॥१२०॥

पद्मप्रस्तारवन् कीलप्रस्तारं कारयेदयाऽ ।

तत्पत्रतन्त्रीनाहृत्य तत्तकेन्द्राद् यथाविधि ॥१२१॥

पत्राहरणासन्धानकीलेतु पृथक्, पृथक् ।

सन्धारयेत् तत्प्रस्तारमनुसृत्य यथाविधि ॥१२२॥

उन पत्रों से पद्मरचनार्थं उसके बामदक्षिण केन्द्रों में पद्मप्रस्तार की भाँति कीलप्रस्तार बनावे, अनन्तर पत्र की तारों को उस उस केन्द्र से लेकर यथाविधि पत्रों के पकड़ने के जोड़ कीलों में पृथक् पृथक् उनके फैलाव के अनुसार यथाविधि जोड़ दे ॥ १२०—१२२ ॥

तदुकं कियासारे—वह कियासार में कहा है—

पत्राहरणकीलस्य चालनाद् वेगत क्रमात् ।

प्रस्तारकीलसन्धानानुसारेण यथाक्रमम् ॥१२३॥

एकेकपद्मामायाति तत्तत्त्वीमुखात् पुन ।

तथानुसन्धानकीलचालनात् पत्रसञ्चय ॥१२४॥

स्वतो भूत्वा भवेत् पद्माकारं पश्चात्मनोहरम् ।

नालवत् प्रभवेदेकेकपत्रं च स्वभावत् ॥ १२५॥

एकेकपत्रनालस्याधातपत्रद्वयं भवेत् ।

वाताकर्षणकीलं तु स्यापयेत् तन्मुखात्तरे ॥ १२६॥

नानापकर्षणार्थीय तत्कीलकं चालयेत् तत ।  
 सीतकारपूर्वकं वायु तन्नालं पिबति स्वयम् ॥ १२७ ॥  
 पीतवायुं पुनर्नालस्त्वये (न्ते ?) वेगात् प्रमुख्यति ।  
 आधातपत्रवर्गस्तद्वायुं नीत्वा स्ववेगतः ॥ १२८ ॥  
 विमानादृदृ (दृ ?) रतो बाह्यवायो सम्मेलयेत् कमात् । इत्यादि ॥

पत्राहगण कील के चलाने से वेग से क्रमशः प्रस्तारकील—फैलानेवाली कील के जोड़ के अनुसार यथाक्रम एक एक पदा तार के मुख से आना है फिर जोड़नेवाली कील के चलाने से पत्रों का सञ्चय स्थायं होकर पत्रचात् पद्धाकार—कमल के आकार वाला मनोहर हो जावे और एक एक पत्र—पत्ता नाल की भाँति हो जावे । एक एक पत्रनाल का आधात—मिले दो पत्र हो जावें, वायु को स्खीचने वाली कील तो उसके मुख के अन्दर स्थापित करे, भाँति भाति से स्खीचने के लिये उस कील को चलावे तब वह नाल सीत्कार—सी करके वायु को स्थायं पीता है फिर पिण्ड हुए वायु को नाल आगे वेग से छोड़ देती है मेल को प्राप्त पत्रवर्ग उस वायु को नाल आगे वेग से लेकर विमान से दूर बाहिरी वायु में कम से मिलादे ॥ १२३—१२४ ॥

एव निमितपदमाना यन्ते स्थानविनिर्णय ॥ १२६ ॥  
 उक्तं हि धुण्डिनायेन तदेवात्र निरूप्यते ।

इस प्रकार बने पद्धो—कमलों का यन्त्र में स्थान निश्चय धुण्डिनाथ आचार्य ने कहा है वह यहां निरूपित किया जाता है ॥ १२६ ॥

उक्तं हि सन्धानपटले—सन्धानपटल प्रथं में कहा है—

विमानप्रतिबन्धकचण्डवातनिवारणम् ॥ १३० ॥  
 लल्लोच्छपदमसन्धानादेव स्याननान्य्याभवेत् ।  
 तस्मात् पदमानुसन्धानस्थानानि प्रोच्यन्ते (ते ?) धुना ॥ १३१ ॥  
 पूर्वस्था दिशि ईशान्यादाग्नेयान्तं यथाक्रमम् ।  
 पदमानि स्थापयेत् सप्तकेन्द्रेष्वविश्वलयथा ॥ १३२ ॥  
 सप्तकेन्द्रस्थपयाना पुरोभागे यथाविष्ठि ।  
 एकैकपदमानालस्थावस्तात् सप्तं यथाक्रमम् ॥ १३३ ॥  
 क्षीरीत्वद्नर्मितान् दीघंवाताकषेणाभस्त्रिकान् ।  
 स्थापयेत् सुदृढं पश्चाद् द्विचकावर्तकीलकः ॥ १३४ ॥  
 यन्त्रसङ्कोचकीलस्तु तस्य वायव्यकेन्द्रके ।

विमान को रोकेन वाले प्रचण्डवायु का निवारण लल्ल आचार्य के कहे पद्ध—कमल के लगाने से ही हो—होता है अन्यथा नहीं होता है । अतः पद्धकमलों को युक्त करने के स्थान अब कहे जाते हैं । पूर्व दिशा में ईशानी कोण से लेकर आग्नेय कोण तक यथाक्रम पद्धो—कमलों—वायु को निकालने वाले दलचक्कों को ७ केन्द्रों में पास पास स्थापित करे । ७ केन्द्रों में स्थित पद्धों के सामनेवाले भाग

में यथाविधि एक एक पद्मनाल के नीचे यथाक्रम शोरोवृत्त की छाल से घनी बायु को शीर्णेवाली लम्बी भूत्ताओं को सुट्ट खापित करे पश्चात दो चक्रों को घुमानेवाली कीलों—पेंचों से यन्त्रसङ्कोचकील उसके वायध्यकेन्द्र में लगादे ॥ १३०—१३४ ॥

तदुकुं क्रियासारे—बह क्रियासार प्रथम में कहा है—

अनुलोमान्मूलकील विलोमादूर्ध्वकीलकम् ।  
यदा सम्भ्राम्यते वेगाद् यन्त्रसङ्कुचितो भवेत् ॥ १३५ ॥  
षट्चक्र विस्तृतैर्युक्त पञ्चनालविराजितम् ।  
तथा द्वादशतन्त्रीभिर्द्वादशास्थैर्वच सयुतम् ॥ १३६ ॥  
द्वादशाङ्गोपहरणकीलकस्मुमनोहरैः ।  
भ्राजमान विस्तृतास्यमूर्ध्वधो भागतस्थथा ॥ १३७ ॥  
द्वादशा भ्रमण कीलाभ्या योजित कमठाङ्गुतम् ।  
एतलक्षणासयुक्त यन्त्रसङ्कोचकीलकम् ॥ १३८ ॥  
तत्कील स्वापयेद् यन्त्रवायध्ये सुहृद यथा ॥ इत्यादि ॥

मूल कील अनुलोम—सीधेहृप ऊपर वाली कील विलोम—उलटे रूप से जब वेग से घूमती हैं तो यन्त्र सङ्कुचित हो जावे—हो जाता है । विस्तृत ६ चक्रों से युक्त पाच नालों से सम्बन्ध १२ तारों से और १२ मुखों से युक्त १२ अङ्गों का सङ्कुचक करनेवाली मुमनोहर कीलों से भ्राजमान—प्रकाशमान—प्रवर्तमान ऊपर नीचे भागों से बड़े मुखवाला दोनों कीलों के द्वारा भ्रमणसाथन कछुवे के आकारवाला ऐसे लक्षणों से युक्त यन्त्र को सङ्कुचित करनेवाला को-ल-पेंच हो उस ऐसे पेंच को यन्त्र के वायध्यकोण में सुट्ट खापित करे ॥ १३५—१३८ ॥

एव सस्थाप्य सुहृद यन्त्रसङ्कोचकीलकम् ॥ १३९ ॥  
यन्त्रविस्तृतकीलस्य स्थापन चाभिवर्ण्यते ।

इस प्रकार यन्त्रसङ्कोच करनेवाले पेंच को खापित करके यन्त्र को विस्तृत करनेवाले पेंच का स्थापन वर्णित किया जाता है ॥ १३९ ॥

तदुकुं क्रियासारे—बह क्रियासार में कहा है—

कमाद द्वादशचक्रास्य वर्तुल पूर्णकुम्भवत् ॥ १४० ॥  
नालद्वादशके रत्नसदालार्कविराजितम् ।  
उत्क्षेपणक्रियावर्तकीलद्वादशके युर्तम् ॥ १४१ ॥  
वातप्रपूरणावर्तमध्यकीलकसयुतम् ।  
एतलक्षणासयुक्त यन्त्रविस्तृतकीलकम् ॥ १४२ ॥  
विस्तृताङ्ग भवेद् यन्त्रमेतत्कीलकचालनात् ।  
तस्माद् यन्त्रविकासकील नैऋत्यकेन्द्रके ४३ ।

स्थापयेत् सुट्ठं पश्चाद् यन्त्रपूर्वमुखे क्रमात् ।

त्रिचक्रभ्रामणीकीलकप्रतिष्ठा च कारयेत् ॥ १४४ ॥

क्रम से बाहर चक्रों के मुखवाला पूर्ण घड़े के समान गोल भीतरी शताकाओं सहित बाहर नालों से विराजमान, उच्चेषणकिया के लिए घूमनेवाली बारह कीलों से युक्त वायु से भरे घूमनेवाले मध्य पेंच से युक्त हो इन लक्षणों से युक्त यन्त्र को विस्तृत करनेवाला पेंच विस्तृताङ्गवाला होते, यह यन्त्र कील चलाने से यन्त्र का विकास करनेवाली कील को नैऋत्यकोण वाले केन्द्र में सुट्ठं स्थापित करदे पश्चात् क्रम से यन्त्रमुख के तीन चक्रोंवाली भ्रामणी कील की प्रतिष्ठा को कर देता है ॥ १५०—१५४ ॥

तदुकं क्रियासारे—वह कहा है क्रियासार प्रथ्य में—

दन्तचक्रसमायुक्त दण्डत्रयविनिमितम् ।

शिरोभागे शिशुमाराकारवत् कृतं दारणा ॥ १४५ ॥

सयोजित तथा चोर्ध्वकीलचक्रविराजितम् ।

भ्रामणीकीलक प्रोक्तमेतत्लक्षणालक्षितम् ॥ १४६ ॥

एतत्सूत्रवालनादेव यन्त्रसर्वाङ्गचालनम् ।

भवेद् यन्त्रविकाससञ्च तत्त्वकीलकचालनात् ॥ १४७ ॥

तस्मात् त्रिचक्रभ्रामणीकीलक पूर्वकेन्द्रे ।

स्थापयेद् विविना पश्चशङ्कुताडनतो दृढम् ॥ १४८ ॥ इत्यादि ॥

दन्तचक्रों से युक्त तीन दरणों से बना शिरोभाग में शिशुमार-उद्विलाओं जलजन्तु के आकार वाला लक्षणी से बनाया हुआ और उपरिकीलचक्रों से जोड़ा हुआ इस लक्षणवाला भ्रामणीकील कहा है इसके चलाने से ही यन्त्र के सब अङ्गों का चलना होता है । अत तीन चक्रोंवाला भ्रामणी पेंच पूर्वकेन्द्र में विधि से पांच शङ्कुओं के ताढ़न से ढृढ़ स्थापित करे ॥ १४९—१५३ ॥

वातप्रवाहमार्गाणि पदार्थो भागसन्धिषु ।

पदासस्यानुसारेण कर्तव्यानि यथाक्रमम् ॥ १४९ ॥

वायुप्रवाह के मार्ग पद्मांसंख्यानुसार पद्मों के नीचले भाग की संख्यों में यथाक्रम करने चाहिए ॥ २४६ ॥

तदुकं क्रियासारे—वह कहा है क्रियासारप्रथ्य में—

द्वादशाङ्गुलमानस्य द्वारेण सुविकल्पितम् ।

द्वादशाङ्गुलप्रभारणेनोन्नतेन समन्वितम् ॥ १५० ॥

त्वगावरणासयुक्त कृत पिपलदारणा ।

वातप्रवहनार्थाय नालसप्तकमीरितम् ॥ १५१ ॥

वातप्रवहनालं स्थादेतत्लक्षणालक्षितम् ।

एकैकपदमूलस्थकीलकेषु यथाक्रमम् ॥ १५२ ॥

सन्धारयेत् सप्तनालात् तेन वात प्रधावति । इत्यादि ॥

१२ अबगुल मापवाले मुखद्वार से बना हुआ १२ अङ्गुलमाप ऊँचाई से युक्त आवरण से युक्त पिण्ड की लकड़ी से किए गया हो, वायु के बहने के लिये ७ नालों की है, इन लकड़ी से लक्षित वायु को बहानेवाला नाल हो, एक एक पद्ममूर्ति में स्थित पेंचों में यथाक्रम ७ नालों को जोड़े—जगावे इस से वायु दौड़ता है ॥ १५०—१५२ ॥

अयोपसहारकीलक तदक्षिणकेन्द्रके ॥ १५३ ॥

स्थापयेत् सुट्ठु शुट्ठु दादशास्य मनोहरम् ।

अदितेर्गंभीर्कोशीयसन्धिस्थानेतु वेगत ॥ १५४ ॥

वसन्तादिकमात् तत्तद्दुकालानुसारत ।

जायन्ते चण्डकुमदीयशक्षयो विषदारुणा ॥ १५५ ॥

वारुणीप्रेरणात् पश्चाद् वातस्तम्भ विशन्ति हि ।

महावातस्तम्भकेन्द्रवातस्त्रोतस्त्वत् परम् ॥ १५६ ॥

युन दशमुखवाला उपसंहारकील—ऐच उसके दक्षिण केन्द्र में सुट्ठु स्थापित करे, अग्नि के गर्भकोश के सन्धिस्थानों में वेग से वस्त्र अदिक्रम से उस शृनुकाल के अनुसार प्रचण्ड कूम आदि शक्तियां वायुप्रिवाली प्रकट हो जाती है, पश्चात् वारुणी—विशुनु की प्रेरणा से वातस्तम्भ में पविष्ट होता है, इस से आगे महावातस्तम्भकेन्द्र के वातस्रोतों में— ॥ १५२—१५६ ॥

भवेदत्यनकल्लोलप्रावाहशब्दपूर्वकम् ।

एतदाकाशपारिधिकद्यावरण्यावायुषु ॥ १५७ ॥

प्रविश्यात्यन्तवेगेन करोति मन्त्रन तत् ।

तत्प्रकोपाञ्छण्डवातप्रवाहो वेगतो भवेत् ॥ १५८ ॥

यदा विमानोपरि तदायुधर्ति विशेषत ।

क (क?)स्त्रिन्यासवत्तिमन् पङ्कुसञ्जायते स्वत ॥ १५९ ॥

तत्सम्पर्काद् विमानस्थयन्तृणा स्यात् मसूरिका ।

विशिलत्वं समायाति विमानश्चापि तत्त्वणात् ॥ १६० ॥

अतस्तद्वायुमाकृष्ण विमानाद् बाहृत् क्रमात् ।

सञ्जीदनार्थं विविवत् पद्मप्रमुखाभिषम् ॥ १६१ ॥

यन्त्र सस्थापयेत् तस्मात् तत्स्वरूपे निरूपित ।

विशालतरङ्गप्रवाह शब्दपूर्वक हो जावे, इस के आकाश परिधिकक्षा के आवरणवायुओं में अत्यन्तवेग से प्रविष्ट होकर मन्त्रनकृत है इसके प्रकोप से प्रचण्डवायुप्रवाह वेग से हो जावे—हो जाता है, जब विमान के ऊपर वह वायु विशेषत, गति करता है तब कोई गोन्द के समान पङ्कु-झीचड़ सा स्वतः प्रकट हो जाता है उसके सम्मुक्त से विमानस्थ चालक और यात्रियों के मसूरिका (छोटी बेचक) हो जाती है और विमान भी तत्त्वणा शिखिलता को प्राप्त हो जाता है अतः उस वायु को स्त्रीचक्र विमान से बाहिर क्रम से प्रेरित करने के लिये विविवत्—पद्मप्रमुखनामक यन्त्र को संस्थापित करे, अतः उसे स्वरूपप्रसङ्ग में निरूपित किया है ॥ १५७—१६१ ॥

इस्तलेख कापी संख्या ६—

अथ कुण्ठिरणीशक्तियन्ननिर्णयः—अब कुण्ठिरणीशक्तियन्न का निर्णय देते हैं—

पद्मचक्रमुख यन्त्रमेवमूक्तवा यथाविधि ।

कुण्ठिरणीशक्तियन्नन्नाथ सग्रहेण निरूप्यते ॥१॥

श्रीष्मोष्माशुसमूहेषु त्रिपञ्चदशमेलनात् ।

कुलकाल्यमहाशक्तिरत्यन्तोष्मा प्रजायते ॥२॥

पद्मचक्रमुख यन्त्र इस प्रकार यथाविधि कह कर कुण्ठिरणीशक्तियन्न अब संचेप से निरूपित किया जाता है । श्रीष्म की ऊर्ध्व समूहों में तीन, पांच, दर्श के मेल से कुलका नामक महाशक्ति अत्यन्त ऊर्ध्व उत्पन्न हो जाती है ॥१-२॥

तदुक्तमृतकल्पे—वह कहा है मृतुकल्प में—

महाक्षोणिग्रीष्म पद्मावत् कोटीनामेकविशति ।

लक्षाणा पञ्चसहस्रं सहस्रणा तु पोडश ॥३॥

पश्चादेकोनविशत् सर्स्याकान् † सूर्यमरीचय ।

प्रसरन्ति विशेषेणादितेश्रीष्माशयगर्भत ॥४॥

तेषा वर्गविभागस्तु वाल्मीकिगणिते क्रमात् ।

पञ्चकोट्यष्टसहस्रप्तीतरशत स्मृतम् ॥५॥

तेषामेककवर्गेण विभागाशशतधा कृता ।

तेषु द्वितीयवर्गस्थविभागेषु यथाक्रमम् ॥६॥

तीन माहक्षोणिं ? अविज्ञेय संख्या विशेष सम्भवतः अर्व पश्चात् ३१ बोड, पांच सहस्र ( गुणित ) लाख, सोलह सहस्र कि १६ संख्या में सूर्यकिरणों विशेषरूप में अद्विति—सूर्यमाता अपि न के श्रीष्म नामक गर्भ से प्रसार करती हैं उनका वर्गविभाग तो वाल्मीकिगणित में क्रम से ५ कोड सहस्र १०७ कहे हैं । उनमें से भी एक एक वर्ग में विभाग १०० किये हैं उनमें द्वितीय वर्गस्थ विभागों में यथाक्रम—॥३—६॥

त्रिपञ्चदशमीष्मांशुमेलन श्रीष्ममध्यमे ।

यदा भवति श्रीष्मोष्मा क्रमान्त व्याप्ते स्वयम् ॥७॥

† जस्-स्थाने शस् आवे

पश्चात् कञ्चप्रस्तोचशक्त्याकर्षणत् क्रमात् ।  
 कुलकाल्या जायते काञ्चिञ्चक्षित ज्वलनवस्त्वत् ॥८॥  
 तत्सयोगो यदि भवेद् व्योम्निं यानपथि क्रमात् ।  
 भस्मीकृत भवेद् व्योमयानमत्यन्तशीघ्रत ॥९॥  
 तदपायविनाशार्थं कुण्ठितशक्षितयन्त्रकम् ।  
 सस्थापयेद् यानकण्ठप्रदेशे सम्प्रदायत ॥१०॥ इत्यादि ॥

तीन पांच दश ऊर्ध्व किरणों का मेल ग्रीष्म में जब होता है तो ग्रीष्म की उषणा क्रम तक स्वयं व्यापत्ति है पश्चात् कल्पक प्रस्तोचन शक्ति के आकर्षण से कम से कुलकानामक कोई शक्ति उत्पत्तन की भाँति स्वत उत्पन्न हो जाती है यदि उसका संयोग आकाश में विमान के मार्ग में कम से हो जावे तो विमान अत्यन्त शीघ्र भरम हो जावे उस अनिष्ट के विनाशार्थं कुण्ठितशीशक्षित यन्त्र विमान के कलठप्रदेश में परम्पराविचार से संस्थापित करे ॥७-१०॥

नारायणोपि—नारायण भी इसमें कहता है—

ग्रीष्मोपमकिरणवर्गविभागेषु यथाक्रमम् ।  
 द्वितीयवर्गकिरणा । पञ्चाशीतिसहस्रशः ॥११॥  
 तेष्वष्ट्रिदशसत्याकाशबोत्यन्तमूष्मकाः ।  
 कूर्मस्थप्रम्लोचशक्त्याकर्षणत् स्वभावत ॥१२॥  
 एकीसूख्य यथा ग्रीष्मे मिलितास्त्वुं परस्परम् ।  
 तदा सञ्जायते काञ्चित् कुलिकाल्या महत्तरा ॥१३॥  
 शक्षितरत्यन्तोष्णरूपा अग्निज्वालावलीरिव ।  
 तत्सयोगो यदि भवेद् व्योमयानस्य तत्करणात् ॥१४॥  
 भस्मीकृत भवेद् व्योमयानमत्यन्तशीघ्रत ।  
 तदपायविनाशार्थं कुण्ठितशक्षितयन्त्रकम् ॥१५॥  
 सस्थापयेद् यानकण्ठप्रदेशे सम्प्रदायत ॥ इति ॥

ग्रीष्म के ऊर्ध्व किरणवर्ग के विभागों में यथाकाम द्वितीय वर्ग की किरणेण दूसरे सहस्र हैं उनमें आठ त्रिदश-८+१३ = २१ संख्या किरणे अत्यन्त सूक्ष्म हैं । कूर्मस्थ प्रस्तोचन शक्ति के आकर्षण से स्वभावत एक होकर जब ग्रीष्म में परस्पर जब मिल जावे तो कुलिका नामक अत्यन्त उषणरूपा अग्निज्वालामाला के समान महत्तरा शक्ति उत्पन्न हो जाती है, यदि विमान का उससे संयोग हो जावे तो विमान अत्यन्त शीघ्र भरम हो जावे उस अनिष्ट के विनाशार्थं कुण्ठितशीशक्षितयन्त्र विमान के कलठ-प्रदेश में परम्परा से संस्थापित करे ॥११-१५॥

लल्लोपि—लल्ल आर्चार्य ने भी कहा—

ग्रीष्मोपमकिरणवर्गविभागेषु यथाक्रमम् ।  
 द्वितीयवर्गे द्वात्रिशद् विभागस्थांशुषु क्रमात् । १६ ॥

पञ्चत्रिदशसव्याका किरणा ऊर्ध्वरूपिणा ।

कूर्मस्थप्रस्त्रोचशक्त्याकर्षणे स्वभावतः ॥ १७ ॥

पस्पर (तु) सम्मलिता भवेयुग्रीष्मके यदा ।

तदा सजायते काचिच्छक्तिरूपणस्वरूपिणी ॥ १८ ॥

कुलका नाम तद्वेगाद् विमान नाशमेवते ।

ता निवारयितु शास्त्रे कुण्ठिणीशक्तियन्त्रकम् ॥ १९ ॥

उक्त तस्माद् व्योमयाने प्रतिष्ठा कारयेद् दृढम् ॥ २० ॥ इत्यादि ॥

प्रीष्म से उष्ण किरणवर्ण के विभागों में यथाक्रम दूसरे वर्ग में ३२ विभागों में रहने वाली किरणों में क्रम से पाच, तीन, दश संख्या वाली ऊर्ध्वरूपी किरणे कूर्मस्थ प्रस्त्रोचन शक्ति के स्वभावतः आकर्षण से प्रीष्म में जब परस्पर सम्मलित हो जावें तो उष्णरूपी कोई कुलका शक्ति प्रस्त्र हो जाती है उससे वेग से विमान नाश को प्राप्त हो जाता है, उसके निवारण करने को शास्त्र में कुण्ठिणीयन्त्र कहा है अतः विमान में दृढ़ प्रतिष्ठा बनावे ॥ १६-२० ॥

अतस्तत्कुण्ठिणीशक्तियन्त्रमन्त्रातिसग्रहात् ।

तत्स्वरूपपरिज्ञानसिद्धधर्थं सम्प्रचक्षते ॥ २१ ॥

अतः उस कुण्ठिणी शक्तियन्त्र को अति संक्षेप से उसके स्वरूपरिज्ञान की सिद्धि के अर्थ यहां कहते हैं ॥ २१ ॥

तदुकं यन्त्रसर्वस्वे—वह कहा है यन्त्रसर्वस्व प्रथमे—

व्योमयानाङ्गयन्त्रेषु कुण्ठिणीशक्तियन्त्रकम् ।

प्रीष्मकालीनकुलिकाशक्तिनाशायेमुच्यते ॥ २२ ॥

पीठकेन्द्रावर्तकीलद्रवप्रात्रपटोर्मिका ।

चक्रदन्ति शीरपटनालावरणकीलका ॥ २३ ॥

विद्युत्तम्भीसामायुक्तञ्चामणीचक्रमेव च ।

विस्तृतास्योपसहारकीलकाशवेत्यमी दश ॥ २४ ॥

कुण्ठिणीशक्तियन्त्रस्याङ्गानीतिं विनिर्णयता ।

पञ्चाङ्गन्येवमुक्त्वास्य प्रयोग ( ? ) सम्प्रचक्षते ॥ २५ ॥

वितरितत्रयविस्तारं वितरितयर्थेन्नत तथा ।

चषकाकारवत् पीठ वर्तुल कारयेद् दृढम् ॥ २६ ॥

रचयेद् सप्तकेन्द्राणि तस्मिन् प्रागादित् क्रमात् ।

आवर्तकीलकान् पञ्चात् सप्तकेन्द्रेषु योजयेत् ॥ २७ ॥

द्रवपात्रं मध्यकेन्द्रे स्थापयेत् सुहृद यथा ।

विमान के अङ्गयन्त्रों में कुण्ठिणीशक्ति यन्त्र श्रीष्मकालीन कुलिका शक्ति के नाशार्थ कहा

जाता है। पीठ, केन्द्र, आवर्तील, द्रव्यपत्र, पट, ऊर्मिका, चक्रदन्ति, स्त्रीरपटनालावरण कील, विद्युतारों से युक्त भ्रामणी चक्र, विस्तृतास्पृष्टसंहार कील ये दश कुरिटण्णी शक्तियन्त्र के अङ्ग हैं ऐसा निर्णय किया गया है। पांच अंग इस प्रकार कह कर प्रयोग कहते हैं। तीन वालिसत औड़ा लम्बा आथा वालिसत ऊंचा लोटा पात्र के आकार की भाँति गोल पीठ ढंड बनावें, उस पर पूर्व आदि कम से ७ केन्द्र रखें, पश्चात् ७ केन्द्रों में घुमने वाले पैंच लगावें, मध्य केन्द्र में द्रव्यपत्र सुट्ट ख्यापित करें। २२-२७॥

तदुक्त क्रियासारे—वह कहा है क्रियासार प्रथम में—

कुलकाकर्षणे गुज्जागृधिनकाद्रावक वरम् ।  
 तथैव श्येनकर्मणा चापि श्रेष्ठतम् विदु ॥ २८ ॥  
 नागक्रीञ्जिकसौररम्भलोहाद् ये कृतदर्पणात् ।  
 निर्मिते चयकाकारपात्रे पश्चाद् यथाविधि ॥ २९ ॥  
 सम्मूर्येत् सप्रमाणा गुञ्जागृधिनकद्रावकम् ।  
 शोधित श्येनकर्मणा सूत चापि निवेशयेत् ॥ ३० ॥  
 पश्चात् सप्तापयेद् पश्चमध्यकेन्द्रे यथाविधि ।  
 आहृत्यादित्यकिरणान् पश्चात्तस्मिन्नियोजयेत् ॥ ३१ ॥  
 तदशुवेगात्तप्ता त्रिद्रावकस्थमणो क्रमात् ।  
 क्रीञ्जनीनामका काचिच्छ्रुक्तिरस्यतशीतला ॥ ३२ ॥  
 उदध्य व्याप्त सर्वत्र कुलिकाभिमुखा भवेत् ।  
 पश्चात् तत्कुलिका शक्तिस्तदाकर्षणेतस्स्वयम् ॥ ३३ ॥  
 पतलात्यन्तवेगेन पात्रस्थद्रावके क्रमात् ।  
 अथ तत्कुलिकाशक्तिं मणि पिवति तत्कणात् ॥ ३४ ॥ इत्यादि ॥  
 तथैव स्थापयेद् वामकेन्द्रे पश्चात् पटोर्मिकान् ।

कुलका के आकर्षण में गुज्जा—रन्ति धूंघची, गृधिनका ? गृध पत्र—तम्बाकू या गुज्जनिका—रक्त सौजन्या का शुद्ध द्रावक, इसी प्रकार श्येनकर्मा—पारे को भी श्रेष्ठ समझा नाम क्रीञ्जिक सौररम्भ लोहे से जिन से किये दर्पण से बने चक्रकाकार पात्र में यथाविधि सप्रमाणा गुज्जागृधिनका द्रावक भर दें, शोधित श्येनकर्मा भारा हुआ पारा भी डाले पश्चात् यन्त्र के मध्य केन्द्र में यथाविधि संस्थापित करें, सूर्य की फिरणों को दीक्षा उसमें नियुक्त करें, उन किरणों के बेग से उस पात्र के द्रावकस्थ मणि में कम से क्रीञ्जनी नाम वाली कोई शक्ति अत्यन्त शीतल प्रकट होकर सर्वत्र व्याप्त कर कुलिका के सामने हो जावे पश्चात् कुलिका शक्ति उसके आकर्षण से सर्वत्र अत्यन्त वेग से पात्रस्थ द्रावक में गिरती है। अनन्तर कुलिका शक्ति को मणि तुरत ती लेती है, वैसे ही पश्चात् वामकेन्द्र में पटोर्मिकों को स्थापित करें। २८-३४॥

तदुक्तं पटकल्पे—वह कहा है पटकल्प में—

गुजार्गुणिकद्रावस्थमणिपीतां महोप्तिकाम् ।  
 संरोदुं कुलिकाशर्वित तन्मणावेव तेजसा ॥ ३५ ॥  
 अत्यन्तसूक्ष्मात् सुट्टात् लक्षावर्णविराजितात् ।  
 पश्चावरणसयुक्तानास्यव्रयसमन्वितात् ॥ ३६ ॥  
 गौरीजटाशणमयपठतनुविनिर्मितात् ।  
 विरच्छद्रवसुद्धात् सप्रकाशात् पठोमिकात् ॥ ३७ ॥  
 समाहृयाथ विधिवत् प्रादक्षिण्यकमात् पुन ।  
 यथा समाच्छादित् स्थाद् द्रवपात्रमणिस्तथा ॥ ३८ ॥  
 अधोमुखस्यमाच्छाद्य सन्धान कारयेद् दृढम् ।  
 एव सन्धाय विधिवत् तदास्यव्रयमूलत ॥ ३९ ॥  
 अत्यन्तसूक्ष्मानादशङ्कृतनालानधोमुखात् ।  
 सन्धारयेत् सूक्षमकीर्णे पश्चात्तेषु यथाविधि ॥ ४० ॥  
 सुखपात्राण्यथाशास्त्रं विस्तृतानि नियोजयेत् ॥ इत्यादि ॥

गुजार्गुणिक द्रावस्थित मार्ग से पी हृद्द महोप्तिका के रोकने को उस मणि में कुलिका शक्ति को तेज से अत्यन्त सूक्ष्म सुट्ट लक्षा रंग से युक्त पांच आवरणों से संयुक्त तीन मुख वाले गौरीजटा—सूक्ष्म जटामांसी शाशेहपत तनुओं से बने विरच्छिं ? के द्रव से शुद्ध प्रकाशसहित पठोमिकों—वस्त्र की तहों को लेकर विधिवत् प्रादक्षिण्य—धूम लपेट के क्रम से द्रवपात्र मणि आच्छादित हो जावे तथा नीचे का मुख ढक कर सन्धान—दृढ बन्धन कर दें इस प्रकार विधिवत् जोडवन्धन करके तीन मुखों के मूल से अत्यन्त सूक्ष्म आदर्श से बने अधोमुख नालों को सूक्ष्म कीलों से जोड़ दें । पश्चात् उनमें यथाविधि यथाशास्त्र विस्तृत मुखपात्र नियुक्त कर दें ॥ ३५—४० ॥

ततो द्रवपात्रस्येषान्ये तु यथाविधि ।  
 सस्थापयेच्चकदन्ति कुलिकाकर्षणोन्मुखम् ॥ ५१ ॥

फिर द्रावक पात्र के ईशानी कोण में यथाविधि कुलिकाकर्षण के उन्मुख चक्रन्ति स्थापित करे ॥ ५१ ॥

तदुकं क्रियासारे—वह कहा है क्रियासार में—

कुलिकाशक्षिपानार्थं चक्रदन्ति प्रकल्पयेत् ।  
 सर्पत्वक्त्वयिनिर्यासोरणेतन्तुमुखघृणे ॥ ५२ ॥  
 पटवत्पाकमेदेन निमित दर्पणे कमात् ।  
 संशोध्य विधिवच्छुण्डिद्रावकेण (न?) यथाविधि ॥ ५३ ॥  
 कृत्वा बिलेशयस्वाङ्गं चक्राकारेण वर्तुलम् ।  
 शेते यथा तथा कृत्वा पश्चात् सस्थापयेद् दृढम् ॥ ५४ ॥

अथ तत्पुर्वोक्तालानतिसूक्ष्मात् यथाविषि ।  
 सन्धारयेद् वन्निश्चले अविनाभावतः क्रमात् ॥ ४५ ॥  
 एवमुक्त्वा चक्रदन्तिनालासन्धाननिर्णयम् ।  
 अथेदानी क्षीरपटनालस्थापनमुच्यते ॥ ४६ ॥

कुलका शक्ति के पीले न के लिये चक्रदन्त बनावे । सर्प की केंचुली, सुणि ? -खिरनी ? का गोन्द, उन का धागा, वारीक तिनसों से पाकभेद से वस्त्र की भाति बनाए दर्पण को विधिवत्-शुणही-हायीशुणडा वृक्ष के द्रावक से शोधक जैसे सर्प अपने शरीर को चक्राकार-गोल करके सोता है वैसे बनावे रसंधापित करे अनन्तर उन पूर्वोक्त अविनाशन नालों को दन्तिश्चल में भिलाकर लगावे, इस प्रकार चक्रदन्तिनाल लगाने के निर्णय को कहकर अब क्षीरपटनाल का स्थापन कहा जाता है ॥ ४५—४६ ॥

तदुक्तं क्रियासारे—वह क्रियासार प्रथ में कहा है—

क्षीरीपटेन रचितं विस्तृतास्य दृढ़ मुदु ।  
 नालेमेकं चक्रदन्तिश्चलादावतंकमात् ॥ ४७ ॥  
 परिवेष्ट तदास्य तु पीठछिद्रे नियोजयेत् ।  
 तदद्वारा कुलिकाशक्तिर्वहिनिर्गच्छति क्रमात् ॥ ४८ ॥  
 तस्मात् त स्थापयेत् क्षीरीपटनालमितीरितम् । इत्यादि ॥

क्षीरीपट—दूधवाले वृक्ष के दूध गोन्द पट से बनाया विस्तृतमुखवाला दृढ़ कोमल एक नाल चक्रदन्तिश्चल से वृमने के क्रम से उस मुख को लपेटकर पीठ के छिद्र में लगावे, उसके द्वारा कुलिका शक्ति वाहिर क्रम से चली जाती है अतः उस क्षीरीपटनाल को स्थापित करे यह कहा है ॥ ४७—४८ ॥

स्थापयित्वा क्षीरनालपटमेव सकीलकम् ।  
 विशुत्तन्त्रीसमायोगाद् भ्रामणीचक्रकीलकम् ॥ ४९ ॥  
 सर्वाङ्गभ्रमणा यन्त्रे तत्तत्कीलकमार्गतः ।  
 यथा भवेत् तथाकीले स्थापयेत् पश्चिमान्तरे ॥ ५० ॥  
 एव सस्थाप्य विधिवद् भ्रामणीचक्रकीलकम् ।  
 तस्येत्यान्या विस्तृतास्यकीलक स्थापयेद् दृढम् ॥ ५१ ॥

इस प्रकार क्षीरनालपट कीलसहित स्थापित करके विजुली के तार के सम्बन्ध से भ्रामणीचक्र को सर्वाङ्ग भ्रमणयन्त्र में उस कीलवाले मार्ग से कीलों के साथ पश्चिम भाग के अन्दर स्थापित करे, इस प्रकार विधिवत् भ्रामणीचक्रकील उसके ईशानी दिशा में वडे मुखवाले पेंच को दृढ़ स्थापित करे ॥ ४९—५१ ॥

तदुक्तं क्रियासारे—वह क्रियासार में कहा है—

कोशद्वयसमायुक्त मुखद्वयविराजितम् ।  
 प्रदक्षिणाप्रदक्षिणकीलचक्रसमन्वितम् ॥ ५२ ॥

प्रादक्षिण्येन पूर्वस्थे कीलचकद्वयं तथा ।

विलोमेनोत्तरास्ये च स्थापयेच्चककीलकम् ॥ ५३ ॥

छटीशलाकावत् सर्वकीलव्याप्तशलाककम् ।

एतलक्षणासंयुक्त विस्तृतास्याख्यकीलकम् ॥ ५४ ॥ इत्यादि ॥

दो कोरों से युक्त दो मुखों से सम्पन्न प्रदच्छिया से घूमनेवाले कीलचक से युक्त दाएँ पूर्व मुख में हो कीलचक तथा बांग से उत्तरमुख में चककील स्थापित करे, छत्री शलाकाओं की भाँति सब कीलों पैंचों में ड्याप—पूरित शलाकाओं गता हो इस लक्षण से युक्त विस्तृत मुखवाला नाम का कील पैच है ॥ ५२-५३ ॥

पूर्वस्थ्यकीलभूमणात् सर्वज्ञा विस्तृता क्रमात् ।

तथा मुकुलिताङ्गा स्मृत्तरे कीलकभूमात् ॥ ५५ ॥

एव क्रेमोपसहारकीलक यथाक्रमम् ।

सन्धारयेद् यथाशास्त्र यथा यन्त्रोपसहृति ॥ ५६ ॥ इत्यादि ॥

पूर्वमुख कील के प्रमाण से सारे विस्तृत उत्तर अङ्ग कीलभूमण से सङ्क्षिप्ताङ्ग हो जावे इस प्रकार क्रम से उपसंहार कील यथाक्रम यथाशास्त्र लगावे जिससे यन्त्र का उपसंहार हो जावे ॥ ५५-५६ ॥

यन्त्राङ्गायेवमुक्तवाथ तत्प्रयोगोभिवर्ण्यते ।

विद्युत्कीलकसन्धानमादौ कुर्याद् यथाविधि ॥ ५७ ॥

तेन स्याद् भ्रामणीक्रूमण वेगतस्तत ।

तेन सर्वावत्कीलान् क्रियाकालानुसारत ॥ ५८ ॥

भवेद् भ्रामणितु सम्यक् सप्रमाण यथाविधि ।

कर्तव्यकर्मरचना तत्त्वकीलकभूमणादिति ॥ ५९ ॥

द्रावके च मरणौ पश्चाद् विद्युत्कीलक प्रयोजयेत् ।

सयोजयेत् सूर्यकिरणानाहृत्यास्मिन् तर्यव हि ॥ ६० ॥

यन्त्र के अङ्गों को इस प्रकार कहकर उनका प्रयोग कहा जाता है, प्रथम विशुन्—कील का सन्धान यथाविधि करे उस से भ्रामणीक्रूक—सव को घुमाने वाले चक का भ्रमण वेग से हो जावे, फिर उस से घुमाने वाले पैंचों को क्रियाकालानुसार यथाविधि सप्रमाण सम्यक् घुमाने को उस उस कील के भ्रमण से कर्तव्यकर्म की रचना हो जावे और पश्चात् द्रावकर्मणि में विशुन्-शक्ति को प्रेरित कर सके उसी प्रकार सूर्यकिरणों को लेकर इसमें संयुक्त करवे ॥ ५७-६० ॥

सुर्या शुविद्युतसम्पर्काद् द्रावके च मरणौ क्रमात् ।

भवेद्युतीत्वनस्तस्मिन् स्त्रीशक्तिस्तीलिकाभिषा ॥ ६१ ॥

जायते द्रवसंसर्गात् पञ्चन्यकूप्रमाणतः ।

तर्यव मणिसंसर्गात् पुंशक्तिद्युलिकाभिषा (दा ?) ॥६२॥

अष्टन्यङ्कप्रमाणेन जायतेत्यन्तवेगत ।  
 विद्युत्सयोजनात् पश्चात् तयोस्समेतन भवेत् ॥ ६३ ॥  
 तत्सम्मेलनत काचिच्छक्तरत्यन्तशीतला ।  
 जायते कोञ्चिनीनाम कुलिकाकरणाक्षमा ॥ ६४ ॥  
 अथ तच्छक्तिमाहृत्य कुलिकाभिमुख यथा ।  
 भवेत् तथा नालमुतात् प्रेरयेत् सप्रमणात् ॥ ६५ ॥

सूर्यकिरण विद्युत् के सम्पर्क से द्रावक में और मणि में कम से शीतघन-अत्यन्त शीत हो जावे उस में द्रवसंसर्ग से सौलिकानामक स्त्रीशक्ति पांच न्यू ? प्रमाण से उत्पन्न हो जाती है, उसी प्रकार मणिसंसर्ग से उलिकानामक पुरुषशक्ति आठ न्यू ? प्रमाण से अत्यन्त उत्पन्न हो जाती है । विद्युत्संयोजन से पश्चात् दोनों का मेल हो जावे-हो जाता है उस मेल से कोञ्चिनीनामक अत्यन्त शीतल कुलिका के आकर्षण में समर्थ कोई शक्ति उत्पन्न हो जाती है, उस शक्ति को लेकर कुलिका के सामने जैसे हो जावे ऐसे नाल के मुख से सप्रमाण प्रेरित करे-छोड़े ॥ ६१—६५ ॥

जतुपिण्डे यथा गुज्जा कुलिकाया तथेव हि ।  
 कोञ्चिनीशक्तिसयोग कारयेद् विधिवत् कमात् ॥ ६६ ॥  
 अथ ता कोञ्चिनीशक्तिसमाकर्षति वेगत ।  
 तथाकर्षणत् पश्चात् कुलिकाद्रावक क्रमात् ॥ ६७ ॥  
 पतत्यत्यन्तवेगेन ता मणि पिबति स्वयम् ।  
 तत् पटोलिकाकीलभ्रमणा कारयेत् क्रमात् ॥ ६८ ॥  
 पटोमिको विस्तृतास्य प्रभवेत् तेन स्त्वरथ ।  
 न भवेद् वातसयोगस्मुतरा तन्मणो यथा ॥ ६९ ॥  
 आच्छादयेत् तथा सम्यक् तन्मरणा सम्प्रदायत ।  
 तत् पर चक्रदन्तिकीलक भ्रामयेच्छने ॥ ७० ॥

लाख के पिण्ड में जैसे घूंघवी-रुचि वैसे ही कुलिका में कोञ्चिनीशक्ति का संयोग कम से विधिवत् करावे, अनन्तर उस कुलिका को कोञ्चिशक्ति देग से लौची है पुनः उस प्रकार के आकर्षण से कुलिका कम से द्रावक में अत्यन्त वेग से गिर जाती है उस कुलिका को व्यंय मणि पी लेती है-अपने अन्दर लोन कर लेती है फिर पटोलिका नामक या पटोलक-योंधा सीपी के आकारवाले पैच के भ्रमण को करावे तिथ से शीघ्र पटोमिकानामक या बन्ध की तह विस्तृत मुख हो जावे उस मणि में वातसंयोग ठीक न हो सकेगा किन्तु उस मणि का अपनी कलाप्रमाण से चक्रदन्ति कील को धीरे से ब्रुमादे-॥ ६६-७० ॥

तस्माद् विकासमायाति चक्रदन्तिमुख कमात् ।  
 मणिद्रावकमध्यस्थामत्युषणा कुलिका तत ॥७१॥  
 चक्रदन्तिमुखात् पीत्वा स्वगमे सन्निधास्यति ।  
 सम्पूरितं भवेत् पश्चाच्चक्रदन्तिगुहाशये ॥७२॥

ततसूक्ष्मादर्शनालकीलक भ्रामयेत् क्रमात् ।  
 चक्रदन्त्यन्तर्गता सा कुलिका तेन वेगत ॥७३॥  
 नालव्रयाकर्यंणो बहिर्याति शनैश्चाने ।  
 यदा नालव्रयाकर्यंणोनुखा सा भवेत् तदा ॥७४॥  
 सम्यक् सम्भ्रामयेद् विस्तुतास्यकील यथाविधि ।  
 तेनाङ्गात्य (प्य?) य यानस्य विस्तुतानि हि ॥७५॥

—उससे चक्रदन्ति का मुख क्रम से विकास को प्राप्त होजाता है—खुल जाता है, फिर द्रावक मणि के मध्य में वर्तमान अत्युष्णे कुलिका को चक्रदन्ति स्वमुख से पीकर अपने अन्दर रख लेगी परचात् चक्रदन्ति के गुहायाम गुहायाम भें भर जावेगी फिर सूक्ष्मादर्शनालवाले पेंच को क्रम से छुमादे उससे चक्रदन्ति के अन्तर्गत वह कुलिका वेग से तीन नालों के आकर्षण से धीरे धीरे बाहर चली जाती है। जबकि वह तीनों नालों के आकर्षण के उन्मुख होती होवे तो सम्यक् विस्तुतमुखवाले पेंच को यथाविधि छुमादे उससे विमान के अङ्ग विस्तृत हो जाते हैं—खुल जाते हैं ॥७१—७५॥

तस्मात् तत्रत्यकुलिका बहिर्यात्यपकर्यणात् ।  
 पदचात् तत्कुलिकाशक्तिर्निश्चेष्ट नाशमेष्ठते ॥७६॥  
 ततोपसहारयन्त्रकीलक । चालयेत् सुधी ।  
 तेन सर्वाङ्गोपसंहारस्यादेककंतः क्रमात् ॥७७॥  
 पश्चाद् यन्त्रस्वरूप लभते पूर्ववस्त्वयम् ।  
 एवमुक्त्वा समामेन कुण्ठणीशक्तियन्त्रकम् ॥७८॥  
 अथेदानी पुष्पणिकयन्त्रमत्र निरूप्यते ।

उससे वहां की कुलिका स्त्रीजे जाने से बाहर चली जाती है, परचात् वह कुलिकाशक्ति नि शेष नाश को प्राप्त हो जाती है फिर उपसंहारयन्त्र की कील को बुद्धिमान् चलावे उससे सब अङ्गों का उपसंहार एक एक करके हो जावेगा परचात् पूर्ववत् यन्त्र अपने रूप को प्राप्त करता है इस प्रकार कुण्ठणीयन्त्र को संज्ञेष से कहकर अब पुष्पणिक यन्त्र यहां कहा जाता है ॥७६—७८॥

अथ पुष्पणीयन्त्रनिर्णयः—अब पुष्पणीयन्त्र का निर्णय देते हैं—

वसन्तग्रीष्ममुं कालप्रयाणे यानयन्त् एग्रम् ।  
 सुखशैत्योपचारार्थं पुष्पणीयन्त्रमुच्यते ॥७९॥

वसन्त ग्रीष्म ऋतुकाल के प्रवर्तमान होने पर या आक्रमण पर विमानचालक सवारियों के सुख शीतल के उपचारार्थं पुष्पणीयन्त्र कहा जाता है ॥७९॥  
 उक्तं हि खेटवितासे—कहा ही है खेटवितास प्रथमे—

ग्रीष्मे पञ्चविश्वा शक्तिर्वैसन्ते सौरिकामिधा ।  
 वायव्यान्तेयकेन्द्राभ्यामीषादण्डस्य वेगतः ॥८०॥

तत् उपसंहारम्भतोपसहार इत्यन्त्र सन्विरार्थः ।

जायते सूर्यकिरणसंसर्गाद्वृभूपतः ।  
 तयोः पञ्चशिला शक्तिर्विषद्यविराजिता ॥८१॥  
 अग्नियोमात्मिका सौरिसमशीतोष्णाहृपिणी ।  
 अन्तश्शीतलतामेत्य बाह्येत्यन्तोष्णाहृपताम् ॥८२॥  
 निदावं कुरुते सर्वसष्ठिवर्णोऽु वेगतः ।  
 स्वेदोद्रेक मनुष्येषु निर्यास वृक्षवर्णके ॥८३॥  
 करोति तेन सर्वेषां सर्वाभियविनाशनम् ।  
 एव स्वशीतलीशक्ततथा सर्वत्र व्याप्त्य पूर्ववत् ॥८४॥  
 आङ्गृष्ट सूर्यकिरणस्थितवासन्तिकान्ततः ।  
 वसन्तेनर्तुं नेत्रादिश्रुतिवाक्यानुसारत ॥८५॥

प्रीष्म में पञ्चशिला शक्ति वसन्त में सौरिका नामवाली शक्ति वायव्य आग्नेयकेन्द्रों से ईच्छादण्ड (प्रथमी सूर्य रेखा) की शक्ति वेग से सूर्यकिरणसंसर्ग से उत्पन्न हो जाती है, उन दोनों में पञ्चशिला शक्ति दो विचों से युक्त होती है और सौरिका शक्ति अग्नियोमात्मिका-अग्निं सोम धर्मवाली समानशीतोष्णाहृपता होती है 'जोकि' अन्दर 'शीतलता' को और बाहिर अन्यन्त उषणता को प्राप्त होती है, सब सुष्ठु वर्णों-जड़ जड़मां में वेग से निदाष्ट-घाम-दाह करते हैं, मनुष्यों में चेद-पक्षीने को बाहिर और वृक्षवर्ग में चेप गोन्द को करती है इससे सब के रोगों का नाश हो जाता है इस प्रकार अपनी शीतली शक्ति से पूर्ववत् सर्वत्र व्यापकर सूर्यकिरणस्थित वसन्त लाने वाली शक्ति को आकर्षित करके "वसन्तेनर्तुना" (पञ्च० २१ । २३) वसन्त अनु से इत्यादि श्रुतिवाक्य के अनुसार ॥८०—८५॥

कृत्वाभिकें पश्चात् तद्विं (इधि?) कोशाङ्केपि च ।  
 प्रभापल्लवपुष्पादीन् करोत्यगलतारिषु ॥८६॥  
 तथैव प्राणिना देहस्पत्थात्वादिषु क्रमात् ।  
 बलदार्ढं प्रकाशादीन् सम्प्रयच्छ्रुति पुष्कलम् ॥८७॥  
 तथा पञ्चशिला शक्तिं (क्वे?) विषरूपा हि गृह्णिन्का ।  
 स्थावर जड़में व्याप्त्य तद्वात् सत्ता शोष (ष्टि) येत् ॥८८॥  
 तथैव मारिका नाम शक्तिरन्या स्वभावतः ।  
 स्थावरे काण्डवलकाशच हृत्कोशाद् पञ्च जड़मे ॥८९॥  
 सङ्क्लोचं कुरुते सम्यक् तेन पुष्टिविनाशनम् ।  
 अतः पञ्चशिलावेग सशुष्णा (सौषुष्णा?) च विशेषत ॥९०॥  
 नाशयित्वा विमानस्थयन्त् शासूलमभाजिनाम् ।  
 मुखशैत्याह्नादवर्षप्रदानार्थं यथाविष्टि ॥९१॥  
 विमानस्थाङ्ग्यन्ते तु पुष्टरामीयन्त्रमुच्यते ।

† हृत्कोशाद् ॥८६॥ (देखो)

सिन्धवन-जलसिंहचन करके परचात् 'प्राणियों के' हृदय में घोशाष्टक-अष्टमकोशा ?-  
मस्तिष्क ? में भी प्रभा-तेज आभा तथा अग्नो-जूँड़ों लता फैलने वाले पौधों आदि में भी पलब—  
नवकोपल फूल फल आदि उत्पन्न करती है, उसी प्रकार प्राणियों के देह की सात धातुओं में कम से  
बल हृदया चमक कान्ति आदि अधिक प्रवान करती है। और पञ्चशिश्वा शक्ति विषरूपा गृणिका—  
गर्धरूपा कृपणा खाजाने वाली शोषण करने वाली शक्ति स्थावर जड़म को व्याप कर  
उनकी सात धातुओं को सुखा देती है इसी प्रकार वह हूपी मारिका—मारनेवाली शक्ति स्थावर  
में काढ़—शाला, बलक-छाल को और जड़म में हृदय पांच कोशों—आनन्दमय प्राणमय मनोमय आदि  
को संतुष्टित करती है निश्चय उससे पुष्टि का नाश होता है अतः पञ्चशिश्वा शक्ति के वेग बलसहित  
नष्ट करके विमान में रथित डल्मभाजी—गरमी को सहते हुए गरमी से आकान्त चालक यात्रियों के सुख  
शीतला शान्ति हर्ष देने के लिये यथाविधि विमान के अङ्गविन्दी में पुष्टरूपीयन्त्र कहा जाता है ॥८६-८१॥

पञ्चाङ्गान्यस्य शास्त्रे वु प्रोक्तानि ज्ञानवित्तम् ॥६२॥

तान्येवात्र प्रवक्ष्यामि समालोच्य यथामति ।

आदौ पीठ ततश्चीतरञ्जिणादर्शकीलकम् ॥६३॥

शीतप्रसूतिकमणिद्वपात्रस्तथैव च ।

शतारविद्युत्पञ्चक्षेत्रयज्ञना पञ्च वर्णितम् ॥६४॥

पञ्चाङ्गान्येवमुक्त्वा तद्रचनार्थं यथाविधि ।

आदौ निरूप्यते मुन्दमूर्काचोत्पत्तिनिरांय ॥६५॥

पांच अङ्ग शास्त्रों में ऊँचे विद्वानों ने कहे हैं उन्हें यहां यथामति विवेचन करके कहूंगा ।  
आदि में पीठ, फिर शीतरञ्जिणादर्शकील—शीतरञ्जन करने वाले—शीत के लानेशाली शक्ति के  
दर्पण का पेंच, शीतप्रसूतिकमणि—शीत को उत्पन्न करने वाली मणि, द्रवयात्र और सौ अरों वाला  
विश्वास्त्र-विद्युत्पञ्चक, ये अङ्गों की पांच संस्था कही । पञ्च अङ्गों को इस प्रकार कह कर  
उनकी रचना के लिये यथाविधि प्रथम सुन्दमूर्काच की उत्पत्ति का निरांय कहते हैं ॥६२-६५॥

तदुक्तं पार्थिवपाककल्पे—वह कहा है पार्थिवपाककल्प प्रथम में—

लवणिकशिखिरशत्यकमुक्त्वा रातुरोणकुविन्दान् ।

निर्यासमृद् विरञ्जकवटिकसुपिठ्छालमुखिकाक्षारान् ॥ ६६ ॥

बाणाक्नेत्रवल्लवं सुमुनिकद्रोडुभगाशान् ।

समूर्यं सूर्यान्म द्वित्रिशत्याक्तोष्णएकध्यशतात् ॥ ६७ ॥

संस्थाप्य कूर्मकुण्डे द्विमुखीभक्तात् सुगालयेद् वेगात् ।

यन्त्रोवन्तलमध्ये तद्रसमाहृत्य पूरयेत् पञ्चात् ॥ ६८ ॥

एव कुरुतेत्पृष्ठं प्रभवति सूक्ष्ममष्टमुमुक्ताचः ॥ इत्यादि ॥

लवणिक—लवणा, शिखिर—कुत्रिम मणिविशेष, शत्य—हस्ती या श्वेत स्त्रैर, कमुकक्षार—  
सुगरी का चार, दुरोण ? कुकविन्द ?, निर्यास—गोम्द, मृत्—सौराष्ट्रमूर्तिका, विरञ्जि ?, वटिक—वह,

मुपिल्लाल ?—पिल्लाल ?—सेम्भल वृक्ष का जार या मुखिकालार—मूज़ाहर, वे सब ५, १२, २, ३, ८, ३, ३० ?, ६ ? भागों को मूज़ाहर में—मूज़ा के अन्दर भर कर ३२ पाक सौ दर्जे की उष्णता से कूर्मकुण्ड में रख कर दो मुखवाली भजा से बेंग से गलावे, यन्त्र के ऊपरि नाज़ के मध्य में उस रस को लेकर भर दे, इस प्रकार करने पर अतिशुद्ध सूक्ष्म सुन्दरकाच हो जाता है ॥ ६६-६८ ॥

इत्युक्त्वा सुन्दरकाचयाङ्गरचनाविधि ॥ ६६ ॥

निरूप्यते विधिवत्सङ्गहेण यथाक्रमम् ।

द्वात्रिशताकासशुद्धसुन्दरकाचतो दृढम् ॥ १०० ॥

द्वादशाङ्गुलायाममद्गुलत्रयमुक्ततम् ।

चतुरस वर्तुल वा पीठ कुर्याद् यथाविधि ॥ १०१ ॥

तस्मिन् चत्वारि केन्द्राणि कल्पयेन्मध्यत क्रमात् ।

मध्यकेन्द्रे वाहुमात्र सुन्दरकाचनिमितम् ॥ १०२ ॥

शद्कु सस्थवपयेत् पश्चात् तस्योपरि यथाविधि ।

सन्धार्य सुट्ठ शीतरज्ञिकादर्शकीलकम् ॥ १०३ ॥

शीतप्रसूतिराणि तनमध्ये सुस्थित न्यसेत् ।

तत्पूर्वकेन्द्रे विधिवद् द्रवपात्र नियोजयेत् ॥ १०४ ॥

सुन्दरकाच को कह कर अनन्तर अङ्गरचना विधि संक्षेप से यहां विधिवत्—यथाविधि कही जाती है । बत्तीसवें शुद्ध सुन्दरकाच से दृढ १२ अंगुल लम्बा, ३ अंगुल ऊँचा, चौकौन या गोल पीठ बनाए, उसमें ४ मध्य केन्द्र बनावे, मध्यकेन्द्र में वाहुमात्र सुन्दरकाच से बने हुए शुद्ध शंकु को ख्यालिन करे पश्चात् उसके ऊपर सुट्ठ शीतरज्ञिक ? की आदर्श कीले शीतप्रसूतिका मणि को उसके मध्य में सुस्थित उससे पूर्व केन्द्र में विधिवत् द्रवपात्र में युक्त करे ॥ ६६-१०४ ॥

द्रवपात्रसुकृतं क्रियासारे—द्रवपात्र कहा है क्रियासार प्रथ में—

द्वादशाङ्गुलविस्तार द्वादशाङ्गुलमुक्ततम् ।

चयक वर्तुलाकार नारिकेलकठोरवत् ॥ १०५ ॥

सुट्ठ कारेच्छीतदर्पणेन यथाविधि ॥ इत्यादि ॥

१२ अंगुल लम्बा चौडा १२ अंगुल ऊँचा पात्र गोलाकार नारियल की भाँति कठोर सुट्ठ शीतदर्पण से यथाविधि करावे ॥ १०५ ॥

शीतरज्ञिकदर्पणसुकृतं दर्पणप्रकरणे—शीतरज्ञिक दर्पण कहा है दर्पणप्रकरण में—

शशपिण्यं चोडुपिण्यं प्राणक्षार च कुड्मलम् ॥ १०६ ॥

ज्योत्स्नासार शीतरसकन्दपिष्टमः परश ।

कुडुपक्षारमभ्रस्यसारक्षार तर्षव च ॥ १०७ ॥

शोण्डीरकाजहृष्टास्यन्तर्ण बातोपरं तथा ।

इवेतनिर्वासिमुत्सारस्त्रुक्षस्तेति द्रवपा ॥ १०८ ॥

ताराग्निबाणोदुदशदिष्ट्रुद्वसुसागराः ।  
 द्वाविशत्यड्विभागाशास्तेषां शास्त्रनिर्पिता ॥ १०६ ॥  
 एतानाहृत्य संशुद्धान् ततद्वागानुसारत ।  
 पूरयित्वापदमुखमूषायां पथकुण्डके ॥ ११० ॥  
 तन्मूषां विन्यसेत् पश्चाद् दृढमिङ्गाल्पूरिते ।  
 त्रयोविशदुत्तरत्रिशतकक्षयोप्त्वामानतः ॥ १११ ॥  
 गालयित्वा पञ्चमुखभस्त्रेणात्यन्तवेगत ।  
 तद्रसं योजयेद् यन्त्रस्योधर्वनालमुखे शानै ॥ ११२ ॥  
 भवेदेवकृते शीतरञ्जिकादर्शमुत्तमम् ॥ इत्यादि ॥

शाश का पिध्य?—पित्त और उडु ? का पिध्य?—पित्त, पाण्डकार—नवसादर, कुट्टल—नीलोत्पल—नीलोफर, ज्योत्सनासार—रेणुका गन्ध द्रव्य का तैल इतर, शीतरस कन्द—रसोत के कन्द की पिटठी, कुडुपकार ?, अन्नका ज्ञान, शौएहीरका ज्ञान शल्य—गजपिण्डी के मूल का चूर्ण, वातोपर—सुख मैदान का शोरा, श्वेत निर्यास—आक का दूध ?, मृत्सार—मृत्सा—सौराष्ट्रमूलिका, उरघ ? । ये वारह पदार्थ ५, ३, ५, १, १०, १०, ११, ८, ७, २२, ६, भागों को उनके शास्त्र से उन उन भागों के अनुसार शुद्ध लेकर पदामुखमूषा में भर कर अन्नार से भरे पदामुख औं उस मूषा—बोतल को रख दे, पश्चात् ३३२ दर्जे की उच्छता प्रमाण से पांच मुख बाली भक्ता से गला कर, उस पिघले रस को धीरे से मन्त्र के ऊरवाले नालमुख में युक्त करे ऐसा करने पर शीतरञ्जिकादर्श हो ॥ १०६—११२ ॥

शीतप्रसूतिकमिरुक्तं मणिप्रकरणे—शीतप्रसूति मणिकही है मणिप्रकरण में—

वराटिकामञ्जुलन्त्रुर्णपञ्चकमीदुम्बवरक्षारचतुष्ट्य तथा ।  
 रुद्रात्रय वचुंलकाष्टकं च शीतरञ्जिकादर्शसप्तकं तथा ॥ ११३ ॥  
 बटुत्रय शालमलिकाष्टकर्विशति क्षारत्रय पारदमागसन्तकम् ।  
 श्वेताभ्रसत्त्वाष्टककर्णाटाद्विकक्षाराष्टक चौलिकसत्त्वपञ्चकम् ॥ ११४ ॥  
 निर्यासमुत्पद्धदशांशकं तथा सम्पातिज्ञास्त्रिय च पञ्चविशति ।  
 चतुर्दशीतान् परिष्टुष्ट्य शोधितान् सम्पूर्यं मृत्कुण्डलमूषिकामुखे ॥ ११५ ॥  
 सस्थाप्य पश्चात् कुलकुण्डिकान्तरे वेगाद् धमनेत् अम्बवकमृष्णिकामुखात् ।  
 सगालय पश्चात् त्रिशतोप्त्वक्षयतो मणिप्रसूतस्य मुखे प्रपूरयेत् ॥ ११६ ॥  
 एवंकृते शीतप्रसूतिकामणिमंत्रेत् सुशुद्धस्तुदस्तुशीतल ॥ ११७ ॥ इत्यादि ॥

कौदी, मरीठ का चूर्ण ५ भाग, गूलरचार ४ भाग, रुध्ण ? ३ भाग, वर्चुलक ?—बञ्जुल—तिनिश वृक्ष ? ८ भाग,—शीतरञ्जिकादश ७ भाग, उडु—शोनापाठा वृक्ष ३ भाग, सिम्बल २८ भाग, कर्णटाक्षी—काकडासिङ्गी के मूल का जार या केकड़ा जन्तु की टांगों का जार ? ८ भाग, औलिक सत्त्व—मोरपुष्टी ? या दारचीनी का सत्त्व ५ भाग, निर्यासमून—करथा ? १५ भाग, सम्पाति—गिरु पक्षी की जांघ की हड्डी २५ भाग इन १४ वस्तुओं को लेकर शोष कर मिट्टी के कुरड़कार मूषिका—बोतल के मुख में भर कर

कुमुकुयिद्का के अनंदर रख कर वेग से ज्यन्वक भक्षिका मुख से ३०० दर्जे की उपणता से गता कर मणिप्रसूतात्य के मुख में भर दे, ऐसा करने पर शुद्ध सुटुद सुशीतल शीतप्रसूतिका मणि हो जावे—हो जाती है ॥ ११३-११७ ॥

विद्युतन्त्रया समायुक्तं द्वावकत्रयशोधितम् ।

शतारविद्युत्पङ्क्त तत्पुरस्तात् स्थापयेद् दण्डम् ॥ ११८ ॥

विशुद्ध के तारुक तीन द्वावक से शोधा हुआ या बहुत अराओं से युक्त पङ्क्त—पखड़ीचक को तो उसके सामने दृढ़रूप में स्थापित करे ॥ ११८ ॥

तदुक्तं क्रियासारे—वह कहा है क्रियासार अन्य में—

द्वादशार्क चाष्णिनिकत्रय दिवद्वाष्टक तथा ।

सम्मेल्य गालयेत् सम्यक् शतकक्षयोष्णमानत ॥ ११६ ॥

तद्भवेत्स्वर्जवच्छुद्धमारारं पीतवर्णकम् ।

अस्यतलघुसूक्ष्मं च मुदुलं सुटुद शुचि ॥ १२० ॥

पञ्चलोहमिति प्राहुरेत् तच्छाखवित्तमा ।

तस्मात् प्रकल्पयेत् पवशत कमलपत्रवत् ॥ १२१ ॥

तथा नाभित्रय कीलत्रय तन्त्रीत्रय क्रमात् ।

घण्टारकीलक चैव कारयेच्छाखमानत ॥ १२२ ॥

सकीलकशलाकाभिस्समुत् सुमनोहरम् ।

नाभिचकत्रयं तस्मिन्नादौ सन्वारयेद् दण्डम् ॥ १२३ ॥

शण(न ?) पत्रञ्चमो वेगादनुलोमाद् यथा भवेत् ।

चतुष्पाश्वेषु चक्ष्य विश्वद योजयेत् क्रमात् ॥ १२४ ॥

तथैव तत्पुरोभागचक्रपाश्वेष्वपि क्रमात् ।

सन्धारयेत् पत्रशतं विलोमभ्रमणा यथा ॥ १२५ ॥

तात्त्वा १२ भाग, सुरमा ३ भाग, इवङ्क—लोह विशेष या जताऽभाग, इहै मिला कर १०० दर्जे की उपणता से गतावे, वह शुद्ध सज्जीवार जैसा आरे आरों वाला पीतरंग का अव्यन्त हल्का सूक्ष्म मुहुर्ल सुटुद पवित्र हो जावे उसे उत्तम शास्त्रवेता पञ्चलोह कहते हैं । अतः उससे १०० पत्र—कमलपत्र की भाँति बनावे तथा ३ नाभियां ३ कीले ३ तार क्रम से घटावा देने वाली कील भी शास्त्र रीति से करावे कीलसहित शलाकाओं से युक्त भी हो । उसमें प्रथम ३ नाभिचक लगावे, इसी प्रकार पुरोभाग—सामनेवाले चक्रपाश्वों में भी क्रम से १०० पत्र लगावे जिससे बिलोम—उल्टा भ्रमणा हो सके ॥ ११८-१२५ ॥

तपश्चाद्ग्रागचक्स्य नाभिमूले यथाविधि ।

विद्युतन्त्री समाहृत्य पाश्वर्योहभयोर्प ॥ १२६ ॥

शतारविद्युत्पङ्क्तस्य भ्रमणार्थं नियोजयेत् ।

पञ्चात् सम्पूरयेत् पात्रे शीतप्रसूतकद्रावम् ॥ १२७ ॥

विद्युतन्त्रया समावेष्य शीतप्रसुवक मणिष् ।

द्रवपात्रान्तरे पश्चात् स्थापयेन्मध्यकेन्द्रके ॥ १२५ ॥

क्षीरीपटान्तर्गतीदुम्बरतन्त्रीवृ यथाविधि ।

द्रवपात्रस्थतन्त्रयप्रे पश्चात् सन्धारयेत् समम् ॥ १२६ ॥

तत्प्रवेशात् समानीय तन्त्रीद्वयमतः परम् ।

यन्त्रमध्यस्य शीतरञ्जिकादर्शकीलके ॥ १३० ॥

उसके पिछले भागवाले चक्र के नाभिमूल में यथाविधि दो विशुतारों को लेकर दोनों पार्श्वों में भी सौ अरोवाले विशुचक के झगणार्थ लगावे, पश्चात् पात्र में शीतप्रसुवक को भर दें, शीतप्रसुवक मणि को विशुत के तार से लेपें कर द्रवपात्र के अन्दर मध्य केन्द्र में स्थानि करे। चौरी—दूधवाले बुज्ज के दूध से बने वश के अन्तर्गत औदुम्बर—ताम्बे की तारों को यथाविधि द्रवपात्रस्थ तारों के अप्रभाग में समान रूप से लगादे। उस प्रदेश से दो तारों को लाकर यन्त्रमध्यस्य शीतरञ्जिकादर्शकील में—॥ १२६—१३० ॥

अनुलोमप्रकारेण सकील योजयेत् तत् ।

मणिद्रावकसम्बद्ध (न्थ?) विद्युतन्त्रीमुखाच्छन्ने ॥ १३१ ॥

शर्कि सञ्चोदयेत् सम्यहू मणिद्रावकयो कमात् ।

पश्चान्त्रकृदये वेगाद् विद्युत्सयोगत पुन् ॥ १३२ ॥

तन्मिष्टसुखादैत्यस्वभावशर्कि यथाक्रमम् ।

तच्छीतरञ्जिकादर्शकीलमाक्रम्य वर्तते ॥ १३३ ॥

तत्कीलभ्रमणाद् व्योमयानमावृत्य वेगत ।

तच्छकी यन्त्रूणा ग्रीष्मविषशकि निमेषत ॥ १३४ ॥

विहृत्य सुखसन्तोषमधोवृद्धधादिकान् कमात् ।

प्रयच्छतो विशेषण मकरन्दामृत यथा ॥ १३५ ॥

—अनुलोम प्रकार से कीलसहित युक्त होइ, द्रवपक मणि से सम्बन्ध रखने वाले विशुतारों के मुख से धीरे से शकि को दोनों मणिद्रावकों में भली भाति प्रेरित करें पश्चात् दोनों शकियों में वेग से विद्युत के संयोग से उन में रखी उन में अवलम्बित सुख शैव स्वभाववाली शकि को यथाक्रम वह शीतरञ्जिक आदर्शकील को अवलम्बित करके रहती है, उस कील के धूमनेसे वे दोनों शकियां वेग से व्योमयान को प्राप्त होकर चालक और यात्रियों की गरमीहू विषशकि को निमेष भर में नष्ट करके सुख सन्तोष तुष्टिवृद्धि आदियों को क्रम से विशेषण से मधु के समान देती है ॥ १३१—१३२ ॥

तत्कशातारपद्मुखमण्ण तन्त्रया प्रकाशयेत् ।

तेन वायुविशेषण प्रादुर्भूय यथासुखम् ॥ १३६ ॥

व्योमयानस्थयन्त्रूणा सर्वेषामुपरि स्वतः ।

मन्द मन्द प्रसरति मन्दमायतबृत कमात् ॥ १३७ ॥

तेन सौर्योऽणसन्तापो निशेष नाशमेवते ।  
 मणिद्रावकपङ्के भ्यो व्योमयानस्थयन्तृ लाम् ॥ १३५ ॥  
 मुखशैत्याह्लादहर्षा एवं सम्भवन्ति (ति?) स्वतः ।  
 देहस्थपत्वातूना भवेत् तस्माज्जुचिबंलम् ॥ १३६ ॥  
 तस्मात् सर्वप्रयनेन यानदक्षिणकेन्द्रके ।  
 स्थापयेत् पुष्पिणीयन्त्र शास्त्रोक्तविधिना दृढम् ॥ १४० ॥  
 तदधस्थापयेत् पश्चात् तत्र घण्टारकीलकम् ।  
 सीरिपञ्चशिलोत्पत्रशक्तयो विषरूपका ॥ १४१ ॥  
 घण्टारकीलकमुखाद् भवेयुक्त्याद्यते लयम् ॥ १४२ ॥ इत्यादि ॥

फिर सौ अबे वाले चक्र के धमण को ताते से प्रकाशित करे, उससे बायु विशेषरूप से सुगमता से प्रकट होकर विमान में स्थित सब चालक यात्रियों के ऊंठर मन्द बायु के समान क्रम से स्वत मन्द मन्द पड़ते हैं । उस से सूर्य का उपताताप सर्वथा नाश को प्राप्त हो जाता है । मणिद्रावक के चक्रों से विमान में स्थित यात्रियों के मुख शीतला आनन्द हर्ष इस प्रकार स्वत सम्यक हो जाते हैं या प्रकट हो जाते हैं ? उम से देह में स्थित सात धातुओं की पर्वतता बल सिद्ध होता है अतः सर्वप्रथम से विमान के दक्षिण केन्द्र में पुष्पिणीयन्त्र को शास्त्रोक्तविधि से दृढ़ स्थापित करे, पश्चात् उसके नीचे वहां घण्टारकील स्थापित करे, सूर्य की पञ्चशिखा से उत्पन्न विषरूप शक्तियां घण्टारकीलमुख से बाहर आकाश में लय को प्राप्त हो जावें-हो जाती हैं ॥ १३६-१४२ ॥

अथ पिञ्जुलादर्शनिर्णय — अब पिञ्जुल आदर्श निर्णय देते हैं-

एवमुक्त्वा पौष्पिणिक्यन्त्र पश्चाद् यथाविधि ।  
 पिञ्जुलादर्शस्वरूपमुच्यते शास्त्रतः कमात् ॥ १४३ ॥  
 वातद्वयावर्तस्तक्षिसन्धी सूर्या शुभटानात् ।  
 भवेत् कुलिशवत् सूर्यातिपाशानिनिपातनम् ॥ १४४ ॥  
 तदपायनिर्वत्त्यर्थं पिञ्जुलादर्शक न्यसेत् ।  
 कुर्यादृष्टलाकारं पथं पिञ्जुलदर्शणात् ॥ १४५ ॥  
 दलसन्धो तु वातुल्यं दण्डकारं प्रकल्पयेत् ।  
 शड्कुकीलदयं तस्य पश्चाद्गोपे प्रकल्पयेत् ॥ १४६ ॥  
 त समावेष्येच्छीतराज्ञिकादर्शातन्त्रिभः ।  
 पृष्ठमाज्ज्ञादयेत् पश्चान्मीमांसिकापटकोशतः ॥ १४७ ॥

इस प्रकार यथाविधि पुष्पिणीयन्त्र कहकर पिञ्जुलादर्श का स्वरूप शास्त्र से कहा जाता है, दो वायुओं के आवर्त धूमरूपराजियों की सन्धि में सूर्यकिरणों के संघर्ष से कुजिश-बल की मांति सूर्य के ताप की विशुद्धि का गिरना हो जावे उस अनिष्ट की निवृत्ति के अर्थ पिञ्जुलादर्श रखे । पिञ्जुलवर्पण से आठदशाकार कमल बनावे, बल—पंखदी की सन्धि में उसके पिछले भाग में दण्डकार गोलाई में दो

शकुकीले बनावें उसे शीतरङ्गिकादर्शतारों से लपेटकर मौङ्गिकापटकोश-मूङ्ग के टाट के थेले से पृष्ठ भाग को ढक दे ॥ १४३—१४७ ॥

वाहुमात्रोधर्ववत्सूर्यकिरणाभिमुख  
विचुत्तन्त्रीसमायुक्तशङ्कुकीलद्वयादय ॥ १४८ ॥  
विमानतक्षिणाकेनशालाकोधर्वमुखे दृढम् ।  
स्थापयेत् पिञ्जुलादर्शं किरणाकर्णणमुखम् ॥ १४९ ॥  
तेन भेषोभिवृद्धिश्च प्राणत्राएनमेव च ।  
आतपाशनवेगापकर्षणाद्यानयन्तृणाम् ॥ १५० ॥  
भवेत् स्वभावत् पश्चात् तापशीतलता त्रजेत् ।  
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन व्योमयाने यथाविधि ॥ १५१ ॥  
स्थापयेत् पिञ्जुलादर्शं यन्तृणा प्राणदायकम् ॥ १५२ ॥ इत्यादि ॥

सूर्यकिरण के सामने विश्वात के दो तारों से युक्त वाहुमात्र ऊंचे दो शकुकीलों से विमान के दक्षिण केन्द्र की शालाकाओं के उत्तरमुख में किरणाकर्षण के उन्मुख पिञ्जुल आदर्श को स्थापित करे, उससे आतप विचुत् त् के बेग को ऊंच लेने से ताप स्वभावत् शीतलता को प्राप्त हो जावेगा चालक यात्रियों के भेषों की वृद्धि और प्राणों का ब्राण होगा अतः सर्वप्रयत्न से विमान में पिञ्जुल आदर्श यात्रियों का प्राणदायक स्थापित करे ॥ १४८—१५१ ॥

अथ नालपञ्चकनिर्णयः—अब नालपञ्चक का निर्णय देते हैं—

उक्तवैव पिञ्जुलादर्शस्वरूप विधिवत् तत ।  
पञ्चवातायनीनालस्वरूपमभिवर्णयते ॥ १५३ ॥

इस पिञ्जुलादर्श का स्वरूप विधिवत् कहक कवञ्चवातायनीनाल का स्वरूप कहा जाता है ॥ १५३ ॥  
तदुक्तं वातायनतन्त्रे—वह कहा है वातायननन्त्र में—

/ विमाने पाकचु (लु?) लीकधूमस्वयाप्यते यदा ।  
तस्य निर्गमनार्थी नालपञ्चकमुच्यते ॥ १५४ ॥  
जवनिकपिञ्जुलकान्त्र घोण्टार धूमपास्यकूर्मतन् ।  
कद्वार्कवाणातारकवसुभागाशान् यथोक्तसुशुद्धात् ॥ १५५ ॥  
मुषामुखेन पश्चात् वेगात् सगालयेच्छतोप्ताकश्येण ।  
एव कृतेतिमृदुलस्पूमो लघुतैलनेपञ्चुद ॥ १५६ ॥  
/ वातायनीयलोह प्रभवति सुहृदस्युर्णसद्वाभः ॥ १५७ ॥ इत्यादि ।

विमान में पाकचुली-पकाने की अंगीठी (Heater) का धूंचा जब व्याप जावे तो उसे निकालने के लिये पञ्च नाल कहते हैं । जवनिक ?—अयस्कान्तलोह ? , पिञ्जुलकान्त्र ?—पिञ्जन—इरिताल, का अञ्चक ? , घोण्टार ?—धूमपास्यक—लोहविशेष, धूमपास्य ?—धूमपास्य—ऊपर्मप—लोहविशेष, कूर्मतनु ? —कञ्जवे की पीठ ? । ये कद्र ? १, २, ३, ४, ८ भागांशों को व्यापत् शुद्ध हुओं को मुषामुख बोतक भै

भरकर वेग से सौ दर्जे की उष्णता से गलावे ऐसा करने पर तैल के लेप से शुद्ध हुआ बातायनी लोह अतिमृदुल सूक्ष्म लघु सुवर्णगंधाला सुट्ट बन जाता है ॥ १५४-१५५॥

द्वादशाङ्गुलविस्तीर्णं द्वादशाङ्गुलमुन्नतम् ।  
 कुर्याद् वातायनीलोहात् पञ्चनालान् यथाविधि ॥ १५६ ॥  
 एकैकूप्रमप्रमाणं नालमूलेषु पञ्चसु ।  
 सन्धार्य व्योमयानस्य वामपाशर्वमुखे क्रमात् ॥ १५७ ॥  
 संस्थापयेत् पञ्चनालान् पञ्चसन्धिषु शारबत ।  
 मुखानि पञ्चनालाना दिक्षु पूर्वादिषु क्रमात् ॥ १५८ ॥  
 स्थापयेद् विधिवत् पश्चाद्दूर्ध्वं तूर्ध्वमुख यथा ।  
 नालमूलस्थयमण्य. पश्चाद् धूम शनैश्चान्तः ॥ १५९ ॥  
 आकृत्य नालमूलस्थमुखिद्वेषु योजयेत् ।  
 ततो बातायनीनालमूलेभ्यो वेगतः क्रमात् ॥ १६० ॥  
 निशेषं याति तद्धूमो बाह्ये विलयमेघते ।  
 तेन यानस्थयन्त् गां धूमनाशात् सुखं भवेत् ॥ १६१ ॥  
 तस्माद् विमाने तन्नालपञ्चक विधिवन्यसेत् । इत्यादि ॥

१२ अङ्गुल चौडे १२ अङ्गुल ऊँचे बातायनीलोह से पांच नालों बनावे । एक एक धूम के प्रमाण में पांचों नालमूलों में लगाकर विमान के वामपाशर्व भाग में क्रम से पांच सन्धियों में शास्त्र से पांच नालों को संस्थापित करे । पांचों नालों के मुख पूर्व आदि दिशाओं में क्रम से विधिवत् स्थापित करे पश्चात् ऊपर में जैसे नालमूलस्थ मणियां ऊर्ध्वमुख—ऊपर की ओर धीरे धीरे धूए को खींचकर नाल मुख में स्थित मुख क्लिंडों में जोड़ दे फिर बातायनी नालमूलों से धूंवा बाहर वेग से सर्वथा लय को प्राप्त हो जाता है । इस से धूमनाश से विमान में स्थित यात्रियों को सुख होता है अतः विमान में वह ५ नाल विधिवत् लगावे ॥ १५८-१६३ ॥

इत्तलेख कापी संख्या १०—

गुहागर्भदर्शयन्त्रनिर्णयः—गुहागर्भदर्शयन्त्र का निर्णय करते हैं—

नालपञ्चकमुक्तवैव सग्रहेण यथाविधि ।

गुहागर्भदर्शयन्त्रमिदानी सम्प्रचक्षते ॥१॥

इस प्रकार संक्षेप से नालपञ्चक कहकर अब गुहागर्भदर्शयन्त्र कहते हैं ॥१॥

तदुक्तं यन्त्रसर्वस्वे—वह कहा है यन्त्रसर्वस्व प्रन्थ में—

विमानखण्डनार्थाय शत्रुभिर्भूमुखान्तरे ।

महागोलानिंगर्भादियन्त्रपञ्चकमद्भुतम् ॥२॥

यत्र यत्र रहस्येन स्थापित सर्वतोमुखम् ।

तस्त्वरूपपरिज्ञानयिद्यथं शास्त्रत क्रमात् ॥३॥

गुहागर्भदर्शयन्त्रं स्थापयेद् व्योमयानके ।

विमान के तोड़ने के अर्थ शत्रुओंद्वारा भूमि के मुख के अन्दर महागोल अग्निगर्भ आदि अद्भुत पञ्चकयन्त्र जहाँ जहाँ गुप्तरूप से सब ओर मुख बाला स्थापित किया है, उसके स्वरूप परिज्ञान की सिद्धि के अर्थ शास्त्र से क्रम से विमान में गुहागर्भदर्श स्थापित करे ॥२—३॥

तदुक्तं क्रियासारे—वह क्रियासार प्रन्थ में कहा है—

द्वासप्ततिमसंख्याकादर्शमाहृत्य शास्त्रतः ॥४॥

त्रिकोणवत् लचतुष्कोणाकारेण्याविधि ।

त्रिष्ठा कृत्वा ततोऽच्छिष्ठतुक्षकाप्तिविनिर्मिते ॥५॥

नीडे सन्धार्य पूर्वोक्तदर्पणान् सुहृष्ट यथा ।

पञ्चवचारालोहकृतशङ्कुभिस्सुहृष्टैः क्रमात् ॥६॥

बन्धयित्वाथ पूर्वोक्तकाष्ठयन्त्रे नियोजयेत् ।

प्रधोमुर्ल वतुं लादर्शमधस्तात् प्रकल्पयेत् ॥७॥

चतुष्कोणादर्शमध्यवस्थियं यथा सन्नियोजयेत् ।

त्रिकोणदर्पणं (तु) तद्दुमयो पश्चिमान्तरे ॥८॥

संस्थापयेत् पञ्चमुखकीलीयोगाद् यथाक्रमम् ।

चतुल्कोणादर्शमूलकेन्द्रशङ्कुमुखान्तरात् ॥१॥

यन्त्रपीठानेयकेन्द्रशङ्कुमूलान्तरावधि ।

रविलंपरपञ्चवास्यलोहमिश्रिततन्त्रिभि ॥१०॥

सन्धारयेद् हठ पदचात् पारप्रनिकद्रावके ।

स्थापेच्छुमुकमणि तन्त्रीमूलाव तन्मुखे ॥११॥

७२ वीं संख्या वाले आदर्श को लेकर शास्त्रीति से त्रिकोण गोल चतुर्ढकोण आकार से यथा-विधि तीन प्रकार करके अविष्टवृत्त ?—सूर्य—सूर्यवर्त दृढ़ के काष्ठ से बने लम्ब कोण मैं पूर्वोक्त दर्पणों को सुट्ट लगाकर पक्षवारा कृत्रिम लोहे से बने शंकुओं से बान्धकर पूर्वोक्त काष्ठवर्त मैं तीने लगादै, गोल भाग नीचे करके लगावे, चतुर्ढकोण आदर्श-दर्पण ऊरु मुखवाला लगावे । त्रिकोण दर्पण उसी प्रकार दोनों के पश्चिम की ओर पक्षमुख कील के योग से यथाक्रम संस्थापित करे, चतुर्ढकोण आदर्श मूलकेन्द्र के शंकु के मुख मैं से श्वन्तीषीठे के आनेय केन्द्र के शंकुमूल तक । ताम्बा अपरिया पक्षवार्य लोहों से मिले—बने तारों से लगावे पश्चात् पारागम्बिक द्रावक-पारागम्बक द्रावक मैं चुम्कु-मणि को झौं तारों के मूलों—सिरों को भी स्थापित करे ॥ ४-१॥

प्रसार्य विधिवत् तत्पात् तन्त्रीतयात् चतुर्ढ क्रमात् ।

त्रिकोणादर्शमावृत्य ऊर्ध्वस्थायादर्शमध्यत ॥१२॥

अघोमुखादर्शमध्यकेन्द्रस्थाने हठ यथा ।

सन्धार्य विधिवत् पश्चात् सूर्यशूल पश्चवर्त क्रमात् ॥१३॥

शक्तिपश्चिमदिग्भागाच्छोदयेत् प्रमाणत ।

विस्त्रावर्धणियसिलेपित पटदर्पणम् ॥१४॥

त्रिकोणाभिमुख (भवेद्?) यथा तत्र नियोजयेत् ।

पूर्वोक्तसूर्योक्तरणान् शक्तया सह तत परम् ॥१५॥

अत अन्य चार तारों को विधिवत् फैलाकर त्रिकोण आदर्श को धेर कर ऊपर वाले आदर्श के मध्य से नीचे वाले आदर्श के मध्य केन्द्रस्थान मैं विधिवत् हठ लगाकर पश्चात् सूर्यकिरणों की पार्श्व—शक्ति के पश्चिम विशा की ओर से प्रमाण से प्रेरित करे, विन्व—सूर्यविन्व को आकर्षित करने वाले निर्यास-गोन्द से लेपे हुए पददर्पण-वस्त्ररूप दर्पण को त्रिकोण आदर्श के सम्मुख नियुक्त करे, फिर पूर्वोक्त सूर्यकिरणों को शक्ति के साथ—॥१२-१५॥

द्रावकस्य मणी सम्ययोजयेत् सर्वतोमुखम् ।

अघोमुखे ततश्शुद्धे वर्तुलाकारदर्पणे ॥१६॥

मणिस्थानात् समाहृत्य तदशून् शक्तिमिश्रितान् ।

प्रसार्य सप्रमाणेन पश्चात् तन्मुखकेन्द्रत ॥१७॥

यानसञ्चारमार्गविस्थितभूम्यां प्रयोजयेत् ।

पश्चात् तत्किरणास्सम्यक्षक्तया सह स्ववैगतः ॥१८॥

प्रविश्य भूमुखं तत्र सर्वंत्र स्थापितं क्रमात् ।

महागोलार्निगर्भादियन्त्रान् व्याप्त्याय शक्तिः ॥१६॥

सम्यगाद्वृत्य साज्ञानि तत्स्वरूपाण्यथास्फुटम् ।

पूर्वोक्तद्रवमध्यस्थमणाद्वृद्ध्वंभुखं यथा ॥२०॥

द्रावक में स्थित मणि में सब और सम्यक् लगावे फिर नीचे की ओर शुद्ध गोलाकार दर्पण में मणिस्थान से शक्तिमिश्रत उन किरणों को लेकर सप्रमाण फैलाकर पश्चात् उनके मुखकेन्द्र से विषान के गतिमार्ग के नीचे स्थित भूमि में प्रेरित करे पश्चात् वे किरणें भली प्रकार शक्ति के साथ अपूर्व वेग से भूमि के मुख में प्रविष्ट होकर वहां सर्वंत्र स्थापित महागोल अग्निगर्भ आदि यन्त्रों को व्याप्त कर शक्ति से भली प्रकार घेरकर अंगोस्तहित उनके स्वरूपों को स्फुटरूप में पूर्वोक्त द्रवमध्यस्थ मणि में ऊर्ध्वमुख जिस प्रकार हो ऐसे—॥१६—२०॥

आदर्शं मुखवत्तेषा प्रतिबिम्बं प्रकुर्वति ।

त्रिकोणादर्शाभिमुखमध्यतन्त्रध्यगस्थिते ॥२१॥

विम्बाकर्वणिर्यासलेपिते पटदर्पणे ।

मणिस्थप्रतिविम्बानामाकाराणि यथाकमम् ॥२२॥

सप्रमाणं सुविरलं चित्रितं भवति स्फुटम् ।

पश्चात् द्रावकसक्तारात् तच्चित्रं स्फुट भवेत् ॥२३॥

महागोलार्नियन्त्रादीन् शत्रुभिस्सन्निवेशितान् ।

ज्ञात्वा तेन ततश्शीघ्रं समूलं नाशयेत् सुधी ॥२४॥

गुहागर्भदर्शयन्त्रं यानकुक्षावतो न्यसेत् ।

विमानसरक्षणायायितद्यन्त्रं निरूपितम् ॥२५॥

गुहागर्भदर्शयन्त्रमेव द्रुक्त्वाति सग्रहात् ।

तस्योपकरणान्यत्र यथाशास्त्रं निरूप्यन्ते ॥२६॥

तत्रादी द्वासप्ततिमस ल्याकादर्शमुच्यते ।

नामा सुरञ्जिकादर्शमिति तस्य प्रकीर्त्यन्ते ॥२७॥

उनका मुख के समान प्रतिबिम्ब करते हुए आदर्श में त्रिकोण आदर्श के सामने मध्य तार के आगे स्थित विम्बाकर्वण करने वाले गोन्द से लेपे हुए पटदर्पण में मणिस्थ प्रतिबिम्बाकार यथाकम सप्रमाणं पृथक् पृथक् स्पष्ट चित्रित हो जाते हैं, पश्चात् द्रावक संस्कार से वह चित्र साफ दीखने लगता है। महागोल अग्नियन्त्र आदि शत्रुओं द्वारा गाढ़े हुए जानकर उन्हें शीघ्र तुद्धिमान् समूल नष्ट कर दे। गुहागर्भ आदर्श यन्त्र विमान की कुक्षि में लगावे, विषान के संरक्षण के लिये यह यन्त्र कहा गया है। इस प्रकार गुहागर्भदर्शयन्त्र संज्ञेप से कहकर उसके उपकरण वहां यथाशास्त्रं निरूपित किये जाते हैं, सुरञ्जिकादर्श नाम से उसका वर्णन किया जाता है ॥२१—२७॥

तदुक्तं दर्पणप्रकरणे—यह दर्पणप्रकरण में कहा है—

एडं मध्यस्वं सुर्घचं पटोल पारं करञ्जं रविशकं रात्रयम् ।  
 सुटङ्गसंगं गन्धकचारुं शालमलीं विष्टीरनियासकुरङ्गारीहिणी ॥२८॥  
 मण्डूरपञ्चाननसैहिकान् शिवं विश्वाभ्रकं पार्वणिजं विद्वरकम् ।  
 रुद्रोदुवाराणार्कगजाभिविश्वान्मृत्यविभूतानलतारकाभ्रका ॥२९॥  
 द्वार्त्तिशतिर्स्तिशतिर्स्तवकं सूर्तिप्रहराशितः क्रमात् ।  
 सन्तोल्य वस्त्रून् तुलया यथाविधि सहगृह्य भागाश्रमाणतः क्रमात् ॥३०॥  
 सम्पूर्यं चञ्चूपुष्मूषवक्त्रे वराहकुण्डेयं निधाय च दृढम् ।  
 घमनेत् क्रमात् कथयशतोषणवेगात् क्रमार्थ्यभस्त्रेण निमीलनाविधि ॥३१॥  
 संगात्य सगृह्य च तद्रस पुनः सम्पूरयेद् यन्त्रमुखे शनैश्चाने ।  
 एवहृते शुश्रमतीव सूक्ष्म शताविधिव्यापकशक्तिसयुतम् ॥३२॥  
 मुरञ्जिकादार्दीमतीव शोभन खेदं हृदं यन्त्रमुखात् स्वभावतः ।  
 तेनैव कुरुद्दृदं वरदर्दणेत्रयं यन्त्रोपयुक्तं विधिवन्मनोहरम् ॥३३॥ इत्यादि

एड-मवीठ, मयूख-अङ्गर ?-कोयला?, सुरुचि-गोरोचन, पटोल-परवल, पारा, करञ्ज-करंजया रविताम्बा, शर्करातय-रेत पाशाणचूर्णी रसनचूर्णा, सुहागा, गन्धक, चारु-पदमाख, शालमली-सिम्भल वृक्ष, लालू, कुञ्ज-अकर्का, रौहिणी-बहु या रोहेदावृक्ष, मण्डूर-लोहमल, पञ्चानन-लोहविशेष या पञ्चानन रस (पारा गयकं सुनकका यष्टि खंजर हरिश्चार्यी), सैंहिक-शिलारस, शिव-शूल ? विश्व-साठा या गन्धद्रव्य, अन्धक, पर्वणि-पर्वताले वृक्ष का चां आदि, विदूक-विदूरज-विदूर्यमणि । ये ११, ७, ? ५, ७, ७, ३, ७, २०, ३, ७, ५, ३, १, ३२, ३०, ३८, ८, ७, ३ ?, ६, ३०, इन वस्तुओं को क्रम से तोल कर यथा-विधि भागों को लेकर चक्षुपुट बोतल में भरकर वाराहकुण्ड में रखकर १०० दर्जे की उष्णता से क्रम-नामक भस्मा से थोके निमीलन तक पिघल जाने तक । गलाकर उस रस को लेकर यन्त्रमुख में धीरे धीरे भर दें, ऐसा करने पर शुश्रमतीव सूक्ष्म सौ से भी अधिक व्यापक शक्ति से युक्त, सुरञ्जिकादर्श अतीव शोभन हो जावे, यन्त्र के मुख से स्वभावतः । उससे वर तीन दर्पणं यन्त्रोपयुक्तं विधिवत् मलोहर करे ॥२८-३३॥

**आञ्जिष्ठकवृक्षनिर्णयः-आञ्जिष्ठक वृक्ष का निर्णय करते हैं—**

यन्त्रकियोपयोगास्युर्बंहो वृक्षजातय ।

तथापि तेष्वाञ्जिष्ठालयवृक्षोत्यनन्तप्रशस्तक ॥ ३४ ॥ इति कियासारे ।

यन्त्रकिया मैं उपयोगी बहुत वृक्षजातियाँ हैं, तथापि उन मैं आञ्जिष्ठनामक वृक्ष अत्यन्त प्रशस्त है । यह कियासार प्रथम मैं कहा है ।

पञ्चशक्तिमया वृक्षासप्ताशीतिरिति स्मृता ।

त्रिष्वान्द्रे षष्ठम प्रादुः तेष्वाञ्जिष्ठं मनीषिणः ॥ ३५ ॥

**इत्युद्धिक्ष (ज्य ?) तत्त्वसारायरो**

पञ्च शक्तिवाले वृक्ष द७ कहे हैं उनमें श्रेष्ठ से श्र छ आञ्जिष्ठ ?-मञ्जिष्ठ को मनीषियों ने कहा है । यह उद्धिजतत्त्वसारायण मैं कहा है ।

प्रतिविम्बाकर्णणादिशक्तयः पञ्च सर्वदा ।  
 यतोऽज्ञिष्ठावृक्षगम्भे प्रकाशयन्ते स्वभावतः ॥ ३६ ॥  
 ततस्सर्वं तु वृक्षेषु एतदज्ञिष्ठमेव हि ।  
 अत्यन्तश्रेष्ठमित्याहुरेतद्यन्त्रक्रियाविधी ॥ ३७ ॥

इत्यादि-अगतत्वलहर्याम् ॥

प्रतिविम्बाकर्णणं आदि शक्तिं ५ सर्वदा जिस से अज्ञिष्ठ वर्ग में प्रसिद्ध हैं 'स्वभावत'। सब वृक्षों में यह अज्ञिष्ठ ही को यन्त्रक्रियाविधि में अत्यन्त श्रेष्ठ कहते हैं। इत्यादिअगतत्व लहरी मैं कहा है ॥ ३६—३७ ॥

अथ पञ्चधारालोहनिर्णयः—अब पञ्चधारालोह का निर्णय करते हैं—

शङ्कुवो बहवसन्ति नानायन्त्रक्रियाविधी ।  
 पञ्च धारालोहकृतशङ्कुवस्तेषु शास्त्रतः ॥ ३८ ॥  
 गुहाग्भर्दिर्षयन्त्रदर्पणादिनिवन्धने ।  
 सुप्रशस्ता इति प्रोक्ता यन्त्रशास्त्रविशारदं ॥ ३९ ॥

शङ्कु बहुत हैं नानायन्त्रक्रियाविधि में, पञ्चधारालोहे के बने शङ्कु उन में शास्त्र से प्रशस्त कहे हैं ॥ ३८—३९ ॥

तदुकं लोहतत्वप्रकरणे—वह कहा है लोहतत्वप्रकरण में—

दिवङ्कामाक्षिकशुल्केन्द्रशुल्कात् शोधितात् । शास्त्रतस्मङ्क्षायाथ मृगेन्द्र-  
 मूषमुखतस्मूर्यं मण्डोदरे । चञ्चन्मध्यमुखाद ध्यनेत् त्रिशतकश्योषणप्रवेगात् ।  
 कमात् सङ्काल्यापि च तद्रस समदल छत्वा न्यसेद् यन्त्रके ॥ ४० ॥  
 धारापञ्चकसयुक्त सुरुचिर भास्त्वस्वरूप दृढ़ लोहम् ।  
 भारयुत वदनि मुनयस्त पञ्चधाराभिधम् ॥ ४१ ॥

दिवङ्क-लोहाविशेष, या जस्ता? सोनामालिं, गुलब-ताम्बा, हन्द-स्थावर विष-बज्र, रुक्म-जोहविशेष या हरिण का सींग?; शास्त्र से शोषे हुआओं को लेकर मृगेन्द्रमूषामुख से मण्डोदर में भरकर चञ्चू-चञ्चू-भत्तामुख से ३०० दर्जे की उच्छिता के बेंग से धोंके कम से गलाकर उस पिंचले रस को बराबर करके यन्त्र में रख दें। धारापञ्चकलोह से युक्त सुरुचिर चमकस्वरूपवाला दृढ़ भारवान्, पञ्चकधारा नाम का लोहा मुनि कहते हैं ॥ ४०—४१ ॥

अथ पारप्रनिधिकद्रावकनिर्णयः—अब पारप्रनिधिक द्रावक का निर्णय देते हैं—

मणिसंस्थापनार्थय तन्मीमूलसमाकुलम् ।  
 कथ्यते सप्रहादत्र पारप्रनिधिकद्रावकम् ॥ ४२ ॥

मणि के संस्थापनार्थ तन्मीमूल से युक्त संकेप से पारप्रनिधिक द्रावक कहा जाता है ॥ ४२ ॥

पार वैणविकं चैव लम्बोदरमृत्कुण्डके ।  
जटाप्रभिंश्य पार्वतिंश्य स्वर्णंबीजं घटोदगजम् ॥ ४३ ॥  
सम्मेलयं विधिवच्छुद्धानेतान् तुल्यप्रमाणात् ।  
द्रावकाकर्षणंत्रेत्य द्रावकं तु समाहरेत् ॥ ४४ ॥  
तद्द्रावकं हेमवर्णं सुशुद्धं सुप्रभं भवेत् ।  
एतद् विस्वाकर्षणादिप्रयोगेषु यथाविधि ॥ ४५ ॥  
उपयुक्तं भवेत् तस्मात् पारगत्थिकद्रावकम् ।  
सम्पदेद् विशेषेण प्रतिविस्वाकर्षणे ॥ ४६ ॥ इत्यादि ।

पारा, वंशलोचन या जांस का ज्ञार, तांबेटवाले मिट्ठी के कुण्ड में जटाप्रभिंश्य?—जटामांसी की प्रतिथि, पार्वतिंश्य वृक्ष, स्वर्णंबीज—धूतूरे के बीज, घटोदगज?—घटोदगज—राजस—रोहेडा वृक्ष? विधिवत् शुद्ध इन को समान प्रमाण से द्रावक आकर्षणयन्त्र-द्रावक स्त्रीचनेवाले यन्त्र में मिलाकर द्रावक को लेते वह द्रावक सुहरा शुद्ध सुन्दर—प्रभावाता ही जाते, वह विस्वाकर्षण आदि प्रयोगों में यथाविधि उपयुक्त हो सके, अतः पारगत्थिक द्रावक विशेषत्व से प्रतिविस्वाकर्षण के निमित्त सम्पादन करे—बनावे ॥ ४३—४६ ॥

अथ चुम्बकमणिनिर्णय—अब चुम्बकमणि का निर्णय देते हैं—

उक्तेषु मणिवर्गेषु प्रतिविस्वापकर्षणे ।  
शास्त्रज्ञेश्चुम्बकमणिश्वेष्टमित्युच्यते कमात् ॥ ४७ ॥

उक्त मणि वर्गों में प्रतिविश्वाकर्षण के निमित्त शास्त्रज्ञविद्वानों द्वारा चुम्बक मणि श्रेष्ठ कही है ॥ ४७ ॥

तदुक्तं मणिप्रदीपिकायाम्—वह कहा है मणिप्रदीपिका में—

चुम्बकशक्तरद्वृणादन्त्यं शौणिदकपारदपारवणाशुल्वम् ।  
रञ्जकमाक्षिकगृह्णितकसीरि महिषखुर तदिश्वकपालम् ॥ ४८ ॥  
विधिवच्छुद्धीकृतसमभागात् कर्पटमूरामुखमध्यविले ।  
सम्पूर्णक्षतत्वासटिकाया सस्थाप्योल्किकभस्त्रमुलात् ॥ ४९ ॥  
धमनयेत् कक्षयशतोष्णिकवेगात् सङ्गाल्यं रस वरयन्त्रमुखे ।  
संसिद्धेद् यदि भवति सुरूप चुम्बकमणिरत्यन्तविशुद्धम् ॥ ५० ॥ इत्यादि ॥

चुम्बक—कान्तलोह, शर्कर—रेत, टक्कण—सुहागा, दन्त्य—हाथीदातत का चूर्ण, शौणिदक—पिप्पली? या लोहविशेष?, पारा, पार्वता—पर्वताले वृक्ष का ज्ञार, शुल्व—ताम्बा, रञ्जक—हिङ्गुल—शिंगरक, सोनामाली, गृह्णित ?, सौरि—आदित्यभक्ता—हुल्हुल, या भल्लातक ?, भेंस का सुर, विश्वकपाल ? विधिवत् शुद्ध किए समभागों कर्पटमूरामुखमध्य बिल में भरकर अच्छत व्यासटिका में रख कर छलूकिक भस्त्रमुख से धमन करे १०० डिग्री के वेग से गलाकर रस—पिंडले रस को वरयन्त्रमुख में यदि सीधे हे सुरूप चुम्बक मणि अत्यन्त विशुद्ध हो जाता है ॥ ४८—५० ॥

**विम्बाकर्षणनिर्यासनिर्णयः—**विम्बाकर्षणनिर्यास का निर्णय देते हैं—

पष्ट्युत्तरविशतनिर्यासवर्गेषु शास्त्रतः ।

रूपाकर्षणनिर्यासं प्रतिविम्बापकर्षणे ॥५१॥

अत्यन्तश्वेष्ठमित्यादुश्शास्त्रेषु जानवित्तमा ।

रूपाकर्षणनिर्यासमतस्सम्पादयेत् सुधी ॥५२॥

३६० निर्यास वर्गों में शास्त्र से रूपाकर्षण निर्यास प्रतिविम्बापकर्षण में उच्च ज्ञानियों ने शास्त्रों में अत्यन्त श्रेष्ठ कहा है, उद्भिदान् रूपाकर्षणनिर्यास का सम्पादन करे ॥५१—५२॥

उक्तं हि निर्यासकल्पे—कहा ही निर्यासकल्प में—

ऐन्द्रव क्रौञ्च वैणव क्षीरपञ्चकमेव च ।

चुम्बुकं चोदुसार च माधिमात्कविशावरिम् ॥५३॥

रथशौण्डि द्रोणसार पारमम्बरमेव च ।

मुक्ताकल च वल्मीकसार सारस्वत नखम् ॥५४॥

बोडशौताम् पदार्थान्तशुद्धान् यथाविधि ।

समभागान् गृहीत्वाय मयूराण्डरसे क्रमात् ॥५५॥

मासमेक मर्दयित्वा विलवैत्ते निवेशयेत् ।

निर्यासपाक(क्व?) यन्त्रेय तद्वोल (गो?) स्थाप्य शास्त्रतः॥ ५६॥

पाचयेदग्निना सम्यक् पाकावधि यथाक्रमम् ।

यावन्निर्यासिता याति तावद् यामचतुष्टयम् ॥५७॥

सम्पाच्य विधिवत् पश्चान्निर्यासं संप्रहेच्छन् ।

रूपाकर्षणनिर्यासमिति चाहुमनीषिणा ॥५८॥

विम्बाकर्षणनिर्यासिमित्यादु पण्डितोत्तमा ॥५९॥ इत्यादि ॥

**ऐन्द्रव—**चन्द्रकान्त, कौञ्ज—लोहविशेष, वैणव—वंशलोचन या वेणुक्षार, क्षीरपञ्चक—बड़-पीजन गूलर बैंत पितलन का दूध, चुम्बक—अयस्कान्त, उदुसार ?, पारा, अन्नक, मुक्ताकल—मोती या कपूर, वल्मीक मिट्टी का सार, सारस्वत मालकंगती का तैल, नख—नखद्रव्य । इन॑६ पदार्थोंको अत्यन्त शुद्ध यथाविधि समान भाग लेकर कम से मोते के अर्धे के रस में एक मास मर्दन करके विलवैत्ते में डालदे गोन्द पकानेवाले यन्त्रे में उस घोल को स्थापित करके शास्त्र से अग्नि से पकावे पाक अवधि तक जबतक निर्यासता को प्राप्त होता है तब तक चारयाम विधिवत् पकाकर पश्चात निर्यास थोरे से लेले इसे मनीषी जन रूपाकर्षण निर्यास कहते हैं और ऊंचे परिषट विश्वाकर्षण निर्यास भी कहते हैं ॥५३—५८॥

**पटदर्पणनिर्णयः—**पटदर्पणनिर्णय देते हैं—

रूपाकर्षणनिर्यासाद् यतश्शास्त्रविधानतः ।

प्रतिविम्बाकर्षणार्थं कुर्वन्ति पटदर्पणम् ॥६०॥

तस्माद् विचार्यं शास्त्राणि पूर्वाचार्योऽक्षवर्तमा ।

संप्रहेण प्रवक्ष्यामि निर्यासपटदर्पणम् ॥६१॥

रुपाकर्षणनिर्यास—गोन्द जिससे शास्त्रविद्यानद्वारा प्रतिविम्बाकर्षण के लिये पठदर्पण बनाते हैं अत शास्त्रों को पूर्णक आचार्य के कहे मार्ग से विचार करके संप्रह से निर्यासपटदर्पण कहूँगा ॥२०—६१॥

तदुक्तं दर्पणा प्रकरण—वह कहा है दर्पणप्रकरण में—

निर्यासिकार्पासप्रतोलिकान् कुरञ्जमातञ्जवराटिकानपि ।

क्षोणीरक घोलिकावापशक्तरात् परोटिकावार्धुषिकाप्रियञ्जवान् ॥६२॥

भञ्जमोटिकभीरुकरुमकेसरनिर्यासमृत्कारमुवचंलोदधान् ।

वैडारतेल मुचुकुन्दविष्टक सिञ्चाणुरखालिकदारुकामुर्कान् ॥ ६३ ॥

शताष्ट्राशाशतिरञ्जिविशतिवेदवर्कवाग्यानलशैलत्रिशति ।

दिक्तातरवस्वक्मुनित्रयोदशद्वाविशतिस्सन्तदशाष्ट्रविशति ॥ ६४ ॥

गुणावताराविष्टमुनित्रयोदशकमेण भागाशविधानतस्मुष्ठि ।

सशोध्य सम्यग् विधिवत् पृथक् पृथक् सन्तोल्य चकाननमूष्ठिकान्तरे ॥६५॥

सम्पूर्यं विन्यस्य छ यथा क्रम द् वेगाद् धमनेत् कव्यशतोपग्यानात ।

सञ्जाल्य नेत्रान्तमत पर शनैर्यन्ताह्यमध्ये विनियोजयेद् रसम् ॥ ६६ ॥

एव कृते सूक्ष्ममतीव शोभित भवेद् छ तत्पटदर्पणा गुभ्रम् ।

परोक्षवस्तुप्रतिविम्बसप्रहै त्वेतत्पटादर्शमितीरित बुधे ॥६७॥ इत्यादि ॥

निर्यास—गोद, रुह्ण, प्रतोलिक—वस्त्रपटी, कुरञ्ज—अकर्का, मातञ्ज—पीपल या गूलर वृक्ष, वराटिका—कौडी, ज्ञोणीरक—शीरा ?, घोलिक—छाछ ? चाप ? घोलिकचाप—छाछरञ्जु ? शक्ते—पाषाणचूर्ण, वार्धुर्यिक—समुद्रकेन ?, प्रियङ्गु—फूल प्रियङ्गु या राई ?, भञ्जमोटिका ?, भीरुक—ईख, रुक्म—धतू ? या नागकेसर ? या अयस्कान ? केसर, निर्यास—गोन्द, मृत्त्वार—रेह या शोरा ? सुवर्चल—सौञ्जल नमक, रुध, ?, विडार का तैल, मुचुकुन्दपिण्ठ—एक पुष्प वृक्ष की पिण्ठी, सिञ्चाणु, अज्ञालिक—लज्जात्री, दारु—दारु हड्डी, कार्मुक—श्वेत सैरे । ये वस्तुएँ १००, ५८, २५, २८, ४, १२, ५, ३, १, ३०, १०, ५, ८, १२, ३, १३, २२, २७, २८, ३, २४, ७, ३, १३, अंशों में तुद्धिमान लेकर विधिवत् सम्यक् सशोधन करके पृथक् पृथक् तोल कर चकाननमूष्ठा—चक्रमुख वाली बोतल के अन्दर भर कर दृढ़ विठा कर यथाक्रम वेग से १०० दर्जे की दृष्टिता से धमन करे । नेत्रपर्यन्त गला कर फिर उस पिघले रस को धीरे से यन्त्रमुख में नियुक्त करे, ऐसा करने पर सूक्ष्म अतीव शोभित दृढ़ गुभ्र दर्पण हो जावे छिपी वस्तु के प्रतिविम्ब लेने में तो यह पटादर्श विद्वानों ने कहा है ॥६२-६७॥

यनकुक्षिमुखे त्वेतद्यन्तं सस्थापयेद् दृढम् ।

एतस्मात्सम्भवेद्यानत्राणत नात्र सशय ॥ ६८ ॥

विमान के कुक्षिमुख में इस यन्त्र को दृढ़ संस्थापित करे । इससे विमान की रक्षा हो जावे इसमें सशय नहीं ॥ ६८ ॥

तमोयन्त्रनिर्णय—तमोयन्त्र का निर्णय देते हैं—

गुहागभदर्दशयन्त्रमेवमुक्तवा यथाविषि ।

अथेदानी प्रवक्ष्यामि तमोयन्त्रस्य निर्णयम् ॥ ६६ ॥

गुहागभदर्दशं यन्त्र इस प्रकाश यथाविषि कह कर अब तमोयन्त्र का निर्णय कहूँगा ॥ ६६ ॥

उक्तं हि यन्त्रसर्वते—यन्त्रसर्वते में कहा है—

रोहिणीविषसम्बद्ध (न्ध ?) चूर्णधूमादिभिस्तथा ।

ककचारिमणोर्दीपप्रभाविषसमूलत ॥ ७० ॥

विमाननाशनार्थय प्रयोग कियते यदा ।

तदा तद्विषनाशाय स्वयानत्राणाय च ॥ ७१ ॥

शत्रुतन्त्र सुविजाय शाश्वतेनेव वर्तमना ।

तमोयन्त्र स्थापयेद् विमानवायव्यकेन्द्रके ॥ ७२ ॥ इत्यादि ॥

रोहिणी विषसम्बद्धी चूर्णे के धूएँ आदि से तथा ककचारि मणि ? ( ककच — आरा के शत्रु-रूपमणि ) की प्रभा विषसमूल से विमाननाश के लिये जब प्रयोग किया जाता है तब उसके विनाश के लिये अपने विमान के रक्षण के लिए शत्रु का रहस्य जान कर शाश्वत मार्ग से तमोयन्त्र—अन्धकार फैलाने वाला यन्त्र विमान के वायव्य केन्द्र में स्थापित करे ॥ ७०-७२ ॥

तदुकं क्रियासारे—वह कहा है क्रियासार प्रथ में—

विषधूमप्रकाशादिप्रयोगाच्छ्वरणा यदा ।

विनाशो व्योमयानस्य सभवेद् यदि तत्क्षणात् ॥ ७३ ॥

सस्थापयेत् तमोयन्त्रमतिवेगाद् विचक्षणः ।

यदि प्रमाद कुरुते स्वयान नाशमेष्टते ॥ ७४ ॥

शत्रुओं का विषधूम प्रकाश आदि प्रयोग से जब विमान के विनाश की सम्भावना हो तो तत्क्षण बुद्धिमान् वेग से तमोयन्त्र लगा दे, यदि प्रमाद क्रिया तो अपना विमान नाश को प्राप्त हो जाता है ॥ ७३-७४ ॥

द्वात्रिशादुत्तरशततमोयन्त्रे षु शास्त्रतः ।

द्विषष्ठितमस्थ्याक्यन्त्र एव गरीयसीङ्क ॥ ७५ ॥

विषधूमप्रकाशादिसहरे सुप्रशस्तक ।

इति प्रोच्यते (ति ?) सम्यग्यन्त्रवास्त्रविशारदे. (दे ?) ॥ ७६ ॥

१३२ तमोयन्त्रों में शाश्वते ६२ वीं संख्या वाला यन्त्र श्रेष्ठ है व्योक्ति विषधूम प्रकाश आदि के संहार करने में ठीक यन्त्र शाश्वते के विद्वानों द्वारा अच्छा प्रशस्त कहा जाता है ॥ ७५-७६ ॥



हस्तलोख कापी संख्या ११—

तदुकं यन्त्रसर्वस्ये—वह यह ‘यन्त्रसर्वस्य’ में कहा है—

कृष्णसीम चाञ्जनिक वज्रतुण्ड समांशत ।  
सयोज्य मत्स्यमूष्याया काकब्यासटिकान्तरे ॥ १ ॥  
विन्यस्य शतकक्षयोऽग्नेगात् सगालयेत् तत ।  
तद्रस यन्त्रमध्यास्ये निविञ्चेद् विधिवच्छने ॥ २ ॥  
भवेत् तमोगार्भेत्तेहस्सूक्ष्मशुद्धो लघुर्ण्ड ।  
एतलोहेनैव कायं तमोयन्त्र न चान्यथा ॥ ३ ॥  
वितस्तित्रयमायाम वितस्त्यर्थोश्रीति क्रमात् ।  
चतुरस्त वर्तुल वा पीठ कुर्याद् यथाविधि ॥ ४ ॥  
तन्मध्ये स्थापयेच्छद्वक् तत्पुरोभागतस्थाया ।  
निशाटद्रावकस्थान कल्पयित्वा तयेव हि ॥ ५ ॥

काला सीसा, सुरमा, वज्रतुण्ड-थूहर। ये तीनों समानरूप में मिलाकर मत्यमूषानामक बोतल में डाल कर काकब्यासटिका नामक कुण्ड के अन्दर रख कर १०० दर्जे की उष्णता के बेग से गलावे फिर उस पिघले रस को यन्त्रमध्य के मुख में भीरे से विशिष्ट भा दे, वह तमोगर्भ लोह सूक्ष्म शुद्ध लघु टड़ हो जावे। इस लोहे से ही तमोयन्त्र करना चाहिये अन्यथा नहीं। ३ वालिशत लम्बा आधा चालिशत ऊँचाई चौकोण या गोल पीठ यथाविधि करे, उसके मध्य में तथा सामने शंकु स्थापित करे। निशाटद्रावक-गूता के द्रावक का स्थान बना कर तथा—॥ १-५ ॥

तमोऽक्षिं कादशकेन्द्रस्थान तत्पश्चिमे क्रमात् ।  
रश्म्याकर्दणनालस्य स्थान प्राच्या प्रकल्पयेत् ॥ ६ ॥  
तदूर्धं नालसन्धिस्थान प्रकल्पय तत् परम् ।  
तन्त्रीसन्धानचक्रस्य स्थान मध्यकेन्द्रके ॥ ७ ॥  
कीलोचालनचक्रस्य स्थान तद्विक्षणे व्यसेत् ।  
एव यन्त्रस्य रचनाक्रममुक्त्वा समाप्तत ॥ ८ ॥

\* तम उद्गेकात्—तमोक्रे क इति सन्धिरारां ।

तत्प्रथोगक्रम वक्ष्ये सप्रहेण यथामति ।

आदी सञ्चालयेत् कीली चक्रानेयस्थिता क्रमात् ॥६॥

तेन नालस्थद्विमुखीदर्पणं भ्रामणं भवेत् ।

किरणाकर्षणं भानोभवेन्नालस्थदर्पणात् ॥ १० ॥

अन्वकार को उभारने वाला आदर्श का केन्द्रस्थान उसके पश्चिम, किरणाकर्षणाल का स्थान पूर्व में बनावे उनके ऊपर की नाल का सन्धिस्थान बना कर फिर तन्त्रोस्थान चक्र—तार जिसमें लगे ऐसे चक्र का स्थान मध्यकेन्द्र में, कीली—पैंचों को चलाने वाले चक्र का स्थान उसके दक्षिण में रखे। इस प्रकार यन्त्र का रचनाक्रम संज्ञेष से यथामति कह कर उसका प्रयोग क्रम कहुंगा, आमेय चक्र में स्थित कील को चलावे उससे नाल में स्थित दो मुखवाले दर्पण का धुमाना हो जावे उस नालस्थ दर्पण से सूर्यकिरणों का आकर्षण हो जावे—हो जावेगा ॥ ६-१० ॥

पश्चाद् वायव्यकेन्द्रस्थकीली सञ्चालयेद् दृढम् ।

निशाटद्रवपात्रस्थस्थापनं तस्माद् भवेत् स्वत् ॥ ११ ॥

ईशान्यकेन्द्रस्थकीली चालयेदिति सूमत ।

तेजोपकर्षणं गणिस्तन्त्रीमुखात् स्वयम् ॥ १२ ॥

निशाटद्रवपात्रस्य मध्ये सस्थापित भवेत् ।

तथा पश्चिमकेन्द्रस्थकीलसीञ्चालनाद् दृढम् ॥ १३ ॥

स्वस्थाने स्थाप्यते सम्यक् तमोद्रोक्तालयदर्पणं ।

मध्यकीलीचालनेत् नालमध्यस्थदर्पणात् ॥ १४ ॥

आकृष्टसूर्यकिरणा मणिमादृत्य वेगत ।

स्थास्थन्ति मणिसयोगासम्यक् चलनवर्जिता ॥ १५ ॥

पश्चात् वायव्य केन्द्रस्थ कीली को चलावे, गूलालद्रवपात्रस्थ में स्थापन स्वत हो जावे, ईशान केन्द्रस्थ कीली को अतिसूक्ष्मरूप से चलावे तो तेज को स्त्रीचने वाली मणि तन्त्रीमुख से स्वयं गूल द्रव-पात्र के मध्य में स्थापित हो जावे तथा पश्चिम केन्द्रस्थ कीली के सम्यक् चलाने से स्वस्थान में अन्वकार को उभारने वाला दर्पण स्थापित किया जाता है, मध्यकील चलाने से नाल के मध्यस्थ दर्पण से सूर्य-किरण आकृष्ट हुई हुई वेग से मणि को घेर कर मणि संयोग सम्यक् चलनरहित ठहर जावेगी ॥ १५-१५॥

भ्रामवेदितवेगेन मूलकीलकमत परम् ।

ततोत्यन्ततमोद्रेक प्रभवेन्नात्र सशय ॥ १६ ॥

तेनादृश्य भवेत् व्योमयान पश्चात् स्ववेगत ।

विषष्वूमप्रकाशादीन् निशीष नाशयेत् क्रमात् ॥ १७ ॥

ततस्तदृशनादेव शत्रूणा बुद्धिविप्लव ।

भवेन्मेघोविनाश च तत्करणाश्रात् सशय ॥ १८ ॥

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन तमोयन्त्र यथाविधि ।

विमानवायव्यकेन्द्रे स्थापयेत् सुहृदं यथा ॥ १६ ॥ इत्यादि ॥

फिर अतिवेग से मूलकील को छुमावे तो अत्यन्तवेग से निसंशय अन्धकार का उत्थान हो जावे । उससे विमान अट्ठश्य हो जावे फिर अपने वेग से विषभूम प्रकाश आदि को क्रम से सर्वथा नष्ट करदे । फिर उसके दर्शन से ही शत्रुओं की तुदिं का विचलन हो जावे और धारणाशक्ति का नाश तुरन्त हो जावे इसमें कुछ भी संराय नहीं । अतः सर्वप्रयत्न से यथाविधि तमोयन्त्र को विमान के वायव्य केन्द्र में सुदृढ़ स्थापित करे ॥१६—१८॥

अथ पञ्चवातस्कन्धनालयन्त्र—अब पञ्चवातस्कन्धनालयन्त्र कहते हैं—

एवमुक्त्वा तमोयन्त्र सप्रद्देण यथामति ।

पञ्चवातस्कन्धनालयन्त्रमद्य प्रचक्षते ॥२०॥

वृष्ण्यादिवातावरणमण्डलानि त्रयोदश ।

पविनराधसकेऽद्रस्याक्षितसम्पर्कत क्रमात् ॥२१॥

परस्पर स्वभावेन सलग्ननिभ भवन्ति हि ।

तस्मान्मण्डलमध्यस्थवातयोरभयोरपि ॥२२॥

परस्पर भवेद् युद्ध वर्षणार्थैविशेषत ।

तस्मात् तत्र प्रजायत्तेत्यन्तघोरविषयात्मका ॥२३॥

शक्तय पञ्चातिवेगात् शोषिणा (शोक्षिणा?) द्यास्त्वभावत ।

तत्सम्पर्काद् व्योमयानविनाशो भवति क्रमात् ॥२४॥

तदिग्यायातिशीघ्रेण यानपरिचमकेन्द्रके ।

पञ्चवातस्कन्धन्यन्त्र सस्थापयेत् सुधी ॥२५॥

तस्माच्छ्वो (री?) ष्यादय पञ्च शक्तयस्तत्करणात् स्वतः ।

विनाश यान्त्यत खेटयानसरक्षण भवेत् ॥२६॥ इति खेटविलास ॥

इस प्रकार तमोयन्त्र सज्जे पर स्थापिति कहकर अब पञ्चवातस्कन्धनालयन्त्र कहते हैं । वृष्णिं आदि १३ वातावरण मण्डल हैं पंक्तिराधस?—पंक्तियों के साधककेन्द्र में स्थित शक्ति के सम्पर्क से क्रम से परस्पर त्रयावत् से वे वातावरण मण्डल मिले हुए होते हैं अतः मण्डल मध्यस्थ दोनों वायुओं में भी वर्षण आदि से विशेष परस्पर युद्ध हो जावे अतः वहां घोर विषरूप पांच शोषिणक आदि शक्तियां स्वभाव से प्रकट हो जाती हैं उनके सम्पर्क से विमान का क्रम से नाश हो जाता है उसे जानकर अति शीघ्र यान के परिचम केन्द्र में पञ्चवात स्कन्धन्यन्त्र तुदिमान् स्थापित करे अतः शोषिण आदि पांच शक्तियां तुरन्त स्वतः नाश को प्राप्त हो जाती हैं इससे खेटयान—विमान का संरक्षण हो जाता है । यह खेटविलास में कहा है—

तदुक्तं यन्त्रसर्वस्ते—यह यन्त्रसर्वस्व प्रथ में कहा है—

पञ्चवातस्कन्धनालयन्त्रस्य रचनाक्रमम् ।

यानसरक्षणार्थाय कथ्यतेस्मान् यथाविधि ॥२७॥

वाताहरणलोहेन यन्त्रं कुर्यान्तं चान्यत् ।

प्रमादाद् यदि कुर्वीत प्रमादो भवति ध्रूवम् ॥२६॥

पद्मचतुर्षकधनालयन्त्रं का रचनाक्रम विमानरक्षणार्थं स्थाविष्य यहां कहा जाता है । वाताहरण लोहे से यन्त्र करे—बनावे आन्य से नहीं । प्रमाद से यदि करे तो प्रमाद हो जावेगा ॥२७-२८॥

उक्तं इ लोहसर्वस्ते—लोहसर्वस्ते में कहा है—

सिंहास्यकं शारणसूर्यवर्चुलान् मग्नखल्यथामुषमध्यभागे ।

सम्पूर्यं शुद्धाव् समभागत क्रमाज्ञमुखव्यासटिकान्तरे ध्रूवम् ॥२९॥

काकास्यभस्त्रादतिवेगत क्रमाच्छतोषणकक्षयद्वितीयप्रमाणात् ।

सङ्घात्यं नेत्रान्तमत परं तद्यन्त्रोच्चर्वनाले सुहृदो यथाविष्य ॥३०॥

शनैनिषिद्धेद् यदि सुप्रकाशो शुद्धोतिसूक्ष्मसुहृदो मनोडर ।

लघुमूर्तुदृशीत्यरसप्रसारिणो भवेत् सुवाताहरणाल्यलोह ॥३१॥ इत्यादि ॥

शुद्धसिंहास्यक ?—सिंहासन—लोहकृष्ट, शारण ?, सूर्य—ताम्बा, सुवर्चल—सौवर्चल नमक को मग्नखल्यमुख के मध्यभाग में समान भाग भरकर क्रम से जन्ममुख—गोदामुखाकार—व्यासटिका—कुण्ड के अन्दर 'ख्यक' काकमुख भस्त्रा से अतिवेग से क्रम से १०२ दर्जे की उच्चाता के प्रमाण से नेत्र तक गला कर उस यन्त्र की ऊपर नाल में यथाविष्य यदि पीछे से सींच दे तो प्रकाशमान शुद्ध अति सूक्ष्म नद मनोहर लघु मृदु शीतलप्रवाह का प्रसारक वाताहरणालयक लोहा हो जावे ॥२६—३१॥

वितस्तिद्वयमायाम् वितस्त्युन्नतमेव च ।

विस्तृतास्य द्वच् शुद्धमतिसूक्ष्म मनोहरम् ॥३२॥

वाताहरणलोहेन कुर्यान्तालचतुष्ट्रयम् ।

विमानोध्वंसुखे तद्वत्पाशर्वयोहयोरपि ॥३३॥

अध्वोभागे च विवरान् वर्तुलान् परिकल्पयेत् ।

एकं कनालमेकं कविकरे सन्नियोजयेत् ॥३४॥

वितस्तिद्वादाशायाम् वर्तुलास्य त्रिरुन्नतम् ।

कल्पयित्वा नालमेकं पश्चादभागे तथेव हि ॥३५॥

ऊर्ध्वंष्ठिद्वमुखे सम्यक् स्थापयेद् विधिवत्कमात् ।

एव कमेण स्थापय पञ्चनालानत परम् ॥३६॥

पूर्वोक्तविषवाताना केन्द्राभमुखत कमात् ।

भस्त्रास्यान् वर्तुलान् शुद्धान् सकीलान् बलवत्तरान् ॥३७॥

दो बालिश्त भर ऊंचा बड़े मुखवाला ढृ शुद्ध अति सूक्ष्म मनोहर वाताहरण लोहे से चार नाले करे, विमान के ऊपरवाले मुख वैसे ही दोनों पाशबों में भी और नीचे भाग में गोल छिद्र बनावे, एक एक नाल को एक एक छिद्र में लगावे । १२ बालिश्त लम्बा गोलमुखवाला ३ बालिश्त ऊंचा एक नाल पिछले भाग में बनाकर ऊर्ध्री छिद्र मुख में विधिवत् स्थापित करे, इस प्रकार क्रम से इससे आगे

५. नालों को संस्थापित करके पूर्वोक्त विषवायुशों के केन्द्र के सम्मुख गोल शुद्ध कील सहित इङ्ग भस्त्राश्चों  
भस्त्रामुखवाले को—॥३१-३५॥

नालानामेकक्षूले एककं सुट्ट यथा ।  
आवतंकीलरु सम्यक् स्थिरीकुर्याद् यथाविधि ॥३८॥  
पश्चादेकं भस्त्रास्यकीलकानतिवेगतः ।  
चालयेदनुलोमेन यथाशास्त्रं पृथक् पृथक् ॥३९॥  
भवेत् तस्मात् पञ्चविषवशकीनामपकर्षणाम् ।  
भस्त्रिकास्यै पञ्चवालमुखेष्वत्यन्तवेगत ॥४०॥  
प्रविश्याथ बहिर्वान्ति पञ्चवधु विषवक्षय ।  
पश्चाद् विनाशमायान्ति शो (रो?) विणकाद्यास्त्वत ॥४१॥  
तस्मात् सर्वं प्रयत्नेन यन्त्रमेतद् यथाविधि ।  
विमाने स्थापयेत् सम्यगिति शास्त्रविनिर्णय ॥४२॥ इत्यादि ॥

नालों में से एक एक नाल को एक एक मूल में धूमनेवाली कीलों के साथ स्थिर करे, पश्चात् एक एक भस्त्रास्य की कीलों को अतिवेग से सीधे यथाशास्त्र पृथक् पृथक् चलावे तो उससे पांच विष-शक्तियों का सींचन हा जावे, पांच विषशक्तियां भस्त्रिकास्यों से अत्यन्त वेग से पञ्चवालमुखों में प्रविष्ट होकर बाहिर चली जाती हैं। फिर रौप्यिक आदि विषाओं को स्वतः प्राप्त हो जाती है अत समस्त प्रयत्न से इस यन्त्र को विमान में सम्यक् संस्थापित करें यह शास्त्र का निर्णय है ॥३८-४२॥

अथ रोद्रीदर्पणयन्त्रनिर्णय —अथ रोद्रीदर्पण यन्त्र का निर्णय देते हैं—

एवमुक्तवा पञ्चवातस्त्वन्धनालयन्त्रं परम् ।  
रौद्रीदर्पणयन्त्रस्वरूपमया निरूप्यते ॥ ४३ ॥

इस प्रकार पञ्चवातस्त्वन्धनालयन्त्र को कटकर इस से आगे रोद्रीदर्पण यन्त्र का स्वरूप अब निरूपित किया जाता है ॥ ४३ ॥

तदुकं कियासारे—वद कहा है कियासार प्रथ में—

ईषादण्डस्य नैर्द्र्यत्केन्द्रमार्गं विशेषत ।  
ये सूर्यंकिरणांसम्यक् प्रसरन्ति विशेषत ॥ ४४ ॥  
ते सर्वे ऋतुमेदेन शक्तया वर्तं पतन्ति हि ।  
तत्रत्यशक्तिस्योगात् किरणेषु विशेषत ॥ ४५ ॥  
आविर्भवन्ति वेगेन ज्वालास्त्र (त् स?) वंविदाहका ।  
तज्ज्वालासन्धिकेन्द्रे षु विमानस्त्वरेद् यदि ॥ ४६ ॥  
तत्क्षणादेव तद्वे गाद् भस्मीभवति नान्यथा ।  
अतस्तत्परिहाराय रोद्रीदर्पणयन्त्रकम् ॥ ४७ ॥

यानस्थाप केन्द्रदेशे स्थापयेद् विधिवत् क्रमात् ।

तस्माद् विमानसरक्षणा भवेदिति निर्णयतम् ॥ ४८ ॥ इत्यादि ।

**ईयादण्ड—पृथिवी और सूर्य की दृष्टि समान गति रेखा के निर्व्वितिकोणवाले केन्द्र मार्गों से विशेषतः जो सूर्यकिरण सम्पूर्ण प्रसार करती है वे सब अक्षु के भेद से शक्त्यावर्त-शक्ति के धुमेर में गिरती हैं वहाँ के शक्तिसंयोग से किरणों में विशेषतः वेग से सर्वविद्वाहक उचालाप् प्रकट हो जाती हैं उन उचालाओं के सम्बन्धों में यदि विमान सज्जार करे तो तुरन्त उनके वेग से भस्म हो जावे अत उसके परिहार के लिये रौद्रीदर्पणगणन् विमान के नीचले केन्द्रदेश में विधिवत् स्थापित करे उस से विमान का संरक्षण हो जावे यह निर्णय है ॥ ४४—४८ ॥**

यन्त्रसर्वस्वेषि—यन्त्रसर्वस्व में भी कहा है—

वसन्तत्रीभ्योमंधप्रेरेषाप्रान्तेषु भूरिश ।

आवृत्तशक्तिवृशूना प्रवेशो भवति यदा ॥ ४९ ॥

तदा सज्जायते कोलाहलज्वालावती स्वत ।

आकाशपञ्चमकक्षे विमानसञ्चरेद् यदि ॥ ५० ॥

तत्र कोलाहलज्वालावेगाद् भस्मीकृत भवेत् ।

तस्मात् तत्परिहाराय रौद्रीदर्पणयन्त्रकम् ॥ ५१ ॥

विमाने स्थापयेत् तस्मात् तत्स्वरूप विच्यते ।

यन्त्रकोलाहलज्वालाविनाशार्थं यथाविधि ॥ ५२ ॥

कुर्याद् रौद्रीदर्पणेनैवेति शास्त्रविनिर्णये ।

अन्यथा यदि कुर्वीत प्रमादस्यान्न सशय ॥ ५३ ॥

वसन्त और श्रीधर की मध्यरेखा के सिरों में अत्यधिक धूर्मती हुई शक्तियों में जब किरणों का प्रवेश होता है तो कोलाहल—गूँजेवाली उचालामाला स्वत प्रकट हो जाती है, आकाश के पांचवें स्तर में विमान यदि सज्जार कर रहा हो तो वहाँ कोलाहल उचाला के वेग से भस्म हो जावे अत उसके परिहार के लिये रौद्रीदर्पण यन्त्र विमान में स्थापित करे अत उसके स्वरूप का विवेचन करते हैं। कोलाहल उचालाके विनाशार्थं यथाविधि यन्त्र रौद्रीदर्पण से ही करे एंसा शास्त्र का निर्णय है अन्यथा करे तो हानि हो इसमें संशय नहीं ॥ ४४—५३ ॥

लोहासव चुम्बकवीरटङ्गणान् पञ्चानन शून्यमयुरसञ्जकान् ।

माध्वीकचञ्चलमुखसूर्यवर्तुलान् रुक्मालिकाशार्करञ्चपादुकान् ॥ ५४ ॥

एतान् त्रिस्तशोविषतशुद्धवस्तुन् सगृह्य सन्तोल्य समाशत क्रमात् ।

पश्चात्यस्थूलामुखमध्यरन्ध्रे सम्पूर्यं विश्वेदरकुण्डमध्ये ॥ ५५ ॥

सस्थाप्य पश्चाद् विशतोष्णकक्ष्यप्रमाणातो भस्त्रामुखाद् यथाविधि ।

सगाल्य नेत्रान्तमत पर शनैस्सगृह्य तद्यन्तमुखान्तराले ॥ ५६ ॥

सम्पूरित चेत् सुट्ठु सुसूक्ष्म वृष्णि विशुद्ध ज्वलान्तक लघु ।  
अन्तःप्रकाश विमल मनोहर भवेद् रौद्रीदर्पणमद्भुत हि ॥ ५७ ॥

लोहासव-लोहाद्राव या लोहे का सार, चुम्बक, बोर-लोहा, सुहागा, पञ्चाननलोहा, शून्य-अध्रक, मयूरसज्जक ? , माघीक—मधुद्राव, चञ्चु—चञ्चु—रक्तप्रद, मुख—वद्वैल, सौञ्चल नमक, रुम—स्वर्ण या लोहा, अलिक—भ्रमर ?, शाक-लोध, पञ्च—कड़वा परबल, पाटुक ? । तीन बार रोधी हुई इन वस्तुओं को लेकर समान तोलकर पश्चात्य बोतल के मुख्यमयजिह्वा में भरकर विश्वोदर कुट्ठ के मध्य में रख कर पश्चात् २० या १२० दर्जे माप की भस्त्रामुख से यथाविधि नेत्रपर्यन्त गलाकर धीरे से लेकर उस यन्त्रमुख के अन्दर यदि भर दे तो सुट्ठु अति सूक्ष्म वृष्णि विशुद्ध ज्वलान्तक हल्का अन्दर प्रकाश मान विमल मनोहर अद्भुत रौद्रीदर्पण हो जावे ॥ ५८-५९ ॥

एतदौद्रीदर्पणेन सुमधुरेण यथाविधि ।  
वितस्तिथोडगायाम पीठ कुर्यात् सुवर्तुलम् ॥ ५८ ॥  
यावद्यानप्रमाणस्यात् तावन्मात्र यथाविधि ।  
पञ्चविश्वत्यृगुलप्रमाणेणगात्र छड़ लघु ॥ ५९ ॥  
कृत्वा दण्ड पीठमध्यकेन्द्रे सस्थापयेद् दृष्टम् ।  
सङ्कुचनप्रसारणाकीलकद्वयमद्भुतम् ॥ ६० ॥  
अनुलोमविलोमाभ्या दण्डाप्रे स्थापयेत् क्रमात् ।  
तदधशशलाकावरणाचक सन्धारयेत् क्रमात् ॥ ६१ ॥  
यथा यानस्यावरक समग्र स्यात् तथैव हि ।  
शलाकाद्वयमध्ये पञ्चाशादञ्जुनमन्तरम् ॥ ६२ ॥  
कृत्वा शलाकात् परितश्चके सन्धारयेत् क्रमात् ।  
अकसीद्रोणसीरम्भभण्टकानेलस्कृतम् ॥ ६३ ॥

इस अति सूक्ष्म रौद्रीदर्पण से यथाविधि १६ वालिश्त लम्बा गोल पीठ विमान के प्रमाणण-नुसार बनावे, २५ अङ्गूष्ठ मोटा बनाकर दण्ड को पीठ के मध्य केन्द्र में संस्थापित करे, फिर सङ्कुचन और प्रसारण के साधनभूत दो पेंचों को सीधे और उलटे ढांग से दण्ड के अपमाण पर लावे । उसके नीचे शलाकाओं को घेरने दक्ने वाला चक लावे जिस से ममप विमान का आवरक—दक्ने वाला हो जावे । दो शलाकाओं के मध्य में १५ अङ्गूष्ठ का अन्तर दे कर शलाकाओं को सब ओर चक में लावे “अकसी—अलसी द्रोण—हरिचन्दन या द्राष्टुपुष्टी ? सौरम्य ?—सौरभ—राल या शिलारस ? भरिंदका—मज्जीठ” इन के तैल से संस्कृत—शुद्ध शोभायमान बनाया हुआ—॥ ६८-६९ ॥

रौद्रीदर्पणासिद्धपत्रायथ पृथक् पृथक् ।  
शलाकोपरि सन्धार्य बन्नीयात् सूक्ष्मकीलं ॥ ६४ ॥  
रौद्रीदर्पणासिद्धमणीन् पञ्चमुखात् तथा ।  
सन्धारयेत् तैलशुद्धात् शलाकाग्रे पृथक् पृथक् ॥ ६५ ॥

तथैव पश्यपत्राकारपत्राणि यथाक्रमम् ।  
 शलाकद्रव्यमध्येष्ट्रादश सल्याप्रकारत् ॥ ६६ ॥  
 भ्रामणीकीलकीर्तुं क्षान्यथाशास्त्र नियोजयेत् ।  
 छत्रीवदन्दुं लाकार कुर्याद् यन्त्र मुरोभनम् ॥ ६७ ॥  
 तत्र पत्राण्यथ दण्डाप्रे बध्नीयात् कीलकाष्टकैः ।  
 विमानाभिमुख यावज्ज्वालाशक्तिर्भवेत् स्वतः ॥ ६८ ॥  
 तदिजायादर्शायन्त्रसामग्रधार्यविचक्षणा ।  
 तावत् प्रसारणीकीलं भ्रामयेदतिशीघ्रतः ॥ ६९ ॥  
 छत्रीवद् प्रभवेत् तेन यानस्यावरकं क्रमात् ।  
 आमूलप्र स्वभावेन यु (या ?) गपत्सर्वंतोमुखम् ॥ ७० ॥

रौद्रीदर्पण से सिद्ध यन्त्र पृथक् पृथक् शताकाक्षों के ऊपर लगा कर सूक्ष्म कीलों से बांध दे, रौद्रीदर्पण से सिद्ध किये तैल से शुद्ध पञ्चमुख मणियों को शताका के अपभाग में पृथक् पृथक् लगावे, तथा प्रद्याकार पत्रों को यथाक्रम दो शताकाक्षों के मध्य में १८ संख्या की भ्रामणी कीलों से युक्त यथा-शास्त्र लगावे, छत्री के समान गोलाकार सुन्दर यन्त्र बनावे बहां दण्ड के अपभाग में ८ कीलों से पत्रों को बांधे जब तक विमान के सम्मुख उत्तालाशक्ति स्वतः हो जाए उसे आदर्शयन्त्र सामग्री आदि से बुद्धिमान् जान कर—जान न ले तब तक प्रसारण्यों कील अति शीघ्र चुमावे, विमान का आवरक—आवरणं करने-वाला रक्षासाधन यन्त्र छत्री की भाँति मूल से अप भाग तक स्वभाव से एक साथ—तुरन्त सर्वत्र फैल जावे ॥ ६४—७० ॥

पश्यपत्रैच मणिभिस्तथावरणपत्रकैः ।  
 पूर्वोक्तकार्त्तिनिवेष्य तत्पराणाभ्रातामेष्यते ॥ ७१ ॥  
 पश्यात् सम्भ्रामयेत् सङ्क्षेपचनकीलिनिवन्धनम् ।  
 तेन सङ्कृचित् यानावरकं तत्पराणां भवेत् ॥ ७२ ॥  
 सुरक्षितं भवेद् व्योमयानं पश्यात् स्वभावतः ।  
 तस्मादेतद्यन्त्रम् स प्रहेण निरूपितम् ॥ ७३ ॥ इत्यादि ॥

पद्मपत्रों और आवरणपत्रों से पूर्वोक्त शक्ति तुरन्त सर्वथा नाश को प्राप्त हो जाती है, पश्यात् सङ्क्षेप करने वाले पेंच के बन्धन को चुमावे उससे विमान का आवरक तुरन्त संकृचित हो जावे, फिर विमान स्वभावतः सुरक्षित हो जावे अतः यह यन्त्र यहां संचेप से निरूपित किया है ॥ ७१—७३ ॥

अथ वातस्कन्धनालकीलकयन्त्रः—अथ वातस्कन्धनालकीलक यन्त्र कहते हैं—  
 एवमुक्त्वा संप्रहेण रौद्रीदर्पणयन्त्रकम् ।  
 अथेदार्तीं वातस्कन्धनालयन्त्रं विविच्यते ॥ ७४ ॥

इस प्रकार रौद्रीदर्पण यन्त्र संचेप से कह कर अब इस समय वातस्कन्धनाल यन्त्र का विवेचन करते हैं ॥ ७४ ॥

तदुक्तं गतिनिर्णयाध्याये— वह कहा है गतिनिर्णय के अध्याय में—

आवहदिमहावातमण्डलेषु स्वभावत ।  
 द्वाविशाकुतरशतप्रमेदेन यथाक्रमम् ॥ ७५ ॥  
 पवमानगतिश्चित्रविचित्रत्वेन वर्णिता ।  
 तेष्वे कोनाशीतितमगतिर्वातायानाभिष्ठा ॥ ७६ ॥  
 तदगतिस्त्याद् विशेषण वायोगीष्मक्तौ कमात् ।  
 चतुर्थक्षयगणे यानसञ्चरते यदा ॥ ७७ ॥  
 तदा वातायनगतिवेगाद् वायोविशेषत ।  
 विमानस्य भवेद् वक्तापित्तस्मात् परस्परम् ॥ ७८ ॥  
 यन्तृणा प्रभवेत् कष्टमत्यन्त सुदुसह कमात् ।  
 अतस्तत्परिहाराय यानाथ पाश्वेकेन्द्रके ॥ ७९ ॥  
 वातस्तम्भनालकीलकयन्त्र स्थापयेत् सुधी ।  
 तेनापायनिवृत्तिस्त्याद् यन्तृणा सुखद भवेत् ॥ ८० ॥ इत्यादि ॥

आवह आदि महावायुमण्डलों में स्वभावतः १२२ भेद से यथाक्रम वायुगति चित्रविचित्ररूप से वर्णन की है उन में ७६वीं गति वातायन नामक है, उस वायु की गतिविशेष करके ग्रीष्मऋतु में कम से हो तो चतुर्थक्षयाते गानमण्डल में विमान सञ्चार करता है। तथा वातायनगति वेगसे वायु का विशेषत विमान को परस्पर वक्तापि हो जावे उस से चातक यात्रियां को अत्यन्त दुःसह कष्ट हो जावे, अत उसके हटाने के लिये विमान के नीचे पाश्वेकेन्द्र में तुदिमान् जन वातस्तम्भनालकील यन्त्र स्थापित करे उस से अनिष्ट को निवृत्ति तथा यात्रियों को सुखद हो ॥ ७५—८० ॥

उक्तं हि यन्त्रसर्वत्वे—कहा है यन्त्रसर्वत्व ग्रन्थ में—

विमानवक्तग्नमनपरिहाराय केवलम् ।  
 वातस्तम्भनालकीलक यन्त्रमय प्रचक्षते ॥ ८१ ॥  
 वातस्तम्भनलोहेनव तद्यन्त्र प्रकल्पयेत् ।  
 अन्यथा निष्पलमिति प्रवदन्ति भनीष्णा ॥ ८२ ॥

विमान के वक्तग्नमन के दूर करने को वातस्तम्भनालकीलयन्त्र अब कहते हैं। वातस्तम्भन लोहे से ही उस यन्त्र को बनावे अन्यथा निष्पल है ऐसा मनीषी (Thinker) कहते हैं ॥ ८१—८२ ॥

तदुकुं लोहतस्वप्रकरणे—वह कहा है लोहतस्त्र प्रकरण में—

विशावर सुबचंल मयूरलोहपञ्चकम् ।  
 श्रुतिपिंडि सुरञ्जिक वराहकांघ्रिलोहकम् ॥  
 विरोहिण कुवेरक मुरारिकाघ्रि रञ्जजम् ।  
 सुहसनेत्रव दल वरालिक मूनालिकम् ॥ ८३ ॥

सुशोधितात् यथाविधि यथाप्रतोलितात् समं समम् ।  
 मत्स्यमूषमध्यमास्यपूरितात् समप्रकम् ॥  
 सस्थाप्य माधिमारुयकुण्डमध्यमे दृढ यथा ।  
 विजृम्भणाल्यभिस्त्रिकामुखेन सन्धमनेत् कमात् ॥८४॥  
 विगात्य चात तद्रस सुयन्त्रमध्यनालके ।  
 कदुषणत प्रूरयेच्छानैदेशनैर्यथाकमम् ॥  
 एवकरेतिसूक्ष्मरूपक विशुद्धमच्युतम् ।  
 मुवातस्तम्भलोहक भवेत् सुवर्चल लघु ॥ ८५ ॥ इत्यादि ॥

विशावर ? विशाकर—दन्ती, मुवर्चल—सौख्यलनमक, मयूर-गन्धक, लोहपञ्चक—लोहेपञ्चकर के, मुसु-एंडक ?, मुरज़िक—मुरज़ी श्वेतकाकमाची या रुक्ख—हिङ्गुल—शिंगरक, वराहांश्चिंह लोहा ?, विरोहिण—रोहिण—कायफज, कुबेरक—इण्ठशुच, मुरारिकांघिलोहा ? सुहंसनेत्रक ?, दल—तेजपत्र ?, वरालिका—वराटिका—कौड़ी, मुनालिक—मुनालिक—मूणल—सुगन्धरुण या अश्वगन्ध । मुशोधित समान भाग तोलकर मत्स्यबोतल के मध्यमुख में भरकर माधिम ? माध्यमिकाल्य कुण्डमध्य में रखकर विजृम्भणाल्य भास्त्रका मुख से धमन करे गोलाकर रस को यन्त्रमध्यनाल में थोड़ा गरम थीरे थीरे भर दे ऐसा करने पर सूक्ष्म शुद्ध अट्ट बातस्तम्भलोहा मुन्द्र बन जावे ॥ ८२—८५ ॥

वितस्तीना पञ्चदशप्रमाणेन सुवर्तुलम् ।  
 नालधट्क विस्तृतास्यमादी कृत्वा यथाविधि ॥ ८६ ॥  
 ग्रन्तिद्विद्रूप्रमाणेन वितस्तीना दश स्मृतम् ।  
 विमानसूलमध्याप्रप्रदेशेषु यथाकमम् ॥ ८७ ॥  
 पूर्व पश्चिमतश्चैव दशिणोत्तरस्तथा ।  
 सन्धारयेलोहकृतपट्टिकान् भारवजितात् ॥ ८८ ॥  
 पूर्वोक्तनालान् सगृह्य पट्टिकासु यथाकमम् ।  
 नालास्यानामाभिमुख्यं चतुर्दिशु यथा भवेत् ॥ ८९ ॥  
 तथा सन्धारयित्वायत्वनीयात् कोलकादिभि ।  
 पश्चादैककनालास्ये बातपामणिमुत्तमम् ॥ ९० ॥

१५ बालिशत माप से गोलाकार ६ नालों वडे मुखवाली प्रथम यथाविधि करके अन्दर जिनके बिंदु हो १० बालिशत कहे हैं, विमान के मूल मध्य और अप्रप्रदेश में यथाकम पूर्व पश्चिम की ओर और दक्षिण उत्तर की ओर भी लोह से बनी भारवजित पट्टिकाओं को लगावे, नालों के मुखों का सामुख्य चारों दिशाओं में जिस से हो वैसे लगा कर कीलों से बांधे पक्षात् एक एक नाल के मुख में उत्तम बातपामणि— ॥ ८६—९० ॥

एकंक योजयेत् तन्मीमूलकात् सुदृढ यथा ।  
 बातायनीबातवेगापकर्षणपट्टन तत. ॥ ९१ ॥

पताकात् रोलिकपटनिर्मितात् नालसन्धिषु ;  
 सन्धारयेत् सूत्रबद्धात् पञ्चसस्कारसस्थृतात् ॥ ६२ ॥  
 वातस्तम्भलोहकृतचक्रात् तत्तद्धवजाग्रत ।  
 एककं स्थापयेत् पश्चात् तन्त्री सर्वत्र योजयेत् ॥ ६३ ॥  
 वातायनीवातवेगप्रवाहोत्यन्तवेगत ।  
 पताकाभिमुखो भूत्वा व्याप्तये सर्वत्र क्रमात् ॥ ६४ ॥  
 तद्वेगमपहृयाथ पताकाश्च (न्? श) बद्धपूर्वकम् ।  
 प्रचलन्त्यतिवेगेन सर्वतोमुखत क्रमात् ॥ ६५ ॥

एक एक तार के मूल से ठड़ लगावे फिर वातायनी नामक वायु के वेग को खींचनेवाले पञ्च-  
 मंसकारयुक्त रोलिक ?—तौलिक रुहि से बने फूलने वाले थैलों पताकाओं को नालों की सन्धियों में सूत्रों से  
 बांधकर लगावे । वातस्तम्भ लोहे से बने चक्रों को उस उस ध्वजा के अप्रभाग में एक एक को स्थापित  
 करे फिर सर्वत्र तार लगावे । वातायनीनामक वायु के वेग का प्रवाह अत्यन्त वेग से पताका के सामने  
 होरह सर्वत्र व्याप जाता है । उस के वेग को हठाकर पताकाए शब्दपूर्वक सब ओर चलती है ॥६१-६५॥

पश्चात् तन्मूलकीलस्थचकाण्यपि यग्रकमम् ।  
 अतिवेगेन आप्यन्ति तद्वेगान्मरणस्तथा ॥ ६६ ॥  
 वातायनीवातवेग पताका. प्रथम क्रमात् ।  
 समाहृन्ति वेगेन पश्चाच्चकाण्णि वेगत ॥ ६७ ॥  
 समाहृत्य प्रेषयन्ति मणीन् प्रति विशेषत ।  
 मण्यस्त समाहृष्टा नालास्ये योजयन्ति हि ॥ ६८ ॥  
 तन्नालालत्शिष्ठदमुखादागत्यान्यमुखान्तरात् ।  
 बाह्याकाशेय विलय यान्ति नास्त्यत्र सशय ॥ ६९ ॥  
 पश्चाहजुगात्स्तेन विमानस्य भवेत् क्रमात् ॥ १०० ॥  
 ग्रतो वातस्कन्धनालकीलीयन्त्र यथाविधि ।  
 विमाने स्थापयेत् सम्यगिति शास्त्रविनिर्णय ॥ १०१ ॥

फिर उनके मूलों की कीलों में स्थित चक्र भी यथाक्रम अतिवेग से घूमते हैं उनके वेग से  
 मणियां भी घूमती हैं । प्रथम पताकाए वातायनीनामक वायु के वेग को शीघ्र लेती है पथात् चक्रों को  
 वेग से लेकर मणियों के प्रति विशेषत प्रेरित करते हैं, मणियं आकृष्ट हुई उसे नालों के मुख में युक्त  
 करती है, उन नालों के भीतरी छिद्रमुख से आकार अन्य मुख के अन्दर से बाहिरी आकाश में विलय  
 को प्राप्त हो जाती है इसमें संशय नहीं पथात उस से विमान की सरलगति क्रम से हो जाती है, अत  
 वातस्कन्धनाल के कीलयन्त्र को यथाविधि विमान में सम्यक् स्थापित करे यह शास्त्र का निर्णय  
 है ॥ ६६—१०१ ॥

अथ विशुद्धपैण्यन्त्रः—अब विशुद्धपैण्य यन्त्र कहते हैं—

एवं वातस्कन्धनालकोलयन्त्र निरूप्याथ ।

विशुद्धर्पणयन्त्रोत्र संग्रहेण निरूप्यते ॥१०२॥

इस प्रकार वातस्कन्धनालयन्त्र का निरूपण करके अब विशुद्धर्पणयन्त्र यहां संक्षेप से निरूपित करते हैं—

उक्तं हि सौदामिनीकलयाम्—सौदामिनीकला पुस्तक में कहा है—

तडित्सञ्चलनं वर्यं ऋतौ मेवेषु पञ्चधा ।

वारुण्यमिन्मुखादण्डमहारावणिका इति ॥१०३॥

तेषु वारुण्यमिन्मुखविशुतावतिवेगत ।

मुहुर्मुहु व्रचतस्त्वतो मेवेषु वार्षिके ॥१०४॥

पश्चाद् यानस्थरीद्विधादिदपर्णोस्तावुभाविपि ।

आकृष्येते स्वभावेन पश्चात् सम्भेलन तयोः ॥१०५॥

परस्पर भवेत् तस्मान्महानन्मि प्रजायते ।

तेन दग्धो भवेद् व्योमयानस्तत्क्षणतः क्रमात् ॥१०६॥

अतस्तपरिहारार्थं मुखदक्षिणकिन्द्रयोः ।

विमाने स्थापयेद् विशुद्धन्त्र सम्यग्यथाविधि ॥१०७॥ इत्यादि ॥

वर्णं ऋतु में विशुद्ध का सञ्चलन पांच प्रकार का होता है, जो कि वार्षिक, अग्निमुख, दण्ड, महात्, रावणिक हैं। उन पांचों में वारुणि और अग्निमुख विशुद्ध अतिवेग से वर्गज्ञतु के बादलों में पुनः पुनः वार वार प्रसार करती हैं पश्चात् विमान में स्थित रौद्री आदि दर्पणों से वे दोनों स्थभावत—अनायास आकर्षित हो जाती हैं पश्चात् उनका परस्पर सम्भेलन हो जाता है उससे महान् अग्नि उत्पन्न हो जाती है जिस से उत्तर विमान दग्ध हो जाता है अतः उसके परिहारार्थ—बचाव के लिये दोनों मुख दक्षिण केन्द्रों में विशुद्धन्त्र विमान में सम्यक् स्थापित करें ॥ १०३—१०७ ॥

तदुक्तं यन्त्रसर्वस्य—वह यन्त्रसर्वस्य में कहा है—

वारुण्यमिन्तदिवजातवह्निवेगोपशान्तये ।

विशुद्धर्पणयन्त्रोत्र संग्रहेण निरूप्यते ॥१०८॥

वारुणि और अग्नि नाम की विजुलियों से उत्पन्न अग्नि की शान्ति के लिये यहां विशुद्धर्पण यन्त्र संक्षेप से निरूपित किया जाता है ॥ १०८ ॥

विशुद्धर्पणमुक्तं दर्पणप्रकरणो—विशुद्धर्पण कहा है दर्पणप्रकरण में—

कुरञ्जपञ्चास्यविरञ्जिषोणजान् सुशर्करास्कटिककुट्टभनीरगान् ।

मुण्डालिकापारादक्षाराटक्षुरान् विडीजपिङ्गाक्षवराटिककुर्मंरान् ॥१०९॥

दिक्षरैलवेदानलराशिनेत्रमुन्धविषद्वोदुमनुमुं निस्तथा ।

द्वाविशदष्टादशबाणाहक्कमेणा भागान् विधिवद् विशोषितान् ॥११०॥

कुरङ्ग—अकर्का, पञ्चास्य ?—सोहभेद ?, विरचि ?, शोणज—शोणसम्बद्ध—पिष्पलीमूल या शोण—सिन्हूर, सुरार्क—सुरर रेत, स्फटिक—स्फटिकमणि—विल्लौर, कृष्ण ?—कृष्ण—शिलाचूर्ण, नीरग—नीरज—मोती, मुरुडालिक ?—हस्तीशुणवाङ्कृ ?, पारद—पारा, ज्ञार—सज्जी ज्ञार, टक्कण—सुहागा, विहौज—विहूलबण का सर्व, पिङ्ग ?—हरिताल, अच्छ—नीलाशोधा, वराटिका—कोटी, कर्तुर—स्वर्ण ?, या आमाहल्दी या गन्ध—पलारी ? । १०, १ ?, ४, ३, १२, २, ३, ७, ११, ७ ?, १४, ३, २२, १८, ५, ११, भाग, क्रमशः शेषित— ॥१०६—११०॥

सङ्गृह्य सन्तोल्य पृथक् पृथक् क्रमात् सम्पूर्यं पचास्यकमूलमध्ये ।  
विश्वोदरव्यासटिकान्तरे दृढम् । विन्यस्य पञ्चाननमस्त्रिकामुखात् ॥  
सङ्गालयेत् पञ्चशतीष्ठाकक्षयतः पञ्चात् समाहृत्य च यन्त्रमध्ये ॥१११॥  
सम्पूर्येच्छास्त्रविधानतः क्रमादेव कृते शुद्धमतीव तीव्रम् ॥११२॥  
विद्युद्धयोद्भूतकृष्णानुवेगोपाशान्तक शक्तिशतत्रयान्वितम् ।  
विद्युत्रभापूरितमध्यदेश नानाविचित्राशुमुख हठ गुरु ॥११३॥  
स्वशक्तिततो योजनपञ्चक क्रमात् शणाद्याद् व्यापकमद्भुतं शिवम् ।

भवेत् तडिर्पणक समस्तप्रकाशक भासुरभानुभासुरम् ॥१४॥ इत्यादि ॥

—लेकर पृथक् पृथक् तोलकर पञ्चास्यबोतल के मध्य में भरकर विश्वोदर व्यासटिका के अन्दर रखकर पञ्चानन—पञ्चमुखवाली भस्त्रिकामुख से ५०० दंतें की उद्घाता से गलावे, फिर लेकर यन्त्र के मध्य में शाश्वतिविधान से थार दे, ऐसा करने पर शुद्ध अतीव तीव्र दोनों विद्युत् तु से प्रगट हुआ अग्नि का वेग ३०० शक्तिवाला शान्त हो जाता है । विद्युत्रभा से पूरित मध्यदेश नानाविचित्र अंगुओं-तरङ्गों का मुख अपनी शक्ति से पांच योजन तक दो लक्ष भैं अद्भुत व्यापक कल्पाण कर तडिर्पण समस्त प्रकाशक चमकदार सूर्यं समान प्रकाशप्रद हो जावे—हो जाता है ॥११—१४॥

तडिर्पणात् कार्यमेतद्यन्त्रं यथाविधि ।  
अन्यथा यदि कुर्वति विनाशो भवति ध्रुवम् ॥१५॥  
वितस्तिर्विशास्त्यायाम् वितस्त्यंकोनन्त तथा ।  
चतुरस्त्वरुत् वा पीठ कुर्याद् यथाविधि ॥२१६॥  
पूर्वपंचिमतश्चैव दक्षिणोत्तरतस्तथा ।  
अर्धचन्द्रनाडुतीक्ष्णालाद् चतुरो मुकुरैः कृतान् ॥  
तन्त्रीमय पञ्चमुख पञ्चरं स्थापयेद् दृढम् ॥११७॥  
एकैकमुखकेद्वय शक्तिकीलान् प्रकल्पयेत् ।  
एकैककोलस्थाने विद्युद्धर्पणनिमितान् ॥११८॥  
स्थापयेच्छकाकारान् (यन्त्रान् हि) गोपुराकृतिम् ।  
सप्तार नालिकायुक्तमष्टास्य दशकोणकम् ॥११९॥  
कृत विद्युद्धर्पणेन स्थापयेत् सुहृद् यथा ।  
अन्त कीलीचालनेन गोपुर भ्राम्यति स्वयम् ॥१२०॥

तदिदर्पण से यह यन्त्र यथाविधि करना चाहिए, अन्यथा करे तो निरिचत विनाश होजाता है। २० आलिश लम्बा एक आलिश ऊंचा चौरस या गोल पीठ बनावे पूर्व-परिचम से और दक्षिणोत्तर अर्धाङ्कतिवाले दर्पण से बनाइ चार नालों को तथा तारमय पांच मुखवाले पिछरे को हड्ड स्थापित करे एकेकमुख केन्द्र में शक्तिकीलों को लगावे एक एक कील स्थान में विशुद्धरूपण से बने घड़े लोटे जैसे यन्त्रों को तथा सात और बाले नालयुक्त आठ मुखवाले दरश कोणांशाले विशुद्धरूपणकृत गोपुर—गोल गवाच्चक्र यन्त्र हड्ड स्थापित करे, अतः कीली चलाने से गोपुर स्वयं बूमता है॥१२५—१२०॥

तदेगो विशुद्धतुपन्नवक्त्रिवेग समग्रत ।  
समग्राङ्ग्यातिवेगेन स्वय पिबति तत्करणात् ॥१२१॥  
पश्चान्मात्रांण्डकिरणाकायस्त्रीयतेजसा ।  
तच्छक्तिं च समाहृत्य गोपुरस्था मुदारुणाम् ॥१२२॥  
महामाण्डलिकाल्ये वातमण्डलेभ्वरान्तरे ।  
तत्करणात् प्रविलाप्यन्ति तद्विनाशो भवेत् तत् ॥१२३॥  
पश्चाद्विमवदयन्त शीतलं प्रभवेत् कमात् ।  
तेन यानस्थयन्तृणा भवेदाप्यायन तत् ॥१२४॥  
सुरक्षित भवेद् व्योमयान चापि विशेषत ।  
तस्मात् सस्थापयेद् व्योमयाने शास्त्रविधानत् ॥१२५॥  
एतद् विशुद्धरूपणाक्षयन्त्रमद्भुतमव्ययम् ।  
नोचेद् विमानानाशस्त्यादप्रमादी भवेदत ॥१२६॥ इत्यादि ॥

उस 'गोपुर बन्त्र' का वेग विशुद्ध से उत्पन्न अभिन्न के वेग को पूणरूप से अति वेग से खींच कर स्वयं पीलता है परचात् सूर्यकरणांकतयां अपने तेज से गोपुरस्थ दारुण उस शक्ति को लेकर महामास्त्रिक वातमण्डल में आकाश के अन्दर तुरत त्रिलिन कर देती है पुन उस शक्ति का विनाश हो जाता है। परचात् वह हिम (बर्फ) की भाँति अत्यन्त शीतल हो जावे, उससे विमान यान में बैठे चालक यात्रियों का प्रफुल्लितत्व—सन्तोष मुख हो जावे और विमान भी सुरक्षित हो जावे। अत विमान में शास्त्र-विधि से इस अद्भुत स्थिर विशुद्धरूपण नामक यन्त्र को संस्थापित करे नहीं तो विमान का नाश हो जावे अत इस विधय में अप्रमादी होवे—प्रमादरहित रहे॥१२१—१२६॥

अथ शब्दकेन्द्रमुखयन्त्रः—अब शब्दकेन्द्रमुख यन्त्र कहते हैं—

एवमुक्त्वा सग्रहेण विशुद्धरूपणयन्त्रकम् ।

श्रेयदानी शब्दकेन्द्रमुखयन्त्र प्रचकाते ॥१२७॥

इस प्रकार संज्ञेष से विशुद्धरूपणयन्त्र कहकर अब शब्दकेन्द्रमुखयन्त्र कहते हैं॥१२७॥

तदुक्त कियासारे—वह कियासार में कहा है—

शब्दोत्तिस्थानमेदाशब्दकेन्द्रा इतीरिता ।

तेभ्य प्रसारण यत् स्थान्त्रबदीना दिश्प्रभेदत ॥१२८॥

तदेव तच्छब्दकेन्द्रमुखस्थानमितीर्यते ।  
 तत्रयगब्दोपसहारार्थं तस्मिन् प्रतिष्ठितम् ॥१२६॥  
 यन्त्र यत्तच्छब्दकेन्द्रमुखयन्त्रमितीरितम् ।  
 चतुरुत्तरत्रिशतशब्दमेदेषु यथाक्रमम् ॥१३०॥  
 वास्तीवाताताशनीना शब्दास्तीवतरास्तमृता ।  
 आकाशस्याष्टमे कद्ये एतच्छब्दयन्त्र क्रमात् ॥१३१॥  
 एकीभूय स्वभावेन माघकाल्युतमासयो ।  
 भवेन्महाप्रवर्तनरवस्तीक्षणश्वेतविदारक ॥१३२॥  
 तस्य अवरामात्रं गा वायिर्यं यन्त् गा भवेत् ।  
 अतस्तत्परिहाराय शब्दकेन्द्रमुखाभिष्ठम् ॥१३३॥  
 यन्त्र स्स्थापयेद् यानवामभागे यथाविधि । इत्यादि ॥

शब्द की उत्पत्ति के स्थानभेद शब्दकेन्द्र कहे गए हैं, उनसे वहाँ से दिशाभेद से शब्द आदि का प्रसारण—फैनाव जो होता है वह ही शब्द केन्द्रमुख स्थान कहा जाता है। वहाँ के शब्दोप-संहारार्थं उसमें स्थिर हुआ यन्त्र जो है वह शब्द केन्द्रमुखयन्त्र कहा जाता है। ३०४ शब्दभेदों में यथाक्रम मेघनगङ्गा, वायु, विद्युत् की कड़के शब्द तीव्र कहे हैं, आकाश के आठवें स्तर में वह शब्दयन्त्र स्वभाव से मिलकर यहाँ घन शब्द तीक्ष्ण कारों का विदरकरण करने वाला होता है? उसके अवरामात्र से बहिरापन यात्रियों का हो जाता है, अतः उसके प्रतीकारार्थं शब्दकेन्द्रमुखनामक यन्त्र यथाविधि विमान के वामभाग में संस्थापित करे ॥१२८-१३३॥

महाधनरवमुक्तं शब्दनिवन्धने—महाधनरव कहा है शब्दनिवन्धन प्रथा में—

विन्दुवातास्यम्बराणा क्रमात् साक्षेतकास्तमृता ॥ १३४ ॥

विन्दु—अग्नु या जलकण—जलधूम—अञ्ज, वायु, अग्नि, गगनमण्डल के साक्षेत—नाम सङ्केत क्रम से कहे हैं ॥ १३४ ॥

तदुक्तं नामार्थकल्पसूत्रे—वह कहा है नामार्थकल्पसूत्र प्रथा में—

अथ शब्दस्वरूपं व्याख्यास्यामोक्तशब्दविसर्गाणा सम्मेलनाच्छब्द इत्याचक्षते ।

तत्र शकारो विन्दुर्बकारो वित्तिर्दकारो वायुविसर्गश्चाकाश इति निश्चिता भवन्ति ॥

स्थावरे जड़मे व एतेषा यथाभाग यत्र यत्र शक्तयस्सम्मिलिता भवन्ति तत्र

तत्र चतुरुत्तरत्रिशतशब्दमेदा प्रभवन्ति । चतुरुत्तरत्रिशतशब्द इति हि

आह्वाणम् ॥

चतुरुत्तरत्रिशतशब्दाना नामनिर्णय ।

यथोक्त षुष्ठिनायेन सर्वशब्दनिवन्धने ॥ १३५ ॥

\* एतादृश वत्पाठ आर्षा बहुतांशोपलभ्यते ।

† लुप्तशब्दाह्याम् ।

तस्मात् सगृह्य नामानि प्रसङ्गस्थात्र कानिचित् ।

स्फोटादिमहाघनरात्मान्यत्र प्रकीर्त्येते ॥ १३६ ॥

स्फोटो रवोत्यन्तसूक्ष्मो मन्दोत्तिमन्दक ।

अतितीवो तीव्रतरो मध्यहचातिमध्यम ॥ १३७ ॥

महारवो घनरवो महाघनरवस्त्वा ॥ इत्यादि ॥

अब शब्द के स्वरूप का व्याख्यान करेंगे । श, व, इ, विसर्ग ( ) के मेल से 'शब्द' कहते हैं । उनमें 'श' विन्दु-अयु—जलकण—अभ, 'व' अपिन, 'इ' वायु, विसर्ग ( ) आकाश यह यह निराय है । स्थावर में या जड़म में इनका स्थायाभाग—भागानुरूप जड़ा जहा शक्तिया सम्मिलित हैं वहाँ वहा ३०४ शब्द भेद होते हैं, ३०५ शब्द हैं यह आवायण में भी कहा है । ३०४ शब्दों का निराय है । जैसा कि धुगिणनाथ ने 'सर्वशब्दविद्यन्वन', में कहा है । वहा से लेकर प्रसङ्गत कुछ नाम स्फोट आदि महाघनरवपर्यन्त यहा कहे जाते हैं । वे स्फोट, रव, अत्यन्त सूक्ष्म, मन्द, अतिमन्दक, अनितोव, तीव्रतर, मध्यम, अतिमध्यम, महारव, घनरव, महाघनरव हैं ॥ १३५—१३७ ॥

यन्त्रसर्वरेपि—यन्त्रसर्वस में भी कहा है—

वारुणीवाताशनीना शब्दसम्मेलनात् स्वत ।

आकाशाष्टमपरिधिकेन्द्रेत्यन्तभयावह ॥ १३८ ॥

भवेन्महाघनरवशब्दोत्तिमन्दियविदारक ।

तस्मिन् यानप्रवेशस्याद् यदि यानस्थयन्तूराम् ॥ १३९ ॥

क्षणामात्रे ए बाधिर्य भवेत् तच्छब्दवेगत ।

तस्मात् तत्परिहाराय शब्दकेन्द्रमूलाभिषम् ॥ १४० ॥

व्यायमयाने स्थापनार्थ सप्रहेण निरूप्यते ।

आकाशपरिधिमण्डलस्य यथाकमम् ॥ १४१ ॥

सप्तोत्तरत्रिशतकेन्द्रा इत्युच्यते दुष्टे ।

तेषु सप्ततिमात् केन्द्रात् समायात्यतिभीषणाम् ॥ १४२ ॥

वारुणीशक्तिमम्भूतशब्दश्चात्यन्तघोषक ।

तथैववातसम्भूतशब्दश्चात्यन्तघोषक ॥ १४३ ॥

द्वादशोत्तरत्रिशतकेन्द्रादागच्छति क्रमात् ।

तथैवाशनिशब्दवद्वच द्वयशीतिमकेन्द्रत ॥ १४४ ॥

एतत्त्वदवद्वय सम्यद् मिलितवाय परस्परम् ।

भवेन्महाघनरवसर्व श्रोत्रविदारकः ॥ १४५ ॥

तेन यानप्रयातूरा बाधिर्य प्रभवेत ।

एकंकशब्दकेन्द्राभिमूलतस्मुद्द यथा ॥ १४६ ॥

सन्वारयेच्छव्योपसंहारयन्त्राण्यथाविधि ।

तेन तच्छब्दोपसहारो भवेनात् संशय ॥ १४७ ॥

बाहुणी—जलधारा, वायु, विद्युत्यतन के शब्दों के सम्मेलन से भवत आकाश की आठवीं परिधि के केन्द्र में अत्यन्त भयावह कान इन्द्रिय को फोड़ने वाला महाघनरव हो जावे हो जाता है, उसमें विमान का प्रवेश यदि हो जावे तो विमान में स्थित यात्रियों का उस शब्द के बेग से ज्ञानाम्रत में बहरापन हो जावे, अत उसके परिहास के लिए शब्दकेन्द्रमुख नामक यन्त्र विमान में स्थापनार्थ संचेप से निरूपित किया जाता है। आकाशवर्धिविमलहल के यथाक्रम ३०७ केन्द्र हैं ऐसा त्रुवजन कहते हैं, उन केन्द्रों में ७० वें केन्द्र से अति भीषण वारुणी शक्ति—अभ्रप्रवाह शक्ति से उत्पन्न अत्यन्त भयावह शब्द नशा वायु से उत्पन्न अत्यन्त धोष करने वाला शब्द ३१२वें केन्द्र से आता है वैसे ही विद्युत् शब्द ८२वें केन्द्र से आता है, इस प्रकार नीनों शब्द सम्यक् मिल कर परस्पर महाघन रव शब्द कान का फोड़ने वाला हो जाता है उससे विमान के यात्रियों का बहिरापन हो जावेगा एक एक शब्द केन्द्र के सामने सुन्दर शब्दोपसहार यन्त्र यथाविधि लगावे उससे शब्द का उपसहार हो जावे—हो जावेगा, इसमें संशय नहो ॥ १४८—१४७ ॥

अथ यन्त्रोपस्तरणानि—अथ यन्त्र को पद्युक्त करने वाले साधन—

जम्बाल शणाकीश च कौञ्चिक वारिपिण्डकम् ।

गव्यारिक पञ्चनखचर्चमंसंशोधित तथा ॥ १४८ ॥

रुणठाकममिष्य शुण्ड वग चेति दश क्रमात् ।

सगृदृत्तान्यशाश्वामादी शुद्धि प्रकल्पयेत् ॥ १४९ ॥

कपिचर्मविना सर्ववस्तुश्चिर्यासयन्त्रके ।

सम्पूर्ण महियोपित्ता(त्य?) त्पाचयेत् त्रिदिन क्रमात् ॥ १५० ॥

समत्वेनव वस्तुना मेलन कारयेत् क्रमात् ।

पदचात् सगृहा निर्यास रक्तवर्णं सुशोभनम् ॥ १५१ ॥

सेपयेत् पञ्चनखचर्चमंसस्पत्तधा सुधी ।

कृत्वा भूर्युट्ट पश्चाद् धुण्डिकन्दरसत् तथा ॥ १५२ ॥

शब्दोपसहारशक्तिरेतत्सकारत क्रमात् ।

स्वतस्सज्जायते सम्यक् कपिचर्मण्यथावलम् ॥ १५३ ॥

जम्बाल—शैवाल—काई, शणाकीश—मणकोहा, कौञ्चिक—नाम का कुत्रिम लोहा या पद्युक्त कमल गटा, वारिपिण्डक—जारिप्रसी—जारिपर्णी—जलकुम्भी, गव्यारिक?, पञ्चनखचर्चम?—व्याघ्रचर्म शोधित वाच, ऊट, रीछ, गोड, कच्छुआ के चर्म?, स्लटाक?—हरदक—भग्र काष्ठ?, आमिष?—दही?, शुण्ड?—शुण्ड—हाथी शुण्ड—हाथी शुद्ध वृक्ष, वंग—रांगा धातु। इन १० वस्तुओं को लेकर यथाशास्त्र आदि में शुद्धि करे, कपिचर्म—बन्दर के चाम छोड़ कर सब वस्तुओं को निर्यासयन्त्र—काढा बनाने वाले यन्त्र में भर कर भैंस के पित्त—भैंस के रोचन से ३ दिन पकावे समान भाग बस्तुएं ले किर निर्यास—काढा लाल रंग का हो जावे उसे पञ्चनख चर्चम पर लेप करे सात बार फिर सूर्यपुट—धूप देकर

धुण्ड कन्द ? के रस से भी सूर्यपुट—धूप देकर रखे। इस प्रकार संस्कार करने से शब्दोपसंहार शक्ति स्वतं कपिचर्म में आ जाती है ॥ १४८-१५३ ॥

वितस्तिद्वयमायाम विस्त्रये (त ?) कोन्नति क्रमात् ।

बधिरास्थेन लोहेन पेटिका कारयेद् ददम् ॥ १५४ ॥

तन्मध्ये बधिरलोहनालद्वयमतः परम् ।

वकास्य स्थापयेत् पश्चाद्गुर्व शास्त्रमानतः ॥ १५५ ॥

शब्दपादरणाकृत्वात् सन्धारयेत् ततः ।

तन्मणिं च सुसङ्कृत्य तुलसीबीजतैलकै ॥ १५६ ॥

कपिचर्मणिं सन्धार्य बल्द्याकात् सन्नियोजयेत् ।

दो बालिशत लम्बा एक बालिशत कंचा बधिर नामक लोहे से पेटिका—छोटा बक्स बनवाए, उसके मध्य में बधिरलोह की दो नालें बगुले के मुखाकरवाली स्थापित करे यस्तात् शास्त्ररीति से ऊपर शब्द या दर्पण से बनी छाँवी लगावे और तुलसी बीजों से संस्कृत उस मणि को भी कपिचर्म—यन्द्र या लगूर के चम्प में रखकर लपेटकर बल्द्याक—गोएडे के सींग के चैप या कांटे से युक्त करे ॥ १५४-१५६ ॥

बल्द्याको नाम खङ्गागशल्यनिर्यास—बल्द्याक गोएड के सींग का निर्यास—चैप या पक्व काढा ।

पेटिकामध्यकेन्द्रस्थदक्षनालान्तरे ददम् ॥ १५७ ॥

पूर्वोक्तन्मस्हितमणि सन्धारयेत् तथा ।

वामनाले पञ्चनक्तन्मस्मात् नियोजयेत् ॥ १५८ ॥

सूक्ष्मतन्त्रीन् सुसयोज्य परस्परमत परम् ।

बधीयात् तत्सर्वतस्म्यक् सूक्ष्मकीलकशद्गुभि ॥ १५९ ॥

पेटिकावरणाद्गुर्वं सिंहास्याकारत क्रमात् ।

कृत्वा तज्जरणा तस्य मूलनालान्तरे ततः ॥ १६० ॥

छिद्र कृत्वात्मृश्मेण तन्त्रीनालाद् यथाविधि ।

पेटिकान्तरनालस्थमरणी सयोजयेद् ददम् ॥ १६१ ॥

पेटिकस्योधविवरणभागमान्द्राद् बन्धयेत् ।

पेटिका के मध्यकेन्द्र में स्थित दक्ष—दक्षिण नाल के अन्दर पूर्वोक्त चर्मसहित मणि को लगावे, वाम नाल में पञ्चनक्तन्मस्मात् नियुक्त करे। सूक्ष्म तारों को परस्पर लगाकर सूक्ष्मकील शंकुओं से बान्ध दे, पेटिकावरण से ऊपर सिंहास्याकार से बनाकर उस चर्म से उसके भूल के अन्दर करके अति सूक्ष्म छिद्र करके उसमें से तार की नाल से पेटिका के अन्दर नाल में स्थित मणि में संयुक्त करदे पेटिका ऊपरी आवरण भाग को ढककर बान्ध दे ॥ १५७-१६१ ॥

बधिरलोहमुक्तं लोहतन्त्रप्रकरणो—बधिरलोह कहा है लोहतन्त्रप्रकरण में—

† यहाँ से १६८ लोकपर्यन्त पाठ पूनाकोटी में अधिक मिला।

जम्भीर लगुड विरचित्र ऋषिक मालूहपञ्चाननम् ।  
 लुण्टाक वरसिहिक कुरवक सर्पस्यकुन्दावरम् ।  
 वाकूल मुरज मृदाङ्गरटकौ सगृह्य सर्व समम् ।  
 सम्पूर्य अष्टुष्टिष्पूर्यमध्यमविले कुण्डे सुस्थाप्य च ॥१६२॥  
 यन्त्रास्ये द्रुतद्रव्यं सुरुचिर सम्पूरयेच्छीघ्रत ।  
 प्रतेन प्रभवेद विशुद्धममल शैत्यं सुमृद्धम दृढम् ।  
 श्याम शब्दहन च भाररहित शक्त्या समाच्छादितम् ॥१६३॥

रक्तस्तम्भनपाटव घनरणे योधाङ्गशत्यापहम् ।  
 ख (ज?) उक्तमालूहतशब्दनाशनपदु सर्ववरणोच्छेदकम् ॥१६४॥ इत्यादि ॥

जम्भीर-जम्भीरनिन्द्रु, लगुड—कनेयर, विरचित्र-असर्वं ?, ऋषिक-सियादिलता, मालूह-मालू-कैथ या वित्र, पठवानन्त-लोहाचिरोष ?, लुण्टाक-लुण्टक-शाकविरोप सम्भवत खट्टाशाकलोषी ?, वरसिहिक—यडी कटेरी, कुरवक—रवेत आक—सफेद फूल का आख, सर्पस्यं ?—सर्पस्य ?—नागकेसर या सर्पस्य—सर्पदन्ती ?—नागदन्ती कुन्दावर—कुन्द्रु—बाढ़ककोडा, वाकूल—मोलमरी बीज, मुरज-कटहल, सुडाङ्ग-सुगाङ्ग-कूर ? या सुद्धकण-सुगन्धवाला ?, रटक ?-रण्डक-अफलघृत ? या रण्डा-मूषकरणी ? सबको समान लेकर त्रश्चित्मुष्मध्य-तीन पटी—तीन परतवाली बोतल विलवाले कुण्ड में रख कर ३०० दर्जे की उड़ाता से पांचमुखवाली भस्त्रामुख से गलाका यन्त्र के मुख में पिलारस शीघ्र भरवे इससे विशुद्ध निर्मल शीत—ठण्डा अतिसूक्ष्म दृढ श्याम गंगाला शब्दनाशक भाररहित शक्ति से प्रपूर्ण रक्तस्तम्भन में कुराल-योग्य घन रण में योद्धा के अङ्गों से शल्य का निकालनेवाला फँक्फावात शब्द के नाश में योग्य सब घावों को नष्ट करनेवाला हो जाता है ॥१६२-१६४॥

पूर्वोक्तोत्यन्तभयद महाघनवे कमात् ।  
 सिहास्यभस्त्रिकापत्प्रात् समाकृत्यति वेगत ॥१६५॥  
 पेटिकान्तरनालस्थमणी सयोजयेदय ।  
 कपिचर्मस्वशक्तया तच्छब्दमाकृष्य वेगत ॥१६६॥  
 निदशब्द कुरुते स्वस्त्रिमन्तुपसद्वृत्य तत्क्षणात् ।  
 तेन यानस्थयन्तृ रामत्यन्तमुखद भवेत् ॥१६७॥  
 तस्मात् सर्वप्रयत्नेन शब्दकेन्द्रमुखभिष्य ।  
 यन्त्र सस्थापयेद् व्योमयाने सम्यग्याविधि ॥१६८॥ इत्यादि ॥

पूर्वोक्त अत्यन्त भय देनेवाले महाघनरव को क्रम से अतिवेग से सिहास्य भस्त्रिका से अतिवेग से ल्हीचकर पेटिका के अन्दर नाल में स्थित मणि में युक्त करदे, कपिचर्म अपनी शक्ति से उस शब्द को वेग से ल्हीचकर अपने में लीन करके तुन्त शब्दरहितात कर देता है अत. सर्वप्रयत्नसे शब्दकेन्द्रमुख नामक यन्त्र को विमान में सम्यक् यथाविधि संस्थापित करे ॥१६५-१६८॥

हस्तलेख कागी संखा १२—

अथ विशुद्धादशकयन्त्र—अथ विशुद्धादशकयन्त्र कहते हैं—

एवमुक्त्वा शब्दकेन्द्रमुखयन्त्र यथाविधि ।

विशुद्धादशकयन्त्रमिदानी सम्प्रचक्षते ॥१॥

इस प्रकार शब्दकेन्द्रमुखयन्त्र यथाविधि कहकर विशुद्धादशकयन्त्र अथ कहते हैं ॥३॥

तदुक्तं क्रियासारे—बढ़ कहा है क्रियासार ग्रन्थ में—

वाणास्थधूमकेतुना मण्डलस्थाष्टमेन्तरे ।

त्रिकोटिसप्तलक्षत्रिसहस्रदिशतोपरि ॥२॥

एकविशतिसंख्याका वर्तन्ते धूमकेतव ।

विशुद्धभास्तेषु धूमकेतवोष्टसहस्रका ॥३॥

महाकालादयो रौद्रा विशुद्धादशलोचना ।

तेषु दादाशसंख्याका प्रशस्ता धूमकेतव ॥४॥

वाण ७ में स्थित धूमकेतुओं के अष्टम मण्डल के अन्दर धूमकेतुओं या पुच्छलतारों के मण्डल के आठवें अन्तर—सिरे पर ३०७० ३ २ २१ इत्यो संख्या वाजे धूमकेतु रहते हैं, उनमें विशुद्धम ८००० महाकाल आदि हैं उनमें रौद्र विशुद्धादश लोचन हैं, १२ संख्यावाले धूमकेतु अन्यके हैं ॥२-५॥

विशुद्धादशकमुक्तं शक्तितन्त्रे—विशुद्धादशकयन्त्र शक्तितन्त्र ग्रन्थ में कहा है—

रोचिपी दाहका सिंही पतञ्जा कालनेमिका ।

लता बृन्दा रटा चण्डी महोर्मि पार्वतिं मुडा ॥५॥

उल्कानेत्रस्थिता ह्ये ते विश्युतो द्वादश क्रमात् । इति ॥

रोचिपी, दाहका, सिंही, पतञ्जा, कालनेमिका, लता, बृन्दा, रटा, चण्डी, महोर्मि, पार्वति, मुडा ये १२ विशुद्धादशकमात्र—उल्काएँ जिनकी नायक हैं अर्थात् उल्कारूप हैं ॥५॥

धूमकेतव (वो?) उक्ता खेटसर्वस्त्रे—धूमकेतु कहे हैं खेटसर्वस्त्र ग्रन्थ में—

महाकाली महाप्राप्तो महाज्वलामुखस्तथा ।

विस्फुलिङ्गमुखो दीर्घवातो लक्ष्मो महोर्मिक ॥६॥

स्कुलिङ्गवमनो गण्डो दीर्घजिह्वो दुरोणक ।  
सर्वास्यश्वेति विशुनेत्रोलका द्वादशधा स्मृता ॥७॥ इत्यादि ॥

महाकाल, महामास, महाउचालामुख, विशुलिङ्गमुख, दीर्घचाल, स्वच्छ, महोर्मि, रुलिङ्गवमन,  
गण्ड, दीर्घजिह्वा, दुरोणक, सर्वास्य ये १२ प्रकार के विशुनेत्रउल्काएँ कही हैं ॥६-७॥  
तेषा विशुत्सम्महास्तु शरद्वासन्तयो क्रमात् ।  
भवन्त्यादित्यकिरणेष्वन्तभूत तास्त्वभावत ॥८॥  
किरणोलकस्थशक्तीना परस्परविमेलनात् ।  
भवेदज (जि?) गरानाम काचिच्छक्षित भयद्वारा ॥९॥  
खस्थद्वाविशतिमेन्द्रमुखमध्ये यदा क्रमात् ।  
व्योमयान समायति तदाज (जि?) गरसजिका ॥१०॥  
शक्तिर्यानस्तम्भन स्ववेगात् तत्र करोति हि ।  
तस्मात् तत्परिहाराय शिशुद्वादशायन्त्रकम् ॥११॥  
विमानस्येशान्यकेन्द्रे विधिवत् स्थापयेद् दृढम् । इत्यादि ॥

उनके विशुत्सम्मोह-उन उल्कास्थित विशुनों के संघर्ष तो शरदू और वसन्तकाल में होते हैं अबभावत सूर्यकिरणों के अद्वार प्राप्त होकर, किरणों और उल्काओं में रिति शक्तियों के परस्पर विरुद्ध मेल अर्थात् संघर्ष से अजगरा नामक कोई शक्ति भयद्वारा 'रक्षत हो जाती है' पुन आकाशस्थ २२ वें केन्द्रमुखमध्ये में जव विमान आता है तब अजगरा नामक शक्ति अपने वेग से विमान का स्तम्भन करती है, अतः उसके परिहार के लिये विशुद्वादशायन्त्र विमान के ईशान्य केन्द्र में विधिवत् दृढरूप से स्थापित करे ॥८-११॥

अन्त्रसंवर्त्तेपि-यन्त्रसंवर्त्तेभ्यं भी कहा है—

उल्कानेत्रस्थविशुद्वादशक्तत्युपसहूतो ॥१२॥

विशुद्वादशक नामयन्त्र एव गरीयसीः ।

तस्मात्तत्सङ्ग्रहेणात्र यथाविधि निरूप्यते ॥१३॥

आदौ कुर्यात् पटचन विशुत्सहारकारकम् ।

विमानावरक द्वादशास्य तेन प्रकल्पयेत् ॥१४॥

पौण्ड्रकादिमणीन् तस्य प्रत्यास्ये सन्मिवेशयेत् ।

महोरंद्रावक व्योमयानस्येशान्यगे तत ॥१५॥

उल्कानेत्र-उल्काओं में वर्तमान १२ प्रकार की विशुनों के उपसंहार में विशुद्वादशक नामक यन्त्र श्रेष्ठ है । अतः वह संज्ञेप से यहा कहा जाता है । आदि में पटचन-यन्त्र को लेप से घन बनावे विशुत्संहारकरनेवाला होता है । विमान को ढकनेवाला २२ मुखवाला बनावें यौवंडक आदि मणियों को उसके प्रत्येक मुख में लगावें महोरंद्रावक ? को विमान से ईशान्य भाग में लगावें ॥१२-१५॥

१ 'गरीयसी' लिङ्गस्थित्य ।

विमानावरणान्तर्गुहाशये स्थापयेत् सुधी ।  
 विद्युद्गोपसहारदर्पणेण यथाविधि ॥ १६ ॥

शलाकान् पट् बाहुमात्रानष्टो कुर्याद् हठ यथा ।  
 अष्टदिशु स्थापयेत् तद्विमानावरकोपरि ॥ १७ ॥

विधिवत् स्थापयेत् पश्चाद् दम्भोलिलोहनिर्मितान् ।  
 कीलीचकान् पञ्चवृत्तानन्योन्याश्रयसयुक्तान् ॥ १८ ॥

विमानावरकस्यादौ मध्येचान्ते यथाक्रमम् ।  
 बध्नीयादावर्त्सूक्ष्मशड्कुभिसुषुड् यथा ॥ १९ ॥

पौण्ड्रकादिमणीना तु पञ्चर सूक्ष्मतन्त्रिभि ।  
 पृथक् पृथक् कल्पयित्वा तन्त्रयग्राणि यथाक्रमम् ॥ २० ॥

विद्युत् के वेग का उपसंहार करनेवाले दर्पण के साथ यथाविधि विमानवरण के अन्तर्गत गुहाशय—गुहा में रहने वाले यन्त्र को बुद्धिमान् स्थापित करे ६ भुज माप में ८ शलाकाओं को भी ८ विशाखों में हठ स्थापित करे उस विमानवरण के ऊपर विविधन् इमोलि लोहे—वअलोहे से बने एक दूसरे से आक्रित मिले हुए पाच मुखावाले कीलक रथापित करे, विमानवरण विमान को ढकनेवाले साथन के आदि में मध्य में और अन्त में यथाक्रम घूमनेवाले सूक्ष्म शड्कुओं से बान्ध दे, पौण्ड्रक आदि मणियों का पिञ्जरा सूक्ष्म तारों से पृथक् पृथक् बनाकर तारों के अग्रभागों को यथाक्रम—॥१६-२०॥

एककीलमूलाग्रे सम्यक् सन्धारयेत् क्रमात् ।  
 भवेत् पञ्चरत्नीराणा चतुर्णामिककीलक ॥ २१ ॥

पश्चात्सम्भ्रामयेन्मूलकीली वेगाद् यथाविधि ।  
 पञ्चरैस्सह आम्यन्ति मणियो द्वादश क्रमात् ॥ २२ ॥

तेनावरणकोशाना विकासो भवति ध्रुवम् ।  
 तेष्य ( ? ) पटघनान्तस्थविद्युद्गोपहरिणी ॥ २३ ॥

शर्किवृजूभने सम्यक् प्रतिकोशे विशेषत ।  
 पूर्वोक्त विद्युतिकरणसञ्जाताज (जि?) गराभिधम् ॥ २४ ॥

शक्ति तन्मणिय पश्चात् समाकृष्ट्यातपान्तरात् ।  
 किरणोभ्य पृथक् कृत्वा तद्वेग सन्निरुद्धय च ॥ २५ ॥

एक एक कीली के मूल के आगे लगावे। पिञ्जरे के चार तारों का एक कील—पेंच हो पश्चात् वेग से मूलकीली को धूमावे तो पिञ्जरों के साथ १० मणिया धूमती हैं उस से निश्चय आवरण कोशों का विकास होता है, उन कोशों से पटघन के अन्वर स्थित विद्युत के वेग को लेने वाली शक्ति प्रत्येक कोश में सम्यक् विकसित होती है—फैलती है। पूर्वोक्त किरण से उपग्रह अजिगरा शक्ति को वे मणियां आतप के अन्वर से खींचकर किरणों से पृथक् करके उसके वेग को रोक कर—॥ २१—२५ ॥

तत्रस्थाष्टशलाकेषु योजयन्ति स्वशक्तिः ।  
 परिगृह्य शलाकास्तच्छक्तिं पश्चात् स्वतेजसा ॥ २६ ॥  
 पूर्वोक्तावरणान्तस्थप्रति कोशमुखान्तरे ।  
 सयोजयन्ति वेगेन तत्कोशास्तदनन्तरम् ॥ २७ ॥  
 तच्छक्तिं प्रे रवेद् वेगाद् द्रावकाभिमुख यथा ।  
 ततस्सञ्चालयेन्मध्यकीलीमावरणस्थिताम् ॥ २८ ॥  
 विमानावरकान्तस्थद्रवात् तेनाविवेगतः ।  
 विचुकुठारिका नाम शक्तिरुद्धर्मुखीस्वतः ॥ २९ ॥  
 समुद्धाय स्वभावेन कोशस्थाजिगराभिधाम् ।  
 समाहृत्य स्वशक्त्याय द्रावणे सन्निरुद्धयति ॥ ३० ॥

वहा की आठ शलाकाओं में स्वशक्ति से जोड़ देती है, पश्चात् शलाकाएँ स्वल द्वारा से इस शक्ति को पकड़ कर पूर्व कहे आवरण के अन्दर स्थित प्रत्येक कोशमुख के अन्दर वेग से संयुक्त कर देते हैं, उपर्युक्त अनन्तर वह कोश वेग से उस शक्ति को द्रावक की ओर प्रेरित कर देती है फिर आवरणस्थित मध्य कीली को चलावे तो विमान के आवरक के अन्दर स्थित द्रावक से अतिवेग से विद्युकुठारिका अवृमुखी शक्ति स्वतः उठकर स्वभाव से कोशस्थ अजिगरानामक शक्ति को अपनी शक्ति से लेकर— समेटकर द्रावक में रोक लेती है ॥ २६—३० ॥

पश्चादावरणान्तस्थान्तर्यकीलीप्रचलनात् ।  
 द्रवस्थाजिगरा शक्ति स्वयं पटघनान्तरे ॥ ३१ ॥  
 भवेद् विलीन सर्वत्र ततो वायुस्थवेगतः ।  
 तत्रस्थाजिगराशक्तिं समाहृत्य पिवेत् कमात् ॥ ३२ ॥  
 तस्मात् तत्क्षणातो व्योमयानवन्वविमोचनम् ।  
 भवेत् ततो विमानस्थयन्त्रूणा मुखद भवेत् ॥ ३३ ॥

पश्चात् आवरण के अन्दर स्थित अनितम कीली के चलाने से द्रव में स्थित अजिगरा शक्ति स्वयं पटघन के अन्दर सर्वत्र विलीन हो जावे, फिर वायु अपने वेग से वहा की अजिगरा शक्ति को समेट कर पीले—पीलेता है, इससे तुरन्त विमान के बन्धन का विमोचन—छुटकारा हो जाता है फिर विमानस्थ यात्रियों को मुख होता है ॥ ३१—३३ ॥

विशुद्धवेगोपसंहारदर्पणमुक्तं दर्पणप्रकरणे—विशुद्धवेगोपसंहार यन्त्र दर्पणप्रकरण में कहा है—

शुण्डालकमृडकान्तकमुखनोदरसस्त्वान् ।	।
बुडिलाकरविषपङ्कजकुटिलोरगनागान् ॥	॥
सिकतावरग्रदाघनगरलामुखशृङ्खाद् ।	।
स्फटिकावरमुक्ताकलवकान्तकुञ्जरान् ॥ ३४ ॥	॥ ३४ ॥
क्षारत्रयरविकञ्चुककुलकोडुपबन्धान् ।	।

गुणारिसुजम्बालिककुशकुड्मलरुक्मात् ॥  
 शुद्धान् वरषड्वितीतवस्तून् परिषृष्ट्य ।  
 सम्पूर्णं विराजाननमूषामुखमध्ये ॥ ३५ ॥  
 पदाकरकुण्डान्तरमध्ये वरमूषाम् ।  
 सस्थाप्य मुगेन्द्राङ्गुतिभस्त्रामुखरन्धे ॥  
 अतिवेगान् सगालयोष्णएककृथत्रिशताशाद् ।  
 यन्त्रास्थेथ निसिञ्चेद्रसमाहृत्य विधानात् ॥ ३६ ॥  
 अतिमृदुल मुहृष्टकाटिकमुद्दतरञ्च  
 तद्विद्युतेगहर वरमुकुर प्रभवेदि ॥ इत्यादि ॥

शुरुदालक-शुरुदाल कृत्रिम लोहविशेष ? या शुरुदालक-शुरुदी-हाथी शुरुदी वृक्ष ? मृदक ? अन्तक-कचनार, घनोदर ? इनके सत्त्व । उर्जिल ?, अस्त-अकरा-अमली ?, विष-बत्सनाभ, पङ्कज-पङ्क-जार-भृङ्गराज वृदा या पङ्कज-कमल ?, कुटिलशख ?, उरा—नागकेसर, नाग-सीसा खातु या हाथी दान्त या नागरल्ली ?, सिकता- शुद्ध रेत ?, वर-संस्थव नमक, गरद-संस्थाविष ?, घन-अध्रक, गरला-मधु-मञ्चली, मुख—कठल बढल, शृङ्ग-शृङ्गोदर ? या अगरकापु, सफटिक—सफटिक मणि ? या फिटकरी, अवर—अवरदारुक—पत्र विष ? मुकाफल—कपूर ? या मोती या वरमुकाफल—बडा मोती, वर—गूगल, कान्त—अयन्कान या वरकान्त-त्रै प्लाययकान्त, कुरुज ?—करुज—काजुश, जारत्रय-सज्जीजार ववज्ञार तुरुगा, रंव—नाम्बा, कठुचुक—सरंपो के केनुली, चुलक ? उडुर ?, बन्ध्या—बाम्ककोडा या ह्लौवेर, गहड—पोनामालो, अरि-खरिदरपत्रिका, सुदाम्बलिठ—अच्छो जाम्बलिक—जम्बाल-गन्धवरण या केतकी—केवडा, कुश-कुशारुण, कुडमन—पुष्पकोरक, सुकमी-नीरेण लोह । शुद्ध की हुई २६ वस्तुओं को लेकर विराजमान मूषामुख मध्य में भर कर पदाकर कुण्ड के अन्दर बीच में बड़ी मूषा—योतत को रख कर सिंहाङ्गुति वाली भास्त्रकामुख छिंडों से अतिवेग से गला कर ३०० दर्जे की तण्णता से गला कर यन्त्र के मुख में पिघले रस को सीधे दे, अति मृदुल टट सफटिक अति शुद्ध विशुद्धवेग को हरने वाला त्रै पुरेण हो जावे । ३४-३६ ॥

दम्भोलिलोहमुक्तं लोहतन्त्रप्रकरणे—दम्भोलिलोह कहा है लोहतन्त्रप्रकरण में—

उर्वारक कारविक कुरुज्ज शुण्डालक चन्द्रमुख विरिच्छम् ।  
 कान्तोदर जा(या ?) लिकसिहवक्त्री ज्योत्स्नाकर दिवङ्गुपत्रमौत्तिकी ।  
 एतान् समाहृत्य विशुद्धलोहान् सन्तोल्य पश्चात् समभागत क्रमात् ॥ ३७ ॥  
 मण्डूकमूषोदरमध्यास्ये सम्पूर्णं चञ्चलमुखकुण्डमध्ये ।  
 सस्थाप्य पश्चाननभिक्षकमुखात् सञ्जालयेत् पश्चशनोषणकृयत ॥ ३८ ॥  
 दम्भोलिलोह प्रभवेदि विशुद्धमेव कृते शास्त्रविधानत क्रमात् ॥ इत्यादि ॥

उर्वारक, कारविक, कुरुज्ज, शुण्डालक, चन्द्रमुख, विरिच्छ, कान्तोदर, जालिक, सिंहवक्त्र, ज्योत्स्ना-कर, दिवङ्गु, पश्चमीत्विक । इन विशुद्ध लोहों को लेकर समानभाग तोल कर मण्डूक मूषोदर मध्यम के मुख में भर कर पश्चमुख कुण्ड के मध्य में संस्थापित करके पांचमुख वाली भवित्रिका से ५०० दर्जे की

उष्णता से शाष्क विद्यान से गलावे तो दम्भोलि लोहा विशुद्ध हो जावे ॥ ३७-३८ ॥

पौरिहृकादयो मणिप्रकरणे निरूपिता — पौरिहृक आदि मणियां मणिप्रकरण में कही हैं—

पोण्डकोजूङ्भकइचैव शिविरश्चालोचन ।

चपलधोशुपमणिर्वीरयोगजतुषिङ्डक ॥ ३६ ॥

तारामुखो माडलिको तज्ज्ञासयो मृतसेचक ।

एतद्वादशसत्याका मरणायोजिगरान्तका ॥ ४० ॥ इत्यादि ॥

पौरिहृक, जूङ्भक, शिविर, अपलोचन, चपलधन, आशुप, वीरघ, गजतुषिङ्डक, तारामुख, पारण्डिलिक, पञ्चवास्य, अमृतसेचक । ये १२ मणियां अजिगरा शक्ति का अन्त करने वाली हैं ॥३६-४०॥

महोरंगद्वावकमुक्तं द्रावकप्रकरणो—महोर्णी द्रावक कहा है द्रावकप्रकरण में—

पेनाशक पञ्चमुख प्राणक्षारवय तथा ।

गुज्जादल माधिक च कुडुप वज्जकन्दकम् ॥ ४१ ॥

बुडिल पारदकात्तमीञ्जलालशिवारिकम् ।

ममभागेन सगृह्य शुद्धि कृत्वा यथाविधि ॥ ४२ ॥

द्रवादृग्गण्यन्तस्ये सम्पूर्य द्रावक हरेत् ।

एतन्महोरंगद्वमित्युच्यते शास्त्रवित्तम् ॥४३॥ इत्यादि ॥

‘पैनाशक ?’, पञ्चमुख ?, प्राणक्षार-नोसादर ?, गुज्जादल-धूंघची के दल-दाने या पत्ते, माच्चिक-समुद्रलवण या सोनामाली ?, कुडुप ?, वज्जकन्द-कटुशूरण-जमीकन्द या लालकरज ?, बुडिल ?, पारा, कान्त-अयस्कान्त, इङ्गलाल्ल-आङ्गारों का अम्ल-आग लगानेवाला अम्लरस (तेजाव ?), शिवारिक-अभ्रक ? । इन्हें समान भाग लेकर शुद्ध करके द्रव निकालने वाले यन्त्रमुख में भरकर द्रावक ले उत्तम शास्त्रवेत्ता जनों द्वारा यह महोर्णी द्रावक कहा जाता है ॥४१-४३॥

अथ प्राणकुण्डलिनीयन्त्र निरीय — अब प्राणकुण्डलिनीयन्त्र का निरीय देते हैं—

तदुक्तं खेटसप्रदे—वह कहा है खेटसंप्रह में—

धूमविद्युद्धात्मामार्गसन्धियंद व्योमयानके ।

तत्प्राणकुण्डलीस्थानमित्याद्वशास्त्रवित्तमा ॥४४॥

एतच्छ्रितत्रयाणा तु तत्नामार्गनुसारत ।

नियामनस्तम्भनचालनसयोजनादिषु ॥४५॥

नियामकार्य विधिवृत् तत्र यस्त्वाप्यते बुधे ।

तत्प्राणकुण्डलोनामयन्त्रमित्यभिधीयते ॥४६॥ इत्यादि ॥

धूम विद्युत् वायु के मार्गों की सन्धि विमान में प्राणकुण्डली भान श्रेष्ठ शास्त्रहों द्वारा कही है, इन तीनों शक्तियों का उस उसके मार्गानुसार नियामन (कंट्रोल), स्तम्भन, चालन, संयोजन आदि व्यवस्थार्थ वहां जो विद्वानों द्वारा स्थापित किया जावे वह प्राणकुण्डलीयन्त्र कहा जाता है ॥४४-४६॥

क्रियासारेपि— क्रियासार में भी—

कमाद् विद्युदातधूमशक्तीना सप्रमाणत ।  
तत्कालानुसारेण चोदनादिक्रियादिषु ॥४७॥  
नियामकार्थं तद्यानप्राणकुण्डलीकेन्द्रके ।  
मूलस्थाने स्थाप्यते यद् यन्त्रशास्त्रविशारदै ॥४८॥  
प्राणकुण्डलीयन्त्रमिति तत्सम्प्रचक्षते ।

कम से विद्युत वायु धूमशक्तियों का प्रमाणसहित उस उसके अनुसार प्रेरणा आदि क्रियाओं में नियामकार्थ—नियन्त्रण के लिये विमान के प्राणकुण्डलीकेन्द्र वाले मूलस्थान में जो यन्त्रशास्त्र विद्वानों द्वारा खापित किया जाता है उसे प्राणकुण्डलीयन्त्र कहते हैं ॥४७-४८॥

यन्त्रसर्वसर्वेपि—यन्त्रसर्वसर्व में भी कहा है—

विमाने धूमविद्युदातशक्तीना यथाविधि ।  
प्रसारणे चालने च चोदने स्तम्भनेपि च ॥४९॥  
विचित्रगमने तद्वत् तिर्यगमनकर्मणा ।  
नियम्य सप्रमाणेण तत्तन्नालमुखान्तरात् ॥५०॥  
प्रेरणार्थं सप्रहेण यथाशास्त्रं यथामति ।  
प्राणकुण्डलीयन्त्रं शास्त्रे स्मिन्सम्प्रकीर्यं ॥५१॥  
चतुरथं वैतुलं वा केन्द्राष्ट्रविराजितम् ।  
वितस्तित्रयमायाम वितस्तित्रयमुन्नतम् ॥५२॥  
कुर्याद् वृषभलोहेन पीठमादी यथाविधि ।  
एकंकेन्द्रस्थानेयं चक्रद्वयविराजितम् ॥५३॥  
प्रदक्षिणावर्तंकीलस्थापनार्थं यथाविधि ।  
रन्ध्रत्रयसमायुक्तात् चतुर्दश्तविराजितात् ॥५४॥  
शड्कुत्रयसमायुक्तात् सूक्ष्मपीठात् हृदया ।  
सन्धारयेत् तत्स्तेषा मध्ये शड्कुमपि कमात् ॥५५॥

विमान में धूम विद्युत वायु शक्तियों के यथाविधि प्रसारण चालन प्रेरण स्तम्भन में विचित्रगमन तथा तिर्यगमनकर्म में सप्रमाण नियन्त्रित करके उस उस नालके मुखके अन्दरसे प्रेरणार्थ संचेपसे यथाशास्त्र यथामति प्राणकुण्डलीयन्त्र इस शास्त्र में कहा जाता है । प्रथम चौकोन या गोल आठकेन्द्रों में विरजित ३ बालिश्ट लम्बा ३ बालिश्ट ऊँचा वृषभ लोहे से पीठ करे । एक एक केन्द्रस्थान में दो चक्रविराजित हों वृषभनेत्राली कील के स्थापनार्थ यथाविधि तीन छिद्रों से युक्त चार दान्तों के सहित तीन शंकुओं से सम्बन्धित—यिरे हुए सूक्ष्मपीठों को लगावे उनके मध्य में शंकु भी लगावे ॥४६-५५॥

उक्तविद्युद्धूमवातपथनालमुखाविधि ।  
प्रकाशनतिरोधानहस्तचक्रविराजितम् ॥५६॥

सव्यापसव्य चलनकीलकद्वयशोभितम् ।  
 साङ्कुरतार्थं तन्मध्ये शब्दनालेन सयुतम् ॥५७॥  
 पक्षाघातकचक्राद्यैस्सकीलैस्सशालाकके ।  
 संशोभित रक्तवर्णं नालत्रयमत परम् ॥५८॥  
 पीठस्थशकुन् पूर्वे ईशान्याग्नेयेकेन्द्रतः ।  
 तथैव पश्चिमदिशि मध्यकेन्द्राद् यथाकमम् ॥५९॥  
 यानकुण्डलीमध्यमार्गस्थानावधिकमात् ।  
 सन्धायार्थात्तादकीलशकुभिसुद्ध यथा ॥६०॥

उक विशृन्त धूमवात के मार्ग सन्धीनाल मुख अवधि तक प्रकाशकिया प्रकट करने और तिरोभावकिया बढ़ने के साधनरूप हस्तचक्रों से विराजित सीधी उल्टी गति देने वाली दो कीलों—पैरेंबों से शोभित उनके मध्य में संकेत देने वाले शब्दनाल से युक्त पक्षाघात—एक पक्ष में गति प्रेरणा देने वाले कीलसहित और शलाकाओंसहित चक्र आदि से युक्त लाल रंग की तीन नालें पीठस्थ शंकु के पूर्व में ईशान्य आनेये केन्द्र से पश्चिम दिशा में मध्य मार्ग के स्थान तक कम से लगा कर जोड़ कर धूमने वाली कीलों के शंकुओं से जैसे सुदृढ़—॥ ५६-६० ॥

सस्थाप्य विधिवद् केन्द्रत्रयमूलावधि दृढम् ।  
 चालनादिकियास्सर्वेहस्तचक्रपैर्याकमम् ॥ ६१ ॥  
 तत्तत्कोलचालनेन तत्तत्रालमुलान्तरात् ।  
 भवेत् तेन व्योमयानसञ्चार प्रभवेत् तत् ॥ ६२ ॥  
 उक्केन्द्राष्ट्रस्थानमध्यपीठाद् यथाविधि ।  
 एकैकनालतन्दी सरन्द्राह दृढतरा कमात् ॥ ६३ ॥  
 सन्धार्थं शकुन् पूर्वेन्द्रपीठान्तरादित ।  
 पूर्वोक्तनालत्रयोर्ध्वभागे वातायनान्तरे ॥ ६४ ॥  
 सन्धारयेत् तदगारिणि कीलकस्सुद्ध यथा ।  
 यानसञ्चारोपयोगं कुर्वा शक्तिव्रय तथा ॥ ६५ ॥

—हो ऐसे विधिवत् तीन केन्द्र के मूल तक संस्थापित करके चालन आदि कियाएं सब हस्त-चक्रों से यथाकम उनकी कीली चलाने से उस उस नालसुख के अन्दर से हो सके फिर उससे विमान-सञ्चार बन सके। उक केन्द्र के आठ स्थान के मध्य पीठ से यथाविधि छिद्रसहित दृढ़ एक एक नालतार को शंकु से पूर्व केन्द्र के पीठ के अन्दर से जोड़ कर पूर्वोक्त तीन नालों के ऊपर भाग में वातायनयन्त्र के अन्दर लागे उनके अप्रभाग कीलों से दृढ़ विमानचालन में उपयोग करके तोनों शक्तियों—॥६५-६५॥

शक्तिव्रयशिष्टाश समप्रमतिवेगत ।  
 उकाष्ट्रालरन्धेषु योजयेत् कीलचालनात् ॥ ६६ ॥

ततशक्तिप्रय गत्वा आकाशे पतति स्वयम् ।  
पश्चाद् वातप्रवाहे समिलित्वा नाशमेघते ॥ ६७ ॥

तस्माद् विमानसञ्चारो अनायासेन सिद्ध्यति ।  
—तीनों शक्तियों के अवशिष्ट समय अंश को अतिवेग से कहे हुए आठ नालों के छिंद्रों में कील पच चला कर लगा दे फिर तीनों शक्तिया आकाश में पहुँच कर गिर जाती है—स्वयं नष्ट हो जाती हैं पश्चात् वायुप्रवाह में मिल कर नाश को प्राप्त हो जाती है अत विमानसञ्चार अनायास सिद्ध होता है ॥ ६६-६७ ॥

अथ शक्त्युद्गमयन्त्रनिराय—अथ शक्त्युद्गम यन्त्र का निर्णय देते हैं—

एवमुक्त्वा प्राणाकुण्डलिनोन्यन्त्रमत् परम् ।  
अथ शक्त्युद्गमयन्त्रसंग्रहेण निरूप्यते ॥ ६८ ॥

इस प्रकार प्राणाकुण्डलिनी यन्त्र वहदर उससे आगे शक्त्युद्गम यन्त्र संप्रह से निरूपित किया जाता है ॥ ६८ ॥

उक्त हि खेटविलासे—खेटविलास में कहा है—

यहभानामष्टकीर्महावारुणीशक्ति ।

आकृष्णन्ते पौरिमाया कानिके मासि वेगत ॥ ६९ ॥

अकाशकथयपरिविवेद्येष्वय यथाकमय ।

मप्तविशोतरसातकेन्द्ररेखापथि क्रमात् ॥ ७० ॥

जलपिञ्जूलिकाशक्त्याकर्षणादितिवेगत ।

तच्छक्योऽशी सर्वत्र व्याप्त्युवर्त्ति विशेषत ॥ ७१ ॥

अन्योन्यशक्तिसंसर्गाद्विमोद्रेको भयङ्कर ।

भवेत् पश्चात् त्रिधा तदिभागस्त्राच्छक्तिभेदत ॥ ७२ ॥

तेष्वेकाशो शीतरमरूपवातो भवेत् तत ।

अपरो जलशो (सी ?) तस्य सीकराकारमेघते ॥ ७३ ॥

अन्यो भवेद् वातशीतरसप्रावाहिक क्रमात् ।

यदा यानस्समायाति केन्द्ररेखापथि क्रमात् ॥ ७४ ॥

वातशीतरसप्रवाहिकशक्तिस्ववेगत ।

विमानशक्तिसर्वस्वप्रविति तत्करणम् ॥ ७५ ॥

प्रह नक्षत्रों की आठ शक्तियां महावारुणी शक्ति से कानिक मास में पौरीमासी में वेग से स्थीरी जाती है, आकाशकक्षा सम्बन्धी परिधि केन्द्रों में यथाक्रम १२७ वें केन्द्ररेखामार्ग में जल की पिणी रुही जैसी भाप शक्ति—अध्रशक्ति के आकर्षण से अतिवेग से वे आठ शक्ति सर्वत्र विशेष व्याप्त जाती हैं, एक दूसरे के शक्तिसंसर्ग से भयंकर हिम का उत्थान हो जावे पश्चात् शक्तिभेद से उसका विभाग तीन प्रकार हो जावे, उनमें एक अंश शीतरमरूप वायु—ठण्डी भापमय वायु हो

फिर दूसरी शीत जल की फुकार रूप को प्राप्त हो जाती है, तीसरी शीत वायुधारा को प्रवाहित करने वाली शक्ति । जब विमान केन्द्रोरेखा के नीचे के मार्ग में आता है तो शीतवायुधारा को प्रवाहित करने वाली शक्ति स्ववेग से विमानशक्ति के सर्वंत्व—सामर्थ्य को तुरन्त खीच लेती है ॥ ६६-७५ ॥

तथा शीतरसरूपवातशक्तिस्वभावत् ।

यानस्थसर्वयन्त्रूणा बलमाकर्णति क्रमात् ॥ ७६ ॥

जलस्य सीतकराकारशक्ति पश्चात् स्ववेगत ।

यानमावृत्य सर्वत्राहश्य कुर्वीत नान्यथा ॥ ७७ ॥

बलापकर्णणाद् यानपतन तटदेव हि ।

यन्त्रूणा प्राणहानिश्च यानगोचरमेव च ॥ ७८ ॥

प्रभवेदेकाक्लेन कष्टात्कष्टतर तत ।

तस्मात् तत्परिहाराय यन्त्र शक्त्युदगमाभिधम् ॥ ७९ ॥

विमानताभिकेन्द्रस्य मध्ये सस्थापयेद् दृढम् ॥ इत्यादि ॥

और दूसरी शीतरसरूप वायु—ठड़ी भापमय शक्ति अपने स्वभाव से विमान में स्थित यात्रियों के बल को खींच लेती है, तो सीत जल की फुकार वाली शक्ति विमान को घेरकर सब और उसे अहश्य कर देती है । इस प्रकार तीनों शक्तियों के द्वाग् बल को खींचलेन से विमान गिर जाता है यात्रियों की प्राणहानि और विमान का अहश्य—लापता हो जाना एक साथ कष्ट से अधिक कष्ट हो जावे । अत उसके परिहार के लिये शक्त्युदगमनामक्यन्त्र विमानताभि के केन्द्र मध्य में दृढ़रूप से संस्थापित करे ॥ ७६—७८ ॥

उक्त हि खेटसंपदे—कहा है खेटसप्रद मन्त्र में—

कुजार्कतनिजाभ्यरिवृथमाण्डलिको रुरु ।

विश्वप्रकाशकश्चेति य्रहाश्वाषावीरिता ॥ ८० ॥

कुत्तिका शततारश्च मखामृगशिरास्तथा ।

चित्राश्रवणपुषाश्वीत्यष्टभा इति निर्णिता ॥ ८१ ॥

स्वस्वसञ्चारपरिधिमण्डलकेन्द्रोरेखाम् चारत ।

एते प्रह्लाद नक्षत्रास्सामीप्य शर्दि क्रमात् ॥ ८२ ॥

कुज—मङ्गल, अर्क-सूर्य, शनि, जाम्भारि ?, -शुक्र?, बृश, मार्णदलिक-चन्द्रमा, रुरु ?, विश्वप्रका-शक—बृहस्पति ये आठ मध्य कहे गए हैं । कुनिका, शतनार-शतभिषक्, मखा-मधा, मृगशिरा—मृगशीर्य चित्रा, श्रवण, पूषा, अश्विनी ये आठ दीप नक्षत्र निर्णय किए हैं । ये मध्य नक्षत्र अपने अपने सञ्चार-गतिमार्ग के परिधिमण्डल की केन्द्रोरेखाओं में गतिक्रम से क्रमशः शारद् ऋतु में समीपता को प्राप्त हुआ करते हैं ॥ ८०—८२ ॥

इत्तलेख कापी संख्या १३—

प्राप्यन्ते चारकमेण तेन शक्तयष्टुक भवेत् ॥ इत्यादि ॥

प्राप्त होते हैं चार-सङ्चारकम से उससे शक्तयष्टुक होते ।

चारनिबन्धनेषि—चारनिबन्धनप्रथम में भी कहा है—

गणितोक्तप्रकारेण ग्रहभाना यथाक्रमम् ।

स्वस्वपरिधिमण्डलकेन्द्रे रेखानुसारत ॥१॥

चारातिचारादिवशात् सामीप्यं केवल भवेत् ।

शक्तिसंघर्षणं तेन भवेदन्योन्यमदभृतम् ॥२॥

एवमेकैकनक्षत्रग्रहयोशक्तिसंघर्षणात् ।

शक्तयोष्टु प्रजायन्तेत्यन्तशीतघनात्मिका ॥३॥ इत्यादि ॥

गणित-गणित ज्योतिष में कहे प्रकार से प्रह नक्षत्रों का यथाक्रम अपने अपने परिधिमण्डल केन्द्र में रेखा के अनुसार चार अतिचार-गति सङ्चाल आदि के बरा के बत-अधिक समीपता हो जाते तो उससे परस्पर अद्भुत शक्तिसंघर्ष हो जाते, इस प्रकार एक एक प्रह और नक्षत्र के शक्तिसंघर्ष से अन्यन्त शीतमूर्तिरूप आठ शक्तियां उत्पन्न हो जाती हैं ॥१ - ३॥

उक्तं हि शक्तिसर्वस्ते-शक्तिसर्वस्व मे कहा है—

कृतिकाकुजयोशक्तिसंघर्षणावात् स्वत ।

काचिच्छक्तयुद्गमा नाम शक्तिसंसङ्गायते कमात् ॥४॥

तथैव शतताराक्षशक्तिसंघर्षणेन च ।

शीतज्वालामुखी नाम काचिच्छक्ति प्रजायते ॥५॥

मधा (खा ?) शम्योशक्तिसंघर्षणेन तथैव हि ।

शैत्यदष्टुभिषा (दा ?) शक्ति जीयते सर्वतोमुखा ॥६॥

तथा मृगशिराबम्भारिशक्तिसंघर्षणेन च ।

सङ्गायते शीतरसवातशक्तिमहोज्वला ॥७॥

तथैव चित्रा (त ?) दुष्योशक्तिसंघर्षणकमात् ।

शैत्यहैमभिषा (दा ?) काचिज्जायते शक्तिरुज्वला ॥८॥

तथा श्रवणमाण्डलयोशशक्तिसंघर्षणकमात् ।

जायते स्फोरणी नाम शक्तिशीतप्रवाहिका ॥६॥

कृत्तिका नक्षत्र और मङ्गलप्रग की शक्तियों के संघर्षवश स्वतः शक्त्युद्गमा नामक कोई शक्ति प्रकट हो जाती है वैसे ही शतभिक नक्षत्र और सूर्य की शक्तियों के संघर्ष से शीतज्वालामुखी नाम की कोई शक्ति प्रकट हो जाती है वैसे ही मध्य नक्षत्र और शनि प्रग की शक्तियों के संघर्ष से शैत्यदंष्ट्रा नामक शक्ति संघर्षोमुख उत्पन्न हो जाती है । तथा शृगशिरा नक्षत्र और वृषभारि-प्रजापति वा बृहस्पति<sup>१</sup> की शक्तियों के संघर्ष से शीतरसज्वालाशक्ति महोड्डवता उत्पन्न हो जाती है । वैसे ही चित्रा नक्षत्र और तुष्णि प्रग की शक्तियों के संघर्ष से शैत्यहेमा नामक कोई उड्डवता शक्ति उत्पन्न हो जाती है । तथा अवणा नक्षत्र और माण्डल-मरणदलवृत्तवाले चन्द्र<sup>२</sup> की शक्तियों के संघर्ष से स्फोरणी नामक शीतप्रवाहिका शक्ति उत्पन्न हो जाती है ॥४-६॥

पूषारुक्योशशक्तिसंघर्षणवशात् तथा ।

सजायते शीतघनरसशक्तिमंहीर्मिला ॥१०॥

विश्वप्रकाशाशिवन्योद्व शक्तिसंघर्षणवशात् स्वतः ।

शैत्यमण्डूकिनी नाम काचिच्छ्रितं प्रजायते ॥११॥

शैत्योदगमाभिधा शक्तिशशोतज्वालामुखी तथा ।

शैत्यदंष्ट्रा शीतरसज्वालाशक्तिसंघर्षच ॥१२॥

शैत्यहेमा स्फोरणी च शीतघनरसात्मिका ।

शैत्यमण्डूकिनी चेति शक्तयोष्टी प्रकीर्तिता ॥१३॥

ताश्चान्योन्ययोगेण ऋतुकालानुसारत ।

भिद्यन्ते वट् प्रकारेण शक्तिमेदस्ततोभवेत् ॥१४॥

पूषा-रेवती नक्षत्र और रुक्ष<sup>३</sup> की शक्तियों के संघर्षवश शीतघनरसशक्ति महोर्मिला-नदीतरङ्गोवाली उत्पन्न हो जाती है, विश्वप्रकाश<sup>४</sup> और अश्विनीयों की शक्ति के संघर्षवश शैत्यमण्डूकिनी नामक कोई शक्ति प्रकट हो जाती है । शैत्योदगमनामक शक्ति, शीतज्वालामुखी, शैत्यदंष्ट्रा, शीतरसज्वालाशक्ति, शैत्यहेमा, स्फोरणी, शीतघनरसात्मिका, शैत्यमण्डूकिनी ये आठ शक्तियाँ कही हैं वे अन्योन्य के सम्बन्ध से ऋतुकालानुसार भिन्न भिन्न होती हैं शक्तिभेद तो छ प्रकार का है ॥१०-१४॥

तदुक्तमुतुकल्पे—वह ऋतुकल्प प्रथ में कही है—

वसन्ते पञ्चधा ग्रीष्म ऋतौ सप्तप्रकारत ।

अष्टधा वार्षिके तद्व त्रिधा शरदि वर्णित ॥१५॥

हे (है?) मन्ते दशधा प्रोक्तो द्विवा शिशिरतीर्ती कमात् ।

एव कमेणा भिद्यन्ते शक्तयष्ट् प्रकारत ॥१६॥

\* शशकृती स्त्रेसेवे ।

त्रिधा यदुकृत शरदि शक्तिमेदोत्र शास्त्रत ।  
 तत्स्वरूप प्रसङ्गत्या सग्रहेण निरूप्यते ॥१७॥  
 पदचादादित्यकिरणसम्पर्कात् ता यथाकमय ।  
 विभिन्नान्ते त्रिधा सम्यक् शक्तिसम्मेलनक्रमात् ॥१८॥

वसन्त में पांच प्रकार की श्रीम ऋतु में सात प्रकार से वर्षा ऋतु में आठ प्रकार की शरद ऋतु में तीन प्रकार की कही हैं । हेमन्त ऋतु में दश प्रकार की कही शिशिर ऋतु में दो प्रकार की । इस कम से शक्तिया छ प्रकार से विभक्त होती हैं । शरद ऋतु में जो शक्तिमेद तीन प्रकार का है उमका स्वरूप प्रसङ्ग से सज्जन से निरूपित किया जाता है, पश्चात् सूर्यकिरण के सम्पर्क से यथाकम तीन प्रकार से विभक्त हो जाती हैं शक्तिसम्मेलन के कम से ॥ १५—१८ ॥

तासा नामानि शश्वतप्रकारेणाभिवर्ण्यते ।  
 शीतज्वाला शैत्यदधृता तथा शैत्योदगमा क्रमात् ॥ १९ ॥  
 सम्मिलित्वा शीतरसवातशक्तिरक्षत् स्वत ।  
 एव शैत्यरसज्वाला शैत्यहेमा च स्फोरणी ॥ २० ॥  
 मिलित्वेता वारिशीतसीकरा शक्तिता यमुः ।  
 तथा शीतघनरसा शैत्यमण्डुकिनी क्रमात् ॥ २१ ॥  
 परस्पर मिलित्वाव भूषणेन तत्करणात् ।  
 शीतवातरसप्रवाहिकशक्तित्वमाप्नु ॥ २२ ॥  
 एव शरदि शक्तीना त्रैविध्य शास्त्रतस्मृतम् ॥ इत्यादि ॥

उनके नामों को शास्त्र में कहे प्रकार से वर्णित करते हैं । शीतज्वाला शैत्यदधृता शैत्योदगमा मिलकर शीतरस वातशक्ति हो गई, इसी प्रकार शैत्यरस ज्वाला शैत्य हेमा स्फोरणी मिलकर वारिशीत शक्ति को प्राप्त हो गई और शीतघन रसा शैत्यमण्डुकिनी परस्पर मिलकर भूषणे से तत्करण शीतवात रस प्रवाहित शक्तिता को प्राप्त हो गई इस प्रकार शरद ऋतु में शक्तियों की त्रिविधता शास्त्र से कही गई है ॥ १९—२२ ॥

यन्त्रस्वरूपमुक्तं यन्त्रसर्वस्वे—यन्त्रस्वरूप कहा है यन्त्रसर्वस्व ग्रन्थ में—

शक्तित्रयविनाशार्थं यन्त्रशब्दतुदगमाभिधाम् (दम?) ॥२३॥  
 सग्रहेण यथाशास्त्र यथामति निरूप्यते ।  
 यन्त्रैराच च विमानस्य सप्रमाणं यथाविधि ॥ २४ ॥  
 आदावावरकौ कुर्याच्छैत्यग्राहकलोहत ।  
 सकोचनविकासनकीलकद्वयबन्धनम् ॥ २५ ॥  
 कुर्यादि विमानवरणाग्रेन्त्यभागे च शास्त्रत ।  
 उभयोर्मध्यदण्डाये सन्धिकीली प्रकल्पयेत् ॥ २६ ॥

शीतघनदर्पणात् पश्चात् कुर्यान्नालत्रय क्रमात् ।  
 यन्तुस्थानादूर्ध्वमुखे पाश्वंयोरुभयोरपि ॥ २७ ॥  
 विमानयन्ता (ऋ? )वरणावादृयैव यथाविधि ।  
 नालत्रय विमानेस्मिन् स्थापयेत् सुषुट यथा ॥ २८ ॥  
 शीतवातायनीनालतन्त्रीन् नालत्रयात्तरे ।  
 सन्धारयेत्यत्यव्यये ऋमणीचकमप्यथ ॥ २९ ॥  
 यावच्छक्तित्रय व्योमयानमावृत्य वेगत ।  
 यानशक्तिं हरेत् तावद् यानावरकत क्रमात् ॥ ३० ॥

उपर्युक्त घातक तीन शक्तियों के विनाशार्थ यन्त्रशक्ति-उदगमानामक को सज्जेर से यथाशाम्न यथामति निरूपित की जाती है । विमान के यात्रियों के सप्रमाण आदि में शैत्यप्राहक लोडे से दो आवरक—रक्षक करे । बद्ध करने खोलेन के साथनभूत दो कीलबन्धन भी विमानावरण के आगे और सामने अन्तवाले भाग में शास्त्रीयति से दोनों के मध्यदण्ड के अप्रभाग में सञ्चिकाली को बनावे । पश्चात् शीतनाशक दर्पण से क्रम से तीन नाल करे चालक के स्थान के ऊपर की ओर दोनों पाश्वों में भी करे । विमानवालक दो आवरणों को ढालकर यथाविधि इम विमान में तीन नाल स्थापित करे, शीतवातायनीनाल तारों को तीनों नालों के अन्दर लगावे तथा आगे ऋमणीचक भी लगावे । तीनों शक्तियों के अनुरूप विमान को वेग से आवृत कर विमानयान की शक्ति को हरण करे । तब तक विमानयान के आवरक से क्रमशः ॥ २६—३० ॥

निवारयेत् तच्छक्तिवेग निशेष शीघ्रतः क्रमात् ।  
 वेगात् सचालयेद् विकसनकीली यथाविधि ॥ ३१ ॥  
 आदावावरक तेन यन्तुर्गाम प्रभवेत् स्वत ।  
 पश्चाद् विमानावरक समग्र भवति ध्रुवम् ॥ ३२ ॥  
 ततशक्तित्रय व्योमयानस्यावरकोपरि ।  
 आमूलाग्र व्याप्य वेगात् तस्योद्देग करिष्यति ॥ ३३ ॥  
 पश्चात् सम्भ्रामयेद् वेगाद् ऋमणीचकमद्भुतम् ।  
 चक्रवेगस्माहृत्य शक्तिवेग शानैश्चनै ॥ ३४ ॥  
 शीतवातायनीनालतन्त्रीणा सम्मुख यथा ।  
 प्रेषयेत् तत्त्रिमूलकीलकान् ऋमयेत्तत् ॥ ३५ ॥  
 तच्छक्तित्रयवेगस्तु पश्चान्नालत्रयात्तरे ।  
 प्रविश्य बाह्याकाशेत् तन्मुखाल्लयमेष्टते ॥ ३६ ॥  
 यन्तुर्गा त्राणेन तस्माद् यानस्रक्षण तथा ।  
 ऋद्वयत्वनिवृत्तिश्च प्रभवेदेककालत ॥ ३७ ॥  
 तस्माच्छक्त्युदगमनाम यन्त्रमुक्त यथाविधि । इत्यादि ॥

उस शक्तिवेग को नि रोप शीघ्र निवृत्त करे। विकसनकीली को यथाविधि वेग से सञ्चारित करे, आदि मैं यन्त्राणों का आवरक स्वत हो जावे। फिर समय विमानावरक निश्चित हो जाता है। फिर विमान यान के आवरक के ऊर तीनों शक्तियां मूल से अप्रभाग तक व्याप कके वेग से उसका उद्वेग करेंगी परचान् वेग से अंगुल भासणी कील को घुमावे। चक्रवेग शक्तिवेग को धीरे धीरे इकट्ठे करके शीतवातायनी नालतारों के सम्मुख प्रेरित करदे तारों के मूल कीलें—वेव घुमावे उन तीनों शक्तियों का वेग तो परचान् तीन तारों के अन्दर प्रविष्ट होकर वाहिरी आकाश में उस मुख से लय को प्राप्त हो जाता है। चालक यात्रियों का त्राण तथा यानरक्षण अटरस्ट छाने वाले संकट की निवृत्ति हो जावे एक काल में उससे शक्तिदुर्गम यन्त्र यथाविधि कहा है॥ ३१-३७॥

शैत्यप्राहकलोहमुक्तं लोहतन्त्रे—शैत्यप्राहक लोहा लोहतन्त्र में कहा है—

चन्द्रोपल कौडिकसोमकन्दे विश्ववसु कौञ्जिकचन्द्रमास्ये ;  
वार्ध्यश्वक वारुणपञ्चकुड्मले सिहास्यक शङ्कुलवाङ्कुपाले(ए?) ॥ ३८ ॥  
एतान् समाशान् परिशोधितान् कमात् सगृह्य शुण्डालकमूष्यमध्ये ।  
सम्पूर्ण चब्बुमुखकुण्डगर्भे सस्थाप्य पञ्चाननभस्त्रिकामुखात् ॥ ३९ ॥  
वेगेन सगात्य च तद्रस शनैर्यन्त्रास्यमध्ये परिपूरयेत् कमात् ।

एव हृते शुद्धमतीवसूक्ष्म भवेत् सुरीत्यग्राहकलोहमद्भुतम् ॥ ४० ॥ इत्यादि ॥

चन्द्रोपल—नीलोत्पल—नीलोफर, कौडिक—वाराही कीन्द्र या गेषडे का सींग, सोमकन्द ?, विश्ववसु ? धातुविशेष ?, कौञ्जिक—छत्रिम लोहा, चन्द्रमास्य—चन्द्रकान्त पद्यर ?, वार्ध्यश्वक वार्ध्यश्वक—तीक्ष्ण लोहा ?, वरुण—वरना वृक्ष या शूद्र, पञ्चकुड्मल—पञ्चरुली ? सिहास्य—बासा, शङ्कुलवा—शङ्कुलवास—भीमसेनी कपूर, अङ्गुष्ठाला—शङ्कुपाला, गाढ़ी—आवला। इन्हें शोधित समानाश में लेकर शुण्डालकमूषा के मध्य भर कर चब्बुमुख कुण्ड के मध्य में रख कर पञ्चमुखवाली भस्त्रिकामूल से वेग से गता कर उसके रस को धीरे से यन्त्रके मुख में भरदे तो शुद्ध अतीवसूक्ष्म सुरीत्य ग्राहक लोहा हो जावेगा॥ ३८-४०॥

शीतनदर्पणमुक्तं दर्पणप्रकरणो—शीतनाशक दर्पण कहा है दर्पणप्रकरण में—

सीस कपालि वरचन्द्रमास्य पञ्चाङ्गुलि शैशिरिक रुणाङ्गम् ।  
क्षारत्रय शुद्ध(र?) सुवर्चल सिहास्युक सूक्ष्मतर च वालुकम् ॥ ४१ ॥  
बम्भारिक चाञ्जनिक कुरञ्ज पञ्चोपिक चन्द्ररस शिवारिकम् ।  
एतान् समाहृत्य समाशत कमात् विशोधितान् सेहिकमूष्यमध्ये ॥ ४२ ॥  
सम्पूर्ण पचाकरकुण्डगर्भे सस्थाप्य शूर्णोदरभस्त्रिकामुखात् ।  
सगात्य कक्षयत्रिशतोष्णतः कमाद् रस समाहृत्य शनैर्यथाविधि ॥ ४३ ॥  
सम्पूरयेद् यन्त्रमुखान्तरे कमादेव हृते शुभ्रमतिहृद लघु ।  
भवेत् सुशीतनकर्दर्पण ततश्शुभ्र सुसूक्ष्म सुमनोहर च ॥ ४४ ॥ इत्यादि ॥

सीसा, कपालि ? कपाली—विछड़ या क्षाल—तालमस्याना, चन्द्रमास्य—चन्द्रकान्त मणि ?, पञ्चाङ्गुलि—पञ्चांगुल—परण्ड, शैशारिक—रौशोरिक—निम्बीज, रुणाङ्ग—रुणमूल—गन्धनुण ?,

नौदासर, यवचार सञ्जीवाश, शुद्ध सौञ्जलनमक, सिञ्चाणुक ? अतिसूक्ष्म वालु । वस्मारिक ?, अञ्जनिक-  
सुरमा, कुरुक्षु—अकर्कण, पञ्चोमिक., चन्द्ररस—कामिल्लक रस ?, शिवारिक ? इनको समान लेकर  
क्रम से शोधकर सैंहिक मूरा बोतल मध्य में भर कर पश्चाकर कुण्डगर्भ में रख कर शुर्तेदर भरिवका मुख  
से ३०० दर्जे की उषण्टा से गता कर पिघला रस थीरे से लेकर यन्त्रमुख के अन्दर क्रम से भर दे ऐसा  
करने पर शुभ्र अतिहृष्ट हल्का शोतृष्ण दर्पण सूक्ष्म सुमोहर हो जावे ॥ ४१-४४ ॥

अथ वक्तप्रसारणयन्त्र—अब वक्तप्रसारण यन्त्र कहते हैं—

उक्तवा शक्त्युद्गमयन्त्र संग्रहेण यथामति ।

वक्तप्रसारण नामयन्त्रमद्य प्रचक्षते ॥ ४५ ॥

शक्त्युद्गम यन्त्र संज्ञेप से यथामति कह कर वक्तप्रसारण यन्त्र अब कहते हैं ॥ ४५ ॥

उक्तं हि क्रियासारे—क्रियासार में कहा ही है—

विमानच्छेदनार्थं यच्छत्रभि कृत्रिमान्मिथ ।

पथियानाभिमुखत दम्भोलिस्स्थाप्येत यदि ॥ ४६ ॥

यन्ता मुकुर्यन्त्रार्थैस्तदिनायाथ तत्कणात् ।

तत्स्थान दूरतस्थ्यक्तवा स्वविमान यथाविधि ॥ ४७ ॥

वक्तप्रसारणाच्छीघ्रं योजयेदन्यमार्गंतः ।

तस्माद् यानाधारपाश्वे कीलचक्र्ययाविधि ॥ ४८ ॥

वक्तप्रसारणं नामकीलयन्त्रं नियोजयेत् ॥ इत्यादि ॥

गुरात्कृत्रिम उपाय से शत्रुओं ने विमान के छेदनार्थ मार्ग में विमान के सामने दम्भोलि-वज्र लोहे आदि से बना धातक (तारपीड़ी जैसा) पदार्थ यदि फैक दिया गिरा दिया तो चालक मुकुर—दरपण यन्त्र आदि से उक्ते जान कर उस खान को दूर से त्याग कर अपने विमान को वक्तप्रसारण—टेढा चलानेवाले यन्त्र अन्यमार्ग से शीघ्र युक्त करे, अतः विमानयन के आधार पार्श्व में कीलचक्रों से यथा-विधि वक्तप्रसारण यन्त्र को युक्त करे ॥ ४४-४८ ॥

तदुकुं यन्त्रसर्वस्वे—वह कहा है यन्त्रसर्वस्व प्रथ्य में—

यानविच्छेदनार्थाय शत्रुभिस्सन्निवेशितः ॥ ४६ ॥

दम्भोल्याशृण्यन्वैर्यदपायससम्भवेत् क्रमात् ।

तदपायनिवृत्यर्थं विमानस्य यथाविधि ॥ ५० ॥

वक्तप्रसारण नाम कीलयन्त्रमिहोच्यते ।

लोमशाश्वत्यसञ्जातशुल्वोद्ग्रामागके ॥ ५१ ॥

लघु क्षिङ्कुत्रय पञ्चकांशञ्जानिकमेव च ।

समेल्य शतकक्षयोष्णवेगात् सागालयेत् ततः ॥ ५२ ॥

प्रारारताम्रं प्रभवेत् स्वरणकार दृढ़ लघु ।

वितस्तित्रयमायाम वितस्तित्रयमुप्लतम् ॥ ५३ ॥

वरुंल कारयेचक् नालदण्डेन योजितम् ।  
 यानस्येषादण्डमूलगुहावर्ते यथाविधि ॥ ५४ ॥  
 चतुरड्गुलमायाम बाहुमात्र मनोहरम् ।  
 कृकचाङ्गुलचक्रभ्यष्ठोडयेभ्यो यथाविधि ॥ ५५ ॥

विमान यान के नाशार्थ शूलों द्वारा आले हुए दम्भोले आदि आठ यन्त्रों से नाश सम्भव है उस नारा की निवृत्ति के अर्थ विमान का वकप्रसारण कील यन्त्र यहां कहते हैं । लोमश—कस्तीस, अश्वत्थ सज्जात—पीपल की लाख या गोन्द, शुल्व—ताम्बा १६ भाग, लघु—काला अगर ३ भाग, दिवङ्का—लोह विशेष या जस्ता ? , ५, आर्जानक—सुरमा १ भाग मिला कर १०० दर्ज की उच्चता से गतावे, किस यह आरावाला तात्र स्वर्णी के आकार के हस्ता ढढ हो जाए, ३ वालिशत लम्बा ३ वालिशत कंच गोल चक करावे नालदण्ड से युक्त करे यान के ईषादण्ड मूल गहरे घेरे में यथाविधि ४ अंगुल मोटा बाहु-मात्र लम्बा मनोहर १६ क्रकचाङ्गुलचक—आरांगुल वाले चकों से यथाविधि—॥ ४६-५५ ॥

प्रतिष्ठित तैलसशुद्ध दण्डदयमुलान्तरे ।  
 चक्रमूल समारभ्य यद्दण्डान्तरत क्रमात् ॥ ५६ ॥  
 यानस्येषादण्डमूलगुहावर्तस्थनालयो ।  
 अष्टवाङ्गुलचक्रभ्य कृतमार्गनुसारत ॥ ५७ ॥  
 त्रिपर्वसन्धिस्युक्तक्षलाकाम् तैलसस्कृतान् ।  
 सन्धार्य विचिवत् पञ्चात्तदन्ते शास्त्रत् क्रमात् ॥ ५८ ॥  
 चक्रसन्धि प्रकल्पायाशाराचक्रमुखान्तरे ।  
 कीली सन्धारयेत् सम्युभयो पाशवंयो क्रमात् ॥ ५९ ॥  
 मध्ये धूमप्रसारणकीलकौ पाशवंयोस्तथा ।  
 सन्धारयेत् तथा धूमबन्धने कीलदयम् ॥ ६० ॥

प्रतिष्ठित तैल से शुद्ध दो दण्डों के मुख के अन्दर चक्रमूल को आरम्भ कर दण्डों के अन्दर से विमान के ईषादण्ड—धरा दण्ड मूल के गुहावर्तस्थ दो नालों में आठ अंगुल वाले चकों से मार्ग के अनुसार बनाए तीन पर्वसन्धिसंयुक्त तैल से संभृत शलाकाओं को लगा कर फिर उनके अन्त में चक्रसन्धि बना कर आरावाले चक्रमूल में दोनों पाशवों में कीली लगावे; बीच में धूमप्रसारण दो कीलें दोनों पाशवों में लगावे तथा धूम को रोकने की दो कीलें भी लगावे ॥ ५६-६० ॥

सन्धितन्त्रीचक्रवर्गेतत्त्वमागर्दिनुसारतः ।  
 परस्परं सन्धिसयोजनकीलीनिवन्धनम् ॥ ६१ ॥  
 कारयेत् सरलेनवं तत्तत्स्थानप्रमाणतः ।  
 बाहुमात्रे ताङ्गीठे एतत्सर्वं यथाविधि ॥ ६२ ॥  
 प्रकल्पायाशारप्रावैर्यं विमानस्य ढढ यथा ।  
 सस्थापयेद् यथाकामं पञ्चात् कालानुसारतः ॥ ६३ ॥

सार्पतिर्यग्दण्डवकुगतिमेदादिभि क्रमात् ।  
 विमान चोदयेद् बुद्ध्या पुरोभागस्थचक्तः ॥ ६४ ॥  
 तथंवाच्ये कीलकादिसहायैरपि शास्त्रतः ।  
 एतच्यन्तसहायेन भवेद् वकुगति क्रमात् ॥ ६५ ॥  
 विमानस्यातिवेन तेन दमोलिकादिभि ।  
 सम्भवायायानाशस्तु तत्क्षणादेव जायते ॥ ६६ ॥  
 विमानरक्षणं तस्माद् यन्त्र॒णा च विशेषतः ।  
 भवेत् तस्मात् सग्रहेण यथावच्छास्त्रत क्रमात् ॥ ६७ ॥  
 वकुप्रसारणं नामयन्त्रमुक्तं मनोहरम् ॥ इत्यादि ॥

सन्धि तन्नी चक्रवर्णो से उस उस मार्ग के अनुसार परस्पर सन्धि संयोजन कीलों का लिखन्वन  
 उस उस स्थान के प्रमाण से सरलरूप में करे बाहुपरिमाण लब्धे के पीठ में यह सब यथाविधि रच कर  
 विमान के आधार पार्श्व में हट यथेष्ट स्थापित करे । पश्चात् समयानुसार सर्प की भाँति तिरछे दण्ड  
 जैसी वक्रगति भेद आदि से विमान को बुद्धि से सामने के भाग वाले चक्र से प्रेरित करे तथा अन्य  
 कील आदि सहायक से भी शास्त्रानुसार इस यन्त्र की सहायता से वक्रगति विमान की अतिवेग से  
 दमोलिं—(तारीडो) जैसी वस्तुओं से होने वाले अनिष्ट का नाश तत्त्वणा हो जाता है विमान की  
 तथा विशेषतः चालक और यात्रियों की रक्षा हो जावे अतः शास्त्रानुसार संचेषण समोहर चक्रप्रसारण यन्त्र  
 कहा है ॥ ६१—६७ ॥

अथ शक्तिपञ्चरकीलयन्त्रनिर्णय—अब शक्तिपञ्चरकीलयन्त्र का निर्णय देते हैं—

एवमुक्त्वा वक्तप्रसारणयन्त्रमत् परम् ।  
 शक्तिपञ्चरकीलकयन्त्रमद् प्रचत्वते ॥ ६८ ॥

इस प्रकार वक्तप्रसारण यन्त्र कहकर इससे आगे शक्तिपञ्चरकील यन्त्र अब कहते हैं ।

तदुक्तं क्रियासारे—यह वह क्रियासार ग्रन्थ में कहा—

विमानसर्वाङ्गसन्धिस्थानमेदेषु शास्त्रतः ।

विमानाङ्गेषु सर्वत्र आमूलाप्र यथाविधि ॥ ६९ ॥

विद्युत्सञ्चोदनार्थाय तत्त्वकालानुसारत ।

शक्तिपञ्चरकीलकयन्त्रस्थापन क्रमात् ॥ ७० ॥

विमानमध्यक्षेत्रे च कुर्याच्छास्त्रविधानत ॥ इति

विमान के सब अङ्गों के भिन्न भिन्न सन्धिस्थानों में शास्त्र से विमान के अङ्गों में सर्वत्र मूल  
 से अप्रभाग तक यथाविधि विद्युत को प्रेरित करने के अर्थ उस उस समय के अनुसार कम से शक्ति-  
 पञ्चर कीलक यन्त्र का संस्थापन विमान के मध्यकेन्द्र में विधान से करे ॥ ६८—७० ॥

तदुक्तं यन्त्रसर्वस्वे—यह वह यन्त्रसर्वस्व ग्रन्थ में कहा है—

विद्युत्सञ्चोदनार्थाय यानसर्वाङ्गसन्धिषु ॥ ७१ ॥

शक्तिपञ्चरकीलकयन्त्रनिर्णयमुच्यते ।  
 कान्तकीश्चकलोहान् त्रीन् दशाष्टवभागत ॥ ६२ ॥  
 सम्पूर्णं मूषिकामूषामुखे पश्चाद् यथाविधि ।  
 निधायातपकुण्डेथ शतकक्षयमोष्णत कमात् ॥ ७३ ॥  
 सज्जाल्यं तम्भुखे विद्युच्छक्तिं सयोजयेद् दश ।  
 ततो यन्त्रमुखे वेगात् पूरयेदेकत कमात् ॥ ७४ ॥  
 अत्यन्तमृदुल शुद्ध शक्तिगर्भाभिध (द ?) दृढम् ।  
 भवेलोह तेन यन्त्रं कुर्यात् तद्विधिरुच्यते ॥ ७५ ॥

विद्युत को प्रेरित करने के अर्थ विमानशास्त्र के सर्वाङ्क की सविधयों में शक्तिपञ्चर कीलकयन्त्र का निर्णय कहा जाता है। कान्त—अयस्कान्त, कोश्चिक—कूत्रिम लोह विशेष, लोह—साशारण लोह। इन तीनों को १०, ८, ६ भागों से मूषिका आकार की मूषा—बोतल के मुख में भरकर पश्चात् यथाविधि आतपकुण्ड में रखकर १०० दंडों की उष्णता से क्रम से गलाकर उसके मुख में विद्युत शक्ति १० संख्या में युक्त करे फिर यन्त्रमुख में वेग से एक बार भर दें, अत्यन्त मृदुल शुद्ध शक्तिगर्भ नामक लोह वह हो जावे उस से यन्त्र बनावे उसकी विधि कही जाती है—विधि कहते हैं ॥ ७१—७५ ॥

बाहुमात्रमुन्त तावदायाम द्रोणिवत् सुधी ।  
 पीठ कुर्याच्छक्तिगर्भलोहेनेव यथाविधि ॥ ७६ ॥  
 पीठमूले तथामध्ये तदन्ते च यथाक्रमम् ।  
 अर्धचन्द्राकारमूखकीलस्तम्भान् दृढं यथा ॥ ७७ ॥  
 आदौ सस्थापयेत् पट्टिका ताप्रनिर्मिताम् ।  
 सयोजयेत् तत कीलशहृकुभिर्व्ययेद् दृढम् ॥ ७८ ॥  
 तन्त्रीन् शलाकान् तच्छक्तिगर्भलोहेन शास्त्रतः ।  
 सच्छद्वदण्डनालान् त्रीन् (त्री ?) कृत्वा पश्चाद् यथाविधि ॥ ७९ ॥  
 दण्डिद्वेषु सर्वं शलाकान् योजयेत् तत ।  
 सप्रमाणं लोहतन्त्री शलाकोपरि वेष्टयेत् ॥ ८० ॥

बाहुमाप में ऊंचा बाहुमाप लम्बा द्रोणी हाथों की भाँति पीठ—विमानस्थली त्रुदिमान् उस शक्तिगर्भ लोहे से ही यथाविधि बनावे। पीठ के मूल में मध्य में और अन्त में यथाक्रम अर्धचन्द्राकार मुखवाली कीलों के स्तम्भों को दृढ़रूप में आदि में सम्पादित करे पश्चात् ताम्बे से बनी पट्टिका को लगावे फिर कील शाक्कुक्कों से बान्ध दें, तारों को शलाकाओं को उस शक्तिगर्भ लोहे से शास्त्रानुसार छिक्रसहित दण्डरूप नालों को तारों को बनाकर पश्चात् यथाविधि दण्डों के छिक्रों में सर्वं शलाकाओं को जोड़ दें फिर माप से लोहे के तारों को शलाकाओं के ऊपर लपेट दें ॥ ७६—८० ॥

वर्तुल पञ्चर तेन भवेत् सुट्टमद्भुतम् ।  
 तत्पञ्चर ताप्रपट्टिकोपरि स्थापयेत् ततः ॥ ८१ ॥

विद्युत्कृष्टिं पञ्चारस्याधोभागे न्यसैत् कमात् ।  
 पञ्चारस्यशलाकाना तम्भीणामपि शास्त्रत ॥ ८२ ॥  
 विद्युत्सञ्चोदनार्थाय कीलक स्थापयेत् तथा ।  
 विमानस्थाङ्ग्यन्वाणा द्वार्तिशत्यद्विषु (घिषु ?) कमात् ॥ ८३ ॥  
 विद्युत्सञ्चोदनार्थायोपमहारार्थमेव च ।  
 अनुलोमविलोमाभ्या द्वार्तिशत्कीलकान् कमात् ॥ ८४ ॥  
 सन्धारयेत् सूक्ष्मकीली शड्कुभिस्सुहृष्ट यथा ।  
 विद्युत्प्रयोग सर्वत्र कुं तेन यथोचितम् ॥ ८५ ॥  
 भवेद् विमाने शास्त्रोक्तरीत्या स्वेष्टप्रकारत ।  
 दिक्प्रमेदेन सर्वत्र गतिवैचित्रघत कमात् ॥ ८६ ॥  
 भवेच्छोदयितु व्योमयान तस्माद् यथाविधि ।  
 तस्मादुक्त समाप्तेन विद्युत्पञ्चरयन्त्रकम् ॥ ८७ ॥

इससे पञ्चरगोल मुट्ठ अद्भुत हो जावेगा उस पञ्चर को ताके की पट्टिका के ऊर स्थापित करें तुनः पञ्चर के नीचले भाग में विद्युत्सञ्चिको रखके क्रमशः पञ्चरस्थ शलाकाओं तारों के भी (अन्दर) शास्त्र से विद्युत् को प्रेरित करने के अर्थ कील-पेंच स्थापित करे—लगावे । विमान में विद्युत अङ्गयन्त्रों के ३२ पैरों में—नीचलेभागों में कप से विद्युत् त को प्रेरित करने के अर्थ और उपसंहार-सहेजकरने की चलने के अर्थ भी अनुलोम-सीधे विलोम-डॉटे प्रकार से ३२ कीलों-पेंचों को कम से सूक्ष्मकील १ कुओं से दृढ़ लगावे । इससे शास्त्रोक्त रीतिसे विमान में विद्युत् तक यथोचित और खेच्छानुसार प्रयोग करना हो सकता है । दिशा के भेद से सर्वत्र विचित्र गति से विमान यान का प्रेरित करना हो सके अत. यथा-विधि संज्ञेय से विद्युत्पञ्चर कहा गया है ॥ ८१—८७ ॥

अथ शिर कीलकयन्त्रनिर्णयं—अब शिर कीलकयन्त्रनिर्णय करते हैं—

इत्पुक्त्वा शक्तिपञ्चरयन्त्रमय यथाविधि ।

सप्रहेण शिर कीलकयन्त्र सम्प्रचक्षते ॥ ८८ ॥

शक्तिपञ्चर यन्त्र कहकर अब यथाविधि संज्ञेय से शिर कीलकयन्त्र को कहते हैं ॥ ८८ ॥

तदुक्तं क्रियासरे—वह क्रियासामन्य में कहा है—

विमानोपर्यशनिपात मेघवृद्धाद् भवेद् यदा ।

तदा विनाशमायाति व्योमयानोत्तीर्णत ॥ ८९ ॥

तस्मात् तत्परिहाराय शिर कीलकयन्त्रकम् ।

शिरोभागे विमानस्य स्थापयेच्छास्त्रत कमात् ॥ ९० ॥ इत्यादि ॥

विमान के ऊपर मेघराशि से विद्युत् का गिरना जब हो तब विमान अति शीघ्र नाश को प्राप्त हो जाता है अत. उसके परिहार के लिये शिर कीलकयन्त्र विमान के शिरोभाग में शास्त्र से स्थापित करे ॥ ९१—९० ॥

यन्त्रस्वरूपमुक्तं यन्त्रसर्वस्वे—यन्त्रस्वरूप यन्त्रसर्वस्व में कहा है—

यदपायो विमानस्य भवेदशनिपातत ।

तदपायनिवृत्त्यर्थ शिर कीलकयन्त्रकम् ॥६१॥

सङ्ग्रहेणा प्रबक्ष्यामि शास्त्रोवतेनैव वर्तमना ।

यावत्प्रमाणा यानस्य शिरस्त्वावदेव हि । ६२॥

कुर्याच्छ्रुत्रि शलाकाद्यर्लोहावरणत कमात् ।

विषयकण्ठास्यलोहेनवान्यथा निष्कल भवेत् ॥६३॥

तेनैव बाहुमारेण तददण्ड पीठेव च ।

कुर्याच्चकार्कांति पदचाद् वकतुण्डलोहत् ॥६४॥

त्रिचक्ककीलकान् कृत्वा त्रीन् विमानस्य शास्त्रत ।

आटो मध्ये तथा तान्ते स्थापयित्वा तत परम् ॥६५॥

विश्व न के गिरे से जिससे कि विमान का विनाश हो जाता है उस विनाश या विगाह की निवृत्ति के अर्थ—शिर कीलकयन्त्र संज्ञे से शास्त्र मापी से कहूँगा, जितना माप विमान के शिर का हो उसने माप की छात्री शलाका आदि से लोहे के आवरण से करे विषयकण्ठ नामक लोहे से करे अन्यथा निष्कलता हो जावे । उसी लोहे से बाहुमाप से उसके दण्ड और चक्काकार पीठ को बनावे परचात् वकतुण्ड लोहे से तीन चक्काली तीन कीलों को करके विमान के आदि में मध्य में और अन्त में स्थापित करके फिर—॥६१-६५॥

सदण्ड स्थापयेच्छ्रुत्रि कीलदृष्ट्यमध्यत ।

मणिमनिकुठारास्य लोहपङ्कजरसयुतम् ॥६६॥

किरीटवत्तच्छ्रुत्रसि स्थापयेत् सरल यथा ।

त्रिचक्ककीलभ्रमणाकीलक यन्त्रपार्श्वत ॥६७॥

स्थापयित्वा यथाशास्त्र कुलिशध्वसलोहत् ।

कृत्वा तन्त्रीन् मणिस्थाननालरन्धाद् यथाविधि ॥६८॥

त्रिचक्कञ्जामणी कीलस्थानामूलाविधि कमात् ।

ममाहृत्याय तत्स्थानमध्ये सन्धारयेत् तत ॥६९॥

तन्मुखे शब्दनाल च सकील स्थापयेद् दृढम् ।

मुरञ्जिकादपरणेन तद्यन्त्रावरण सुधी ॥१००॥

दो कीलों के मध्य में दण्डसहित छात्री स्थापित करे, अग्निकुठारनामक मणि लोहपङ्कजर से युक्त मुकुट की भाति शिर में—विमान के शिरोभाग में सरल स्थापित करे । तीन चक्कोवाली—पेटों को घुमाने वाली कील चालक के पास यथाशास्त्र स्थापित करके कुजिरा ध्वंस (वक्षध्वंस—विश्व त का नाश करने वाले) लोहे से तारों को मणिस्थान नाल के छिद्र से यथाविधि त्रिचक्कञ्जामणीकीलस्य मूल तक यथाविधि लाकर इनमें स्थान के मध्य में जोड़ दे, फिर इनके मुख में कीलसहित शब्दनाल स्थापित करे, सुरञ्जिकादपरण से यन्त्र का आवरण बुद्धिमान्—॥६६-१००॥

कुर्याद्यास्त्रोक्तविविधिना पश्चादावरयेद् हृषम् ।  
 यदा स्यादशनिपातसुचक घनगजितम् ॥१०१॥  
 तत्करणाद् यन्त्रावरणदर्पणाद्शृष्टिसो (तं?) भवेत् ।  
 पश्चात् तन्त्रीमुखनालरन्ध्राच्छब्द प्रजायते ॥१०२॥  
 अत्यन्तचलन तेन भवेत् तन्त्र्या स्वभावतः ।  
 हृष्यन्ते यन्त्रूणा याने चिह्नावैतान्यथाक्रमात् ॥१०३॥  
 पत्तयशनिपातोद्य इति मत्वातिशीघ्रतः ।  
 त्रिचक्रकीलभ्रमण कुर्यादित्यःतवेगत ॥१०४॥  
 आयते तेन तच्छ्री शतलिङ्गप्रमाणत ।  
 पश्चात् तन्मणिकील च भ्रामयेद् वेगत् कृमात् ॥१०५॥

→ हरे, शाक्तविविधि मे ढक दे। जब विश्वन् गिरने का सूचक मेघार्जन हो तो तत्कण यन्त्र का आवश्यक दृष्ट जाता है, परचान् तारों के सिरे की नाल के छिद्र से शब्द होता है, इससे तार में अत्यन्त इलाज स्वभावत होती है। चालकयात्रियों के विमान यान में जब ये चिह्न दिखलाई पड़ते हैं तो अब विश्व तं का गिरना होता रहेसा समझ अति शीघ्र अत्यन्त त्रिचक्रकील का भ्रमण करवे इससे वह छहों १०० छिप्पी के प्रमाण से धूमने लगती है यह परचान् उस मणिकील को भी वेग से धूमा देती है—॥१०१—१०५॥

तेन सम्भ्रमते वेगात् तन्मणिस्वर्वतोमुख ।	
छत्रीवेगादशनिपातवेगशान्तिभविष्यति ॥१०६॥	
मणिवेगादशनिपात क्रोशाते यानतो भवेत् ।	
विमानरक्षणा तेन यन्त्रूणा पालन तथा ॥१०७॥	

भवेत् तस्माच्छ्री कीलयन्त्रमुक्त यथाविधि ।

इससे मणि सर्वतोमुख वेग से धूमती है, छत्री के वेग से विश्वन् गिरने के वेग की शान्ति हो जावेगी—हो जाती है। मणि के वेग से विश्वन् गिरने का वेग विमान से कोस भर परे हो जावेगा, इससे विमान का रक्षण तथा चालकयात्रियों का बचाव हो जावे—हो जाता है अत शिर कीलयन्त्र यथाविधि कहा है—॥१०६—१०७॥

अथ शब्दाकर्षण्यन्तनिर्णयः—अथ शब्दाकर्षण्यन्त का निर्णय है—

एवमुक्तवा शिर कीलयन्त्रमत्र यथाविधि ।

शब्दाकर्षण्यन्तोद्य सप्रहरण प्रकीर्त्यते ॥१०८॥

इस प्रकार शिर कीलयन्त्र यहाँ यथाविधि काहकर शब्दाकर्षण्यन्त आज—अथ सर्वे परे कहा जाता है।

तदुक्तं कियासारे—वह कियासार प्रथम में कहा है—

श्रष्टिक्षु विमानस्य क्रोशाद् द्वादशकोपर्दि ।

सत्त्वप्रतन्त्रीमार्गेण मृगपक्ष्याविभिस्तथा ॥१०९॥

सन्ताडनभ्रामणायै मंतुष्ये रक्षयन्त्रके ।

गूढेन वा प्रकाशेन ये शब्दास्तम्भवन्ति हि ॥ ११० ॥

तेषा सयहुणार्थाय शब्दाकर्षणायन्त्रकम् ।

व्योमायनभूजे सम्यक् स्थापयेद् विधिवत्सुधी ॥ १११ ॥ इत्यादि ॥

विमान की आठों विशाओं में १२ कोश से ऊपर तारसहित ताररहित मार्ग से तथा मुगपक्षी आदि के द्वारा सन्ताडन भ्रमण्य आदि से मनुष्ठों से आठत्रों से गूढ या प्रकट जो शब्द उत्पन्न होते हैं उनके पकड़ने के अर्थ शब्दाकर्षण यन्त्र विमान की भुजा में सम्यक् विधिवत् बुद्धिमान् स्थापित करे ॥ १०८—१११ ॥

यन्त्रस्वरूपमुक्त यन्त्रसर्वस्वे—यन्त्रस्वरूप यन्त्रसर्वस्व में कहा है—

चतुरल चतुरल वा शुद्धवैडाललोहत् ।

पीठ कृत्वाय तन्मध्ये शट्कु सस्थाप्य पाशर्वयो ॥ ११२ ॥

सङ्कूल्पस्वरवादित्रशब्दभाषापकर्षकम् ।

रोशवापक्षिणो नोचेद् गृजनीयपक्षिणोपि वा ॥ ११३ ॥

शुद्धीकृतेन देहस्थृतमणा मुकुलेन च ।

कृत्वा कन्तु(तु?) कवद् गोलद्वय सूक्ष्म लघु दृढम् ॥ ११४ ॥

स्थापयेद् विधिवत् पश्चात् तन्मध्ये कटनद्रवम् ।

सम्पूर्यं मुरुवादर्शात्रे सस्थापयेत् क्रमात् ॥ ११५ ॥

चौकोर या गोल शुद्धवैडाल लोहे से पीठ-भूमिका वनाकर उसके मध्य में शकु संस्थापित करे दोनों पाशर्वों में सकलं स्वर वादित्र—ब्राजे शब्द भाषा—भाषण के स्त्रीच लेनेवाले यन्त्र को लगावे, रोहवा ? पक्षी के नहीं तो गृजनी ? पक्षी के भी शुद्ध किए देहस्थृतमुकुल चमड़े से गोंद के समान सूक्ष्म छोटे टढ़ दो गोल विधिवत् स्थापित करे पश्चात् उनके मध्य में कटनद्रव ? भरकर सुरुचादर्शी ? पात्र में कम से संस्थापित कर दे ॥ ११२—११५ ॥

धन्याकर्वणाघटारलोहनिर्मितमद्भुतम् ।

तन्त्रीगुच्छसमायुक्त शब्दोन्मुखशालाकम् ॥ ११६ ॥

दृढ़ पिण्डद्वयोर्मध्ये द्रावकोपर्यथाकमम् ।

प्रतिष्ठाप्याथ कवरणाकदर्पणावरण क्रमात् ॥ ११७ ॥

कृत्वा मूलेड्गुण्ठमात्रचक्रप्रत्यन्त्रय तत् ।

सन्धारयेत् तदारम्भ शलाकान्त मयाविष ॥ ११८ ॥

प्रत्यन्तसूक्ष्मान्मृदुलान् सयोजयेत् क्रमात् ।

एतत्तन्त्रीन् समावृत्य न्यग्निल सूक्ष्मरन्धकम् ॥ ११९ ॥

वदणादर्शेन रवित करण्डमुपरि न्यसेत् ।

द्रोणास्थपात्रं तेनैव कृतं तस्योपरि क्रमात् ॥ १२० ॥

अनि को आकर्षित करने वाले प्रदार लोहे † से बना हुआ अद्युत तारों के गुण्डे से युक्त शब्द को प्रकट करने के उपयुक्त राजाकांडों वाले हृदय दोनों पिण्डों—गोलों के मध्य में द्रावक के ऊर यथाक्रम रख कर ब्रह्मकदर्पण—शब्द करनेवाले के आशरण को कम से करके अङ्गुष्ठमात्र चक्र की तीन प्रणिथवाँ के मून में लगावे वहाँ से आरम्भ करके शताकार्यन यथाविधि अत्यन्त सूक्ष्म कोमल तारों को कम से जोड़ ने इन तारोंको सूक्ष्मदिक्षिताते नीचले विल में को ध्रुमाकर कवणा आदर्शदर्पण से रची करण्ड सन्दूरुची या डालिया के ऊर रख दे, द्वैषमुख वाला—हाँड़ी मुख वाला पात्र उभी कवणादशों से किया हुआ हो उस के ऊर कम से—॥ ११६—१२० ॥

स्थापयेत् ततस्तस्मिन् पूर्वपश्चिमयोस्तथा ।

दक्षिणोत्तरतर्तचैव सदन्तीरटिकाभिधान् (दान् ?) ॥ १२१ ॥

मयोजयेन्मणीन् शुदान् चत्वारि समरेत्वत् ।

मणिमन्तरत कृत्वा सूक्ष्मनालान् यथाविधि ॥ १२२ ॥

दर्पणेन कृनान् शुदाब्रह्मतदिक्षु हृदया ।

स्थापयेदय तस्योवंप्रदेशे शब्दफेनकम् ॥ १२३ ॥

तस्योपरि यथाशास्त्र कुर्यादवरण तत् ।

तन्मिन् सन्धारयेत् सूक्ष्मशड्कून् सशोधितान् उडान् ॥ १२४ ॥

पश्चात् ब्रह्मादर्शकृनावरण ततप्रमाणत ।

तस्योपरि न्यसेदष्टूद्यद्रिद्रसमन्वितम् ॥ १२५ ॥

—उसमें संख्यावित करे, पूर्व पश्चिम में तथा दक्षिण उत्तर सदन्तीरटिका नामक चार शुद्ध मणियों को समरेत्वा से जोड़ दे, मणि को बीच में करके दर्पण से बना हुआ शुद्ध सूक्ष्म नालों को यथाविधि चारों दिशाओं में स्थापित उसके ऊर करि प्रदेश में शब्दफेन—शब्द सकारात्मक चक्र रख दे, उस के ऊर यथाशास्त्र आवरण करे पुन उस में शोधित सूक्ष्म राङ्कों को लगावे, पश्चात् कवणा आदर्श से किए आठ सूक्ष्मदिक्षु युक्त आवरण उस प्रमाण से उसके ऊर रखे ॥ १२१—१२५ ॥

एकैक्षिद्रमागणेणात्तदशङ्कुमुखान्तरात् ।

सूक्ष्मतन्त्रीन् समाहृत्य न्यसेदावरणोपरि ॥ १२६ ॥

तन्मयेज्ञुलयानेन छिद्र कृत्वा यथाविधि ।

सिंहास्यदण्डनाल च मध्ये सस्थापयेत् क्रमात् ॥ १२७ ॥

वातापकर्वकं चक्र षोडशार सुसूक्ष्मम् ।

न्यसेत् तस्य पुरोभागे तन्त्रीसवेष्टित यथा ॥ १२८ ॥

एव क्षेणाष्टदिल्लु सूक्ष्मचक्राणि विन्यसेत् ।

पूर्वोक्तिहास्यमुखेष्टदिक्षु यथाक्रमम् ॥ १२९ ॥

प्रदक्षिणावर्तीकीलचक्राद् सस्थापयेदय ।

शुद्धवाजीमुखलोहकृतवर्तुलपट्टिकान् ॥ १३० ॥

† चण्डार लोहा पीछे कहा गया है इतिम् है।

एक एक छिक्रमार्ग से भीतर शहू के मुख के अन्दर से सूक्ष्म तारों को निकालकर आवरण के ऊपर लगादे, उस के अन्दर अङ्गूष्ठ माय से छिक्र करके यथाविधि सिंहास्यदण्डनाल को मध्य में संस्थापित करदे। वातापकर्चं चक्र १३ अराओंवाला सुसूक्ष्म उसके सामने बाले भाग में तारों से जिपटा हु प्रा लगावे, इस प्रकार कम से आठ दंदशाथों में सूक्ष्म चक्र लगावे, पूर्वोक्त सिंहास्य मुख में आठ दिशाओं में घूमनेवाले कीलचक्रों को सम्पादित करे अनन्तर शुद्ध बाजी मुखलोहे से की हुई गोल पट्टिकाथों को—॥ १२६—१३० ॥

मुहृष्टान् च (ब?) एकाकारान् नरल स्थापयेत् तत ।  
 पूर्वोक्तावरणा शुद्धिद्रमुखस्स्थितान् कृमात् ॥ १३१ ॥  
 तन्त्रीन् मह्न्हा विधिवत् तेषु सयोजयेत् कृमात् ।  
 तथैव वानाहरणचक्रस्यानाद् यथाविधि ॥ १३२ ॥  
 मरन्धान्यन्तसूक्ष्मतन्त्रोनाहृत्य शक्तिः ।  
 सिंहास्यस्याशुद्धयक्षपट्टिकामूलसन्धिषु ॥ १३३ ॥  
 सयोजय शब्दकेनस्थशङ्कुना मूलकेन्द्रतः ।  
 द्रवपात्रस्यमणिमावृत्य तन्त्रीन् यथाकृमम् ॥ १३४ ॥  
 समाहृत्याय विधिवद् बध्नीयात् मुहृष्ट यथा ।  
 वातसयोजनाच्चक्षभ्रमण भवति स्वतः ॥ १३५ ॥

—मुहृष्ट गलासशत्र या लोटापात्र के आकारवालों को सरल स्थापित करे फिर पूर्वोक्त आवरण के आठ छिक्रमुखों में स्थित तारों को लेकर विधिवत् उन में लगादे वेसे ही वात को खीचने वाले चक्रस्यान से यथाविधि छिक्रसहित अव्यत शुक्ष्म तारों को शक्ति से लेकर—खीच हार सिंहास्य में स्थित आठ चक्रकरात्र पट्टिकामूलसन्धियों में जोड़कर शब्दफेनचक्र में स्थित इक्कुओं के मूलकेन्द्र से द्रवपात्रस्थित मणिको आवृत कर तारों को यथाकृम लेकर विधिवत् उठ बाह्य दे जिससे वातसंयोजन से चक्रभ्रमण स्वतः हो जाता है—हो जावे ॥ १३१—१३५ ॥

## इत्तलेख कापी संख्या १४—

सम्भ्राम्यते मणी पश्चात् तेन सव्यापसव्यत ।  
 तद्वे गाद् भ्राम्यते शब्दफेनचक्रमत परम ॥ १ ॥  
 भ्राम्यन्तेन्तशशङ्कुमूलचक्राण्यपि यथाकृमम् ।  
 तस्मात् सिंहास्यनालस्य चक्राण्यष्ट विशेषत ॥ २ ॥  
 भ्राम्यन्ति तेन धन्याकर्षणाघण्टारलोहत ।  
 कृतशब्दोन्मुखगलाकाचालन भवेत् स्वत ॥ ३ ॥  
 रोरुवागुज्जनीचमंकृतगोलद्वय तत् ।  
 शालाकचालनात् सर्वशब्दान् तत्तत्स्वरैस्सह ॥ ४ ॥  
 सगृह्य स्वान्तरे पश्चात् सन्नियम्यति नान्यथा ।  
 तन्मूलकीलचालनात् पुरस्सिंहास्यमार्गत ॥ ५ ॥  
 द्रोणास्यपात्रे वेगेन प्रविश्याय यथाकृमम् ।  
 परश्चोत्त्रप्रहरणयोग्यान् सर्वान् शब्दान् स्फुट यथा ॥ ६ ॥  
 करोति तत्कर्षणादेव सर्वदङ्कमुखत क्रमात् ।

—मणि धूमती है पश्चात् उससे सीधे उलटे रूप में उसके वेग से शब्दफेनचक्र-शब्दसंकार चक्र धूमता है उस के पश्चात् भीतीरी शङ्कुओं के मूलचक्र भी यथाक्रम धूनते हैं । अत सिंहास्यनाल—सिंह के मुख समान नाल के आठ चक्र विशेषरूप से धूमते हैं उससे ध्वनि को आकर्षित करनेवाले परदार-घरटा वाले लोहे से शब्दोन्मुख किया शालाकाचालन यत्न हो जावे रोरुवा गुज्जनी अतिशय शब्द को गुज्जाने-वाली ? के चर्म के दो गोल ढोल जैसे शालाका चलाने से सब शब्दों को उन उन के स्वरों के साथ अपने अन्दर लेकर पश्चात् नियन्त्रित करता है उस मूल कील के चलाने से पुन सिंहास्यमार्ग से द्रोणास्य पात्र में वेग से प्रविष्ट हो यथाक्रम दूसरे के श्रोत्रप्रहण के योग्य सब शङ्कों को तुरन्त सब ओर स्फुट करता है ॥ १—६ ॥

तत्तद्विश्यागत शब्द श्रुत्वा यन्ता सुधीः स्वयम् ॥ ७ ॥  
 परचक्रविचार यत् सर्वं विज्ञाय यन्त्रतः ।  
 इति कर्तव्यता ज्ञात्वा स्वयानपरिपालने ॥ ८ ॥  
 कुर्यात् प्रयत्न विधिवदन्यथा नाशमेधते ।

तस्मादुक समासेन शब्दाकर्णणयन्त्रकम् ॥ ६ ॥  
 शब्दाकर्णणयन्त्रास्तु द्वार्तिशद्भेदत क्रमात् ।  
 शास्त्रेषु निर्णयात्सासम्यग्यन्त्रशास्त्रविशारदे ॥ १० ॥  
 एतच्छब्दाकर्णणयन्त्र यानाङ्गत पृथक् ।  
 कृतमित्यवगन्तव्य सर्वेशास्त्रप्रमाणात् ॥ ११ ॥ इत्यादि ॥

उस उस दिशा से आये हुए शब्द को सुनकर द्विमान यन्त्रवालक परचक के सब विचार को यन्त्र से जान कर अपने विमान की रक्षा के लिये यह कर्तव्य है यह जान कर प्रयत्न करे अन्यथा नाश को प्राप्त हो जावे । अत संज्ञेष से शब्दाकर्णण यन्त्र कहा । शब्दाकर्णण यन्त्र ३२ भेद के शास्त्रों में यन्त्रशास्त्रज्ञ विदानों ने क्रमश कहे हैं, यह शब्दाकर्णण यत्र विमानयान का अङ्गहर से है ॥१० ११॥

पतयन्त्रोपयुक्तं वस्तुस्वप्तव्यर्थाणम्—इस यन्त्र के उपयुक्त वस्तु स्वरूप वर्णन है—  
 वैडालिकोहमुक्तं लोहसर्वस्वे—वैडालिक लोहा कहा है लोहसर्वस्व में—

किंवद्गुणकरकान्तवज्जकमठाडिम्भारिघोषटाकरयथिनी-  
 शुल्वविरक्षिकर्णपटलीगुम्भालिदम्भोलिका ।  
 क्षारकान्तिर्सिहृष्टशब्दलिनीपाराज्ञानक्षोणिकावीरस्वरणं-  
 मुरञ्जिनीमृडशटीक मातिपारावता ॥ १२ ॥  
 एतान् सगृह्य विधिवच्छुद्धि कृत्वा त्रिवारत ।  
 शशमूष्यमुखे वस्त्रूप पूरयेत् समभागत ॥ १३ ॥  
 मण्डूककुण्डमध्ये सस्थाप्य पञ्चास्यभिकात् ।  
 उषण्डिशतकक्षयप्रमाणेन धमानयेत् क्रमात् ॥ १४ ॥  
 आनेत्रान्त गालियत्वा समाहृत्याय तद्रसम् ।  
 वेगान्विविच्छेद यन्त्रास्ये शास्त्रोक्तविधिना क्रमात् ॥ १५ ॥  
 एवं कृते यन्त्रशुद्ध स्पर्शनात् पुष्टिवर्धनम् ।  
 नीलवर्णं सुरूपम् च मुहूर भारवर्जितम् ॥ १६ ॥  
 लोह वैडालिक नाम भवेद् भास्त्ररमदभुतम् ॥ इत्यादि ॥

शिवङ्गा-लोह विशेष या जस्ता?, पाषाणचूर्ण कान्त-कृष्ण-लोह, वज्र-अभ्रक, कमठा-शिलारस हिम्भारि ?, धोरणा-सुपारि या मैनफल, कर-तरवर प्रथिनी ?, शुल्व-ताम्बा, विठ्ठिच-आझी ?, कर्णी-अर्कमन्दार, पटली-परवल, गुम्भालि ?, दम्भोलिक-लोहा जाति, ज्ञार-सुहागा या सदव्यार, कान्तिक-वैकान्तिमणि ? सिंह-ताल सीज्जना, पठच-कृद्वा परवल ?, दलिनी ?, पारा अङ्गन-सुरमा, चोणिक-कुण्ण-रीठा—क्षीणिक रीठे का बीज या तैज ?, बीर-सिन्दूर खण्णी—घूरा सुरञ्जिनी-सुरक्की—मरीची, मृडकी ? कंस, कंसर्ति-कांसा ?, पारावत-लोहा । इन वस्तुओं को समान भाग लेकर विधिवत् तीन बार शुद्धि करके शशमूष्यमुख बोतल में भरदें, मण्डूक कुण्ड के मध्य में रख कर पठवाय भन्त्रिका से २०० दर्जे की वज्रता से धोके नेत्र पर्वत गता कर उस रस

को लेकर शीघ्र यन्त्र के मुख में शास्त्रोक्त विधि से ढाल दे । ऐसा करने पर शुद्ध सर्पं से पुष्टिवधेक नीलवरणी अत्यन्त सूक्ष्म सुरुद्ध भारवहित भारव वैदालिक लोहा हो जावेगा ॥

**स्टनद्रावकमुक्तं मूलिकार्कप्रकाशिकायाम्—स्टनद्रावकं मूलिकार्कप्रकाशिका में कहा है—**

कनककरण्डगुज्जापावंशिगच्छूलिभिटकारमभा ।

विवेशचष्ठिकामरणुण्डलिकवर्वरास्यसीरमभा ॥ १७ ॥

प्राणक्षारवितयविरच्छकटद्वयाकिसुरभी ।

सम्मेलन द्रवयन्त्रे वैदानलरूपतारसागराकाशान् ॥ १८ ॥

तथैव पञ्चदशविरिगजदिग्वतारनेत्रवाग्याशान् ।

सगृह्यापि च त्रिशद्वादशविशयाद्भागस्यात् ॥ १९ ॥

सगृह्यीयाद् द्रावकमष्टोत्तरशतकश्योषणमानेन ।

स्टनद्रावकमेतद् भवति विशुद्ध सुमूलमक पीतम् ॥ २० ॥ इत्यादि ॥

कनक-धनुरा, करण्ड-महालमकसी का छत्ता, गुज्जा-धूंघची, पावणि-हरिण शृङ्ख ? , चञ्चूलि-चञ्चुरु-जाल एवण्ड, भयिट्का-मीठी, कारम्भा-प्रियड्गु, विवेश ?, चहिंडका-अलसी, अमर-वज्जीवुक्त-शूद्र, शुण्डालिक-हाथीशुण्डा वृक्ष ?, वर्षास्य ?, सौरम्भ-सौरभ-तुम्बुरु-तेजबल, प्राणक्षार-तीरों प्रकार के मूत्र ज्ञारूप नवसादर, विरच्छि ?, सुहाना, आर्किका-अर्क-आख ?, सुरभी-तुलसी । इनको मिलाकर द्रवयात्र में ४, ३, ३, ५, ७, १२, १५, १, ३, १०, २४, २, ५, ३०, १२, २०, ८ भागों को ले लें, १०८ दर्जे की उप्याता से यह स्टनद्रावक शुद्ध सूक्ष्म और पीला हो जाता है ॥ १७-२० ॥

**घटटारवलोहमुक्तं लोहतन्त्रे—घटटारवलोहा लोहतन्त्र में कहा है—**

कास्यमारारुचकौ गारुड शत्यकृन्तनम् ।

पञ्चास्य वीरण रुक्म शुकुण्ड मुलोचनम् ॥ २१ ॥

दशलोहानिमाव सम्यक् शुद्धि कृत्वा यथाविधि ।

तारानलाकंनयन मुन्यविधशरवासरा ॥ २२ ॥

वैदावतारभागाशप्रकारेण यथाक्रमम् ।

सम्पूर्यं शुक्तिमूषाया मृष्टप वेष्टयेद दृढम् ॥ २३ ॥

अलाबुकुण्डमध्येयं स्थापयित्वा यथाविधि ।

कथ्याणा पञ्चशतोष्णप्रमाणेनातिवेगत ॥ २४ ॥

आनेत्रावधि सगाल्यं पञ्चाद यन्त्रमुन्ने शनै ।

निविच्छेद विविवद् पञ्चाद रक्तवर्णं दृढम् ॥ २५ ॥

सूक्ष्मात् सूक्ष्मतर भारहीन बलविवर्धनम् ।

भवेद् घण्टारलोहारूपं सर्वंशब्दापकर्षणम् ॥ २६ ॥ इत्यादि ॥

कांस्य, आरा, रुचक, गारुड, शत्यकृन्तन, पञ्चास्य, वीरण, रुक्म, शुकुण्ड, सुलोचन इन दश स्त्रों को यथाविधि सम्यक् शोध कर ५, ३, १२, ८, ३ ७, ५, ३०, ४, २४ भागांश प्रकार से यथाक्रम

शक्तिमूषा बोनल में भर कर मिट्टी कपड़ा — कप्पड मिट्टी लपेट कर अलावुकुण्ड के मध्य में रख कर ५०० दर्जे की उत्ता के प्रमाण से अतिवेग से नेत्र अवधि तक गंगा कर परचात् धीरे से यन्त्रमुख में छोड़ दे परचात् वह लाल रंग ढड़ मुदु अति सूक्ष्म हल्का वलिष्ठ सब शब्दों का आकर्षक घटाटार लोहा हो जावेगा ॥ २१-२६ ॥

बवणादर्पणमुक्तं दर्पणप्रकरणे—बवणादर्पण दर्पणप्रकरण में कहा है—

काकारि करिशल्यक गरदक क्षाराष्ट्रक सिंहकम् ।  
शल्यक वरशकंर बुद्धिलक ज्वालामुख तुण्डिलम् ॥  
वैडाल शुक्तुण्डक रविमुख चञ्चूलिक पार्थिवम् ।  
लुण्टाक वरतालक कुरवक कम्बोदर कामुकम् ॥ २७ ॥  
सगृहौतान् यथाशास्त्र शुद्धि कृत्वा त्रिवारत ।  
पशास्यमूषामध्यास्ये पूरयित्वा समाप्तत ॥ २८ ॥  
कुण्डे पद्माकारे स्थाप्य शशभस्त्राद् यथाविधि ।  
कथ्याणा सप्तशतीष्णाप्रमाणोनातिवेगत ॥ २९ ॥  
सगाल्य तद्रस नीत्वा यन्त्रास्ये पूरयेच्छन् ।  
एव कृते भवेच्छुद्ध बवणादर्पणमध्यतम् ॥ ३० ॥ इत्यादि ॥

काक—गुजा ? अरि—क्षर ? खरि—विट् खैर ? करि—शेवट्खैर, गदक—वत्सनाभ, आठ ज्ञार—पलाश सौंजना चिरचिटा जौ हमली आक तिलनाल सज्जी के ज्ञार, गन्दा विरोजा, पीली लोध ? बर—सैन्धव लवण, शर्करा—पाषाणकण, बुद्धिलकज्ञा ?, ज्वालामुख—कलियारी, तुण्डिल—कन्दूरी, वैडाल—हरितरु ? शुक्तुण्ड—शिंगरक, रविमुख—सूर्यकान्तमणि, चञ्चूलिक—रक एरण्ड, अनुन या तगर ?, लुण्टाक—लुण्टक—शाक विशेष ?, वरताल—गोदन्ती इरताल, कुरवक—शेवत अर्क या कटसरिया ?, कम्बोदर—कम्बूदूर—शंखमध्य ?, पुनाग मुलतान चम्पा इनको समान भाग लेकर यथा-शाख तीन बार शोध कर पद्मास्य मूषामध्य के मुख में भर कर पद्माकार कुण्ड में रख शशभस्त्रा से यथा-विधि ७०० दर्जे की उत्तेता से गला कर उस द्रव रस को लेकर यन्त्र के मुख में धीरे से भर दे ऐसा करने पर शुद्ध बवणादर्पण हो जावेगा ॥ २७-३० ॥

सूदन्तीमणिस्त्रं स्त्रियांप्रकरणे—सूदन्तीमणि कहा है मणिप्रकरण में—

क्षारत्रयमाङ्गनिक कान्त सज्जोक वरकर्णवराटिम् ।  
मार्गिकशकंरस्काटिककास्य पादवतालकसरत्व गेरम् ॥ ३१ ॥  
रुहक रोच्यककुदुपो गरद पञ्चमुख शिङ्गरण्डिलकम् ।  
एतनेकविशत्वस्त्वून् सम्पूर्याणिकमूषास्यमुखे ॥ ३२ ॥  
वरशोक्तिकव्यासटिकामध्ये सस्थाप्य ढड वरभस्त्रमुखात् ।  
सञ्चाल्य त्रयुत्तरशतकक्षयोष्णेन निषिङ्गवेनमणियन्त्रमुखे ॥ ३३ ॥  
पश्चात् मुहूर बलद भवति हृदन्तीमणिरुक्तष्टम् ॥ इत्यादि ॥

क्षारत्रय—तीनों ज्ञार—सउजीज्ञार यज्ञार सुहागा, आङ्गनिक—सुरमा, कान्त—सूर्यकान्त—  
बिल्लौर, सउजीक—सउजी ? सउजीवनी—रुदन्तो जुर ? , वर—सैन्यवलवण, कर्ण—आख, कौटी,  
सोनामाखी, पाषणचूरा, फिटकरी, कांसा, पारा, तालकसन्त्र—हरिताल का सन्त्र, गेहू, रुक्क—उपथानु  
शोरा जैसा ? या बनरोडा ? या लोहविशेष, रोचक-रुद्य—सौख्यलवण, कुडुप ?, गरद—बच्छनाम,  
पञ्चमुख—लोहविशेष ? या बासा ?, शिङ्गर—शिंगण—लोहमत—मण्डू ?, शुरिंडलक—हाथीशुरुडी  
दृश्य। इन २१ बस्तुओं को आगिंकमूष्यमुख बोतल में भरकर शेष्ठ सोपाकार व्यासटिका कुण्डे में रख  
श्रेष्ठ भस्त्रामुख से १०३ दर्जे की उपथान से गलाकर मणियन्त्रमुख में ढाल दे। परचान सुट्ट बतवान्  
बलप्रबृंद रुदन्तीमणि बन जाती है ॥ ३१-३३॥

रुटिकामणिरुन्तरं तत्रै—रुटिकामणि कही वहां ही—

फेन चमरोनखमुखशल्य चुम्बकपार्थिवशकरधूमान् ॥३४॥  
पारदप्राणकारस्फाटिकान् नागवराटिकमालिक्षुण्डान् ।  
रुण्डककुडुरमुरुवंलवीर्यन् नर्म्मालिकवरवैदालिकदन्तान् ।  
रुठकमञ्चियपार्विरास्तमान् केशिकनवरभरमोक्षिकमुक्तीन् ॥३५॥  
शुदानेतान् समभागाशान् नतमुखमूष्यामुखमध्यविले ।  
सम्पूर्णं महोदरकुण्डमुखे सस्थाप्य च पमुखभस्त्रमुखात् ॥३६॥  
विवित्सङ्गाल्यानेत्रान्तं मणियन्त्रमुखे वेगात् सिञ्जेत् ।  
पश्चात् सुट्ट श्यामलवर्णं प्रभवति रुटिकामणि भारयुतम् ॥३७॥ इत्यादि ॥

समुद्रफेन, चमरी-मञ्जरी-सुका, नखमुखशल्य-एक समुद्रिक जन्तु का नखाकारमुखरूप शब्द-  
काण्डा या नख मुख-बढ़हल ?, शल्य—मैनफल ?, चुम्बक-अयस्कान्त, पार्थिव—रेह ? शर्कर-  
पाषणचूरा, धूम-शिलारस या सुमा ?पारा, प्राणज्ञार—नववाहद ? बिल्लौर या फिटकरी ?सीसा, कौटी,  
सोनामाखी, शुद्ध-प्रशाल ? या हाथीशुरुडावृत्त ? रुण्डक-अगर, कुडुप ?, सुवर्चलवीर्य-सउजीज्ञार, जम्बा-  
लिक-कमलसीज ? या शैवाल ? या केतकी ?, वैदालिकदन्त-गन्धमाजरि के दानत ? या हरिताल दन्त-  
दन्तीहरिताल-गोदन्ती हरिताल, रुक्क-शिंगरक, मञ्चिरन्त-मञ्चिरन्त-मीठी ?, पार्वणि-हरिए-पूँड ?,  
रुक्म-स्वरी या घूरा ?, कौशिकनख-नेवलेके नख ? या डल्लके नख ?, वर-सैन्यवलवण, मौकिकशुकि-  
मोती की सीपी । इन मन्त्र शुद्ध हुए समान भारों को नखमुखमूष्यामुखमध्य विल में भरकर महोदर कुण्ड  
में रखकर छ. सुख भस्त्रामुख से विवितन नेत्र तक गलाकर मणियन्त्रमुख में वेग से छोड़ दे फिर सुट्ट  
श्यामल रुटिकामणि भारयुक्त हो जाती है ॥३४-३७॥

शब्दफेनमुक्तं शब्दमहोदध्याम् ?-शब्दफेन (मणि) कहा है शब्दमहोदध्यप्रभं में—

बाडवारवमाकाशाज्जलात् प्राणनमेव च ।  
वातापिन्खमुखात् तद्विद्युलादनुकरध्वर्णानम् ॥३८॥  
किरणानां स्फोटनाल्यशक्ति धीवालवलक्लम् ।  
समुद्रफेन ग्रीवाक जलपाक मालुल रुग्म ॥३९॥  
गृभाराक रुद्रशल्य गोकर्ण मुसलि तथा ।

सप्तद्वाविशति पञ्चवत्त्वारिशत् त्रयोदश ॥४०॥

द्वाविशदेकोनविशदष्टविशच्छुर्दश ।

द्वाविशदष्टविशदष्टविशत् त्रयोदश ॥४१॥

पञ्चविशनवं तथा त्रयोविशद् यथाकमम् ।

सगृह्य विधिवच्छब्दकेन पववात् प्रकल्पयेत् ॥४२॥

आकाश से बाहवारय गर्जना ७, जल से गीलापन या वेग से लहन श्वास-सैंसें करना २२, खम्मख-आकाशगोल से बातानिन बायु की सनसनाहट करनेवाली अग्निशक्ति ४५ को, उसी प्रकार शिला चट्ठनपरतों या परस्पर पटन से अतुकार धनि १३को, किरणों की किरणास्टोटन नामकशक्ति-विदारण-करने वाली एवं अतिसूखम् व्यापकशब्दशब्दिन ३२को, शैवाल-शैवाल का वक्तकल-पद्माखड़ पदमाख की छाल या या शैवाल-जलकाहा का अपरिभाग ?, १६ भाग, समुद्रफेन ३८ भाग, शौवाक ? १४ भाग, कदाचित् बांस ?, जलाक ? २२ भाग कदाचित् रंख, मालूल ? मञ्जुल-मञ्जीठ ? ३८ भाग, तृण-दर्भ ४२ भाग, या मालूल-तृण ३८ भाग ?, गृभ्यारक ?, ११ भाग, रुद्रशल्य ? २५ भाग, गोकर्ण-अश्वराघ या वाजीवल्ली ? हुभाग, मुमलि-तालमूल १३ भाग, इनको विधिवत् लेकर पके रस से—शब्दकेन पकाए हुए से कल्याण हो जाए ॥३८—४२॥

उक्तं हि तत्रैव-कहा ही वहां—

शैवालादिमुसल्यतान् वस्तून सशोध्य शास्त्रत ॥४२॥

तत्तत्प्रमाणानुसारात् यन्त्रे केनाकरे क्रमात् ।

सस्थाप्य पाचयेत् सम्प्रग्यात्यविधि दिनव्रयम् ॥४३॥

घटिकाधिदिकवार कीली सङ्कलनाभिधाम् ।

भ्रामयेद्देगतो नित्यं केनवद् भवति क्रमात् ॥४४॥

यन्त्रात् केनमाहृत्य शक्तिसम्मेलनाभिधे ।

यन्त्रे नियोजयेत् पश्चान्नालपटकर्यथाकमम् ॥४५॥

शैवाल से आदि कर मुसलीपर्यन्त वस्तुओं को शास्त्र से शोधकर उस उसके मान के अनुसार फेन करनेवाले यन्त्रे क्रमशः रख तिन तक ढीक पकाने आधी घडीमें एकत्र सङ्कलनामक कीली को तुमाने, नियं वेग से तुमाने तो क्रम सेफेन जैसा हो जाता है, यन्त्र से फेन लेकर शक्ति-सम्मेलन नामकपन्न में नियुक्त हो दें पश्चात् छ. नालों से यथाकम—॥४२-४३॥

प्राणानादिस्कोटनास्थशक्त्यन्त क्रमशस्तुषी ।

तत्तस्यानुसारेण शक्तिस्मैकैत क्रमात् ॥४६॥

पूर्वोक्तनालतो यन्त्रस्थितफेनोपरिकमात् ।

सम्मेलयेद् यथाशास्त्रं सावधानामुद्भुष्टु ॥४७॥

समीकरणाचक्षस्य कीलकं पट्टिकान्वितम् ।

पाश्वे यन्त्रस्य विधिवद् भ्रामयेत् कालमानतः ॥४८॥

मन्दोद्यात् पाचयेत् पश्चादेवं यथाकमम् ।

प्राणानादिस्कोटनान्तशक्तिसयोजन दुष् ॥४९॥

कुर्यात् पृथक् पृथक् पश्चादातपे सम्निवेशयेत् ।  
 विद्युच्छक्ति संयोज्य पञ्चाशीतिप्रमाणतः ॥५०॥  
 तफेनमध्ये यन्त्रस्य नालात् सचोदयेच्छन्ते ।  
 तथा संपाचयेत् पश्चाद् दिनषट्क यथाविधि ॥ ५१ ॥  
 ततस्सुगृह्य तत्केन तद्यन्त्रात् सावधानतः ।  
 वाजीमुखाल्यलोहस्य पेटिकाया न्यसेद् ढडम् ॥ ५२ ॥  
 एव क्रमेण विधिवच्छब्दकेन विचारतः ।  
 कृत चेत् सर्वशब्दापकर्षणे कारयेत् स्वत ॥ ५३ ॥

प्राणन आदि रसोटनाल्य शक्ति तक कम से बुद्धिमान् उस उस की संख्या के अनुसार एक एक शक्ति को कम से पूर्णक नाल से यन्त्र में रखे फेन के ऊर यावधानी से बार बार मिलावे, सभी-करण-वरावर करने वाले चक्र की कील को पटिकासहित यन्त्र के पास में विधिवत् धुमावे काल के अनु-सार मन्दोषणा से पक्षावे फिर यथाकम हसो पकार प्राणन आदि रसोटनपर्यन्त शक्ति का संयोजन बुद्धिमान् पृथक् पृथक् करे, फिर धूर में रख दे ४५ प्रमाण से विद्युतशक्ति को सुसंयुक्त करके उस फेन के मध्य यन्त्र के नाल से धीरे धीरे प्रेरित करे-डाल दे, फिर उस से छँ दिन तक यथाविधि पक्षावे, फिर यन्त्र से फेन को लेकर वाजीमुखाल्यमक लोहे की पेटिका में बन्द कर रख दे, इस प्रकार कम से विधिवत् विचार से शब्दकेन यदि करे सब शब्दों का अपकरण आकरण करावे ॥ ४६—५३ ॥

वाजीमुखलोहमुक्तं लोहतत्रे—वाजीमुखलोहा कहा है लोहतन्त्र में—

शुल्वत्रयग्रहडदयधिवद्वाष्टकवीरद्वयकान्तत्रितय वरवभारिकमेकम् ।  
 कसारिकत्रितय वरपञ्चाननयट्कगोरीमुलद्वितय वरशुण्डालकषट्कम् ॥५४॥  
 एतान् दशवस्तुनतिशुद्धान् परिगृह्य शुण्डालकमूखामध्ये विनियोज्य ।  
 शूर्पास्यकुण्डोपरि सस्वाप्याय वज्राननभस्त्रेणाविगात्यार्किकव ज्ञातनयन्ते ॥५५ ॥  
 सम्पूर्णं च कीली तदसस्तकरणार्थं वेगेन आमयेदय शास्त्रोक्तविधानात् ।  
 क्रियते यद्येव वरवाजीमुखलोह प्रभवेदतिमुद्गुल लघु विगलवरणम् ॥५६॥ इत्यादि

ताम्बा ३ भाग, सोनामाल्यी २ भाग, द्विङ्गु-लोहाविरोध, कृष्णलोहा २ भाग, अयस्कान्त ३ भाग, वरवभारिक ? १ भाग, कंसारिक ? ३ भाग, गरपञ्चानन ? ६ भाग, गौरीमुख ? गौरीतेज—अन्नक २ भाग, शुण्डालक ? ६ भाग। इन दश शुद्ध वस्तुओं को शुण्डालमूखामुख के मध्य में भरकर शूर्पास्य—छाजसद्धा मुख्याले कुण्ड के ऊर रखकर वज्रानन—वअमुखभत्ता से गता कर आर्किकव ज्ञानन यन्त्र में भरकर उस रस के संस्कारार्थ कीली वेग से तुमावे यदि शास्त्रविधान से ऐसा किया जाता है तो श्रेष्ठ वाजीमुखलोहा अतिमृदु हल्का पिङ्गल रंग वाला हो जाता है ॥ ५४—५६ ॥

अथ पटप्रसारणयन्त्रम्—अथ पटप्रसारणयन्त्र कहते हैं—

उक्तवा शब्दाकर्षणाल्ययन्त्रमद्य यथाविधि ।  
 पटप्रसारण यन्त्र सप्रहेण निरूप्यते ॥ ५७ ॥

शब्दाकर्षणामक यन्त्र यथाविधि कहकर अब पटप्रसारण यन्त्र संचेप से निरूपित किया जाता है ॥ ५७ ॥

तदुकं क्रियासारे—वह वृत्त क्रियासार प्रथ में कहा है—

दिक्प्रभेदेन यानस्य गमनार्थं तयेव हि ।

अ (आ ?) पायोपायसङ्केतविज्ञानार्थं समाप्त ॥ ५८ ॥

पटप्रसारण यन्त्र क्रमाद् यानमुखे न्यसेत् । इत्यादि ॥

विशाखेद से विमानयन के जाने को तथा संचेप से थोड़े में प्रतिकूलवाधक अनुकूलसाधक के सङ्केतज्ञानार्थ पटप्रसारण यन्त्र क्रम से विमान की भुजाओं में लगा दे ।

तदुकं पटकल्पे—वह बात पटकल्प में कही है—

रक्तकृष्णात्वेतनीलपीतवर्णादिभिः क्रमात् ।

रञ्जितं पटमेकं तु कुर्याच्छास्त्रविधानत ॥ ५९ ॥

मुखारक्तलयाएगोमारी शम्बरस्तथा ।

शणेराजावर्तहृणकव्यादान् शास्त्रतः क्रमात् ॥ ६० ॥

त्रिवार शोधयित्वाय कृत्वा सूर्यपुटत्रयम् ।

पाचनायन्त्रमध्ये तदस्तून् सस्थाप्य शास्त्रत ॥ ६१ ॥

पाकमानानुसारेण त्रिविनं पाचयेत् क्रमात् ।

कुट्टिणीयन्त्रमध्येय तस्तगृह्य न्यसेत् तत ॥ ६२ ॥

यामत्रय कुट्टिणीकीलकचालनत क्रमात् ।

समीकृत्य यथाशास्त्रं पाचयेत् पुन चेत् ॥ ६३ ॥

पटक्रियायन्त्रमुखे स्थापयित्वा तत् परम् ।

कीलीचालनतस्सम्यगोतप्रोतात्मना क्रमात् ॥ ६४ ॥

समीकृत्याय विधिवत् पट कुर्यान्मोहरम् ।

सप्तवर्णादिभिस्सम्यग्रञ्जितं स्याद् यथा स्वत ॥ ६५ ॥

लाल काले सफेद मीले पीले बर्ण आदि से क्रमशः रंग एक पट (वस्त्र) शास्त्रविधान से करे । मूळ, अरण—लाल या आराक—लाल चन्दन, कल्याण—राल, गोमारी—गोमारी—लालबैंगन ?, शम्बर—लोध या अर्जुनवृक्ष की छात ?, शण—सन, राजावर्त—लाल फिटकरी, तुण्—दर्भ, कव्याद—जटामांसी ?, इन्हें शास्त्र से क्रमशः तीन बार शोधकर तीन सूर्यपुट कर दे, पाचनायन्त्र के मध्य में रखकर पाकप्रमाण्य-नुसार तीन दिन तक पकावे, फिर कुट्टिणी बन्त में रख कर कीली चलाने से समयक् ओत प्रोत एकीमात्र हो जाने से बाबर करके विधिवत् मनोहर पट बनावे फिर वह स्वतः सात रंग आदि से रंगा हुआ हो जावेगा ॥ ५६—६५ ॥

सगृहा तत्पट दीर्घदण्डे सवेष्टुच यास्त्रत ।  
 तद्वड त्रिमुखीनालयन्त्रे सन्धार्य यत्तः ॥ ६६ ॥  
 सकीलक यानभुजे स्थापयेत् सुहृद यथा ।  
 रक्षादिवरण्सक्लृप्तपटसन्दर्शनात् सुधी ॥ ६७ ॥  
 वर्णसङ्क्लेततोपायादीत् विज्ञाय यथाविधि ।  
 तिर्यगमनतो यान यन्ता दूरे नियोजयेत् ॥ ६८ ॥  
 तथैव इवेतपीतादिपटसञ्चालनक्रमात् ।  
 दिवप्रभेद सुविज्ञाय तत्सङ्क्लेतनुसारत ॥ ६९ ॥  
 विमान चोदयेत् प्राज्ञो नानागतिप्रभेदत ।  
 विमानरक्षणं तेन प्रभवेन्नात्र सशयः ॥ ७० ॥  
 तस्मादेतद्यन्त्रमुक्त समाप्तेन यथाविधि ॥ ७१ ॥ इत्यादि ॥

उस पट को लेकर लम्बे दण्डे पर शास्त्रानुसार लपेटकर उस दण्डे को त्रिमुखीनाल यन्त्र में जोड़कर कीलसहित विमानयान की भुजा में टढ़ा स्थापित करे, बुद्धिमान् जन रक्षादि रंग से सम्बन्ध रंगे पट के देखने से रंग संकेत से वायक आदि को जानकर यन्ता—चालक तिर्यक गमन से विमान को दूर नियुक्त कर देगा वेसे ही सफेद पीले आदि पट के सञ्चालन कम से दिशा भेद को जानकर उस संकेतानुसार विमान को नाना गतियों के भेद से विद्वान् प्रेरित करे, इस से विमानरक्षण हो जावे, इस में संशय नहीं अत यह यन्त्र संचेप से कहा है ॥ ६६—७१ ॥

अथ दिशाम्पतियन्त्र —अब दिशाम्पति यन्त्र का वर्णन करते हैं—

पटप्रसारणं यन्त्रमेवमुक्तव्य यथाविधि ।

सप्रद्वैरणं दिशाम्पतियन्त्रमद्य विविच्यते ॥ ७२ ॥

इस प्रकार पटप्रसारणयन्त्र यथाविधि कहकर संचेप से दिशाम्पति यन्त्र का अब विवेचन करते हैं ॥ ६३ ॥

ततुकं क्रियासारे—वह क्रियासार में कहा है—

- १ आकाशगमने व्योमयानस्याद्विदिशि क्रमात् ।
- २ प्रहाशुपथसन्धीनामन्तराले ऋतुक्रमात् ॥ ७३ ॥
- ३ प्रजायन्ते पञ्चदश कीवेराल्या प्रभञ्जना ।
- ४ तैविमानप्रयात् एगा चर्मसशोषणं भवेत् ॥ ७४ ॥
- ५ पश्चात् का (का ?) सादयो रोगास्सज्जायन्तेतिदु खदा ।
- ६ तस्मात् तत्परिहाराय विमानस्य यथाविधि ॥ ७५ ॥
- ७ दिशाम्पतियन्त्रमपि वामकेन्द्रभुजे न्यसेत् ॥ इत्यादि ॥

विमान के आकाशगमन में आठ दिशाओं में क्रम से प्रह और किरणों के मार्गों की सन्धियों के बीच में ऋतु क्रम से १५ कीवेराल्यक बायुपं हैं उनसे—उनके सर्व सेवन से विमान के यात्रियों

का चर्च में शोषण हो जावे परचान् खांसी आदि अतिदुखद रोग उत्पन्न हो जावे अतः उसके दूर करने के लिये विमान का दिशास्पति यन्त्र भी बामकेन्द्र भुजा में यथाविधि रखे ॥ ७३-७५ ॥

यन्त्रस्वरूपमुक्तं यन्त्रप्रकरणे—यन्त्रस्वरूप कहा है यन्त्र प्रकरण में—

कोवेरवातविषसशोषणार्थं यथाविधि ॥ ७६ ॥

विशास्पति प्रवश्यामि यन्त्र लोकोपकारकम् ।

चतुरश्च वर्तुल वा पीठ कुर्याद् यथाविधि ॥ ७७ ॥

पार्वणीदारणा द्रावमस्कृतेन त्रिघाकुमात् ।

कोवेर वायु के विष का संशोषण करने के लिये यथाविधि लोकोपकारक दिशास्पति यन्त्र कहुण्गा, चौकोन या गोल पीठ यथाविधि करे पार्वणी काढ से जो श्राव से ३ वार संस्कृत की गई हो ॥ ७६-७७ ॥

पार्वणीदारास्वरूपमुक्तमगतस्त्वलहर्यम्—पार्वणीदारु का स्वरूप कहा है अगतस्त्वलहरी में—

प्रति पर्वणि पर्वाणि प्रभवेदिकुदण्डवत् श्ल ॥ ७८ ॥

यस्मिन्नविरल तत् पार्वणीदार्वितीरितम् ।

रक्तवर्णं दीर्घपर्णं रक्तपुष्पविराजितम् ॥ ७९ ॥

सूक्ष्मकण्टकसयुक्तं भुजङ्गविषनाशनम् ।

अत्यन्तकुट्सारं च भूतप्रेतविनाशनम् ॥ ८० ॥

कृष्णपक्षे मुकुलितं पार्वणीदारुलक्षणम् । इत्यादि ।

जिस वृक्ष के प्रतिपर्व में पर्व—स्वसहरा भाग गने के समान अविच्छिन्न रूप में हो वह पार्वणी दारु कही गई है । लाल रंग वाला लम्बे पत्ते वाला लाल फूलों से विशेष भूषित सूक्ष्म काँटे वाला सर्व विष नाशक अत्यन्त कडवे मध्य भाग वाला भूत प्रेत निवारक कृष्णपक्ष में खिलने वाला पार्वणी दारु का लक्षण है ।

एकोनविशत्संस्थाकादपेणोन यथाविधि ॥ ८१ ॥

बाहुमात्रं नालशड्कुं नवद्वारसमान्वितम् ।

नवकीलसयुक्तं नवतन्त्रिभरन्वितम् ॥ ८२ ॥

कृत्वा सस्थापयेत् पीठमध्ये शार्कविधानतः ।

तन्मूलदेशतस्सम्यगीशान्यादिक्रमात् ततः ॥ ८३ ॥

श्रष्टदिक्षवष्टकेन्द्राणि कल्पयेत् समसञ्चया ।

विस्तृतास्य सूक्ष्मसूलं मध्ये वर्तुलरूपकम् ॥ ८४ ॥

वित्स्तिद्वयमायाम षड्वितस्त्युन्नत तथा ।

वित्स्तित्रयमायामवर्तुलं नालमध्यमे ॥ ८५ ॥

१६ वीं संख्यावाले दर्पण से यथाविधि भुजा के बराबर भाजशंकु—पोका शंकु नौ द्वारों से युक्त नौ कील पेंचों वाला नौ तारों से युक्त बना कर पीठ के मध्य में शास्त्रविधान से स्थापित करे उसके मूलस्थान से भली प्रकार ईशानी आदि क्रम से आठ विशाश्रो में आठ केन्द्र बनावे, समान संख्या से सुले मुख वाला सूक्ष्म मूल वाला बीच में गोल २ बालिशत लम्बा ६ बालिशत ऊँचा ३ बालिशत लम्बा चौड़ा गोल नाल के मध्य में—॥ ८१-८५ ॥

एव क्रमेण कर्तव्य नालाष्टकमत परम् ।  
 गणितोक्तविधानेन पत्राष्टकविराजितम् ॥ ८६ ॥  
 पदमेक कल्पयित्वा शहकुनोपरि विन्यसेत् ।  
 शहकुन्द्रध्रेष्वष्टुनालान् सम्यक् सन्धारयेद् दृढम् ॥ ८७ ॥  
 गोभि (वि ?) लोकप्रकारेणावरण शशाचमंगणा ।  
 नालाष्टकान्तवर्द्धे च कर्तव्य सप्रमाणात् ॥ ८८ ॥  
 माङ्गूलिकावल्कल तन्मूलमध्ये नियोजयेत् ।  
 नालस्थतन्त्रीसंगृह्य पदाष्टदलसन्धिषु ॥ ८९ ॥  
 सन्धारयेद् यथागास्त्र पदोपरि यथाकमम् ।

इस प्रकार क्रम से आठ नालें बनानी चाहिए—गणितोक्त विधान से आठ पत्रों—पंखडियों से विराजित एक कमल बनाना चाहिए, उसे शंकु के ऊपर रखदें, शंकु लिंगों में = नालें सम्यक् लगावे गोभिल के कहे प्रकारानुसार शशाचमंगण से आवरण आठों नालों के अन्दर और बाहिर सप्रमाण करना चाहिए। माङ्गूलिका वल्कल ? उसके मुखमध्ये लगा दें नालस्थ तारों को लेकर आठों पत्रों की संघियों में यथाशास्त्र पत्रों के ऊपर झोड़ दें ॥ ८८-८९ ॥

माङ्गूलिकावल्कलमुक्तं पटप्रदीपिकायाम्—माङ्गूलिकावल्कल पटप्रदीपिका में कहा है—

वासन्तीमृदरञ्जिकासुररचिकासवर्तकीफालुणी,  
 चञ्चोरारुणकान्तक मण्डूरिकामारिका ।  
 लङ्घारिकपिवल्लरी विषधरा सवालिकामञ्जरी,  
 रुमाङ्गा वरधुणिकाकिंगरुडागुञ्जावरीजञ्जफरा ॥ ६० ॥  
 एतेषा वरकापडपिञ्जुलिमय लडमञ्जरीक कमात्,  
 सप्राण्ह वरपाकयन्त्रमुखतस्समूर्य सम्पाचयेत् ।  
 कोञ्चद्रावकसेचनेन च युन. पाकेन सक्षालनात्,  
 तच्छाकोदितवर्तमना त्रिदिनतः पाकप्रमाणाद् यदि ॥ ६१ ॥  
 कुर्याच्चेदतिशुभ्रवर्णममल भद्रं मनोजमृजु,  
 श्रेष्ठाच्छ्रेष्ठतरं भवेत् सुमुख भ्राजूलिकावल्कलम् ॥ इत्यादि ॥

वासन्ती—पुष्टवृक्ष—जूही फूलवृक्ष, मूढ ? , रखिका—रखिनी—नागबल्ली या मधीठ या इरिद्रा, सुर—देवदार, रुचिका—रुचक—कागजी निम्नु, संवर्तकी—संवर्तक—वहेडा वृक्ष, फालुयी—झर्जुन वृक्ष, चञ्चोर चञ्चनुर—रक परण्ड, अरुणकान्त—सूर्यकान्त ? या अरुण—रकतुष्प तरु, कान्त—केसर या तुण ? , कुदलनी—कुदलि—अशमन्तक वृक्ष, मण्हरिका—मण्डूर ? —लाहमल, मारिका—मारक—शिगरफ या मारिच—कट्टोल वृक्ष, लङ्कारी—लङ्कारिका—असनग, कपिवलती—गजपिप्पली या कैथ, किषधरा ?—सवालिका ? संवाटिका—शिथाडा, मझरी—गथुतुसी या तिलवृक्ष या अशोक वृक्ष ? स्वमाङ्गा—स्वर्णङ्गा—महारवध वृक्ष—अमलतास, वरथुयिङ्का—श्रेष्ठ दियिङ्का ? —जल शिरीष वृक्ष, अर्क—आख, गरुडा—गरुडी—गहुची—गिलोय, गुंजा—चौटली, वरी—शताब्दी, या अवरी—अवरिका—धन्या ?, जक्करा—झर्जर—सुगन्ध द्रव्य विशेष ? इनके श्रेष्ठ कारण कोपल छाल वूर को लेकर श्रेष्ठ पाक यन्त्रमुख में भर कर पकावे कीद्वाद्रावक क्रोडव पदावीज रस ? डालने से फिर पकाने से शोधन से शास्त्रोक मार्ग से ३ दिन पकाने से शुभ वर्षा निर्भय भद्र मनवसन्द कोमल अति श्रेष्ठ सुमृदु मार्जूलिकावल्कल हो जावे ॥६०—६१॥

वातपामणिमाहृत्य पश्चान्मध्ये प्रकल्पयेत् ।  
 अंशुपादर्पण तस्य पुरोभागे ततो न्यसेत् ॥ ६२ ॥  
 कीवेरवातसंसर्गो दिवप्रेदक्रमात् स्वत ।  
 सम्भवेद यदि मार्तण्डकिरणेषु मनागपि ॥ ६३ ॥  
 तदाशुपादर्पणस्य मुख दिग्नुसारत ।  
 नीलरक्तभामिश्रवर्ण भवति नान्यथा ॥ ६४ ॥  
 दर्पणान्तरसन्धानात् तदिङ्गाय यथाविधि ।  
 कीलकान् नवसंख्याकान् भ्रामयेदतिवेगत ॥ ६५ ॥  
 एके कीलकवेगेन तत्तनालान्तरे क्रमात् ।  
 शक्तिसयोजनाच्चैव शशचर्मणि वेगत ॥ ६६ ॥  
 जायते सम्मार्गिकाकाश्या काच्चिद्विक्रिमहत्तरा ।  
 मार्जूलिकावल्कल तच्छक्तिमाहृत्य वेगत ॥ ६७ ॥  
 चोदयेत् पद्यपत्रेषु तत्तत्पत्राण्यपि तन्त्रिभि ।  
 तच्छर्च प्रे रथेद् वातपामणि स्वीयशक्तित ॥ ६८ ॥  
 वातपामणिः कीवेरविषवायुमत परम ।  
 सम्मार्गिकासहायेन पिवेदत्यन्तवेगत ॥ ६९ ॥  
 पश्चात् पशाष्टदलमध्यस्थनालमुखान्तरात् ।  
 कीवेरवातसम्बन्धविषयक्षयतिवेगत ॥ १०० ॥  
 लयमायति बाह्याकाशस्थवायी स्वभावतः ।  
 पश्चात् खेटस्थयन्तू रामारोग्य भवति ग्रुबम् ॥ १०१ ॥  
 तस्माद् दिशास्पतियन्त्रमेतदुक्तं यथाविधि ॥ इत्यादि ॥

फिर बातपा मणिको लेकर मध्य में रखे, अंशुणादर्पण उसके सामने बाले भाग में रखे। कौबेर बातसंसर्ग दिशाओं के भेद से स्वतः यदि सूर्योकरणों में थोड़ा भी हो जावे तो अंशुणादर्पण का मुख दिशा के अनुसार नीला लाल प्रभा चिन्हित वर्ण आला हो जाता है अन्यथा नहीं। दर्पण के अन्दर सम्मान से उसे यथाविधि जानकर नौ कीलों को अति बेग से घुमा दें एवं एक कील के बेग से और उस उस नाल के अन्दर शक्तिसंयोजन से शशाचर्म में सम्मार्धिणक—टक्कर लेने वाली अतिमहती कोई शक्ति उत्पन्न हो जाती है उस शक्ति को माङ्गूलिकावलकल लेकर बेग से पदापत्रों पदापत्र की पंख-डियों में प्रेरित करता है वे पदापत्र तारों के द्वारा उस शक्ति को बातपा मणि को अननो शक्ति से प्रेरित करे बातपा मणि को वैरेविष वायु को सम्मार्धिणिका के सहाय से अतिवेग से दीनी है पञ्चात् पदम के आठ दलों में स्थित नालमुख के अन्दर कौवेविषाका से सम्बन्ध रखने वाली विषराक्ति वायु वायु में लय को प्राप्त हो जाती है पञ्चात् विमान के चालक यात्रिओं को अरोगता हो जाती है अत दिशाम्पति अन्त यथाविधि कहा है ॥ ९२-१०१ ॥

एकोनविंशति दर्पणमुक्तं दर्पणप्रकरणे—दर्पणा प्रकाश मे १६वा दर्पण कहा है—

उत्तरगत्वक् पञ्चमुख व्याघ्रदन्त च संकेतम् ।  
 लवणा पारद सीस चेति निर्यासमृतिका ॥ १०२ ॥  
 स्फटिक रुक्ष वीर मृणाल रविकर्पटिम् ।  
 चञ्चोल बालज पञ्चप्राणका (स?) र शशोङ्गपम् ॥ १०३ ॥  
 त्रिसत्पञ्चद्विविशचतु ष पञ्चदशस्तथा ।  
 द्विपञ्चविशति स्सप्तविशत् पञ्चदशस्तथा ।  
 चत्वारिंशत् त्रयोविशत् सप्तविशत् त्रयोदश ॥ १०४ ॥  
 एकोनविशाष्टदशभागसत्यानुसारत ।  
 त्रिवार शोधयित्वा षष्ठादशस्तून् यथाविधि ॥ १०५ ॥  
 मत्स्यमूषुले सम्यगादूर्यं विधिवत् तत ।  
 नलिकाकुण्डमध्ये सत्यापयित्वा दृढ़ यथा ॥ १०६ ॥  
 एकोनशतकद्योषणप्रमाणेन यथाविधि ।  
 गालयेद् गोमुखीभस्त्रात् पञ्चाद यन्त्रमुखे न्यसेत् ॥ १०७ ॥  
 एव कृते पिञ्जलाल्यदर्पणे भवति दृढम् ।  
 एतदेकोनविशत्संस्याकमिति शास्त्रे भिवर्णितम् ॥ १०८ ॥

उत्तरगत्वक्—नागकेसर वृक्ष की छाल या सांप की केंचुली, पञ्चमुख ?—बासा ? या जवाकुम्भ ? या लोहा विशेष, व्याघ्रदन्त ?, सेक्त—शिंगरक, लवण, पारा, सीसा, निर्यास—लास ?, मृत्तिका—सौराष्ट्र द्वितिका ? या गेह ?, स्फटिक—स्फटिक मणि, रुक्ष—यनरोहेडा या हरिण शृङ्ख, वीर—लोहा ? या सिन्धूर, मृणाल—सस (ठण्डी घाममूल ) या कामलमूल, रविकर्पट ?—ताम्बे का पत्तर या आख की

हई ? चक्रोल—चन्द्रुलु—लाल एरण्ड ? बालज-सुगम्यबालासर्व, पांचों प्राणक्षार-मनुष्य घोडा  
गधा बैल वक्री के मूर्त्ती का ज्ञार नवसादर, शशीकुप—लोध काष्ठ । क्रमशः ३, ७, ५, २२, ४, १५, २,  
५, २०, ७, ३०, १५, ४०, २३, २७, १३, १६, १८ भागों के अनुसार इन १२ वस्तुओं को तीन बार  
शोथकर मत्स्यमूषा मुख बोतल में विधिवत् भर कर नलिकाकुण्ड के मध्य में रख कर हृद दर्जे की उष्णता  
से यथाविधि गोमुखी भट्टा से गलावे पश्चात् यन्त्रमुख में ढाल दे ऐसा करने पर पिङ्कलास्य दर्पण हो  
जावेगा यही १६वीं संख्या वाला दर्पण शास्त्र में वर्णित किया है ॥ १०३-१०८ ॥



हस्तलेख काशी संख्या १५—

अथ पट्टिकाभ्रकयन्त्रम्—अब पट्टिकाभ्रक यन्त्र कहते हैं।

एवमुवत्वा सगद्देण दिशाम्पतिमत परम् ।  
पट्टिकाभ्रकयन्त्रस्वरूपमत्र निरूप्यते ॥१॥

इस प्रकार ‘दिशाम्पति’ यन्त्र संचेप से कहकर अब आगे, ‘पट्टिकाभ्रक’ यन्त्र के स्वरूप का निरूपण किया जाता है।

तदुक्तं कियासारे—वह यह कृत ‘क्रियासार’ प्रथ में कहा है—

ग्रहसञ्चिसमुद्भूतज्वालामुखविनाशने ।  
पट्टिकाभ्रकयन्त्र च यानावरणमध्यमे ॥२॥  
स्थापयेद्विधिवद् धीमान् सर्वदुखविनाशनम् ।

प्रहों की सन्धि में प्रकट हुए ज्वालामुख-अति ज्वालनशक्ति के विनाश निर्मित पट्टिकाभ्रक यन्त्र को भी यानावरण के मध्य भाग में बुद्धिमान् स्थापित करे जो कि सर्वदुखों का विनाशाधन है।

उक्तं हि यन्त्रसर्वस्ये—यन्त्रसर्वस्व प्रथ में कहा ही है—

ग्रहसञ्च्चारमार्गेषु ग्रहाणा तु परस्परम् ॥३॥  
एकरेखाप्रवेशेन ग्रहसञ्चिर्भवेदत ।  
ज्वालामुखाभिधा क्व काचिद्विवशक्ति प्रजायते ॥४॥  
यानारूढास्तया सर्वे मरिष्यन्ति न सशय ।  
तस्मात्तच्छक्तिनाशाय सग्रहेण यथाविधि ॥५॥  
पट्टिकाभ्रकयन्त्रस्वरूपमत्र निरूप्यते ।  
शृतीयवर्गभिकेषु शृतीयाभ्रकत कमात् ॥६॥  
कारयेत्पट्टिकाभ्रकयन्त्र शास्त्रविधानत ।

प्रहों के सब्बरण मार्गों में प्रहों के परस्पर एकरेखाप्रवेश से ग्रहसञ्चि होती है अतः वहाँ ज्वालामुखनामक कोई विषयशक्ति-धातक विप्रयोगशक्ति विस्तृद्ध संयोग-वर्णण वा घट्टर्दाह ।

\* वा (हस्तलेख)

† “विष विप्रयोगे” (क्रादि०) विद्व संयोग-वर्णण वा घट्टर्दाह ।

यान-स्वेषमयान या विमानयान पर सबार हुए सब निःसंशय मर जायेंगे । अतः उस विषयाचिकि-विस्तृद्ध योगवाली शक्ति के नाशार्थ संज्ञेत से पट्टिकाभ्रकपन्त्र का स्वरूप आज-अब विधिवत् निरूपित किया जाता है । हतीयवर्ग के अध्रकों में कमानुसार हतीय अध्रक से शास्त्रविधान से पट्टिकाभ्रकपन्त्र करावे—बनवाए या करे बनवावेह ॥३—६॥

तदुकं शौनकीये—यह शौनकीय वचन में कहा है—

प्रथ तृतीयवर्गस्थाभ्रकनामान्यनुकमिष्यामो + शारदपङ्क्लसोममार्जा-  
लिकरक्मुखविनाशका इति । सोमेनैवेतदिति + केचिद् ॥

अब हतीय वर्गवाले अध्रक नामों को कहेंगे शारद, पङ्क्ल, सोममार्जलिक, रक्मुख, विनाशक या रक्मुखविनाशक । सोम से ही करे देसा कुछ आशाय करते हैं । ( सोम की हतीय संहिता है ) ।

सोमाभ्रकलक्षणमुक्तं लोहतन्त्रे—सोम नाम के अध्रक का लक्षण लोहतन्त्र में कहा है—

मेघवर्णाऽतिसूक्ष्मशब्दं सुहृदो रसपस्तथा ।  
नेत्ररोगहरस्स्पर्शाद् देहे शीतलदो भवेत् ॥ ७ ॥  
वज्जगभां ब्रणहरं मूत्रकुच्छविनाशकत् ।  
सर्वत्र रक्तरेखाभि॒ सावर्तेस्मुविराजित् ॥ ८ ॥  
एतलक्षणासमुक्तो सोमाभ्रक इतीरित ।

मेघ के समाज रंगवाला अवत्सस्क्रम—अवत्सत पतले दलवाला हठ रसप परे को अन्दर पीप हृप × नेत्ररोग हर रस्ते से वेह में ठण्ड करनेवाला वज्जयुक्त धाव को हरनेवाला मूत्रकुच्छविनाशक सब और गोल लाल रेखाओं से युक्त हो, इन लक्षणों वाला सोम अध्रक कहा गया है ।

रसमातातीजेतादभ्रक शोधयेद्विषाङ्कं ॥ ९ ॥  
वितस्तिद्वयमायाम बाहुमात्रोन्नत तथा ।  
गालयित्वाभ्रकं पश्चात् पट्टिकां कारयेत् तत् ॥ १० ॥  
आदी कुर्यात् कृमंपीठ वारिवृक्षस्य दाशणा ।  
घोडशाङ्गुलविस्तीर्णं बाहुमात्रोन्नतं कमात् ॥ ११ ॥  
कुर्याच्छङ्कुपट्टिकाकारेण शास्त्रविधानतः ।  
प्रदक्षिणावर्तेशीलचक्राणि तदनन्तरम् ॥ १२ ॥  
शौण्डीरमणियुक्तानि तस्मिन् सन्धारयेत्ततः ।  
तन्त्रीन् सन्धारयेत् पश्चात् पूलकेन्द्राद् यथाक्रमम् ॥ १३ ॥

‡ एिच् प्रयोग सामान्यस्वर्ण में ।

† उत्पाठः प्रयोग शूलप्रदये पुरातन प्रयोगो यदा ५०८प्रयोगः ।

+ सोमेनैवेत् ? ( शूलपाठे )

× इसप्राकृत नाम भी कृष्णाभ्रक का भेद है ।

\* इविषा या द्विषा ।

अधक को इसमात्रावीज तैल रस—हिङ्गल और मातावीज—आखुकणी या इन्द्रवारुणी के बीज के तैल से विधि से या दो बार, शोषे फिर अन्नक को गताक दो वितरित—शाकिशतमात्र लम्बी खीझी बाहु—हाथ भर ऊंची पटिक बनावे । प्रथम कूर्मीठ (नीचे का स्थान) घारिवृक्ष—हीवेर—सुगन्ध वाला बरत्ता ? बुक्ष की लकड़ी से सोलह अङ्गुल लम्बा बहुमात्र ऊंचा शङ्खपटिकाकर से शास्त्रानुसार बनावे, पुनः सीधी धूमनेवाले कीलचक विधिवत् शैयैदीर मणिः से युक्त कील चक्र लगावे उस शंकु में लगावे, पश्चात् मूलकेन्द्र से तन्त्रियो—तारों को लगावे ॥ ५—१३ ॥

आपटिकान्त विधिवत्कीलचक्रानुसारत ।  
 पश्चात्दबागे दन्तपात्र स्थापयित्वा तत् परम् ॥ १४ ॥  
 शैवालद्रावक तस्मिन् सम्भूयं रविचुम्बकम् ।  
 पारद च न्यसेत् पश्चात् तन्त्रीनाहृत्य शास्रत ॥ १५ ॥  
 तस्मिन् सन्धारयित्वाथ शृंगिणाच्छाद्य नालत ।  
 तन्नालमूलमाकाशे ढढ सन्धारयेत् कमात् ॥ १६ ॥  
 प्रदक्षिणाचर्तवीकीलपञ्चचक्रैविराजितम् ।  
 पूर्वोक्तभृकुण्डकु तलीठमध्ये ढढ यथा ॥ १७ ॥

पुनः पटिकार्पवन्त चक्रों के अनुसार दन्तपात्र—जिस में दान्ते हों—दान्ते लगे हों चक्रों को धुमाने के लिए उसे स्थापित करके पुनः उस दन्तपात्र में शैवालद्रावक को भर के पश्चात् रविचुम्बक—सूर्यतेज को खीचने वाले सूर्यकान्त और पारा ढाले तन्त्रियो—तारों को लेकर शास्त्रानुसार उस में बन्द कर शृङ्खी ? में नाल से ढक कर, उस नाल के मूल को आकाश में ढढ लगावे धूमनेवाले पांच कीलचक्रों से वह नालमूल युक्त हो, जिस से पूर्व कहा अधक शङ्ख पीठ के मध्य ढढ रहे ॥ १४—१७ ॥

स्थापयित्वा तस्य मूर्ध्णं पटिका द्रवशोथिताम् ।  
 सन्धारयेद् यथाशास्त्रं यानावरणमध्यमे ॥ १८ ॥  
 यदा सन्ध्यन्तराज्जवालामुखशक्तिस्त्वभावत ।  
 सम्भूयं व्योमयानस्य मार्गान्तं प्रसार्यते ॥ १९ ॥  
 कीली सन्धारयेच्छ्रद्धकुमूलकेन्द्रे तदा तुष्ट ।  
 तेन तन्त्रीमुखाच्छ्रौत्यवेगस्पन्दनसंयुतः ॥ २० ॥  
 द्रवपात्रासमुत्थाय पञ्चक्रमुखान्तरात् ।  
 पूर्वोक्तपटिकामूलकेन्द्र प्रविशति स्वयम् ॥ २१ ॥  
 पश्चात्तन्त्रमुखमासाद्य शक्तिं ज्वालामुखाभिधाम् ।  
 समाकृष्णातिवेगेन पटिकामूलकेन्द्रतः ॥ २२ ॥

‡ शैयैदीर मणि आगे कहीं हुई कृतिमणि है ।

† शृंगिणा ? ( हस्तलेखे पाठः )

उस शङ्कु की मध्य में द्रवशोधित आञ्चकपट्टिका को स्थापित करे व्योमयान के आवरण के मध्य भाग में शाश्वानुसार जोड़ दे । जब प्रहमाणों के सन्धिरेखास्थान से ज्ञालामुख शक्तिश्वभाव से प्रहमाणों से परस्पर मिलकर व्योमयान के मार्ग तक प्रसारित की जाती है तब बुद्धिमान् विद्वान् शङ्कमूल के केन्द्र में कीली को लगावे—बन्द करे उस से तन्त्रिमुखता के सिरे से शीतता का वेग स्पन्दन करता हुआ पांच चक्रों के मुख जिस में लगे हैं उस द्रावकपात्र से उठकर पूर्वोक्त पट्टिकामूलकेन्द्र में स्वयं प्रवेश करता है । पश्चात् उस मुख को प्राप्त कर ज्ञालामुखनामक शक्ति को पट्टिकामूलकेन्द्र से अतिवेग से स्त्रीचकरन् । १८-२२।

प्रदक्षिणागवर्तकीलमध्यस्थितमणी कमात् ।  
सङ्घोदयति वेगेन तच्छक्ति तदनन्तरम् ॥२३॥  
तन्मणिणस्त्रीयवेगेन समाकृष्टातिवेगत ।  
सम्पूरयेन्नालमुखे तन्म्लात् लय भजेत् ॥२४॥  
तेन यानस्थयन्तृणामपमृत्युविनाशनम् ।  
भवेत्स्मात्पट्टिकाभ्रकयन्त्र यथाविधि ॥२५॥  
यानावरणामये संस्थापयेदतिशीघ्रतः ॥ इत्यादि ॥

पुन क्रम से सीधी घूमनेवाली कील के मध्यस्थित मणि में उस शक्ति को वेग से प्रेरित करता है । वह मणि अपने वेग से अतिवेग से शीघ्र कर नाल के मुख में भर देती है उस नालमुख से वह आकाश में लय को प्राप्त ही जाती है नष्ट हो जाती है इससे विमानयान में बैठे चालकयात्रियों के घटना से मृत्यु अकाल मृत्यु का नाश—अभाव हो जाता है । अतः पट्टिकाभ्रकयन्त्र यथाविधि अतिशीघ्र विमानयान के आवरण में संस्थापित करे ॥२३—२५॥

सूर्यशक्तयपकर्षणयन्त्र—  
इयेवमुकुत्वा पट्टिकाभ्रकयन्त्र यथाविधि ॥२६॥  
सूर्यशक्तयपकर्षणयन्त्रमद्य प्रकीर्त्यते ॥

इस प्रकार पट्टिकाभ्रकयन्त्र यथाविधि कहकर अब सूर्यशक्ति को अपकर्षित करनेवाला सूर्य-शक्तयपकर्षणयन्त्र करते हैं ।

तदुक्तं कियासारे—वह यह कियासार प्रन्थ में कहा है—  
शरदेमन्तयोदयैत्यपिरहाराय केवलम् ॥२७॥  
सूर्यशक्तयपकर्षणयन्त्र यानोपरि न्यसेत् ।

शरद् और हेमन्त ऋतु की शीतता के परिहार के लिये ही सूर्यशक्तयपकर्षणयन्त्र विमानयान के ऊपर रखे—जड़े ।

उक्तं हि यन्त्रसर्वस्वे—कहा ही है यन्त्रसर्वस्व प्रन्थ में—  
शरदेमन्तयोदयैत्यनिवृत्यर्थं यथाविधि ॥२८॥  
सूर्यशक्तयपकर्षणयन्त्रमद्य निष्पृष्टते ।  
सप्तविशतिकादर्शात्सूर्यशक्तयपकर्षणयन्त्रम् ॥२९॥  
यन्त्रं कुर्याद् यथाशास्त्रमन्यथा निष्कलं भवेत् ।

शरद् और हेमन्त अनुओं की शीतला की निवृत्ति के अर्थ यथाविधि सूर्यशक्तिपक्षयायन्त्र अब निरूपित किया जाता है। साताईसवें ? आदर्श से सूर्यशक्तिपक्षक्षयन्त्र शास्त्रानुसार करे अन्यथा निष्कल हो जावे।

सदुकं दर्पणप्रकरणे—वह दर्पणप्रकरण में कहा है—

स्फटिकमञ्जुलेनसुवर्चात् सैकतपारदगरदकिशोरात् ।  
गन्धकरुद्ग्राणशारान् रविशशिपञ्चमुखामरपङ्कात् ॥३०॥  
रविवमुदिहनकश्रविभागान् वेदानलसागरवसुभागान् ।  
सायकपादपश्चूतविभागान् वसुमुनिनिधिनेत्रविभागाशान् ॥३१॥  
एतात् शुद्धात् चतुर्दशवस्तून् तत्तद्वागांशानुकमेण ।  
सम्पूर्णान्तमुखमूष्याया तच्छ्रुकमुखव्यासाटिकामध्ये ॥३२॥  
सञ्ज्ञात्योषणरसं पश्चात्सगृह्यान्तमुख्यन्त्रविले ।  
शीघ्र सम्पूर्योक्तविधानात्कीलकचक्र भ्रमयेद् वेगात् ॥३३॥

स्फटिकमणि या फिटकझी, मजीठ, समुद्रफेन, सज्जीकार, हिंगुल-सिंगाक, पारा, गरद-बछनाग, तलपर्णी, गुञ्जा गन्धक, हरिताल, प्राणकार—नवसादार ? ये सब कमशः १२, १, ५, १, १३, ..., १३, ८, १०, २७, ४, ३, ७, ८, ५, १, ५, ८, ३, ६, २, भागाशों के अनुक्रम से इन १४ शुद्ध वस्तुओं को लेकर अन्तमुखमूष्याका में भरकर शुक्रमूष्यमूष्या के मध्य में गताकर फिर गरम तरल को लेकर भीतर मुख वाले छिद्र में शीघ्र भरकर छीलचक्र को बेगा से घुमावे।

सूक्ष्मात्सूक्ष्म मुडुल शुद्ध पिङ्गलवर्णं भारविहीनम् ।  
भद्र स्पश्चाच्छ्रीतविमान मूत्रव्याधिविनाशकर च ॥३४॥  
प्रभवेद् रविशक्तिपक्षयायन्त्रणमेव क्रियते यदि सिद्धम् ॥ इत्यादि ॥

अतिसूक्ष्म मुडुल शुद्ध पिङ्गलवर्ण भारहीन भद्र स्पर्श से शीत विमान मूत्रव्याधिका नाशक हो जावे रविशक्तिपक्षदर्पणे इस प्रकार किया जाता है जब कि सिद्ध होता है।

अशीत्यङ्गुलमायाम विशात्यङ्गुलविस्तृतम् ।  
एकाङ्गुलघनादेतदर्पणात् पट्टिका ढगाम् ॥३५॥  
कृत्वा पश्चाद् यथाशास्त्र तस्मिन् केन्द्रये क्रमात् ।  
प्रकल्प्य विश्वनालद्वय बाहुसमं ततः ॥३६॥  
दशाङ्गुलास्य तदर्पणतः कुर्याद् दृढं यथा ।  
अर्थचन्द्राकृति पीठ नालरूपमतः परम् ॥३७॥

अस्ती अंगुल लम्बे लीस अंगुल चौड़े एक अंगुल मोटे दर्पण से दृढ़ पट्टिका बनाकर फिर यथाशास्त्र क्रम से उसमें केन्द्रत्रय में दो नालों को बाहु के समान विश्वित् फिर उस दर्पण से दशाङ्गुल मुख वाले बनावे, अर्द्धचन्द्राकृतिवाला नालरूप पीठ रखे ॥३८—३९॥

- † नसार नरसार भी कहते हैं प्राणों का या प्राणियों का कार प्राणकार नीसावर है। ( रसतरङ्गी )
- \* ऐतीशी पीसी मिट्टी तुवराल शरण मिलाकर बनी बोतल ( रसतरङ्गी )

रचयेद्वर्तुलं पश्चाच्चतुरस्तमथापि वा ।  
 वितर्सितद्वयमायाम् पद्मवितस्त्युनतं तथा ॥३८॥  
 पीठान्तर च तेनैव कृत्वा तस्मिन्नन्त. परम् ।  
 अर्धचन्द्राकृतिं नालपीठ सन्धारयेद् दण्डम् ॥३९॥  
 पाश्वर्योरुभयोस्तस्य नालद्वयमय कमात् ।  
 सन्धायं मध्येऽष्टाशीत्यद्गुलायाम नवैव च ॥४०॥  
 अद्गुलत्रयविस्तार शाङ्कुमेक हृष्णसेत् ।  
 पूर्वोक्तपट्टिका तस्य शिरोभागे हृष्ण यथा ॥४२॥  
 स्थापयेद्विधिवत् पश्चात् तस्य केन्द्रवये कमात् ।

उस पीठ को गोल बनावे या चतुर्छोण बनावे, दो बालिशत लम्बा चौड़ा छ बालिशत मोटा दूसरा पीठ भी उसी से करके उसमें फिर अर्धचन्द्राकृति नाल पीठ दण्ड रूप से जोड़ दे उसके दोनों पश्वों में—दोनों आसास भागों में दो नाल कम से जोड़कर मध्य में अठासी अंगुल लम्बा तीन अंगुल चौड़ा मोटा एक श कुट्टरूप में लगादे फिर वह पूर्व कही पट्टिका उसके शिरोभाग अर्धान् सिरे पर विधिवत् हृष्ण स्थापित करदे फिर कम से केन्द्रवय—तीनों केन्द्रों पर—॥३८-४१॥

तदर्पणकृतान् पद्मदलवद् दलसम्मितात् ॥४२॥  
 मध्ये च (छ ?) वक्षसयुक्तान् सञ्चिदात् द्विमुलाकृतीन् ।  
 पश्चाकारान् सुसंधायावर्तकीलशाङ्कुभिः ॥४३॥  
 बधीयात् सुट्ठु पश्चाच्छैवालद्रावक तथा ।  
 श्रुणिद्रव च सशुद्ध सप्रमाणा यथाविधि ॥४४॥  
 नालद्वयेष सम्पूर्यं तस्मिन् छायामुल मणिम् ।  
 न्यसेत्तज्ज्वल्कुप्त्वेऽयं यजोत्सनाद्राव न्यसेत् कमात् ॥४५॥  
 शैत्यापहारकान् तन्त्रीन् सकीलान् मञ्जुलावृतान् ।  
 यजोत्सनाद्रावकमध्ये सस्थापयेदय बन्धयेत् ॥४६॥  
 तन्त्रीन् पाश्वर्यस्थानालमध्यादाहृत्य शास्त्रत ।  
 पट्टिकापाश्वर्यकमलकेन्द्रयोरुभयो कमात् ॥४७॥  
 सवेष्टु च पुनस्तरकेन्द्राभ्यामाहृत्य यत्नत ।  
 पट्टिकामध्यकमलमावैष्ट्याय पुनः कमात् ॥४८॥

द्वयपत्र की भाँति पत्ते के आकार में उस दर्पण के बने हुए—बीच में पत्रयुक्त सच्छिद्र दो सुखों की आकृतिवाले पश्चरूप—कमलरूप जैसों को रखकर या जड़कर घुमानेवाली कीलोंवाले शंकुओं से सुन्दर बानव दे पश्चात् शैत्यालद्रावक—जलकाई का द्रावक और अृणि—शृणि या सृणि का द्रव १—तीलाथोथा शुद्ध यथाविधि मापसहित हो नालों में भरकर उस छायामुखमणि ? को ढालदे कम से शंकुमूल में ऊत्सनाद्राव—मालकंगनी का तैल फिर शीतला हृदयनेवाले

कीलसहित तन्वी तारों को जो मञ्जुलों—अंजीरों से आयृत हों अंजीर यहां गोली हो सकती है उन तन्त्रियों—तारों को ज्योत्स्नाद्वावक में रख दें और बाष्पदे, उन तारों को शास्त्रानुसार पाशवैवाले नाल में से निकालका पट्टिकापाशबों के कमलाकार बाले स्थानों के दोनों केन्द्रों में लपेटकर पुनः उन केन्द्रों से यत्नपूर्वक निकालकर पुनः कमरा पट्टिकामध्यकमल पर लपेट कर—

तत्पश्चाद्ग्रामगतस्तन्त्रीन् समाहृत्य यथाविधि ।  
 शड्कमूलस्थितज्योत्स्नाद्वावके सन्निवेशयेद् ॥४६॥  
 पश्चान्नलालान्तरात्तपात्रमाच्छाद्य समयत ।  
 तन्नालमूलाभोभागे व्योम्निं प्रकल्पयेत् ॥५०॥  
 यदा हैमन्तर्यात्तिरशैत्यव्याप्तिर्विमानके ।  
 हृष्येन तत्क्षणादेव शड्कमूलस्थित क्रमात् ॥५१॥  
 बृहच्कमुख कील भ्रामयेदतिवेगत ।  
 पूर्वोंतपट्टिकाकेन्द्रस्थिततन्त्रीप्रचालनम् ॥२५॥  
 भवेत्तेनातिवेगेन पाशवैस्थकमलान्तरात् ।  
 सम्भ्रूयात्यन्तचलनाद् वायुशैत्य प्रकर्षति ॥५३॥  
 तच्छैत्यं पुनराहृत्य तदायुरतिवेगत ।  
 पट्टिकामध्यकमलच (छ?)यके तन्त्रिभिस्त्वयम् ॥५४॥

उसके पिछले भाग से तारों को यथाविधि समेटकर या लेकर शंकुमूल में पढ़े ज्योत्स्नाद्वावक-मालकंगुनीतैल में डाल दें। पुनः दूसरे नाल से पात्र को सव और से पूरा ढककर उस नालमूल को यान के नीचले भागताले आकाश में युक्त कर दें। जब हैमन्त शिशिर ऋतुओं की शीतता की व्याप्ति विमान में दिखला इ पढ़े तो तत्क्षण ही कम से शकुमूलस्थित वडे चक्र मुखवाली कील—पेंच को अतिवेग से घुमादो तो पूर्वोंतपट्टिकाकेन्द्रस्थित तार चल पढ़े उससे अति वेग से पाशबों में स्थित दूसरे कमल से मिलकर अत्यन्त चलन से वायु शीतता को खीच लेता है फिर उस शीतता को खीचकर वह वायु अतिवेग से पट्टिकामध्यकमलवाले चपक पात्र में स्थान तारों से—॥४६-४४॥

सयोजयति वेगेन पश्चान्नालद्वायन्तरे ।  
 प्रविशेत्तच्छैत्यवित पश्चान्नालसस्थितौ ॥५५॥  
 शौवालशृणिनामातो द्रावकावतिवेगत ।  
 तच्छैत्यशक्तिमाहृत्य वायामुखमणों क्रमात् ॥५६॥  
 वेगेन सयोजयत् पश्चादत्यन्तवेगतः ।  
 तन्मणिस्त्वीयवेगेन तच्छक्तितन्त्रिमि. क्रमात् ॥५७॥  
 शड्कमूलस्थितज्योत्स्नाद्वावके सन्निवेशयेत् ।  
 द्रावकाद् व्योम्निं तन्नालात्तच्छक्तिलंयमेष्ठते ॥५८॥  
 पश्चात्तच्छैत्यसम्बन्धविवालाशो भवेद् ध्रुवम् ।

तेन यानप्रयाणूणामत्यन्तमुखदं भवेत् ॥५६॥

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सूर्यशक्तयपकर्षकम् ।

यन्त्र स्स्थापयेद् यानोपरि शास्त्रविधानत ॥६०॥ इत्यादि

दो नालों के अन्दर संयुक्त करता है फिर वह शैत्यशक्ति नालस्थ शैवाल और सुणिनामक प्रावकों में अतिवेग से प्रविष्ट हो जाती है, उस शैत्यशक्ति को क्रम से स्त्रीबकर छायामुखमणि में वेग से मंयुक्त करते हैं वह मणि अपने वेगसे उस शक्तिको क्रम से तारों के द्वारा शंकुमूलस्थित ज्योत्स्नाद्रावक में डाल दे, द्रावक आकाश में उस नालसे शक्ति लग-नाश को प्राप्त होती है। पश्चात् उस शैत्यसम्बन्ध विप्रयोग-पातकप्रभाव का निश्चय नाश हो जाता है। इससे व्योमयान के यात्रियों के लिये अत्यन्त मुख्यद हो जाता है अत र्सवप्रयत्न से सूर्यशक्तयपकर्षक यन्त्र को व्योमयान के ऊपर शास्त्रांवधि से संस्थापित करे ॥५५-६०॥

### अपस्मारधूमप्रसारणयन्त्र—

इत्युक्त्वाशास्त्रविधिना सूर्यशक्तयपकर्षकम् ।

अपस्मारधूमप्रसारणयन्त्रमतः परम् ॥६१॥

सग्रहेण प्रवक्ष्यामि यथाशस्त्र यथामति ॥

यह शास्त्रविधि से सूर्यशक्तयपकर्षकयन्त्र कहकर अपस्मारधूमप्रसारणयन्त्र यहां से आगे शास्त्रानुसार यथामति संचेप से कहांगा ।

उक्तं हि क्रियासारे—कहा ही है क्रियासार प्रवृत्ति में—

स्वकीयव्योमयानस्य विनाशार्थं यदा क्रमात् ॥६२॥

परेवा व्योमयानावरणे च प्रभवेद् यदि ।

तन्निवारयितुः वेगात् सन्धिनालमुखोत्तरे ॥६३॥

यानस्य स्थापयेद् धीमान् यानतत्त्वविदां वरः ।

अपस्मारधूमप्रसारणयन्त्रं हठं यथा ॥६४॥ इत्यादि

अपने व्योमयान—विमान के विनाशार्थं जब क्रमशः दूसरों के—शत्रुओं के व्योमयानों का चेरा यदि प्रबल हो जावे उसे इटाने के लिये वेग से सन्धिनालमुख के उत्तर में व्योमयान के यानतत्त्व-वेत्ताओं में श्रेष्ठ बुद्धिमान् अपस्मार धूमप्रसारणयन्त्र को हठरूप में स्थापित करे ॥६५-६६॥

उक्तं हि यन्त्रसर्वत्वे—कहा ही है यन्त्रसर्वत्व में—

स्वयानरक्षणार्थाय परयानैर्याविधि ।

अपस्मारधूमप्रसारणयन्त्रं प्रचक्षते ॥ ६५ ॥

क्षीण्डीरलोहात् कर्तव्यप्रेतदद्यन्तं न चान्यथा ।

कृत्वा चेदन्यलोहेन स्वयानं नाशमेष्टते ॥ ६६ ॥

अपने विमान के रक्षणार्थं दूसरों के यानों के द्वारा विकि के अनुसार अपस्मार धूमप्रसारण

यन्त्र कहते हैं, ज्ञानीर लोहे से यह यन्त्र बनाना चाहिए अन्यथा नहीं, अन्य लोहे से करके स्वयं नाश को प्राप्त हो जाता है ॥ ६५—६६ ॥

ज्ञानीरलोहमुक्त लोहतन्त्रे — ज्ञानीरलोह लोहतन्त्र में कहा है—

द्विद्वाष्टक पारदपञ्चक च वीरवर्यं कौञ्जिकसप्तक तथा ।

कान्तव्रय हसचतुष्यं च माध्यीकमेक रुपञ्चक कमात् ॥ ६७ ॥

एतान् विशुद्धान् वरसूषिकाया सम्पूर्यं छत्रीमुखकुण्डमध्ये ।

सस्थाप्य पदचात्सुरसाख्यभस्त्रात् सगालयेत् कक्षयशातोष्णवेगात् ॥ ६८ ॥

पश्चात्समाहृत्य शर्नेशनै क्रमात् सम्पूर्येद् यन्त्रमुखे च तदसम् ।

एव कृतेष्यन्तमनोहरं दृढ़ ज्ञानीरलोह प्रभवेद् विशुद्धम् ॥ ६९ ॥ इत्यादि ।

द्विद्वाष्टक—लोहविशेष द भाग, पारा ५ भाग, लोहा ३ भाग, कौञ्जिक कृत्रिमलोहा ७ भाग, चुम्बक ३ भाग, हंस-हृषाशातु ४ भाग, माध्यीक—लोहेद १ भाग, रुह-घातुविशेष इन शुद्ध हुओं को वरमुखिकानामक कृत्रिम बोतल में भरकर छत्रीमुखकुण्ड के बीच में भरकर पश्चात् सुरसानामक भस्त्रा से सौं दर्ज की उपयोगा से गलावे, पश्चात् लेकर धीरे धीरे क्रम से उस पिघले द्रव को यन्त्रमुख में ढालावे, ऐसा करने पर अत्यन्त मनोहर दृढ़ ज्ञानीरलोह अच्छा बन जाता है ॥ ६७—६९ ॥

पट्टिकायन्त्रमध्येऽथ ज्ञानीर स्थाप्य वेगत ।

कीलीसञ्चालनात्सम्यक् सन्ताड्य त्रिशतोष्णात् ॥ ७० ॥

सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरा शुद्धा पट्टिका कारयेद् द्वाम् ।

एतत्पट्टिक्या कुर्यात्पञ्चवाहून्त तथा ॥ ७१ ॥

बाहुवित्रयविस्तार भस्त्राकार यथाविधि ।

मुखनालेन सयोज्य षड्वितिस्त्रिप्रमाणेत् ॥ ७२ ॥

पेविणीयन्त्रवत् कार्यं तन्मुख सुहृद तथा ।

तन्मुखाच्छादनार्थाय मुखावरणकीलकम् ॥ ७३ ॥

सन्ध्यारवेततस्तस्य मूले कोशवर्यं क्रमात् ।

कल्पयित्वा मध्यभागे सकील वर्तुल मुद्रम् ॥ ७४ ॥

ज्ञानीरलोहे को पट्टिकायन्त्र के मध्य स्थापित करके वेग से कीली सञ्चालनद्वारा ताढ़न करके तीन सौ दर्जे की उपयोगा से शुद्ध दृढ़ पतली से पतली पट्टिका बनावे इस पट्टिका से पांच बाहु उठा हुआ तीन बाहु तस्वा भस्त्रा के आकार का करे, उसे मुखनाल से जोड़कर छ: बालिशत माप से पेविणीयन्त्र-वक्की के समान वह दृढ़ मुख करना चाहिए, उस मुख के आच्छानार्थ मुखावरणकील लगावे, उसके मूल में तीन छोरा-कोठे रखकर मध्यभाग में कीलसहित कोमला ॥ ७०-७४ ॥

शशचम्भसमायुक्त कुर्यादावरण ततः ।

ज्ञानप्रूरकीली तन्मूले सन्ध्यारवेद् द्वृढम् ॥ ७५ ॥

तदूष्वं चूर्णपात्रं स्थापयेद् विधिवद् दृढः ।  
 कीलीमुखं तत्पात्रकुसिमूले नियोजयेत् ॥ ७६ ॥  
 एव क्रमेण चत्वारि भस्त्रान् कुर्याद् यथाविधि ।  
 परयानावरणकाले यानावरणकभस्त्रकात् ॥ ७७ ॥  
 कृत्वा विमानावरणं पदचात्तदुपरि क्रमात् ।  
 दिक्षीठोपरि पूर्वोक्तभस्त्रिकान् स्थाप्य सत्वरम् ॥  
 । विद्युत्सयोजनं कुर्याच्चूर्णपात्रान्तरे क्रमात् ।  
 तत्पराद् धूमता याति तच्चूर्णमतिवेगत ॥ ७८ ॥

शशाच्च मयुक्त आवरण करे, उसके मूल में धूम भरनेशाली कीली दृढ़ लगावे उस के ऊपर चूर्णपात्र विधिवत् दृढ़ रखे, उस पात्र के कुक्किमूल में कीली का मुख युक्त करे इस प्रकार से चार भाँत्रों-धोकनियों को यथाविधि लगावे, दूसरे के—शत्रुं के यानों के आवरणकाल में यानावरण भस्त्रक—धोकने से विमानावरण करके पदचात् क्रम से ऊपर दिक्षीठोपरि के ऊपर पूर्वोक्त भस्त्रियों को शीघ्र स्थापित करके चूर्ण-पात्र में विद्युत का संयोजन करे वह चूर्ण अतिवेग से धूमता को प्राप्त हो जावेगा धूंवा बन जावेगा—

भस्त्रिकामुखमुदाक्षयं पदचात् कीली प्रचालयेत् । तेन प्रसारितो धूमो सूक्ष्मभस्त्रत्रये क्रमात् ॥ ७९ ॥ प्रविश्य तन्मुखेभ्योऽयं मध्यकुण्डान्तरे क्रमात् । प्रविश्यपूरणात् सर्वं व्याप्य पदचाद् यथाक्रमम् ॥ ८० ॥ भस्त्रिकामुखपञ्चन्तमतिवेगेन धावति । पदचात्कीलकसन्धानात्परयानोपरि क्रमात् ॥ ८१ ॥ एककाले चतुर्दिक्षु सर्वतोमुखत च्वयम् । व्याप्याथापस्मारधूमं परयानान् समग्रत ॥ ८२ ॥ परेषा तत्परानात् स्वीयशक्तिप्रधानत । करोत्परस्मारवशान् सर्वानि शत्रून् सशयः ॥ ८३ ॥ तेन सर्वे विमानाग्रात् पतिष्ठन्त्यवनीतले । परयानविनाश च स्वयानपरिपालनम् ॥ ८४ ॥ भवेत् तेन तत्स्सर्वे सुखं यान्ति विमानगाः । तस्मादेवतद्यन्त्र वर विमाने स्थापयेत्युधीः ॥ ८५ ॥ इत्यादि ॥
---

भस्त्रिका के मुख को खोलकर फिर कीली चलावे उस से फैलाया हुआ धू औं सूक्ष्म तीन भाँत्रों में-धोकनों में क्रम से प्रविष्ट होकर उनके मुखों से मध्यकुण्ड के अन्दर प्रविष्ट होकर भर जाने से सर्वत्र व्याप्त हो पदचात् क्रमातुसार भस्त्रिकामुखपञ्चन्तमतिवेग से दीवाता है, फिर कील बद्ध करने से-पर विमानयानों के ऊपर एक समय में चारों दिशाओं में सर्वतोमुख हो स्वयं अपस्मार धूवां सभी परविमान-यानों को व्याप्त हो अपनी विवरणीकी प्रशानना से सब शत्रुओं को निःसंशय अपस्मार के वश-अचेत

कर देता है उस से सब विमानस्थान से भूमितल पर गिर आंबेगो परविमानयानविनाश और स्वविमान-यान का परिपालन—बचाव हो जाता है उस से अपने विमान में चलनेवाले सुख से जाते हैं—यात्रा करते हैं अतः इस श्रेष्ठ यन्त्र को बुद्धिमान् स्थापित करे ॥ ७६—८५ ॥

## स्तम्भनयन्त्र—

इत्युक्त्वापस्मारभूमयन्त्र शास्त्रविधानतः ।

इदानी स्तम्भनयन्त्र यथाविधि निरूप्यते ॥ ८६ ॥

इस प्रकार अपस्मारभूमयन्त्र शास्त्रविधान से कहकर अब स्तम्भनयन्त्र विधि के अनुसार निरूपित किया जाता है ॥ ८६ ॥

उक्तं हि कियासारे—कहा ही है कियासार प्रथ या प्रकरण में—

यदा तु वारिपरिधिरेखामण्डलसन्धिषु ।	
शक्तमुद्रे को यदि भवेन्महाविषयसमाकुल ॥ ८७ ॥	
प्रचण्डमारुतोद्रे को भवेदत्यन्तदारुणा ।	
तत्सन्धिषु वाताना पश्चाद् युद्ध भविष्यति ॥ ८८ ॥	
तेनाकाशे भवेद् वातप्रवाहसर्वतोमुख ।	
तत्सम्पर्काद् याननाशस्तक्षणग्रात्सम्भविष्यति ॥ ८९ ॥	
तस्मात्तपरिहाराय यानाधोभगकेन्द्रके ।	

संस्थापयेत्स्तम्भनालयन्त्र शास्त्रविधानत ॥ ६० ॥ इत्यादि ।

जब कभी वारिपरिधि रेखामण्डल सन्धियों में आकाशीयमण्डल शक्ति का उद्रेक-उत्थान महाविषय से पूर्णी हो तब प्रवर्षण मारुतोद्रे के—बायच उत्थान अत्यन्त दारुण होता है पुन उन सन्धियों में वायुओं का युद्ध हो जावेगा, उस से आकाश में सब और वायु का प्रवाह चलने लगे, उस के समर्क से तुरन्त विमानयान का नाश हो जावेगा, अतः उसके परिहार के लिये विमान के नीचे के भागवाले केन्द्र में शास्त्रानुसार स्तम्भनामयन्त्र स्थापित करे ॥ ८७—८० ॥

तदुकुं यन्त्रसर्वस्वे—वह यह यन्त्रसर्वस्व प्रथ में कहा है—

वातप्रवाहसर्वसंपरिहाराय केवलम् ।

विमानस्तम्भनयन्त्रं यथामति निरूप्यते ॥ ६१ ॥

चतुरलः वर्तुल वा वक्तुण्डार्थलोहतः ।

विमानपीठभास्त्रे चतुर्थांशप्रमाणतः ॥ ६२ ॥

धने वितस्तित्रितय पीठमन्यत्रकल्पयेत् ।

ईशानादिकमात्तस्मिन्नषट्दिक्षु यथाक्रमम् ॥ ६३ ॥

केन्द्राणि विश्वित कुर्यात्सञ्ज्ञद्रावरणं यथा ।

प्रावर्तदन्तस्युक्तकाणि विश्वितकमात् ॥ ६४ ॥

अनुलोमविलोमैश्च कुर्यात्सेनैव लोहेतः ।

आवर्तकीलसंयुक्ताक्रकदण्डान् यथाविधि ॥ ६५ ॥

त्रिवृत्करणातो लोहरज्ञानिष्ठद्रानुसारतः ।

कुर्यातेनैव लोहेन शङ्कुकीलादयः क्रमात् ॥ ६६ ॥

अन्तश्चक्युतान्नालस्तम्भान्तनीसमाकुलान् ।

ईशान्यादिक्रमात्केन्द्रस्थानेतु स्थापयेत् क्रमात् ॥ ६७ ॥

बायुप्रवाहों के संसर्ग—संधर्षण के हटाने या प्रतीकार के लिये ही विमानस्तम्भन यन्त्र यथा-  
मति निरूपित किया जाता है। वक्तुगुण नामक लोह से चतुष्कोण—चौकोर या गोल विमान पीठ के  
भ्रमण में चतुर्थांश प्रमाण से, घन में मोटाई में तीन बालित अय पीठ बनावे ईशान आदि के क्रम से  
उसमें आठ दिशाओं में यथाक्रम केन्द्र बनावे तथा छिद्रसहित आवरण भी घूमेवाले दानों से युक्त चक्र  
विचित्रत क्रमशः अनुलोम और विलोमों से करे उसी लोह से, घूमेवाली कीलों से संयुक्त चक्रदण्डों  
को यथाविधि तीन लपेट बाली लोहे की रस्सियों को छिद्रों के अनुसार बनावे। उसी लोहे से शंकु कील  
आदि भी क्रम से बनावे। भीतरी चक्रयुक्त तारों से खिरे हुए नालस्तम्भों को क्रम से ईशानी आदि  
केन्द्रस्थानों में स्थापित करे ॥ ६१-६७ ॥

विमानाङ्गोपसंहारस्थाननालमुखान्तरात् ।

सकीलतन्नीनाहृत्य नालस्तम्भान्तरात्पुनः ॥ ६८ ॥

अन्तनलिस्समाकृष्ण मध्यकेन्द्राविधि क्रमात् ।

पीठमध्यावर्तकीलस्तम्भमूलान्तरे क्रमात् ॥ ६९ ॥

तच्छद्मुखे कीलशड्कुभिर्वन्धयेद् दृढम् ।

आवर्तकीलस्तम्भस्तु पीठमध्ये निवेशयेत् ॥ १०० ॥

पूर्वोक्तवातप्राहो यदा सन्दृश्यते क्रमात् ।

तदा यानाङ्गोपसंहारकीलक प्रचालयेत् ॥ १०१ ॥

तेन यानस्सद्कुचितो भवेत्पश्चात्तयेव हि ।

पश्चादद्वाङ्गकीलचक्राणिं आमयेद् दृढम् ॥ १०२ ॥

तेन वेगोपसंहारो विमानस्य भवेत् क्रमात् ।

पश्चात् पीठस्थाष्टानालस्तम्भकीलान् प्रचालयेत् ॥ १०३ ॥

विमानाङ्गों के उपसंहारस्थान में वर्तमान नालमुखों के अन्दर से कीलसहित तारों को निकाल  
कर फिर नालस्तम्भ के अन्दर से भी भीतरी नालों से सीधे कर मध्य केन्द्र की अवधि के क्रम से और  
पीठ में लगी घूमने वाले कीलस्तम्भों में उस उस छिद्र मुख में कीलरूपी द्वारा दृढ़ बांध दे और घूमने  
वाले कीलस्तम्भों को पीठ में लगा दे। पूर्वोक्त वातप्राह जब दिलताई पड़े तब विमानयानाङ्गों का  
उपसंहार करने वाली कील को चलावे, उससे फिर विमानयान संकुचित हो जावे पश्चात् अष्टाङ्ग—आठ  
अङ्गों से सम्बन्ध रखने वाले कील वक्तों को दृढ़रूप से छुपा दे उस विमान का वेगोपसंहार क्रमशः हो  
जावे पश्चात् पीठ में स्थित अष्टानाल स्तम्भ की कीलों को चलावे ॥ ६८-१०३ ॥

विमानवेगसर्वं स्व तेन संशान्तिमेष्टते ।  
 पीठमध्यस्थितदण्डकीलं तदनन्तरम् ॥ १०४ ॥  
 भ्रामयेदतिवेगेन तेन स्तम्भो हृषी भवेत् ।  
 स्तम्भप्रतिष्ठा यानान्त शीठे यदि भवेद् हृषम् ॥ १०५ ॥  
 तत्क्षणादेव यानस्य स्तम्भनं प्रभवेद् हृषम् ।  
 पश्चात्तात्कीलकं च भ्रामयेत्तदनन्तरम् ॥ १०६ ॥  
 वायूपत्तिर्भवेत् तेन तद्वातः सर्वतोमुखात् ।  
 विमानमूलमावृत्य मण्डलाकारतस्त्वयम् ॥ १०७ ॥  
 विमान धारयेत्पश्चाद् विद्युत्स्थानाद् यथाविधि ।  
 पृथिव्यन्त शक्तिनालयलाक कीलचालनात् ॥ १०८ ॥  
 स्थापयेत् सुहृष्ट तेन यानस्त्वचलता व्रजेत् ।  
 तस्माद् वातप्रवाहेणान्? यानसरक्षणं भवेत् ॥ १०९ ॥  
 अतस्सर्वप्रयत्नेन यानाधोभागकेन्द्रके ।  
 यानस्तम्भनयन्त्र च स्थापयेत्सुहृष्ट यथा ॥ ११० ॥ इत्यादि ॥

उससे विमान वेग का सर्व बल या कल पुर्जा शान्ति को प्राप्त हो जाता है पुनः पीठ के मध्य में स्थित दण्ड की कील को अतिवेग से धुमावे उससे स्तम्भ हृष्ट हो जावे—स्थिर हो जावे, यदि स्तम्भ प्रतिष्ठा—स्तम्भ की स्थिता यान के भीतर पीठ में हो जावे तो उसी समय या तुरन्त यानस्तम्भन हो जावे । पश्चात् पञ्चाशतक—एक और को ठोकर देने वाली कील को धुमावे तो उससे वायु की उत्पत्ति हो जावे वह वायु सब और से विमान के मूल को चक्काकार से स्वयं घेर कर विमान को धारण कर ले सम्भाल ले थाम ले फिर विद्युत् के स्थान से यथाविधि पृथिवीपर्यन्त शक्तिनाल शलाका को कीलचालन से सुहृष्ट स्थापित करे उससे विमान यान अचलता को प्राप्त हो जावे उससे वातप्रवाह से यान का संरक्षण हो जावे अतः सर्व प्रयत्न से विमान के नीचे भाग वाले केन्द्र में यानस्तम्भ यन्त्र सुहृष्ट स्थापित करे ॥ १०४-११० ॥

## वैश्वानरनालयन्त्र—

एवमुकुवा स्तम्भनास्ययन्त्र शास्त्रानुसारतः ।

वैश्वानरनालयन्त्रमिदानी तम्प्रचक्षते ॥ १११ ॥

इस प्रकार स्तम्भन नामक यन्त्र शास्त्रानुसार कहकर वैश्वानर नालयन्त्र अव कहते हैं ॥ १११ ॥

उक्तं हि क्रियासारे—कहा ही है क्रियासार प्रवृत्त में—

खेट्यानप्रयात् गुणमणिहोत्रार्थमादरात् ।

पाकार्थं च विशेषेण ग्रन्तिरावश्यको भवेत् ॥ ११२ ॥

तस्मात् पावकदानार्थं यानाभिमुखान्तरे ।

वैश्वानरनालयन्त्रमिति संस्थापयेद् बुधः ॥ ११३ ॥

खेटयान-विमान के यात्रियों के अग्निहोत्रार्थ आवर से तथा विशेषतः पाकार्य अग्नि आवश्यक है उससे अग्नि देने के लिये विमान के सामने अन्दर वैश्वानरनालयन्त्र बुद्धिमान् स्थापित करे ॥ ११२-११३ ॥

तदुक्तं यन्त्रसर्वसे—वह यन्त्रसर्वसे में कहा है—

खेटयानप्रयाण् शामिनिसिद्धधर्यमेव हि ।

वैश्वानरनालयन्त्रमिदानीं सम्प्रचक्षते ॥ ११४ ॥

वितस्तिदयमायाम् द्वादशाङ्गुलविस्तृतम् ।

चतुरुस्त वर्तुलं वा नागलोहेन शास्त्रतः ॥ ११५ ॥

पीठ कुट्ठा ततस्तस्मिन् कुर्यात् केन्द्रत्रय कमात् ।

ताप्रखर्परसम्मश्लोहात् पात्राणि कारयेत् ॥ ११६ ॥

गन्धकद्रावक शुद्धमेकपात्रे प्रपूरयेत् ।

रुक्षाकद्रावमेकस्मिन् पात्रे तद्विनियोजयेत् ॥ ११७ ॥

माञ्जिठिकाद्रावक च न्यसेत् पात्रान्तरे तथा ।

एताति द्रवपात्राणि पीठकेद्रेषु स्थापायेत् ॥ ११८ ॥

मरणं प्रज्वलक नाम गन्धकद्रावके न्यसेत् ।

तथैव धूमस्त्यमणि रुक्षाकद्रावके ततः ॥ ११९ ॥

माञ्जिठिकाद्रावके तु महोष्णिकमणि न्यसेत् ।

विमाने पाकशालालक्ष्य यत्र यत्राग्निहोत्रिणः ॥ १२० ॥

विमान के यात्रियों के अग्निहोत्रार्थ वैश्वानर नालयन्त्र—अग्नि प्रज्वालन यन्त्र आव कहते हैं। दो आलिशत लम्बा बारह अंगुल चौड़ा अर्थात् मोटा चतुर्कोण या चारों ओर से गोल शास्त्रानुसार नाम लोहे से पीठ करके उसमें कम से तीन केन्द्र (मीटर?) करे ताम्बे स्वपरिये—जस्ते ? से मिले लोहे से पात्र बनाए, शुद्ध गन्धकद्रावक—गन्धक रस (तेजाव) एक पात्र में भर दे, एक पात्र में रुक्षाकद्रावक दन्तीतैल या रस ? नियुक्त करदे ढाल दे, तीसरे पात्र में माञ्जिठिकाद्रावक—मजीठ का तैल ? इस ढाल दे, इन द्वयभरे पात्रों को पीठ के केन्द्रों में रखे। प्रज्वलक मणि गन्धकद्रावक में ढाल दे ऐसे ही धूमस्त्य मणिय रुक्षाकद्रावक में तो महोष्णिक मणिय ढाल दे। विमान में जहां जहां पाकशालाएँ और अग्निहोत्री हों—॥ ११४-१२०॥

स्वापयेत्कीलकस्तम्भाद् तत्र तत्र दृढ़ यथा ।

द्रवपात्रान्तरे तन्नीत्र भद्रमुष्टधार्यकीलके ॥ १२१ ॥

त्रिसंस्त्याकात् प्रबद्धीयाद् यथाशास्त्रमः परम् ।

मूलस्तम्भ समारम्भ द्रवपात्रान्तमेव हि ॥ १२२ ॥

तन्नीत्रय समाहृय मण्यत्रे योजयेत्कमात् ।

स्तम्भाप्रे चुकुकीकीलमध्ये ज्वालामुखीमणिम् ॥ १२३ ॥

काचावरणातस्थाप्य पश्चात्पाश्वयोः क्रमात् ।  
 सिञ्चीरकमर्णीं तद्वटि (वडि?) कास्यमर्णीं क्रमात् ॥ १२४ ॥  
 सन्धायं पश्चादेकैकमर्णीमूलाद् यथाविधि ।  
 एकैकतन्त्रीमाहृत्य मध्यस्तम्भाप्रकीलकात् ॥ १२५ ॥  
 स्तम्भमूले ग्रन्थिकीलमुखान्तं सन्मियोजयेत् ।  
 तदारभ्य यथाशास्त्रं चुलिलकान्तं तर्येव हि ॥ १२६ ॥  
 अग्निहोत्रस्य कुण्डाग्राविधि याने ऋ (हृ) जुर्यथा ।  
 वर्तुलं कुल्यवत्कृत्वा लोहनालान्तत् परम् ॥ १२७ ॥  
 तस्मिन् सन्धाय विविवत् पश्चात्तन्त्रीत् यथाक्रमम् ।  
 तत्तनालेषु सयोज्य चुलिलकासु तर्येव हि ॥ १२८ ॥

वहां वहां कीलस्तम्भों को ढढ स्थित करे, द्रवात्रों के अन्दर तीन तारों को भद्रमुष्ठिनामक कील में शास्त्रानुसार बाध्य दे पुनः मूलस्तम्भ से लेकर द्रवप्रापर्यन्त तीन तारों को निकालकर मणियों के आगे क्रमणा युक्त कर दे—फिट करदे । स्तम्भाप्र में तुम्भकील में जवालामुखी मणि को कांच के ढकने में स्थित करके दोनों पाशों में सिञ्चीरकमर्णीं उसी भाँति ऋद्विघात्यमणि कोऽ क्रम से लगाकर एक एक मणिमूल से एक एक तार लेकर मध्यस्तम्भ की अग्रकील से स्तम्भमूल में ग्रन्थिकील के मुख तक नियुक्त करे । उसे यथाशास्त्र अझीठी (हीटर) तक लावे अग्निहोत्र के कुण्डाग्र तक यान में आवे । गोल कुल्य की भाँति बनाकर लोहनाल के अन्त से परे उस में विविवत् तारों को यथाक्रम जोड़कर उस उसके नाल में संयुक्त कर—जोड़कर तथा अझीठी (हीटर) में जोड़कर—

अग्निहोत्रस्य कुण्डेषु समाहृत्य यथाविधि ।  
 तत्रयस्यैरेकतपट्टिका सुन्धसेद् ढढम् ॥ १२९ ॥  
 आदौ भ्रामयेद् भद्रमुष्ठिकीलकमद्भुतम् ।  
 द्रवपात्रस्थितद्रावकोऽस्त्र्यन्तोऽप्यात्वतामियात् ॥ १३० ॥  
 स्फृशाद्रावकसञ्चातोष्णो माङ्गिलिकामण्णो ।  
 संव्याप्य धूमं जनयेन्महोष्णिकमण्णो तथा ॥ १३१ ॥  
 तद्द्रावकोऽप्यावेगेन महोष्णस्सप्रजायते ।  
 पश्चाद् गन्धकद्रावकस्थमण्णो प्रज्वलिकामिधे ॥ १३२ ॥  
 जवालोत्तिर्भवेत्तद्द्रावकोऽप्याप्तितस्थथा ।  
 धूमोष्णाज्वालकाः पश्चात्तत्तन्त्रीमुखास्त्वतः ॥ १३३ ॥  
 सिञ्चीर वटि (वडि?) काज्वालामुखीमणियु वेगतः ।  
 व्याप्नुवन्ति तत्तद्वुम्बकीलं च यथाविधि ॥ १३४ ॥

अग्निहोत्र के कुण्डों में यथाविधि सञ्चित कर वहां की स्वपरिया—जस्ते की पट्टिकाओं में ढढ

१ ये मणियों कृतिम् हैं बनाई जाती हैं । ( देखो पीछे मणिप्रकरण )

रूप में जोड़ दे, आदि में अद्भुत भद्रमुष्टिकील को बुमावे से द्रवपात्रस्थित द्रावक अत्यन्त उष्णता को प्राप्त हो जावे रूचाद्रावक से उत्पन्न उष्णत्व मञ्जुष्ठिकामणि में भली भाँति व्याप्त होकर धूंध उत्पन्न करदे और महोप्तिकामणि में उस द्रावक के उष्णवेग से महोष्णता प्रकट हो जावे पश्चात् गन्धकद्रावकस्य प्रज्वलिकानामक मणि में ज्वाला की उत्पत्ति हो जावे उस द्रावक की उष्णता की व्याप्ति से धूमोष्णज्वालक तारमुखरूप सिञ्जीरुक्तिका ज्वालामुखीमणियों में वेग से व्याप्त हो जाती है। फिर चुम्बकीकील को यथाविधि— ॥ १२६—१३४ ॥

भ्रामयेदत्तिवेगेन पश्चाद् धूमोष्णज्वालका ।  
 तन्त्रीमुखात्स्वभावेन धूमस्तम्भाग्रकीलकम् ॥ १३५ ॥  
 व्याप्तुवन्त्यतिवेगेन तत्कील भ्रामयेत् तत ।  
 स्तम्भमूलग्रन्थिकीली तद्वेगात्सविशन्ति हि ॥ १३६ ॥  
 तत्कीलब्रमणादेव चुल्लिका पट्टिकान्तरे ।  
 धूमोष्णज्वाला विशिष्या: प्रविशन्ति यथाक्रमम् ॥ १३७ ॥  
 तथानिहोत्रकुण्डलयपट्टिकास्वपि वेगत ।  
 पश्चाद् वैश्वानरोत्पत्तिस्तत्र तत्र भवेद् धूमम् ॥ १३८ ॥  
 तस्मात्सर्वप्रयत्नेन विमानाभिमुखे क्रमात् ।  
 वैश्वानरनालयन्त्रमणि सस्थापयेत्सुधी ॥ १३९ ॥  
 एवमुक्त्वा झूयन्त्राणि इदानी शास्त्रतः क्रमात् ।  
 व्योमयान प्रवक्षयामि सप्रद्वृण् यथामति ॥ १४० ॥ इत्यादि ।

अति वेग से बुमावे पश्चात् धूमोष्णज्वालाएँ स्वभावत् तारों के मुख से धूमस्तम्भकील को अतिवेग से व्याप्त हो जाती हैं, पुन उस कील को धुमावें फिर स्तम्भमूलग्रन्थिकीली को वे ज्वालाएँ प्रविष्ट हो जाती हैं, उस कीली के भ्रमण से ही अङ्गीकी (हीटर) की पट्टिका के अन्दर धूमोष्णज्वालाओं की विविध लहरें यथाक्रम प्रविष्ट हो जाती हैं इसी प्रकार अग्निहोत्रकुण्ड की पट्टिकाओं में भी वेग से प्रविष्ट हो जाती हैं पुनः वहां वैश्वानर-अग्नि की उत्पत्ति उस उस स्थान में निश्चित हो जावे। अतः सर्वप्रयत्न से विमान के सामने कम से वैश्वानरनालयन्त्र भी उड़ियान् संस्थापित करे ॥ इस प्रकार अङ्गयन्त्रों को कहकर शास्त्रानुसार कम से व्योमयान को संचंप से यथामति कहूंगा ॥ १३५—१४० ॥

इस्तलेख कापी संख्या १६—

## अथ जात्यधिकरणम्

जातित्रैविद्यं युगमेदाद् विमानानाम् (अ० २ स० १)।  
बो० वृ०

एवमुक्त्वा विमानाङ्गयन्त्राणि विधिवत्क्रमात् ।  
अयेदानी व्योमयानस्वरूप जातितोच्यते ॥१॥  
विमानजातिभेदप्रबोधकानि यथाक्रमम् ।  
पदानि त्रीणि सूत्रेऽस्मिन् वर्णणानि स्फुट यथा ॥२॥  
तत्रादिमपदाद् यानजातिभेदो निरूपितः ।  
तेषा सख्याविभागस्तु द्वितीयपदतस्मृत ॥३॥  
जातिसख्याविभागेन पुष्पकादा यथाक्रमम् ।  
द्वितीयपदतस्म्यविभागा परिकीर्तिता ॥४॥  
एव सामान्यतस्मृतपदार्थस्म्यप्रकीर्तित ।  
इदानी तदिशेषार्थस्म्यगत विचित्रयते ॥५॥

इस प्रकार विमानाङ्ग यन्त्रों को क्रम से विधिवत् कहकर अब व्योमयान विमान का स्वरूप जातिरूप कहा जाता है । विमान के जातिभेदशालीक यथाक्रम तीन पद इस सूत्र में स्पष्ट वर्णित हैं । उनमें आदि पद से विमानयान का जातिभेद निरूपित किया गया है उनका संख्या-विभाग तो द्वितीयपद से स्मरण किया—कहा, जातिसंख्या के विभाग से पुष्पक आदि यथाक्रम द्वितीयपद से सम्यक विमान कहे गये हैं । इस प्रकार सामान्यतः सूत्रपदों का अर्थ कहा अब उसका विशेष अर्थ का भली प्रकार विवेचन किया जाता है ॥१—५॥

यतश्चतुष्पाद् धर्मोऽभूत्कृते सर्वजनास्तत ।  
योगमन्त्राद्यनुष्ठान विना धर्मप्रभावतः ॥६॥  
अभूवन् शिद्धपुष्पषास्त्रस्त्रिवका ज्ञानवित्तमा ।  
आकाशगमन तेषां वायुवेगादयस्तथा ॥७॥

† जातित उच्चते, विसर्गंजोपानन्तरमेकादेवसंविराजः ।

अणिमाद्यास्त्सद्योऽष्टौ स्वतस्सदा बभूवतुः ।  
 तस्मात् कृतयुगे व्योमयानानि त्रिविधान्यपि ॥८॥  
 नास्तीत्येव प्रवक्ष्यमि यानतत्त्वार्थंपारगाः ।  
 ने तायामेकोनपादधर्माभ्युक्तालमेदतः ॥९॥  
 त्रिपादधर्मंप्रकारतत्त्वात्सर्वेवा प्राणिनां क्रमात् ।  
 बुद्धिमान्यमभूत् तेन वेदतत्त्वार्थंनिर्णय ॥१०॥

—क्योंकि कृतयुग में धर्म चतुष्पाद होता है सारे मनुष्य योग मन्त्रादि अनुष्ठान के विना धर्मप्रभाव से चिन्द्रपुष्प सात्त्विक विशेषज्ञानवेत्ता हुए उनका आकाशगमन वायु के समान वेग भी, अणिमा आदि आठ सिद्धियां भी स्वत सिद्ध थीं अतः कृतयुग में व्योमयान विमान के भी तीन प्रकार थे । ऐसा नहीं है विमानयान तत्त्वार्थ के पारद्वारा विद्वान् कहेंगे त्रेतायुग में धर्म कालभेद से एकापद से कम हो गया । त्रेता में धर्म के विवाद प्रचारित होने से सब मनुष्यों की बुद्धिमन्दता हो गई हैसे वेदतत्त्वार्थ का निर्णय—॥८-१०॥

अणिमाद्यास्त्सद्योष्ट्रिविधान्यपि मालिन्यता गता ।  
 तस्मादाकाशगमनवायुवेगादिषु क्रमात् ॥११॥  
 शक्तिनभूत्स्वभावेन धर्मविष्लवहेतुतः ।  
 एतद् विजाय भगवान् महादेवो महेश्वर ॥१२॥  
 सर्ववेदार्थविज्ञानप्रदानार्थं द्विजन्मनाम् ।  
 अवातरतस्त्वय साक्षात् दक्षिणामूर्तिरूपतः ॥१३॥  
 सनकादिमुखीन् पश्चान्निमित्तिकृत्य हर्षतः ।  
 मन्त्रद्रष्टृत्वसिद्धयर्थं वेदमन्त्रात् यथाविधि ॥१४॥  
 विभज्यानुष्ठानकल्पप्रसेदानकरोद्धिषुः ।  
 पश्चान्मनुष्मीन् समालोक्य गुरुवचाक्षुषदीक्षया ॥१५॥  
 मन्त्रानुष्ठानकल्पादीनुपदेश चकार हि ।  
 पश्चात्तन्मन्त्रद्रष्टृत्वसिद्धयर्थं जगदीश्वर ॥१६॥  
 अत्यन्तकृपया सर्वानालिङ्गं मुनिपुञ्जवान् ।  
 प्रविश्य हृदयं तेषा जप्तिरूपमनीनयन् ॥१७॥

—और अणिमा आदि आठ सिद्धियां भी मलिनता को प्राप्त होगैँ अतः आकाश में उड़ने वायुक्त प्राप्त करने में धर्म के विवक्ति हो जाने से शक्ति न रही, यह बात भगवान् महेश्वर मानो दक्षिणामूर्ति के रूप में ब्राह्मणों—अश्वियों को सर्ववेदार्थ विज्ञान के प्रदानार्थ साक्षात् अवतारित हुए परचात् सनक आदि मुनियों को हर्ष से निमित्त बनाकर उनके लिये मन्त्रद्रष्टृत्वसिद्धि के अर्थ वेदमन्त्रों को यथाविधि विभक्त कर अनुष्ठान और विधान के भेदों को किया पश्चात् मुनियों को देखकर गुरुदेव ने नेत्रप्राप्तरूप दीक्षा से मन्त्र, कर्मकाण्ड, और विधि का उपदेश किया पनः मन्त्रद्रष्टृत्व-

सिद्धि के लिए (योगविविध से साचात् हुए) जगदीश्वर ने ? अत्यन्त कृपा से सब श्रेष्ठ मुनियों का आलिङ्गन करके उनके हृदय में प्रविष्ट होकर ज्ञापन पहुंचाया—सूक्ष दी ॥११—१७॥

ततस्ते मुनयस्सर्वे पुलकाद्वितविग्रहा ।  
 तदनुभवे सलवधज्ञप्तिमाश्रित्य केवलम् ॥१८॥  
 गदगदस्वरतो भक्षया त्रिलोकी गुरुमव्ययम् ।  
 शतरुद्रीयमन्त्रायैस्तुष्टुहृष्टमाश्रित ॥१९॥  
 ततः प्रसन्नो भगवान् दक्षिणामूर्तिरव्यय ।  
 मन्त्रस्वरूपद्रष्टृत्वे तद्रहस्यप्रबोधने ॥२०॥  
 अनुभूतिं ददी तेषा ज्ञाप्तिरूपकमद्भुतम् ।  
 पुनः समालोक्य मुनीन् प्रहसन् परमेश्वर ॥२१॥  
 उवाच परमानन्दरसपूरितवाक्यत ।  
 एतावन्तमभूत काल युज्माक मुनिनामत ॥२२॥  
 इदनी मत्प्रभावेन मन्त्रद्रष्टृत्वकारणात् ।  
 स्वतो मङ्ग्लावमाश्रित्य ऋषयो भवत स्वयम् ॥२३॥  
 इत्युक्त्वा तान् पुनः प्राहसद् गुरुं करुणानिधि ।  
 भो भो महर्षयस्सर्वे वेदमन्त्रान् यथाविधि ॥२४॥  
 मदनुग्रहस्लब्धकल्पानुष्ठानमार्गत ।  
 अनुष्ठाय यथाशास्त्रं ब्रह्मचर्यं समाश्रिता ॥२५॥  
 ईशाज्ञारूपिणी चित्प्रबोधरूपा माहेश्वरीम् ।  
 समाराध्येकाक्षरेण शाङ्करी वेदमातरम् ॥२६॥

पाश्चात् वे सब मुनियों ने पुलकितशरीर हुए उसकी कृपा से प्राप्त सूक्ष को आश्रित कर पाकर गदगद स्वर से भक्ति से त्रिलोकी के अमर गुरु को शतरुद्रीयमन्त्र आदि “नमते रुद्र मन्यव …” (यजु० अ० १६ । १) से हर्षित हो स्तुति की तव भगवान् दक्षिणामूर्ति प्रसन्न हो मन्त्रस्वरूप के द्रष्टा होने में उसके रहयत्रप्रभाव में उहैं सूक्ष के साथ अनुभवशक्ति—ज्ञानशक्ति दी । फिर परमेश्वर ? मुनियों को देखकर इसता हुआ (आलङ्घकिं कथन) परमानन्दरसपूरितवाक्य बोला कि तुम मुनियों का इतना काल हो गया अब मेरे प्रभाव से मन्त्रद्रष्टृत्वकारण से स्वतः मेरे प्रति समर्पण करके ऋषि हो जाओ यह कहकर करुणानिधि गुरु फिर हंसे हैं महर्षियो ! यथाविधि वेदमन्त्रों को मेरी कृपा से प्राप्त विवान और अनुष्ठान के मार्ग से सेवन कर शास्त्रानुसार ब्रह्मचर्य को आश्रित हुए ईश्वराङ्गालपी चेतन आत्मा को प्रबुद्ध करनेवाली महेश्वर सेवाप्त हुई कल्याणकर ईश्वरवाणी वेदमाता की एकवार ओ३म् से आराधन करके—॥२८—२६॥

तदनुग्रहमासाद्य ज्ञात्वा मन्त्ररहस्यकान् ।  
 तदषिष्ठानरूपस्य महोदेवस्य केवलम् ॥२७॥

विज्ञाय हृदय भक्त्या समाधिबलतस्तथा ।  
 ईश्वरानुप्रहारं तद्गमदनुग्रहतः क्रमात् ॥२५॥  
 प्रज्ञानघनमाविश्य प्रज्ञानेत्रेण केवलम् ।  
 सर्ववेदार्थंतात्पर्यरहस्य स्वानुभूतितः ॥२६॥  
 अनुभूय विचार्याथ प्रसन्नेन्द्रियमानसा ।  
 धर्मशास्त्रपुराणेतिहासादीश्च ततः परम् ॥२७॥  
 भूतभीतिकशास्त्राणि वेदतत्त्वानुसारतः ।  
 सर्वलोकोपकाराय कल्पयित्वा यथाक्रमम् ॥ ३१ ॥  
 सस्थापयत लोकेस्तिमन् सर्वं पा भुक्तिमुक्तये ।  
 आकाशगमनार्थं व्योमयानानि तथैव च ॥ ३२ ॥  
 वायुवेगादिसिद्धधर्थं घुटिकापादुकाविधिम् ।  
 रचयित्वा कल्पशास्त्रैर्लोके स्थापयत क्रमात् ॥ ३३ ॥  
 इत्यादिदेशं भगवान् दक्षिणामूर्तिरथवय ।  
 ततस्ते मुनयस्तर्वे दक्षिणामूर्तिरूपणम् ॥ ३४ ॥

—उसकी कृपा को प्राप्त कर मन्त्ररहस्यों को जान कर उस आश्रयरूप महादेव के हृदय को जान कर भक्ति से और समाधि बल से, ईश्वरकृपा से उड़ी भावि से रो अनुग्रह से प्रज्ञानेत्र से प्रज्ञानघन में आविष्ट हो अपनी अनुभवशक्ति से सर्व वेदार्थं तात्पर्यं-रहस्य को अनुभव करके विचार कर पवित्र इन्द्रिय-मन वाले हुए धर्मशास्त्र, पुराण-ब्रह्म-इतिहास-इतिहृष्ट को भूतशास्त्रों भौतिक शास्त्रों वेदतत्त्वानुसार सर्वलोकोपकार के लिये यथाक्रम रच कर सब के भोग मोक्ष के लिए स्थापित करो-प्रचार करो। आकाशगमनार्थं व्योमयानों को भी वायु के बल साधने आदि के निमित्त गुटिका (घुटिका) और पादुका को भी कल्पशास्त्रों से रख कर लोक में कम स्थापित करो। इस प्रकार भगवान् दक्षिणामूर्ति ने आदेश दिया तब सब मुनि दक्षिणामूर्तिरूपी—॥२७-३४॥

हृदि कृत्वा महादेवं सदगुरुं करुणालयम् ।  
 धर्मशास्त्रपुराणेतिहासादीन् वेदमार्गत ॥ ३५ ॥  
 तथैव भौतिकादीनि शास्त्राणि विविधान्यपि ।  
 कल्पशास्त्राणि सर्वाणि श्रौतस्मातंपराणि च ॥ ३६ ॥  
 चक्रतुर्वेदहृदयमनुसृत्य यथाविषि ।  
 पश्चात् प्रतिष्ठा चक्रतुलोके तानि यथाक्रमम् ॥ ३७ ॥  
तेष्वन्तरिक्षविमानबोधकानि यथाविषि ।  
 वट् शास्त्राणीति कीर्त्यन्ते पूर्वावार्यकृतानि हि ॥ ३८ ॥  
 यान्त्रिकास्तान्त्रिकास्तद्वक्तुका हित च क्रमात् ।  
 तेषु सम्यद् निरूप्यन्ते विमानाः सर्वतोमुखाः ॥ ३९ ॥

—करुणालय सद्गुरु महादेव को हृदयमें करके वेदमार्ग से—वेदानुसार धर्मशास्त्र, पुराण—अलङ्कृत मन्थ, वसु का इतिवृत्त आदि तथा भीतिक आदि विविध शास्त्रों को पर्व विविधशास्त्रों सब औत स्मार्तपरक शास्त्रों को भी वेदरूप हृदय का अनुसरण करके बनाया। पश्चात् लोक में उनकी प्रतिष्ठा—व्यवहार प्रचार परम्परा को यथाक्रम किया। उनमें उन अन्तरिक्षविमान के बोधक शास्त्रों को भी यथाविधि किया, वे छः शास्त्र कहे जाते हैं। यानिक, तान्त्रिक और कृतक क्रम से विमान हैं उनमें से प्रत्येक सर्व प्रकार से निहिति किये जाते हैं॥ ३५-३६॥

उक्तं हि विमानतन्त्रिकायाम्—कहा ही है विमानतन्त्रिका में—

व्योमयानप्रभेदानि प्रवक्ष्यम्यता शास्त्रत ।

मन्त्रप्रभावाधिक्यत्वात् त्रेताया केवल नृणाम् ॥ ४० ॥

विमाना ग्रापि मन्त्रप्रभावादेव विनिमिता ।

तस्माद् विमानाशास्त्रेण मान्त्रिका इति निर्णिता ॥ ४१ ॥

तन्त्रप्रभावाधिक्यत्वाद् द्वापरे सर्वदेहिनाम् ।

तन्त्रप्रभावादेव सर्वे विमानास्त्रम्प्रकल्पिता ॥ ४२ ॥

विमाना द्वापरे तस्मात्तान्त्रिका इति वर्णिताः ।

मन्त्रतन्त्रविहीनत्वाद् विमाना कृतका इति ॥ ४३ ॥

प्रोक्ता कलियुगे व्योमयानशास्त्रविशारदे ।

त्रैविध्यं व्योमयानाना धर्मव्यत्ययकारणात् ॥ ४४ ॥

पूर्वाचार्यविशेषेण शास्त्रेष्वेव प्रकीर्तिम् ॥ इत्यादि ॥

व्योमयान के भेदों को अब शास्त्रानुसार कहांगा, मन्त्रप्रभाव की अधिकता से त्रेता में मनुष्यों के होने से विमान भी मन्त्रप्रभाव से ही बनाये गये। आत् विमान शास्त्र द्वारा मान्त्रिक निश्चित किये गये। द्वापर में मनुष्यों के तन्त्रप्रभाव—व्योमयोग प्रभाव की अधिकता से सब विमान तन्त्रप्रभाव से सम्बन्धित हो गये अब द्वापर में तान्त्रिक प्रभाव की अधिकता से सब विमान कृतक (यानिक यन्त्रवाले) कहे गये अब व्योमयान शास्त्र के कुशल जनों द्वारा। धर्म के व्यतिक्रम—उलटफेर से व्योमयानों के तीन प्रकार पूर्वाचार्यों द्वारा विशेषतः शास्त्रों में कहे गये हैं॥ ४०-४४॥

व्योमयानतन्त्रे—व्योमयानतन्त्र में भी—

मन्त्रप्रभावात् त्रेताया विमाना मान्त्रिका इति ।

द्वापरे तन्त्रप्रधानत्वाद् विमानास्तान्त्रिकाः स्मृताः ॥ ४५ ॥

मन्त्रतन्त्रविहीनत्वात् तिथ्ये तु कृतका इति ।

त्रैविध्यं व्योमयानानामेव जात्यनुसारत ॥ ४६ ॥

उक्त शास्त्रेषु सर्वत्र पूर्वाचार्यमय यथा ॥ इति ॥

त्रेता में मन्त्रप्रभाव से विमान मान्त्रिक, द्वापर में तन्त्र के प्रधान होने से विमान तान्त्रिक, कलियुग में मन्त्र तन्त्रविहीन होने से कृतक (यानिक) कहे जाते हैं। इस प्रकार जाति के अनुसार विमानों की विविचता शास्त्रों में सर्वत्र आवायों ने मानी है॥

यन्त्रकल्पेऽपि—यन्त्रकल्प में भी—

जातिभेदो विमानानां मान्त्रिकादिप्रभेदतः ।

युगशक्तयुसारेण प्रोक्षं यानविदां वरैः ॥ ४७ ॥ इत्यादि ॥

विमानों का जातिभेद मान्त्रिक आदि प्रकार से युगशक्ति के अनुसार यानवेत्ताओं वे श्रेष्ठ-जनों ने कहा है ॥ ४७ ॥

मान्त्रिको तान्त्रिकश्चैव कृतकचेति शास्त्रतः ।

जातिभेदास्त्रिधा प्रोक्षा विमानाना दुष्टं क्रमात् ॥ ४८ ॥

इति यानविन्दी

मान्त्रिक तान्त्रिक और कृतक शास्त्रानुसार जातिभेद तीन प्रकार के विमानों के विद्वानों ने कहे हैं ॥ ४८ ॥ यह यानविन्दु में कहा है । ८८

युगभेदाज्ञातिभेदो विमानाना महर्षिभिः ।

मान्त्रिकादिप्रभेदेन विशा शास्त्रेषु वर्णितम् ॥ ४९ ॥

इति खेट्यानप्रदीपिकायाम् ।

युगभेद से जातिभेद विमानों का महर्षियों ने मान्त्रिक आदि प्रकार से तीन प्रकार शास्त्रों में कहा है ॥ ४९ ॥ यह खेट्यान प्रदीपिका में कहा ॥

त्रिविध्य व्योमयानाना युगभेदानुसारत ।

उक्त हि शास्त्रतस्सम्यग्यानशास्त्रविदा वरैः ॥ ५० ॥

इति व्योमयानाकंप्रकाशिकायाम् ॥

युगभेद के अनुसार व्योमयानों की त्रिविधता शास्त्रसम्मत ठीक यानशास्त्रम् श्रेष्ठ विद्वानों ने कही है ॥ ५० ॥ यह व्योमयानाकंप्रकाशिका में कहा है ।

एव शास्त्रानुसारेण सूत्रेस्मिन् जातिभेदत ।

त्रिविध्य व्योमयानानामुक्त सम्यग्याविधिः ॥ ५१ ॥ इत्यादि ॥

इस प्रकार शास्त्रानुसार इस सूत्र में जातिभेद से विमानों की त्रिविधता यथाविधि सम्यक् कही है ॥ ५१ ॥

पञ्चविंशत्मान्त्रिकाः पृष्ठकादिप्रभेदेन ।, अ० २ । श० २ ॥ १

बो० श०

पूर्वसूत्रे विमानाना त्रिविध्य जातिभेदत ।

युगरूपानुसारेण वर्णित सप्रमाणतः ॥ ५२ ॥

मान्त्रिका इति ये प्रोक्षा विमानास्तेषु शास्त्रतः ।

पृष्ठकादिप्रभेदेन तेषां संख्याविनिरण्यः ॥ ५३ ॥

विशदी क्रियते सम्यक् सूत्रेस्मिन् शास्त्रतः ।

पदानि त्रीणि शास्त्रे स्मिन् यानसंख्याविनिरण्ये ॥ ५४ ॥

तत्रादिमपदाद् यानसंख्या सम्यक् प्रदर्शिता ।  
 द्वितीयपदतो व्योमयानजातिनिरूपिता ॥ ५५ ॥  
 एतीयपदतस्तेषा नामभेदा निरूपिता ।  
 एवं सूत्रस्थपदाना सामान्यार्थो निरूपितः ॥ ५६ ॥  
 हृदानीं सप्रमाणेन ? विशेषार्थो विविच्यते ।  
 ये तु मन्त्रप्रभावेण (न?) व्योमिति सचराति ? स्वयम् ॥ ५७ ॥  
 तेष्वेकेकविमानस्य पुष्पकादिप्रभेदत ।  
 पञ्चविशतिनामानि शौनकीये यथाक्रमम् ॥ ५८ ॥  
 निरूपितानि तान्येव क्रमादत्र प्रचक्षते ।

पूर्व सूत्र में जातिभेद से विमानों की विविधता युग्मानुसार सप्रमाण वर्णित की है, उसमें शास्त्रमान से सम्यक् किया जाता है, यानसंख्या नियंत्रण के सम्बन्ध में इस शास्त्र-सूत्र में तीन पद हैं। आदि पद से यानसंख्या सम्यक् दिखलाई है द्वितीय पद से व्योमयान जाति कही है तृतीय पद से उनके नाम निरूपित किये हैं। इस प्रकार सूत्रात् पर्दों का सामान्य अर्थ निरूपित किया है। अब सप्रमाण विशेष अर्थों का विवेचन करते हैं, जो तो मन्त्रप्रभाव से आकाश में स्वयं सञ्चाल करते हैं उनमें एक एक विमान का पुष्पक आदि प्रभेद से पच्चीस नाम शौनकीय सूत्र में यथाक्रम निरूपित किये हैं उन्हें ही क्रम से कहते हैं ॥ ५८-५९ ॥

तत्र तावच्छौनकं सूत्रम्—उस विषय में शौनक सूत्र कथन—

अथ विमानेषु त्रे ताया पञ्चविशतिस्ते मार्न्त्रिकास्तेषा नामान्यनुकूलित्याम् । पुष्पकाजमुखभ्राजवज्योतिर्मुखोशिकभीष्मशेषवज्ञाङ्गदेवत-जवलकोलाहलाचियभृष्टगुणोमांकपञ्चवर्णंपञ्चवाणमयूरशङ्करत्रिपुरवसुहार-पञ्चानामावरीयप्रिणेवभेदुण्डा इति ॥

त्रेतायुग में विमानों में मार्न्त्रिक विमान हैं उनके नामों का वर्णन करेगे—पुष्पक, अजमुख, भ्राज, स्वर्णोत्तिर्मुख, कौशिक, भीष्म, शेष, वज्ञाङ्ग, देवत, जवल, कोलाहल, आचिय, भृष्टगुण, सोमाङ्क, पञ्चवर्ण, अरमुख, पञ्चवाण, मयूर, शङ्कर, त्रिपुर, वसुहार, पञ्चानन, अम्बरीष, त्रिशेत्र, भेदुण्ड ॥

माणिभद्रकारिका—इस विषय में माणिभद्रकारिका कथन—

त्रेतायुगविमानानास्युद्विद्विशत्यानित्रिका इति ।  
 गौतमोक्तानि नामानि तेषामत्र यथाक्रमम् ॥ ५९ ॥  
 विविच्यन्ते समालोडध मुलसूत्र यथामति ।  
 पुष्पकोजमुखो भ्राजस्वयज्योतिश्च कौशिक ॥ ६० ॥  
 भीष्मकशेषवज्ञाङ्गो देवतो जवल एव च ।  
 कोलाहलोचियो भृष्टगुणोमाङ्को वरंपञ्चक ॥ ६१ ॥

वण्मुखः पञ्चवाणाश्व मधूरो शङ्करप्रिय ।  
 त्रिपुरोवसुहारश्व पञ्चाननोबरीषकः ॥ ६२ ॥  
 त्रिष्णो भेषण्ड इति मान्त्रिकाणा यथाकमभ्य ।  
 एतान्युक्तानि नामानि पञ्चविशन्महविणा ॥ ६३ ॥ इत्यादि ॥

त्रेतायुग के मान्त्रिक विमान वर्तीस हैं गौतम के कहे हुए उनके नामों का यहाँ मूल सूत्र का यथामति आलोड़न करके करते हैं । पुष्पक, अजमुख, भ्राज, स्वर्यज्योति, कौशिक, भीष्मक, शेष, वज्राङ्ग, दैवत, उजल, कोलाहल, आर्चिष, भूषण, सोगाङ्ग, वर्णपञ्चक, वण्मुख, पञ्चवाण, मधूर, शङ्करप्रिय, त्रिपुर, वसुहार, पञ्चानन, अम्बरीषक, त्रिणत्र, भेषण्ड, ये मान्त्रिक विमानों के नाम यथाकम महर्षि ने पच्चीस कहे हैं ॥



हस्तलेख कापी नं १७—

**मैरवादिमेदात् तान्त्रिकाष्टपञ्चाशत् ॥ अ० ३, स् ३ ॥ १  
बो० बृ०**

पूर्वसूत्रे मान्त्रिकाणा नामसंख्यादिनिर्णयं ।  
कृतो यथा तान्त्रिकव्योमयानाना तर्थं व हि ॥ १ ॥  
नामसंख्यानिर्णयार्थं सूत्रोय परिकीर्तित ।  
तान्त्रिकाणा नामसंख्याबोधकानि पुथक् पुथक् ॥ २ ॥  
पदानि त्रीणि सूत्रेस्तिम् वर्णितानि यथाक्रमम् ।  
तत्रादिमपदाद् याननामभेदो निरूपित ॥ ३ ॥  
द्वितीयपदतस्तेषा जातिभेद प्रदर्शित ।  
तृतीयपदतस्संख्यानिर्णयस्तमुदीरितः ॥ ४ ॥  
एव सामान्यतस्सूत्रपदार्थं परिकीर्तित ।  
इदानी तदिशेषार्थस्तमग्रहेण निरूप्यते ॥ ५ ॥  
आकारागतिवेगाद्या मान्त्रिकान्त्रिकयोः क्रमात् ।  
समानमिति वर्णन्ते यानशास्त्रविदा वरैः ॥ ६ ॥  
तथापि तान्त्रिकेष्वेदप्रभेद परिकीर्त्यते ।  
यावापृथिव्योस्सन्ध्यस्थशक्तिसम्मेलनक्रमः ॥ ७ ॥  
एकप्रभेद इत्याहुस्तान्त्रिकेषु मनीषिणः ।

पूर्व सूत्र में मान्त्रिक विमानों के नाम और संख्या आदि का निर्णय जैसे कर दिया वैसे ही तान्त्रिक व्योमयानों के भी नाम और संख्या के निर्णयार्थं यह सूत्र कहा गया है । तान्त्रिकों के नाम और संख्या के बोधक पुथक् पुथक् तीन पद इस सूत्र में यथाक्रम वर्णित हैं । आदिपद से नाम भेद निरूपित किया है, द्वितीय पद से उनका जातिभेद दिखलाया है, तृतीय पद से संख्या निर्णय प्रकट किया है । इस प्रकार सामान्य से सूत्र का पदार्थं—सूत्र पदों का अर्थ कहा गया है अब उसका विशेष अर्थं संज्ञेप से निरूपित किया जाता है । आकार गति वेणु आदि मान्त्रिक और तान्त्रिक में क्रम से यानशास्त्रवेत्ताओं द्वारा समान कहे जाते हैं तथापि तान्त्रिकों में एक प्रभेद कहा गया है, यावापृथिवी की संनिव में स्थित शक्ति का सम्मेलनक्रम ही भेद मनीषी तान्त्रिकों में कहते हैं ॥ १-७ ॥

कल्लोऽपि—कल्ला आचार्य भी कहते हैं—

एक एव प्रभेदस्त्यान्मान्त्रिकादापि तान्त्रिके ॥ ८ ॥

द्यावापूर्थिव्योर्यज्ञात्मि तस्यास्तमेलनक्रमः ।

आकाशरगतिवैचित्र्यादिषु सर्वत्र हि क्रमात् ॥ ९ ॥

एतद्विना समानत्वमयोरपि वर्णितम्(?) ।

तान्त्रिकारणां प्रभेदस्तु षट्पञ्चाशदिति क्रमात् ॥ १० ॥

सूत्रे यदुक्त तच्छ्रौनकोक्तरीत्या निरूप्यते ।

मान्त्रिक विमान से तान्त्रिक विमान में एक ही भेद है वह यह कि द्यावापूर्थिव्यी की जो शक्ति है उसका सम्मेलन क्रम विना इसके आकाश गति वैचित्र्य आदि में क्रम से सर्वत्र ही दोनों में समानत्व है तान्त्रिकों का भेद ५६ निर्णय किया है । जो कि शीनक की कही रीति के अनुसार निरूपित किए जाते हैं ॥ ८—१० ॥

तत्र तावच्छ्रौनकस्त्रम्—उस विषय में अब शौनक सूत्र कथन है—

द्वापरेऽङ्ग तान्त्रिकाष्टपञ्चाशतोऽनामाच्यनुकर्मिष्याम । भैरवनन्दनवदुक्त-  
विरिच्छित्तुभवरवैनतेयभेण्डमकरध्वजशृङ्गाटकाम्बरीषेषास्यसेहिकमातृक-  
आजपैङ्गलटिट्ठिभ्रमथभूषिण्याचम्पकद्रोणिकरुक्मपुङ्ग्निभ्रामणिककुभकालभैरव  
जम्बुकिगीरीशगरुडास्यगजास्यवसुदेवश्चसेनवीरबाहु ब्रुसुण्डगण्डकशुकुतुण्ड-  
कुमुदकौञ्जिकाजगरपञ्चदलचुम्कुदकुन्तुभिरम्बरास्यमायूरकभीललिककाम-  
पालगण्डक्षेष्ठपरिष्ठ्रात्रशकुन्तरविमण्डनव्याघ्रमुखविष्णुरवसोवर्णिकमृद-  
दम्भोलिबृहत्कुञ्जमहानट इति ।

द्वापर युग में तान्त्रिक विमान ५६ हैं उनके नाम कहेंगे । भैरव, नन्दन, वटुक, विरिच्छि, तुम्बर,  
वनतेय, भेण्डम, मकरध्वज, शृङ्गाटक, अम्बरीष, शेषास्य, सहिक, मातृक, भ्राज, पैङ्गल, टिट्ठिभ्र, प्रमथ,  
भूषिण्य, चम्पक, द्रोणिक, रुक्मपुङ्ग्नि, भ्रामणि, कुमुद, कालभैरव, जम्बुक, गिरीश, गरुडास्य, गजास्य,  
वसुदेव, शूरसेन, वीरबाहु, ब्रुसुण्ड, गरुडक, शुकुरुण्ड, कुमुद, कौञ्जिक, अजगर, पञ्चदल, चुम्कुद, दुन्तुभि,  
अवरास्य, मायूरक, भीरु, नलिक, कामपाल, गण्डर्च, पारियात्रा, शकुन्त, रविमण्डन, व्याघ्रमुख, विष्णुरथ,  
सौवर्णिक, मृद, दम्भोलि, शृङ्गल, महानट ॥

माणिभ्रद्रकरिका—इस विषय में माणिभ्रद्रकरिका कथन है—

षट्पञ्चाशदिति प्रोक्तास्तान्त्रिका द्वापरे युगे ।

तेषा नामाति विविवद् गोतमोक्तप्रकारतः ॥ ११ ॥

निरूप्यन्तेऽन्न विविवद् यथाशास्त्र समाप्ततः ।

भैरवो नन्दकस्तद्वदुक्तोय विरिच्छिकः ॥ १२ ॥

तुम्बरो वैनतेयश्च भेण्डो मकरध्वजः ।

शृङ्गाटकोम्बरीषश्च शेषास्यो संहिकस्तथा ॥ १३ ॥

\* जैताया (हस्तपाठे) लेखक प्रयादतः ।

मातृको भ्रातृकस्त्वं व पैदङ्गलो टिटुभस्तत ।  
 प्रमयो भूषिणकस्तदन्नम्यको द्वौणिकस्तथा ॥१४॥  
 रुक्मिणुहो भ्रामणिक ककुभ कालभैरवः ।  
 जम्बुकास्यो गिरीशाश्च गरुडास्यो गजास्यक ॥१५॥  
 वसुदेववश्वरसेनो वीरबाहुभृषुण्डक ।  
 गण्डको शुक्तुण्डश्च कुमुद क्रौञ्चिकस्ततः ॥१६॥  
 अजगर पञ्चदलश्चन्म्बको तुन्दुभिस्तथा ।  
 अम्बरास्यो मधूरुष्म भीरुष्म नलिकाद्य॒ ॥१७॥  
 कामपालोऽथगण्डक्षं पारियात्रो शकुन्तक ।  
 रविमण्डनो व्याघ्रमुख पश्चाद् विष्णुरथस्तथा ॥१८॥  
 सौवर्णिको मृडश्चैव दम्भोल्याख्यस्तथैव च ।  
 बृहत्कुञ्जविमानश्च महानट इति ॥१९॥  
 एते वटपञ्चाशतिकास्तान्त्रिका इति द्वापरे । इति

द्वापर युग में तान्त्रिक विमान ५६ कहे हैं उनके नाम गौतम के कहे प्रकार से यथाशास्त्र संचेप से निरूपित किए जाते हैं । भैरव, नदक, बृदुक, विरिच्वक, तुम्बर, वैनतेय, भेस्ऱ्ड, मकरच, शृङ्गाटक, अम्बरीष, शेषाश्य, सैंहिक, मातृक, भ्रातृक, पैदङ्गल, टिटुभ, प्रमथ, भूषिण, चम्पक, द्वौणिक, रुक्मिणु, भ्रामणिक, ककुभ, कालभैरव, जम्बुकनामक, गिरीश, गरुडास्य, गजास्यक, वसुरेव, शूरसेन, वीरबाहु, भृषुण्डक, गण्डक, शुक्तुण्ड, कुमुद, क्रौञ्चिक, अजगर, पञ्चदल, चुन्दक, दुन्दुभि, अम्बरास्य, मधूर, भीरु, नलिकनामक, कामपाल, गरुडर्च, पारियात्र, शकुन्तक, रविमण्डन, व्याघ्रमुख, विष्णुरथ, सौवर्णिक, मृड, दम्भोल्याख्यक, बृहत्कुञ्ज, महानट क्रम से ये ५६ तान्त्रिक विमान हैं द्वापर में ॥११-१९॥

शकुनाद्याः पञ्चविंशत् कृतकाः ॥ अ० ३ सू० ४ ॥ १  
 ॥ वो० व० ॥

एवमुक्त्वा तान्त्रिकाणा नामभेदादिनिर्णय ।  
 कृतकाना नामभेदनिर्णयार्थ तथैव हि ॥२०॥  
 कमेण शास्त्रतस्सम्यक् सूत्रोऽय परिकीर्तित ।  
 कृतकाना यानसस्याबोधकानि पृथक् पृथक् ॥२१॥  
 पदानि श्रीणि सूत्रेस्मिन् वर्णितानि यथाक्रमम् ।  
 तत्रादिमपदाद् याननामभेदो निरूपित ॥२२॥  
 तेषां सस्याबिभागस्तु द्वितीयपदतस्समूहः ।  
 द्वितीयपदतस्तद्वज्ञातिभेदः प्रकीर्तित ॥२३॥  
 एव सामान्यतस्सूत्रपदाद्यस्सन्निरूपितः ।

इदानीं तद्विशेषार्थस्सप्रहेण विविच्यते ॥२४॥  
 आकारगतिवैवित्रियादिषु शास्त्रान्महर्षिभिः ।  
 समानमिति हि प्रोक्तं मन्त्रतन्त्रादिक विना ॥२५॥  
 कृतकाना प्रभेदस्तु पञ्चविंशदिति क्रमात् ।  
 सूत्रे निरूपित यत्तच्छोनकोक्तप्रकारत ॥२६॥  
 समालोड्य विशेषेण यथामति निरूप्यते ।

इस प्रकार तान्त्रिकविमान का नाम भेद आदि निरूपय कहकर कृतकविमानों के नामभेद आदि के निरूपयार्थ भी वैसे ही क्रम से शास्त्ररीति से सम्बन्ध यह सूत्र कहा गया है । कृतकविमानों के नाम संख्यावौधक पृथक पृथक तीन पद इस सूत्र में यथाक्रम वर्णित हैं, उनमें आदिमपद से यान के नाम और भेद निरूपित किये हैं, उनका संख्यावौधिभाग तो द्वितीयपद से जानना तृतीयपद से जातिभेद कहा गया है । इस प्रकार सामान्य से सूत्र का पदार्थ निरूपित कर दिया, अब उसके विशेषार्थ का संक्षेप से विवेचन किया जाता है । शास्त्र से आकार विचित्रगति आदियों में समान है मन्त्रतन्त्र आदि के विना ऐसा महर्षियों ने कहा है । कृतकों के भेद पञ्चवीस हैं, यहां सूत्र में शौनक में कहे प्रकार से निरूपित किया है उसे यथामति सम्बन्ध मन्त्रन करके विशेषरूप से निरूपित किया जाता है ॥

तत्र तावच्छ्वैनकसूत्रम् – उसमें शौनक सूत्र कथन है—

अथ तिथ्ये कृतकमेदा पञ्चविंशतिस्तेषां नामान्यनुक्रमिष्याम ॥  
 शकुनसुन्दररुपमण्डलवक्तुण्डभद्रकरुचकवेराजभास्करगजावतंपीष्कलविरच्छिनन्दककुमुद-  
 मन्दरहस्गुकास्यसौमक्कोच्चकपद्यकसेहिकपञ्चवाणा और्यायणपुष्करकोदण्डा इति ॥

कलियुग में कृतकविमान के भेद पञ्चवीस हैं उनके नाम कहेंगे । शकुन, सुन्दर, रुक्मि, मरहडल, वक्तुण्ड, भद्रक, रुचक, वैराज, भास्कर, गज, आर्वा, पीष्कल, विरच्छ, नन्दक, कुमुद, मन्दर, हस, शुकास्य, सोम, कौचक, पद्मक, सैंहिक, पञ्चवाण, और्यायण, पुष्कर, कोदण्ड ॥

माणिंभद्रकारिका—माणिंभद्रकारिका कथन है—

पञ्चविंशदिति प्रोक्ता कृतकास्तु कलौ युगे ।  
 तेषा नामानि विधिवद् गौतमोक्तविधानत ॥२७॥  
 विविच्यन्तेऽत्र विधिवत्सप्रहेण यथाक्रमम् ।  
 शकुनो सुन्दरश्वेत रुक्मिको मण्डलस्तथा ॥२८॥  
 वक्तुण्डो भद्रकरुच रुचकश्च विराजकः ॥२९॥  
 भास्करश्च गजावतंपीष्कलोश्च विरच्छः ॥३०॥  
 नन्दकः कुमुदस्तद्वन्मन्दरो हस एव च ।  
 शुकास्यस्सौम्यकश्चैव कौचको पञ्चकस्तत ॥३०॥  
 सैंहिको पञ्चवाणश्च और्यायणस्तथैव हि ।  
 पुष्करः कोदण्ड इति कृतका पञ्चविंशतिः ॥३१॥ इति

कलियुग में कृतकविमान पश्चीस कहे हैं उनके नामों का गौतम के कहे विवान से विवेचन विधिवत् संचय से करते हैं। शकुन, सुन्दर, रुक्मिक, मण्डन, बक्तुण्ड, भ्रष्टक, रुचक, विराजक, भास्कर, गज, आवर्त, पौष्टक, विरचिक, नन्दक, कुमुद, मन्दर, हंस, शुक्रस्य, सौम्यक, कौञ्जक, पश्चक, सैंहिक, पञ्चवाण, और्यायण, पुष्कर, कोदण्ड। ये कृतकविमान पश्चीस हैं ॥ २६—३१ ॥

राजलोहोहोदेतेपामाकररचना ॥ अ० ३, स० ५ ॥ १

बो० च०

एवमुक्तवा कृतकयानप्रभेदान् शास्त्रत कमात् ।

शकुनादिविमानानामाकाररचनादय ॥ ३२ ॥

श्रेयदानी राजलोहोदेवेत्यस्मिन्निरूप्यन्ते (ते?) ॥ ३३ ॥

इस प्रकार कृतकविमानयान के भेदों को शास्त्र से कमश कहकर राजलोहोहो से शकुन आदि विमानों के आकाररचना आदि हो अब इस में निरूपित किए जाते हैं ॥ ३२—३३ ॥

तदुकं कियासारे—वह कियासार प्रथ में कहा है—

कृतकव्योमयानानामाकाररचनाविधी ।

उक्ते चु सर्वलोहशूष्मपास्मुप्रसास्तका ॥ ३४ ॥

तेषु राजारूप्यलोहोत्र शुक्रनस्य प्रशस्तक ॥

कृतकव्योमयानों के आकार रचनाविधि में कहे मारे लोहों में उद्धमा प्रशस्त लोहो हैं उनमें भी राजनामक लोहा यहां शकुनविमान का प्रशस्त है ॥ ३४ ॥

तदुकं लोहप्रकरणे—वह कहा है लोहप्रकरण में—

सोमसौण्डालमौत्तिकलोहर्गमंत्रये कमात् ।

अष्टद्विलोहभागागान् टङ्गरेत् समन्वितात् ॥ ३५ ॥

मूषाया पूरयित्वाभ्युन्नी न्यसेद् व्यासटिकान्तरे ।

द्वासप्तस्तुतरद्विशतकक्षयोद्याप्रमाणत ॥ ३६ ॥

सञ्ज्ञालयेत् ततो राजलोहो भवति नान्यथा । इत्यादि ॥

सोम, सौण्डाल, मौत्तिक तीनों लोहवर्ण-जाति में कम से तीन आठ दो लोहभाग मात्राओं को टङ्गण—सुहागा के साथ मूषा (कृत्रिम बोतल) में भरकर अग्नि में रख देव व्यासटिका कुण्ड के अन्दर दो सौ बहतर कक्ष्य—दर्जे की उच्चता से गलावे फिर वह राजलोहा बन जाता है ॥ ३५—३६ ॥

विश्वमरोपि-विश्वमर आचार्य ने भी कहा है—

लोहाविकरणे सम्प्रविमानरचनाविधी ।

ऊष्मपाष्पोडश प्रीक्षाश्रेष्ठाच्छ्वेष्टतरा इति ॥ ३७ ॥

चतुर्थलोहस्तेषु राजारूप्यलोह इतीरित ।

तेनेव कुर्याच्छ्वेष्ठकुनविमान इति वरिणित ॥ ३८ ॥ इत्यादि ॥

प्रभेदावस्त्रत (हस्तलेख)

सम्यक् विमानरचनाविधि में लोहाधिकरण में—लोहप्रसङ्ग में सोलह ऊर्ध्मप श्रेष्ठ से श्रेष्ठ लोहे हैं उनमें चतुर्थ लोहा राजनामकलोहा कहा है उसी से शकुनविमान बनावे यह वर्णित किया है।

आदी पोठस्ततो नालस्तम्भ पश्चाद् यथाक्रमम् ।

त्रिचक्रकीलकान्यस्य सरन्द्राणि तत् परम् ॥ ३६ ॥

चतुरोच्यकयन्त्रात् वातनालास्तयैव हि ।

ततो जलावरणानालस्तैलपात्रमत् परम् ॥ ४० ॥

वातपाचकतन्त्रीनालोच्यचुल्ली तयैव च ।

विद्युदान्त्रस्थाय वातचोदनायन्त्र एव च ॥ ४१ ॥

तथैव वातपायन्त्रो दिक्प्रदर्शध्वजस्तथा ।

पश्चाच्यकुनयन्त्रात् तत्पक्षद्वयमेव च ॥ ४२ ॥

विमानत्केषपायार्थं तत्पक्षभागस्तयैव हि ।

ततो विमानसञ्चारकारणीच्यकयन्त्रक ॥ ४३ ॥

किरणाकर्षणमणिरित्यष्टाविशति कमात् ।

अङ्गान्त्युकानि शकुनविमानस्य यथाक्रमम् ॥ ४४ ॥

प्रथम पीठ भूमिका—नीचे का ढांचा फिर नालस्तम्भ, पश्चात् यथाक्रम तीन कीलचक छिद्र-सहित, चार औच्यकयन्त्र कदाचिन् ऐक्जन, वातनाल, फिर जलावरणनाल, पुन तैलपात्र, वातपाचक तन्त्रीनाल—वायु को गरम करने वाले तारों का नाल, चुल्ली—श्रीराठी (होटर), विशुशन्त्र, वातचोदना-यन्त्र—वायु को फेंकने वाला यन्त्र, विशाप्रदर्शक ध्वजा, शकुनयन्त्र उस विमान के दो पंख, विमान के ऊपर उठाने को पुच्छभाग, विमान गति का कारण औच्यक यन्त्र—ए जिन, किरणों का आकर्षण करने वाली मणि । ये अठाईस २८ शकुनविमान के अङ्ग यथाक्रम कहे हैं ॥ ३६-४४ ॥

अथ यानरचनाविधिरुच्यते—अब विमानयान रचना की विधि कही जानी है—

पट्टिकायन्त्रतो लोह समीकृत्य यथाविधि ।

चतुरश्च वर्तुल वा दोळलकारामयापि वा ॥ ४५ ॥

विमानाकारोभारस्तु भारवाणा शत् यदि ।

कुर्यात् पीठ विमानस्य तदवर्णं यथाविधि ॥ ४६ ॥

यानमानानुसारेण पीठमेव प्रकल्पयेत् ।

तन्मध्ये स्थापयेन्नालस्तम्भमावर्तकीलकै ॥ ४७ ॥

पट्टिकायन्त्र से लोहे को यथाविधि एकसा करके—बराबर करके चतुर्ळोण—चौकोण या गोल या दोला के आकारवाला—लम्बा गोलाकार भूलनासा विमानाकार हो भार तो भारवाले—भारवाले—भार ले

\* डोला (हस्तलेख)

† विमानकारभारस्तु (हस्तलेख)

ज्ञाने वालों ( विमानों ) का शतांश हो इस प्रकार विमान का पीठभाग बनावे, विमानयान के ऊँचाई के माप के आधे माप से पीठ बनावे, उसके मध्य में नालस्तम्भ को घूमनेशाली कीलों के साथ स्थापित करे ॥ ४५-४७ ॥

नालस्तम्भलक्षणं लल्लेनोकम्—नालस्तम्भलक्षणं लल्ल आचार्य ने कहा है—

लल्लेनोक्त यथा शास्त्रे यन्त्रकल्पतरौ कमात् ।

तदेवात्र प्रवक्ष्यामि नालस्तम्भस्य लक्षणम् ॥ ४८ ॥

हाटकास्थेन लोहेन नालस्तम्भ प्रकल्पयेत् ।

न कुर्यादिन्यलोहेन कृतश्चेनाशमेवते ॥ ४९ ॥

लल्ल आचार्य ने यन्त्रकल्पतरु शास्त्र में जैसे कम से कहा है वह ही यहां नालस्तम्भ का लक्षण कहूँगा । हाटकास्थ लोहे से नालस्तम्भ बनाना चाहिए अन्य से किथा तो नाश को प्राप्त हो जाता है ॥ ४८—४९ ॥

हाटकास्थलोहमुक्तं लोहतन्त्रे—हाटकास्थ लोहा कहा है लोहतन्त्र में—

सुवर्चलस्याष्टमभागान् लघुक्षिवङ्कुस्य पोडश ।

लघुबम्भारिकस्याष्टादशभागान् रवेस्तथा ॥ ५० ॥

शतभागान् सुसयोज्य मूषाया सन्निवेश्य च ।

कूर्मव्यासटिकामध्ये सस्थाप्य सुट्ठ यथा ॥ ५१ ॥

सप्तोस्तरत्रिशतकक्षयप्रमाणेन वेगत ।

महोर्मिभस्त्रिकात्सम्यक् तःत्रोन्मीलनाविधि ॥ ५२ ॥

गालयेद् विविवत् पश्चाद्वाटकास्थ भविष्यति । इत्यादि ॥

सुवर्चल—सउजीकार आठ भाग, लघुक्षिवङ्कु हल्का लोहा—जस्ती तीन? सोलह भाग, लघुबम्भारिक? अठारह भाग, रवि—ताम्बा सौ भाग, इहें मिलाकर मूर्यिका (कृत्रिम बोतल)में भरकर कूर्मव्यासटिका—कूर्मा-कार कुण्ड के मध्य में रखकर तीन यौसात दर्जे की उण्णता से वेग से महोर्मिनामक भन्त्रिक-धोकनी से भली भांति नेत्रोन्मीलन अवधि तक गलावे फिर हाटकास्थलोहा हो जावेगा ॥ ५०—५२ ॥

पीठनिराय—पीठ—भूमिका—नीचे के ढांचे का निराय कहते हैं—

पीठोन्तर्य वितस्तीनामशीतिरिति वरणितम् ।

षट्पञ्चाशद्वितस्तीनामायाम च तथैव हि ॥ ५३ ॥

वितस्तिसप्तत्र्यन्तर्य दक्षिणोत्तरभागयो ।

हस्त्वो भूत्वान्त्यभागे तु त्रिकोणाकारसुयुतम् ॥ ५४ ॥

शकुनास्थविमानस्य पीठाकारमितीरितम् ॥ ५५ ॥

पीठ की ऊँचाई अस्सी बालिशत कही, छप्पन बालिशत लम्बाई चौडाई, दच्छिए और उत्तर मागों में ऊँचाई सच्चर बालिशन, अन्तवाले भाग में छोटा होकर त्रिकोण आकारयुक्त पीठ का आकार शकुनविमान का कहा है ॥ ५३—५५ ॥

अथनालस्तम्भनिर्णय—अब नालस्तम्भ का निर्णय कहते हैं—

स्तम्भसूल वितस्तीना पञ्चत्रिशदितीरितम् ।  
 प्रदधिरणावृतोन्नत्यवर्तुलाकारतो वहि ॥ ५६ ॥  
 अन्तर्वलयमानन्तु त्रिशद्वितस्तय कमात् ।  
 स्तम्भमध्यप्रमाण तु वर्तुलाकारतो वहि ॥ ५७ ॥  
 वर्णित शास्त्र सम्यक् पञ्चविशद्वितस्तय ।  
 तदन्तर्वलयाकारो वितस्तीना हि विशति ॥ ५८ ॥  
 स्तम्भान्त्यस्य वहिगर्भो वर्तुलाकारत कमात् ।  
 विशद्वितस्तय प्रोक्ता (१) तदन्तर्वलयाङ्कुति ॥ ५९ ॥  
 वितस्तीना पञ्चदशो त्युक्त शास्त्रे मनोषिभि ।  
 एव प्रमाणातेशीतिवितस्त्योन्नत्यत कमात् ॥ ६० ॥  
 नालस्तम्भो राजलोहाल्कारयेद् यानकर्मणि ।  
 तन्मूले पञ्चदशाङ्गुलप्रमाणाविशिकमात् ॥ ६१ ॥  
 पीठे स्तम्भप्रतिष्ठाय कुर्यादावर्तकीलकम् ।  
 कर्तु न्यूनाधिक वायुवेग कालोचित यथा ॥ ६२ ॥  
 स्तम्भान्तरे दृढ़ चक्रघटक संस्थापयेत् कमात् ।

पीठ के मध्य जो नालस्तम्भ लगता है उसका मूल—नीचलाभाग ३५ वालिश्त कहा है, घूम के साथ उठकर बाहिर से गोल हो। पीठ के अन्दर गोलाई में ३२ वालिश्त रहे, स्तम्भ के बीच का प्रमाण तो बाहिर गोलाकार २५ वालिश्त शास्त्र से वर्णित किया है, उसके अन्दर बलयाकार २० वालिश्त स्तम्भ का अन्त्य—सिरा हो बाहिरी अङ्ग गोल हो। उसके अन्दर २० वालिश्त फिर उसके अन्दर अन्य भाग १५ वालिश्त शास्त्र में मनीषियों ने कहा है, इस प्रकार प्रमाण से पाच भागों की ८० वालिश्त ऊँचाई होनी चाहिए। नालस्तम्भ राजत्रोहे से करावे विमानान्तरकमें, उसके मूल में १५ अङ्गुल स्तम्भ के प्रतिष्ठाय धूमेनवाली कील पीठ में करे अथवा वायुवेग समय के अनुसार न्यूनाधिक करे। स्तम्भ के अन्दर दृढ़ चक्र क्रम से स्थापित करे। ॥५६-६२॥

चक्रनिर्णय—चक्र का निर्णय कहते हैं—

पीठाच्चतुर्थंवितस्तीनामूर्धे स्तम्भान्तरे कमात् ॥६३॥  
 सरन्ध्र वर्तुल चक्रत्रयं सन्धारयेत् कमात् ।  
 चक्रावर्त वितस्तीना सार्वपञ्चदश स्मृतम् ॥६४॥  
 पीठाच्चतुर्थत्वार्थार्थाद्वितस्त्योर्वे तथैव हि ।  
 सरन्ध्र वर्तुल चक्रत्रय सम्यक् प्रतिष्ठितम् ॥६५॥  
 एतेष्वधर्वाधस्थचक्रद्वय दृढमचञ्चलम् ।  
 यथा भवेत् तथा सम्यग्बध्नीयाच्छङ्कुभि कमात् ॥६६॥

कालानुसारतो मध्यचक सम्भ्रमणाय हि ।  
 नालस्तम्भस्य बाह्ये कीलकाससम्यक् प्रतिष्ठिता ॥६७॥  
 चक्रेषु रन्धस्थितत्वादचलत्वाद् द्विचक्रयोः ।  
 मध्यचक अभ्रात् सम्यक् चक्रवय समूहत ॥६८॥  
 वायुसञ्चरणार्थाय सम्यक् मार्गं कृतं भवेत् ।  
 एतेन वायुसञ्चारस्तिरोधानोपथाकमम् ॥६९॥  
 अनुलोभादिलोभाच्च बाह्यकीलकचालनात् ।  
 भवेत्कालानुसारेण सप्रमाणे यथाविधि ॥७०॥

पीठ से चार बालिश ऊपर स्तम्भ में कम से छिद्रसहित गोलाकार तोन चक लगादें, चकों का घेरा साढे पन्द्रह बालिश हो। उसी प्रकार पीठ से ४४ बालिश ऊपर छिद्रसहित गोलाकार तीन चक प्रतिष्ठित हों इनमें ऊपर नीचे दो अचल चक हों इस प्रकार उन्हें शंकुओं से बान्धे, कालानुसार मध्यचक के वूमने के लिये नालस्तम्भ के बाहिर कीले लगादें, चकों में छिद्र होने से और दो चकों के अचल होने से मध्यचक के वूमने से तीनों चकों के समूह—तीनों के होने से वायु सञ्चार के लिये सम्यक् मार्ग हो जाता है इस वायु का सञ्चार और उसका तिरोधान—बन्द हो जाता समयानुसार यथा-विधि कम से कील के सीधा उल्टा चलाने से हो जाता है—होता रहेगा ॥६३-७०॥

गवाक्षिश्वरनिर्णय—गवाक्ष शिश्वर का निर्णय—

बाह्यावृत्त गोपुरस्य सार्वपञ्चदशकमात् ।  
 वितस्तिप्रमाणमिति शास्त्रे प्रोक्त महर्षिभि ॥७१॥  
 तदन्तर्वलय पञ्चवितस्तय इतीरितम् ।  
 वितस्तिद्वयमीनन्तय सु दृढं च मनोहरम् ॥७२॥  
 गवाक्षशिश्वर मध्यम् नालस्तम्भोपरि न्यसेत् ।

गोपुर—सूर्यकिरण द्वारा का बाहिरी घेरा साढे पन्द्रह बालिश माप का शास्त्रों से महर्षियों ने कहा है उसके अन्दर का घेरा पांच बालिश कहा है दो बालिश उठाव आडेपन का सुन्दर गवाक्षशिश्वर—फरोके की ऊंचाई नालस्तम्भ के ऊपर रखें।

अथ रविचन्द्रकमणिनिर्णय—अथ सूर्यकान्तमणिं का निर्णय—

प्रदक्षिणावृत्सप्तवितस्तिस्यान्मणोस्तथा ॥७३॥

वितस्तिद्वयमायाम वितस्तिद्वयगत्रकम् ।

आदित्यचुम्बकमणिं शिश्वरस्योपरि न्यसेत् ॥७४॥

सूर्यकान्तमणिं का घेरा ७ बालिश दो बालिश लम्बा चौड़ा दो बालिश मोटाई बाला हो उस सूर्यचन्द्रकमणिं को गवाक्ष की चोटी पर रखें—ऊपरिभाग पर रखे जड़दे।

चतुरोरैमिकयन्त्राणि—चार औषिमकयन्त्र—

पीठस्योपरिभागे तु वितस्तीनां चतुरदंश ।

ततस्त्रघड्गुलमानेन सौधवर्यं मनोहरम् ॥७५॥  
 वितस्तीना दशीनन्तये गात्रे त्रघड्गुलसयुतम् ।  
 एतदाकारसयुक्त स्तम्भोपरि यथाविधि ॥७६॥  
 संस्थापित कीलशड्कुबन्धनात्सुहृद यथा ।  
 प्रतिस्तम्भान्तरायस्तु वितस्तिदशक स्मृतम् ॥७७॥  
 प्रतिस्तम्भाग्रभागान्ते चक्रावर्तप्रकल्पनात् ।  
 परस्पर मिलित्वायाथ्योन्य सम्परिगृह्णते ॥७८॥  
 एततीठे चतुर्दिश तत्तकेन्द्रोपरि क्रमात् ।  
 वितस्तिदशकायाम विस्त्यग्नीनन्तय तथा ॥७९॥  
 सुहृद स्थापयेत् सम्यगोच्यन्वचतुष्यम् ।  
 यन्त्रप्रदक्षिणाहृतो वितस्तिदशक स्मृतम् ॥८०॥

पीठ के ऊपरिभाग पर तीन सुन्दर भवन १४ बालिश और ३ अंगुल माप प्रसार से तथा १० बालिश ऊंचाई में और ३ अंगुल मोटाई में बनावे । इस आकार से युक्त स्तम्भ के ऊपर यथा-विधि संस्थापित कील शंकुबन्धनों से सुहृद करे, स्तम्भ की दूरी १० बालिश कही है । स्तम्भ के अग्रभाग के अन्त में चक्र आवर्त—धेर बनाने से परस्पर मिलकर एक दूसरे से संयुक्त किया जाता है । यह पीठमें चारों दिशाओं में उस उस केन्द्र के ऊपर कम से १० बालिश लम्बाई द बालिश ऊंचाई पर सुहृद चार औच्य गन्त (एंजिन) हों, औच्यव्यन्त्र का धेरा १० बालिश कहा गया है—॥८५-८०॥

वितस्त्यष्टकमौनत्यमिति शास्त्रविनिर्णयं ।  
 एतन्मध्यस्थितस्तम्भपक्षिमाग्निसारत ॥८१॥  
 व्योमयान प्रयातृ रामुपवेष्टु यथाविधि ।  
 गृहान् प्रकल्पेच्छिलवशास्त्रशीत्या पृथक् पृथक् ॥८२॥  
 एवमुक्त्वा प्रथमसौधप्रदेशे गृहकल्पनाम् ।  
 विमानस्याङ्ग्यन्तराणा स्थापनार्थमत परम् ॥८३॥  
 द्वितीयसौधप्रमाणामुक्त्वा तस्मिन् यथाविधि ।  
 स्तम्भपक्तथनुसारेण गृहात् सम्यक् पृथक् पृथक् ॥८४॥  
 ग्रञ्ज्यन्त्रप्रमाणानुसारत परिकल्पयेत् ।  
 अथेकेकगृहे सिद्धान्यञ्ज्यन्त्राण्यथाविधि ॥८५॥  
 एकैकं स्थापयेत्सम्यग्हृद कीलः पृथक् पृथक् ।  
 वितस्तीना पष्ठितमौनत्यमुक्त तथैव हि ॥८६॥

और ऊंचाई द बालिश हो यह शास्त्र का निर्णय है । इसके मध्य में स्थित स्तम्भपक्षिमार्ग के अनुसार व्योमयान के यात्रियों के बैठने को यथाविधि धेर—शास्त्रीति से पृथक् पृथक् बनावे । इस प्रकार प्रथम सौध-महल धेरे प्रदेश में गृह(कम्पार्टमेंट) बनाना । विमानके अंगयन्त्रों के स्थापनार्थ

दूसरे सौध—महल घेरे में यथाविधि कहकर स्तम्भपंक्ति के अनुसार घोरों को पृथक् पृथक् अंगयन्त्रों के प्रमाणानुसार बनावे, एक एक घर में सिद्ध अंगयन्त्रों को यथाविधि एक एक को कीलों से स्थापित करे, ६० वालिशत् ऊँचाई कही है—॥८१-८६॥

वितस्तिषोडशायाममूर्धो नन्त्यमत परम् ।  
 चतुर्दशवितस्त्योपर्याङ्गुलत्रयमेव च ॥८७॥  
 द्वितीयसौधप्रमाणामुक्त (खलु?) महर्षिभि ।  
 चत्वारिंशवितस्तिप्रमाणमुन्नतमद्युतम् ॥८८॥  
 वितस्त्यष्टमायाम तदूर्धो नन्त्यक तथा ।  
 चतुर्दशवितस्त्योपर्याङ्गुलत्रयमेव हि ॥८९॥  
 तृतीयसौधप्रमाणमेव शास्त्रेण वर्णितम् ।  
 अङ्गज्ञन्वस्थापनार्थं तत्त्वस्तम्भपक्षिभि ॥९०॥  
 जनोपवेशानार्थं च गृहान् सम्यक् प्रकल्पयेत् ।  
 पीठात् आवरणान्त च तदारभ्य पुन क्रमात् ॥९१॥  
 नालस्तम्भान्तपर्यन्त चतुर्दिशु पृथक् पृथक् ।  
 रज्वाकाराद् रन्धनालादेककस्य परस्परम् ॥९२॥  
 विना बन्ध योजित स्थात् मुट्ठ क्रमात् ।  
 पीठावरणतस्तद्वत्सार्थं सप्तवितस्तथा ॥९३॥  
 यावत्योठप्रमाण स्थात् तावदेव यथाविधि ।  
 एकमावरण कुर्यात्सुट्ठ सुमनोहरम् ॥९४॥

१६ वालिशत् लम्बा ऊपर उन्नत हुआ १४ वालिशत् ३ अंगुल अधिक दूसरे सौध—महल का प्रमाण महर्षियों ने कहा है । ४० वालिशत् प्रमाण का उन्नत द वालिशत् लम्बा उससे ऊपर, १५ वालिशत् ३ अंगुल तीसरा सौध—महल का प्रमाण शास्त्र में कहा है । अंगयन्त्रों के स्थापनार्थ वहाँ की स्तम्भपंक्तियों से नथा मनुष्यों के बैठने के लिये घर सम्यक् बनावे । पीठ से आवरणपूर्यन्त और पुन आवरण से आवरण करके चारों दिशाओं में नालस्तम्भपर्यन्त रसी के आकार छिद्रवाली नाल से एक एक का परस्पर विनावन्धन के स्थान सुट्ठयुक्त किया हो । पीठावरण से साढ़े सात वालिशत् नीचे पीठ के माप का एक आवरण मनोहर करे ।

यानोपयुक्तयन्त्राण्येतस्तिम् सरचितानि हि ।  
 तन्मध्यकेन्द्रनालस्तम्भमूलोस्ति दृढ यथा ॥९५॥  
 एतनालस्तम्भमूले चतुर्दिशु यथाक्रमम् ।  
 वाताकर्षणायन्त्राणि चत्वारि स्थापितानि हि ॥९६॥  
 तत्प्रेरकाणि चत्वारि औष्ठ्ययन्त्राण्यपि क्रमात् ।  
 पश्चादभागे विमानस्य पूर्वभागेऽपि च स्थिते ॥९७॥

वातापकर्णगणन्त्रद्वयमध्यस्थकेन्द्रके ।  
 वातपाचकयन्त्र च सुहृष्ट स्थापित भवेत् ॥६८॥  
 एतद्वान्त्रमुखे वातपाचनार्थं यथाविधि ।  
 बाह्यवायु पूरियितु पृथग्यन्त्रद्वय कृमात् ॥६९॥  
 यानस्य पूर्वपश्चाद्गूगयोस्सम्यक् प्रतिष्ठितम् ।  
 विमानोभयपाशवस्थपथयोरभयोरपि ॥१००॥  
 प्रसारणाधातक्षिक्यासिद्धधर्यं च तथैव हि ।  
 तिर्यंडन्यमुलूपेणोपसहाराय शास्त्रत ॥ १०१ ॥  
 स्वानुकूल यथा तत्र कीलकास्त्वापितास्त्वया ।  
 विमानस्य पुरोभागस्थितपङ्क्लभ्रमाय हि ॥ १०२ ॥  
 शलाकानालमध्यस्था योजिताचौचूम्यन्त्रके ।

विमानशान के उपयुक्त यन्त्र इसमें रखे हैं उसके मध्यकेन्द्र में नालस्तम्भ मूल ढृढ़ करे, इस नालस्तम्भ मूल में चारों दिशाओं में यथाक्रम चार वातार्कर्णण यन्त्र—बायु का आकर्षण करने वाले यन्त्र स्थापित हों, उनके प्रेरक चार और्म्य यन्त्र ताप देने वाले यन्त्र (ऐंजिन) भी रखे हों। विमान के पिछले भाग और पूर्व भाग में दोनों यत्रों के मध्यकेन्द्र में वातापर्णण यन्त्र—वात को फेंकने वाले यन्त्र हों और वातपाचक यन्त्र भी सुदृश लगावे। इस यन्त्रमुख में यथाविधि वातपाचनार्थ बायु वायु को अन्दर भरने को क्रम से पृथक दो यन्त्र होने चाहिए वे विमान शान के पूर्व पश्चात के भागों में टीक रखे हों। विमान के दोनों पाश्वों में स्थित पंखों को प्रसारण के आधात या प्रसारण और आधानकिया सिद्धि के लिए तिर्यक—तिरछा नीचे समेटेनेहूप से उपसंहार के लिये भी शाश्वत से अनुकूल कीले वहां लगानी चाहिए। विमान के सम्मुख भाग स्थित वातव्यकिकरण चक्रों भ्रमण के लिए और्म्यक यन्त्र (ऐंजिन) में शलाकाएं नाल के मध्य में युक्त हों ॥ ५५-१०२ ॥

अथ पञ्चनिर्णयः—अब पंखों का निर्णय करते हैं—

विशद्वितस्त्वयुन्नतं तदायामोऽवितस्तिकः ॥ १०३ ॥  
 गात्रे सार्ववितस्तीति निर्णित पक्षमूलयो ।  
 तन्मूलो कीलके सम्यक् सुहृष्ट योजित क्रमात् ॥ १०४ ॥  
 पक्षयो पदिच्चमभागे रेखावतपरिहृश्यते ।  
 तत्पुरोभागविस्तारो वितस्तिदशक भवेत् ॥ १०५ ॥  
 पश्चाद्गूगस्य विस्तारो चत्वारिंशद्वितस्तय ।  
 पक्षोन्नत्य वितस्तीना भवेत् षष्ठितम क्रमात् ॥ १०६ ॥  
 एतदाकारसयुक्तं पक्षद्वयमितीरितम् ।

\* धात (हस्तलेले)

† पचि व्यक्तिकरणे (म्बादि०)

उसकी ऊँचाई लम्बाई २० वालिशत औडाईं पंखों के मूल में डेढ वालिशत मोटा, उनके अपने मूल कील में ढांयुक हों। पंखों के पिछले भाग में रेखा की भाँति दिखलाई पडता है, उसके सामने के भाग का विस्तार १० वालिशत हो विछले भाग का विस्तार लम्बाई ४० वालिशत पंखों का उत्तरतिपथ ६० वालिशत हो। इस आकार के दो पंख हों ॥ १०३-१०६ ॥

अथ पुच्छप्रमाणम् अब पुच्छ का प्रमाण कहते हैं—

पुच्छोन्नत्य वितस्तीना विशतिस्यात्थैव हि ॥ १०७ ॥

तत्पुरोभागविस्तारसार्थत्रयवितस्तिक् ।

तत्पश्चात्प्रदागविस्तारो वितस्तीना तु विशति ॥ १०८ ॥

एतत्पुच्छाकारमिति प्रवदन्ति मनीविणा ।

पुच्छ का ऊपर उठाव २० वालिशत, सामने वाले भाग की मोटाई साडे तीन वालिशत उसके पिछले भाग की लम्बाई २० वालिशत यह पुच्छ का आकार मनीषी कहते हैं ॥ १०७-१०८ ॥

वाताकर्षक यन्त्र तदौम्यक यन्त्रं च—वाताकर्षक यन्त्र और उसका औम्यक यन्त्र भी—

यन्त्रोन्नत्य वितस्तीनामुक्त पञ्चदश कमात् ॥ १०६ ॥

वितस्तित्रयमायामिति शास्त्रे निरूपितम् ।

यन्त्र की ऊँचाई १५ वालिशत मोटाई ३ वालिशत शास्त्र में कही है ॥ १०६ ॥

नालप्रमाणम्—नाल का प्रमाण—

वितस्तित्रयमोन्नत्य तन्मालाना तथैव हि ॥ ११० ॥

बाह्यावृत्त वितस्तीना चत्वारीति विनिर्णितम् ।

एतद् यन्त्रशालाकाश्च त्रयीकौलकाद्यासनथैव हि ॥ १११ ॥

कृतास्तदमुसारेण शास्त्रोक्तेनैव वर्तमाना ।

इसी प्रकार उनके नालों की ऊँचाई मोटाई तीन वालिशत हो, वाहिरी आवृत्त — मूठ की मोटाई चार वालिशत हो ऐसे ही यन्त्र की शालाकाएं कील आदि भी अपने माप के अनुसार शास्त्र में कहे मार्ग से हों ॥ ११०-१११ ॥

अथ वातपायन्त्रनिर्णय—अब वातपा—वायुरक्षकयन्त्र का निर्णय—

वितस्तिद्वादशोन्नत्य वर्तुलावरण तथा ॥ ११२ ॥

वितस्तिसार्थनवकप्रमाणेनभिवर्णितम् ।

इत्युक्त वातपायन्त्रप्रमाण शास्त्रतः कमात् ॥ ११३ ॥

अन्त प्रदक्षिणावृत्तन्त्रिभि परिवेष्टितम् ।

एतदन्तर्मुखे नालमेक सन्धारित भवेत् ॥ ११४ ॥

ग्रावृत्ततन्मीनालेऽन्तर्वातसञ्चारतस्थथा ।

तद्वहि पक्वतैलस्य ज्वालसन्धारवेगत ॥ ११५ ॥

१२ वालिश्त उठा हुआ गोल आवरण भी साढे नौ बालिश्त प्रमाण से कहा है। शाक से वातपा यन्त्र का प्रमाण कह दिया है। अन्दर धूमने वाले तारों से लपेटा हुआ हो उसके भीतरी मुख में एक नाल लगाई हो। धूमने वाले तारों के नाल में अन्दर वातसञ्चार होगा, उसके बाहिर गरमतैल जबलन-शक्ति वेग से—॥ ११२-११५ ॥

भवेत्सन्तापितो वायुशशतकक्षयप्रमाणात् ।  
 एतत्सन्तापित वायुमोऽस्ययन्त्रे नियोजितुम् ॥ ११६ ॥  
 वाह्यस्थशीतवायोराकर्षणाय तदन्तरे ।  
 नालाइच कीलका एतद्यन्त्रे सन्धारिता कमात् ॥ ११७ ॥  
 तैलज्वलासम्युत्पन्धूम वेगान्मुमुक्षुं हुः ।  
 बाह्ये नियोजितु यन्त्रात्स्तम्भमूलावधि क्रमात् ॥ ११८ ॥  
 षड्डगुलगात्रनाला यन्त्रे स्तिमन् सम्प्रतिष्ठिताः ।  
 वाह्यस्थ पूर्वोक्तशीतवायु यन्त्रान्तरे क्रमात् ॥ ११९ ॥  
 नियोजितुं पुनर्वातयन्त्राणि स्थापितानि हि ।  
 विवस्तिदशकावृत्तचक्राकाराणि शास्त्रत ॥ १२० ॥

वायु सी दर्जे के प्रमाण से तथाया जावे, इस तपाय वायु को औषध्ययन्त्र में नियुक्त करे उसके अन्दर बाहिरी शीत वायु के आकर्षण करने के लिए, इस यन्त्र में नाल और कील कम से लगाए हुए हों, तैलज्वला से उत्पन्न धूंआ वेग से तुनः पुनः—निरन्तर यन्त्र से बाहिर नियुक्त करने को—निकालने को स्तम्भमूल तक छ अंगुल नाल इस यन्त्र में लगाई गई हो, पूर्वोक्त बाहिरी शीतवायु को यन्त्र के अन्दर नियुक्त करने को—जाने को फिर वातयन्त्र स्थापित हो, तथा १० वालिश्त धूमने वाले चक्राकार हों॥ ११६-१२० ॥

अथ चुल्ली—अथ अङ्गीठी (हीटर) कहते हैं—

वातपाचक्यन्त्रस्य पूर्वभागे यथाविधि ।  
 तैलप्रज्वलनार्थाय दीपचुल्लो प्रतिष्ठिता ॥ १२१ ॥  
 तस्मिन् दीपप्रतिष्ठार्थमन्युत्पत्त्यर्थमेव तु ।  
 विद्युत्यन्त्रं स्थापित स्याकीलकैस्मुद्दृढ यथा ॥ १२२ ॥  
 एतेनाग्निं ज्वलयितु भवेत् कालानुसारतः ।  
 दीपेसहारकाले तैलसरक्षणाय हि ॥ १२३ ॥  
 प्रतिष्ठित भवेदेककीलव च यथाविधि ।  
 पुच्छान्तरप्रदेशान्ते कर्तुं स्याद् रज्जुबन्धनम् ॥ १२४ ॥  
 यन्त्रूरा कृतरज्जाकर्षणात्स्तु मुहुमुहुः ।  
 पुच्छो भ्राम्यति वेगेनोर्धवर्धोभागदेशयो ॥ १२५ ॥  
 एतेनारोहणे तद्विमानस्यावरोहणे ।

प्रयाणाकाले सर्वत्र सहायो भवति ध्रुवम् ॥ १२६ ॥  
 तथैव व्योमयानस्य पाइर्वयोरभ्योरपि ।  
 न्यगुणीकरणार्थाय पक्षयोरुभयो क्रमात् ॥ १२७ ॥  
 पक्षाघातककीलेपि कतुं स्याद् रज्जुबन्धनम् ।  
 एतद्रज्जवाकर्षणेन पक्षयोरुभयो क्रमात् ॥ १२८ ॥  
 विस्तृतत्वं च न्यग्रभाव क्रमाद् भवति नान्यथा ।  
 प्रथमावरणादस्ति वितस्तिदशकादध ॥ १२९ ॥  
 सार्धद्वयवितस्त्युच्छौ नन्यमात्र मनोरहम् ।  
 अन्यदावरणे पीठात् किञ्चिन्ननून प्रमाणतः ॥ १३० ॥  
 वातनालस्तम्भमूलमेकस्तिन् शास्त्रतो दृढम् ।  
 प्रदक्षिणावृतभागात्सम्यक् सयोजित भवेत् ॥ १३१ ॥

वातपा चक्र यन्त्र के पूर्व भाग में यथाविधि तैलप्रज्वलन के लिए दीपचुल्ली लगी हो, उसमें दीप प्रतिष्ठार्थ अग्नि की उत्पत्ति के लिमित ही कीलों से विद्युत्यन् ढड़ स्थापित हो। इससे समयानुसार अग्नि जल जावे, दीप के उपसंहार समय—तुकाने के समय तैल संरक्षण के लिए एक कील यथाविधि लगी हो। पुच्छ के भोतीरी प्रदेश के सिरे पर करने को रज्जुबन्धन हो, यन्ननियतता चालक द्वारा रज्जु के खींचने से बार बार निरन्तर पुच्छ वेग से ऊपर नीचेवाले भागों में घूमती है इससे विमान के आरोहण-ऊपर उठने वैसे ही अवरोहण—नीचे आने और प्रयाणाकाल—उड़ते हुए सर्वत्र सहायक होता है। ऐसे ही व्योमयान के दोनों पंखों को क्रम से नीचे ऊपर झुकाने को पंखों को आचात करने—प्रेरित करने वाली कील में रज्जुबन्धन हो। इस ढोरी के खींचने से दोनों पंखों का विस्तार गमन—अगमन ऊर्ध्व-गमन और पश्चाद् गमन नीचे गमन क्रम से होता है। प्रथम आवरण से १० बालिशत नीचे तथा पीठ से अढाई बालिशत उठा हुआ अथ आवरण हो, कुछ न्यून वातनाल मूल एक में घूमने वाले भाग से भली प्रकार लगी हो—फिट हो ॥ १२१—१३१ ॥

तैलपात्रनिर्णय—तैलपात्र का निरेय करते हैं—

एतस्मिन्नेव विधिवज्जलावरणास्मुतम् ।  
 वितस्तीना सार्धनवप्रमाणीन्यत्यक्त तथा ॥ १३२ ॥  
 चतुर्वितस्यावृत्त चायामे नववितस्य ।  
 पठड़गुल तदुपरिप्रमाणेनाभिवर्णिण्यतम् ॥ १३३ ॥  
 वितस्तीनां पञ्चदशविस्तृताकारस्मुतम् ।  
 तैलपात्रद्य सम्यक् स्थापित सुहृद् यथा ॥ १३४ ॥

इसी में विधिवत् जलावरण से युक्त साढ़े नौ बालिशत ऊँचाई में तथा चार बालिशत घेरेवाला या गोलाई में और नव बालिशत छः अङ्गूल विस्तार में नाभि कही है पन्थ ह बालिशत विस्तृत आकारवाला लम्बे दो तैलपात्र सुहृद् सम्यक् स्थापित करे ॥ १३२—१३४ ॥

अथ वातनालनिर्णय—अब वातनाल का निर्णय दर्शाते हैं—

वितस्तीना पञ्चदशप्रमाणौनन्तर्यसम्मितम् ।  
 वितस्तिद्वयगात्र च वर्णेत तदनन्तरम् ॥ १३५ ॥  
 सार्थषट्कवितस्तीना विस्तार सुमनोहरम् ।  
 वाताकर्षणभस्त्राणां चतुष्पुदाहृतम् ॥ १३६ ॥  
 वाताकर्षणयन्त्रेस्समूतवायु यथाविधि ।  
 एतस्मिन् सन्धियोजयाथ यावदिच्छानुसारत ॥ १३७ ॥  
 वायुे प्रेरयितु नाल कीलक च सुशोधितम् ।  
 सन्धारित भवेदस्मिन् शास्त्रोक्तेनैव वर्तमना ॥ १३८ ॥  
 एतदावरणाधस्ताञ्चतुदिक्षु यथाविधि ।  
 वितस्तिसप्तवलयाकाराणि सुट्टान्यपि ॥ १३९ ॥  
 चक्रारिणि भूतस्त्रारयोग्यानि सन्धारितानि हि ।  
 एव शकुनयन्त्रस्य रचनाविधिरीरितम् ॥ १४० ॥

१५ वालिश्व प्रमाण ऊँचाई-ऊँची लम्बाई २ वालिश्व मोटाई कहा है, साढे ७. वालिश्व वात को खीचने वाले चार भत्ताओं को कहा है, वाताकर्षण यन्त्रों से प्रकट या संगृहीत वायु को यथाविधि इसमें जितनी इच्छा हो उतनी बाहिर फेंकने को नाल और कील भी इस में शास्त्रोक्त मार्ग से ठीक शोधित नगाई गई हो इस आवरण की चारों दिशाओं में यथाविधि ७ वालिश्व गोल आकार वाले सुहृद चक्र भूमि में सञ्चार करने योग्य लगाए हों, इस प्रकार शकुनयन्त्र—शकुनविमान की रचनाविधि कही है ॥ १३५—१४० ॥

इत्तलेख कापी संख्या १८—

सुन्दरोथ ॥ अ० ३, स० ६ ॥ ?

एवमुक्त्वा शकुनविमान शास्त्रानुसारतः ।  
अथेदानी सुन्दरविमान सम्यक् प्रचक्षते ॥ १ ॥  
यानप्रबोधकपदद्वयमस्मिन्निरूपितम् ।  
तत्रादिमपदाद् याननाम सम्यक् प्रकाशितम् ॥ २ ॥  
आतन्तर्यवाची स्पाद् द्वितीयपदमत्र (हि) तु ।  
एव पदद्वयस्यार्थसामान्येन निरूपितः ॥ ३ ॥  
इदानी तद्विशेषार्थं सग्रहेण प्रचक्षते ।  
अष्टाङ्गान्यस्य शास्त्रेस्मिन्निर्णितानि यथाक्रमम् ॥ ४ ॥  
तेषा स्वरूप विधिवद् विचार्यार्थं पृथक् पृथक् ।  
विलिख्यते यथाशास्त्रं सग्रहेण यथामति ॥ ५ ॥  
आदौ पीठस्ततो धूमनालस्तम्भस्तर्यैव हि ।  
पश्चाद् धूमोदगमयन्त्रपञ्चकं च तत परम् ॥ ६ ॥  
भुज्युलोहकनालश्च ततो वातप्रसारणम् ।  
विद्युत्यन्तं ततो चातुर्मुखोष्मकमत परम् ॥ ७ ॥  
विमाननिर्णयस्वैतत्यष्टाङ्गानि भवन्ति हि ।  
तेषादौ यानपीठस्य रचनाविधिरुच्यते ॥ ८ ॥

इस प्रकार शकुनविमान शास्त्रानुसार कहकर अब सुन्दरविमान कहते हैं। यान के प्रबोध करानेवाले दो पद यहा निरूपित किए हैं, उनमें आदि पद से विमान यान का नाम सम्यक् प्रकाशित किया है द्वितीय पद अनन्तर अर्थ का वाचक यहां है। इस प्रकार दोनों पदों का सामान्य अर्थ निरूपित कर दिया। अब संज्ञेप से इसका विशेष अर्थ कहते हैं। इस शास्त्र में इसके आठ अङ्ग निश्चित किए हैं इनका विधिवत् स्वरूप विचार कर यथाशास्त्र संज्ञेप से पृथक् पृथक् लिखा जाता है। प्रथम पीठ फिर धूमनालस्तम्भ पश्चात् पांच धूमोदगमयन्त्र, भुज्य लोहे की नाल, फिर वातप्रसारण, फिर विद्युत्यन्तं पश्चात् चातुर्मुखोष्मक यन्त्र। ये आठ अङ्ग विमाननिर्णय प्रसङ्ग में हैं जिनमें आदि में विमानयान के पीठ की रचनाविधि कही जाती है। १—८ ॥

अथ पीठनिर्णयः—अब पीठ का निर्णय कहते हैं—

चतुरश्रं वर्तुल वा वितस्तिशतकाकृतम् ।  
 प्रथवा यन्मनोद्दिष्ट क्षेत्रप्रमाणेन शास्त्रतः ॥ ६ ॥  
 राजतोहादेव पीठ वितस्त्यष्टकगात्रकम् ।  
 कृत्वाय पाचयेत्सप्तवार मञ्चुक्तैलत ॥ १० ॥  
 तत पीठ समाहृत्य तस्मिन् केन्द्राणि कारयेत् ।  
 केन्द्रयोहभयोर्मध्ये वितस्तिदशकान्तरम् ॥ ११ ॥  
 विहायैकपापार्द्वं च प्रत्येक दश सख्यया ।  
 ग्राहृत्य चत्वारिंशकेन्द्राणि कुर्याद् यथाकम्भम् ॥ १२ ॥  
 केन्द्रमान पञ्चदशवितस्तिरिति निर्णयतम् ।  
 तन्मध्ये द्वादशवितस्त्यायामेन यथाविधि ॥ १३ ॥  
 धूमप्रसारणानालस्तम्भकेन्द्र च कल्पयेत् ।

चौकोर या गोल १०० वालिश से घिरा हुआ अथवा मनोऽनुकूल यथेच्छ प्रमाण से शास्त्रानुसार राजतोहै से ही ८ वालिश मोटा पीठ बनाकर ७ वार मञ्चुक तैल—मंजीठतैल ? में पकावे फिर उस में से पीठ को निकालकर उसमें केन्द्र बनावे, दोनों केन्द्रों के मध्य में १० वालिश अन्तर छोड़कर एक एक पार्श्व में प्रत्येक १० संख्या से जड़कर ४० केन्द्र करे केन्द्र का माप १५ वालिश हो उनके मध्य में १२ वालिश लम्बाई रहे धूमप्रसारणानालस्तम्भ का केन्द्र भी बनावे ॥ ६—१३ ॥

अथ नालस्तम्भनिर्णयः—अब नालस्तम्भ का निर्णय कहते हैं—

षट्पञ्चाशद्वितस्त्यैन्नत्यं तथैव यथाविधि ॥ १४ ॥  
 चतुर्वितस्त्यायाम च नालस्तम्भ प्रकल्पयेत् ।  
 धूमसमूरणार्थाय तन्मूले वर्तुलाकृतिम् ॥ १५ ॥  
 वितस्त्यष्टकमायाममन्तर्वर्तुलविस्तृतम् ।  
 चतुर्वितस्त्युन्नत कारयेत् कुम्भवत् ततः ॥ १६ ॥  
 स्थापयेत् तन्मध्यकेन्द्रे मुट्ठ शास्त्रमानतः ।  
 षड्वितस्त्यत्रायाम जलपात्रमतः परम् ॥ १७ ॥  
 तन्मूले कल्पयित्वाय तैलपात्र यथाविधि ।  
 चतुर्वितस्त्यायाम तन्मध्ये संस्थापयेद् हृष्टम् ॥ १८ ॥  
 तन्मूलेय यथाशास्त्रं वितस्त्येकप्रमाणकम् ।  
 विद्युत्सघर्षणमणिकीलकं स्थापयेद् हृष्टम् ॥ १९ ॥  
 पात्रे धूमाङ्गनतैल द्वादशांशं प्रपूरयेत् ।  
 शुक्रतुण्डिकतैलस्य विशात्यशस्तर्यैव हि ॥ २० ॥

\* मन—उद्दिष्टम्, मन उद्दिष्टम्, मन सन्धिरार्थः ।

५६ शितरित ऊँचाई यथाविधि ४ बालिशत ऊँचाई में नालस्तम्भ बनावे । और धूम भरने के लिये उसके मूल में गोलाकार ८ बालिशत मोटा अन्दर से गोल ४ बालिशत ऊँचा घड़े जैसा बनावे फिर मध्य केन्द्र में शाक्तानुसार सुषुट ख्यापित करे । इस से आगे जलपात्र ६ बालिशत लम्बा बड़ा उसके मूल में बनाकर तैलपात्र ४ बालिशत लम्बा मध्य रखवे । फिर उसके मूल में शाक्तानुसार १ बालिशत विद्युतसंघर्षण-मणि की कील को ख्यापित करे, पात्र में धूमाञ्जनतैल ? १२ भाग भरदे शुकुतुण्डिकातैल—शुकुतुण्ड—हिङ्गुलतैल ? के २० अंश भरे ॥ १४—२० ॥

नवाशकुलटीतैल पूरयेत्सप्रमाणात् ।  
 यथेष्ट पूरयेद यद्वा एव भागकमात्सुधीः ॥ २१ ॥  
 विद्युत्सयोजनार्थाय मणिकीलान्तरे क्रमात् ।  
 सन्धारयेनालमार्गात् तन्त्रीद्वयमत् परम् ॥ २२ ॥  
 नालस्तम्भान्तरे धूमस्तम्भानाथं तथेव हि ।  
 प्रसारणाथं च वैगादनुकूल यथाभवेत् ॥ २३ ॥  
 आवृत्तचक्रवितय सरन्ध्रं च दृढं यथा ।  
 स्थापयेत्सरल कीलकद्वयेन यथाविधि ॥ २४ ॥  
 एतसञ्चलनार्थाय त्रिचक्रकीलको तथा ।  
 अनुलोभविलोमाभ्या स्तम्भबाह्ये नियोजयेत् ॥ २५ ॥  
 स्तम्भान्तरस्थत्रिचक्रकीलकाना तथेव हि ।  
 बाह्यस्थत्रिचक्रकीलकेषु सयोजन यथा ॥ २६ ॥  
 तथा नालान्तरात् तन्यस्समाहृत्य यथाक्रमम् ।  
 आदी मध्ये तथा चाते क्रमात् सस्यानुसारतः ॥ २७ ॥  
 सन्धारयेद यथाशाक्ष स्तम्भे स्थानत्रये क्रमात् ।  
 इति धूमप्रसारणानालस्तम्भविनिर्णय ॥ २८ ॥

६ अंश कुलटीतैल—मन शिला तैल सप्रमाण भरदे अथवा जितना चाहे इस प्रकार भागानुसार बुद्धिमान । विद्युत् के संयोजन ( फिल्टर ) करने के लिये मणिकील के अन्दर कम से नाल के मार्ग से दो तारों को लगावे । तथा नालस्तम्भ के अन्दर धूम को रोकने के निमित्त और वेग से फैलाने-छोड़ने के निमित्त जैसे अनुकूल हो छिद्रसहित धूमनेवाले तीन चक्र दो सरल कीलों से ख्यापित करे इन चक्रों के सञ्चालनार्थ तीन चक्रोंवाली दो कीलों को सीधे और उलटे ढंग से स्तम्भ के बाहिर नियुक्त करे स्तम्भ के अन्दर रित्यत त्रिचक्रकीलों का बाहिर रित्यत तीन चक्रों में संयोजन करे, तथा नाल के अन्दर से तीन तारों को यथाक्रम निकालकर आदि मध्य तथा अन्त में यथासंख्य स्तम्भ में तीन स्थानों में जोड़दे वस धूमप्रसारणानालस्तम्भ का निर्णय है ॥ २९—२८ ॥

अथ धूमोद्गमयन्त्रम्—अथ धूमोद्गमयन्त्र ( धूम को निकालने का नन्त्र ) कहते हैं—

वैगादूध्वंसुखे धूमोद्गमयन्त्रे प्रकृते यतः ।

अतो धूमोद्गम इति नाम यन्त्रस्य वर्णितम् ॥ २९ ॥

हिमसंवर्धकस्सोमसुण्डालश्च यथाकृमम् ।  
 द्वार्त्रिशत्पञ्चविंशार्द्विंशद्वयाग्रद् कृमेण त् ॥ ३० ॥  
 सम्पूर्यं नलिकामूषामुखे पश्चाद् दृढं यथा ।  
 स्थापयित्वा चक्रमुखकुण्डेऽजामुखभस्त्रत ॥ ३१ ॥  
 द्वादशोत्तरसप्तशतकश्चयोर्षाप्रमाणात् ।  
 सगालयेद् यथाशाखामानेत्रोन्मीलनावधि ॥ ३२ ॥  
 ततो भवेद् धूमगर्भलोहस्सूक्ष्मो मृदुर्दृढः ।  
 कुर्याद् धूमोदाम यन्त्रमेतेनव यथाविधि ॥ ३३ ॥  
 प्रदक्षिणावृतकीलवितस्तिदशकोन्नतम् ।  
 पीठस्थाधो भागमध्यकेन्द्रस्थाने यथा भवेत् ॥ ३४ ॥  
 पीठ कुर्यात्पञ्चदशवितस्त्यायामतस्तथा ।  
 धूमोम्यकप्रसारणार्थय पश्चाद् यथाविधि ॥ ३५ ॥

वेग से ऊपर मुख की ओर धूम को ऊपर फेंकता है अतः धूमोदामनामयन्त्र को बरिंत किया है । हिमसंवर्धक सोम सुण्डाल इन तीनों के यथाक्रम ३३, २५, ३८, भारों को मूषामुख नलिका भें भरकर चक्रमुख कुण्ड में दृढ़ रखकर अत्रमुखभस्त्रा से आंख सुलजाने तक शास्त्रानुसार गतावे तब धूम-गर्भ लोहा सूक्ष्म कोमल ढृट हो जावे । इस लोहे से धूमोदाम (धूम को फेंकनेवाला) यन्त्र करे । धूमने वाली कील १० वालिश उड़ी हो पीठ के नीचले भाग के मध्य केन्द्र स्थान में हो, पीठ १५ वालिश चौड़ी हो धूमोम्यक को प्रसारणार्थ परान्त यथाविधि—॥२६—३५॥

जलोम्यकधूमनालद्वय तस्योभयपार्श्वयो ।  
 स्थापयेत्सूहृदं सम्यदक्षिणापोत्तरत क्रमात् ॥ ३६ ॥  
 धूमसमूरणार्थय तन्नालद्वयसूलयो ।  
 चतुर्वितस्त्यायामं च वितस्तित्रयमुन्नतम् ॥ ३७ ॥  
 कुम्भवत्कारयेद् वतुं लाकार सुहृद यथा ।  
 वितस्त्यायामक चाष्ट्रवितस्त्युन्नतमेव च ॥ ३८ ॥  
 तदन्ते चयकाकार वितस्तित्रयविस्तृतम् ।  
 एव कृमेण विधिवत् कृत्वा नालद्वय तत ॥ ३९ ॥  
 धूमपूरकनालोधर्वभागे सयोजयेद् दृढम् ।  
 तन्मूले जलपात्र च तन्मध्ये तैलपात्रकम् ॥ ४० ॥

जलोम्यक—दो धूमनाल उसके दोनों पाश्वों में दक्षिण उत्तर भारों में क्रमशः स्थापित करे । धूम को भरने के लिये उन दोनों नालों के मूलों में ४ वालिश लम्बा ३ वालिश डाढ़ा हुआ घडे के समान गोलाकार सूहृद स्थान बनावे उसके अन्त में ८ वालिश लम्बा और ऊँचा ३ वालिश चौड़ा पत्र विधिवत् क्रम से बनाकर दो नाल जोड़ दे जिनमें धूम भरने वाले नाल के ऊपरि भाग में उसके मूल में जल-पात्र मध्य में तैलपात्र लगावे ॥ ३६—४० ॥

तत्पुरस्तादिद्युदधर्षकमण्यो कीलकदयम् ।  
 धूमप्रसारणानालस्तम्भवस्थापयेत्कमात् ॥ ४१ ॥  
 पाश्वर्योहभयोरीष्म्यनालस्य च यथाविधि ।  
 जलकोशद्वय पश्चात् कारयेत्सुहृद यथा ॥ ४२ ॥  
 विद्युत्यन्तान्नालमेक समाहृत्य सततिक्रम् ।  
 विद्युदधर्षकमणिकोलके सन्नियोजयेत् ॥ ४३ ॥  
 लिङ्गाशीतिप्रमाणेन विद्युच्छक्ति यथाविधि ।  
 पूर्वोक्तालस्थतन्त्रीमार्गात् सचोदयेद् यदि ॥ ४४ ॥  
 तच्छक्तिवेगान्मणिसवर्षणा प्रभवेत्स्वतः ।  
 शतकथप्रमाणोण्णा तेन सजायते कमात् ॥ ४५ ॥

उसके सामने विद्यु त् को धर्षित करनेवाली मणियों की दो कीले धूम को फैलाने वाले नाल-स्तम्भ की भाँति यथापित करे, औषध्यनाल के दोनों पार्श्वों में यथाविधि दो जलकोश पीछे करावे, विद्यु-शम्ब से एक नाल तारसहित लेकर विद्युदधर्षकमणि कील में नियुक्त करे, ८० लिङ्क (डिपी) माप से विद्युत् शक्ति को पूर्वोक्ताल के तन्त्रीमार्ग से प्रेरित करे उस शक्ति के बेग से स्वत मणि का धर्षण होगा उससे सौ दर्जे प्रमाण की उष्णता प्रकट हो जावेगी ॥ ४१—४५ ॥

तस्मात् पात्रस्थित तैल पाचित् स्यादिशेषतः ।  
 तेनधूमो भवेत् तैल पश्चात् सम्यक् शर्नेश्शनने ॥ ४६ ॥  
 विद्युच्छक्ति च तदधूम नालमार्गाद् यथाक्रमम् ।  
 सगृह्य वेगादिधिवत्पश्चात्कोलकमार्गतः ॥ ४७ ॥  
 सचोदयेद् वारिकोशद्वयमध्ये प्रमाणतः ।  
 एतदेवगादीष्म्यधूमाकार भवति तज्जलम् ॥ ४८ ॥  
 तैलधूम धूमनाले जलधूम तथैव हि ।  
 जलौष्म्यनाले विधवत्तूरयेत्सप्रमाणतः ॥ ४९ ॥  
 एतद् धूमद्वय पश्चाद् यथोधर्षमुखत कमात् ।  
 निर्मच्छेद वेगत पञ्चशतकध्योष्णमानतः ॥ ५० ॥

उस से पात्रस्थित तैल विशेषतः पकाया हुआ शनै शनै धूम हो जावेगा । वह धूम यथाक्रम नालमार्ग से एकत्र होकर कीलमार्ग में बेग से विद्युत् शक्ति को दो जलकोशों में प्रेरित कर देवे—धकका दे दे, इसके बेग से वह जल उष्ण धूमाकार हो जावेगा । तैलधूम तैलधूमनाल में जलधूम जलौष्म्यनाल में प्रमाण से भरदे, ये दोनों धूम पीछे यथोचित ऊपर से बेग से १०० दर्जे की उष्णता से निकल जावेगा ॥ ४६—५० ॥

तथा कीलक सन्धान कुर्यात् कालानुसारत ।  
 धूमसरोघनार्थ च चोदनार्थ तथैव हि ॥ ५१ ॥

सयोजयेत् कीलकाभ्या सम्यक् सम्भ्रामयेद् यथा ॥  
 धूमवन्धप्रसरणी पद्मात् कालानुसारतः ॥५२॥  
 भवेत् कीलकसञ्चालनेन सम्प्रयथाविषि ।  
 एव क्रमेण यन्त्राणि चत्वारिंशत्याविषि ॥५३॥  
 रचयित्वा पीठकेन्द्रस्थानेष्वय पृथक् पृथक् ।  
 सस्थापयेत् ततस्तेषा चतुर्दिक्षु यथाक्रमम् ॥५४॥  
 एकंकयन्त्री(१?) ध्यधूमनालमूलद्वये क्रमात् ।  
 वितस्तेष्वेकाबुत् चैव वितस्तिद्वादशोन्तम् ॥५५॥  
 सन्धारयेत्कीलकेभ्यश्चुडालद्वयमद्भुतम् ।  
 एतस्तहायतो व्योमयानं वेगात् प्रवावति ॥५६॥

इस प्रकार कील लगाने काल के अनुसार धूमके रोकलेने फेंडने—छोड़ने के लिये दो कीलों से युक्त करे द्युमावे । धूमका सूक्जाता और फैजाजाना कालानुसार कील चलाने से सम्यक् यथाविधि हो । इस प्रकार क्रम से ४० यन्त्र रचक शीट केन्द्रस्थानों में पृथक् पृथक् स्थापित करे उनके बारों ओर यथाक्रम एक एक यन्त्र औल्यधूमनालमूल दोनों में १ बालितर गोल १२ बालितर ऊंचाई कीलों से दो अंगुल शुण्डाल इसकी साहायता से व्योमयान बेगसे दौड़ता है ॥५५-५६॥

शुण्डालस्वरूपमुक्तं लल्लेन—शुण्डाल का स्वरूप लल्ल ने कहा है—

तैलस्य धूमसयोगाजजलस्थी(१?) ध्यकयोगत ।  
 विमानमाकर्षयितु शुण्डालात् कल्पयेत्सुखी ॥५७॥  
 वटमञ्जूषमातङ्गा पञ्चशाली शिलावली ।  
 ताप्रशीष्टर्णी बृहकुम्भी महिषी क्षीरवल्लरी ॥५८॥  
 शेणापर्णी वज्रमुखी क्षीररणी च यथाक्रमम् ।  
 एते द्वादश शास्त्रेषु क्षीरवृक्षा इतीरिता ॥५९॥  
 एते राहृत्य विविचनिर्यास क्षीरसेव वा ।  
 अग्निवाराणांदिदिश्च द्रवसुदेवमुनिस्तथा ॥६०॥

तैल के धूम सम्पर्क से जल के औल्यधूमोग से विमान के लीचने को शुण्डालों को बनावे । वट, मञ्जूष-मञ्जीठ, मातङ्ग-गूबर या पीपल, पञ्चशाली, शिलावली-चित्रकवृत्त, ताप्रशीष्टर्णी-जटा ?, बृहकुम्भी-कायफल ?, महिषी, क्षीरवल्ली-क्षीरविदारी ? शेणापर्णी ?, वज्रमुखी ?, क्षीररणी-कुभेर-दूधिया-वृक्ष, यथाक्रम वे १२ क्षीरवृक्ष शास्त्रों में कहे हैं इनसे विविचत गोन्द या दूध लेकर ३, ५, ७, १०, ११, ८, ९—॥५७-६०॥

गजाबिधराशयादित्याशप्रकारेण यथाक्रमम् ।

तोलपित्वा बृहद्वाण्डे विनिक्षिप्य तत् परम् ॥६१॥

प्रनिधिलोह च नागं च वज्रं वम्भारिक तथा ।  
 वैनतेय कल्दुर च कुरुपं कुण्डलोत्पलम् ॥६२॥  
 एतान् सन्तोल्य विधिवत्समभागान् पृथक् पृथक् ।  
 भाण्डस्थनिर्यासिसम तद्ग्राण्डे सनियोजयेत् ॥६३॥  
 पाचयेत् पाचनायन्त्राच्छास्त्रोक्तीनेव वर्तमाना ।  
 द्वादशोत्तराशीतिक्षयोग्यावेगाच्छन्देनशनैः ॥६४॥  
 पश्चानिर्यासिपटयन्त्रमुखे सम्प्रपूरयेत् ।  
 तत् सम्भ्रामयेद् वेगात् समीकरणीकलान् ॥६५॥  
 एतेन तत्समीक्षय कार्पासिपटवत्कमात् ।  
 मुहूर्द धूम्रवर्णं च सूक्ष्मं मुहूर्द मुशीतलम् ॥६६॥  
 प्रच्छेद्य द्वेदनायन्त्रैहष्टावेगापहारकम् ।  
 निर्यासिपटमुक्तुष्टं भवेदत्यन्तनिर्मलम् ॥६७॥

—४, ५, ३०, १०, अंशा रोतिप्राणाण से यथाकम तोलकर वडे पात्र में ढालकर उन प्रनिधि-लोहा—गटोलालोहमल, सीसाथातु, वज्र—विशेषलोहा, वम्भारिक ?, वैनतेय ? कल्दुर ? कुरुप ? कुण्डलोत्पल ? इनको पृथक् पृथक् समभाग तोलकर पात्र में रखे निर्यास - गोन्द में मिलावे फिर पकाने के बन्द्र से शाकानुसार ३० दर्जे की उड़ाता से भीरे धीरे पकावे पश्चात् निर्यासिपट यन्त्र के मुख में भरदे फिर समीकरण - बराबर करनेवाली कीलों को घूमावे इससे समान होकर रुई के पट-तह के समान रुई के बत्त की भाँति मुहूर्द धूपं के रंगताला सूक्ष्म मुहूर्द ठण्डा काटने के साथनों से अच्छेश्य-न कट सकनेवाला उप्राणा के वेग को हटानेवाला निर्यासिपट अत्यन्तनिर्मल बन जावेगा ॥६१—६८॥

एतत्पटं समाहृण्य रौहिणीतेलत कमात् ।  
 यामवय पाचयित्वा पश्चात् सङ्गृह्णा वारिणा ॥६८॥  
 क्षालयित्वाकसीतेले पूर्ववत्पाचयेत्पुन ।  
 पश्चादादामूलमध्ये दिनभेदकं न्यसेत्कमान् ॥६९॥  
 दद्यात्सूर्यपुटे पश्चात् क्षालयित्वा यथाविधि ।  
 शोषयित्वातपेनाय कनकाङ्गनात् (तथाय) ॥७०॥  
 सुवरण्डव भाति रुचा तत्पट सुमनोहरम् ।  
 एतत्पटेनैव कुर्याच्छुण्डालान् मुहूर्द यथा ॥७१॥  
 वितस्त्यैकावृत चैव वितस्तिद्वादशोन्नतम् ।  
 गजास्यवत् प्रकतंव्यमन्तदिष्टद्रं यथा तथा ॥७२॥

इस निर्यासिपट को लेकर क्रासे रौहिणीतेल से तीन प्रहर तक पकाकर पश्चात् लेकर जल से प्रक्षालन कर—साधारण धोकर अकसीतेल—अलसीतेल में पूर्व की भाँति पकावे पीछे बकरी के मूत्र में एक दिन तक छोड़ रखे फिर सूर्यपुट में देवे-धूप में रखदें और धोकर धूप में सुखाकर कनकाङ्गन

सुहागे या रक्तपलाश पुष्प के रंग से लेप करवे फिर चमक से सोने जैसा वह पट मनोहर लगता है, इस पट से ही शुण्डालों को बनावे ५ चालिश गोल १२ चालिश उन्नत-ऊपर लम्बा हाथी की शुण्ड की भाँति अन्दर छिद्रवाला करना चाहिए।

प्रसारणोपसहारकीलकौ द्वौ यथाकमम् ।  
 सन्धारयेदावृत्कीलशाढ़कुभिस्सुहृद यथा ॥७३॥  
 उपसहारकीलेन शुण्डालशचकवत्कमात् ।  
 भवेत्सकुचित यन्त्रमूले शष्कुलवत्पुन ॥७४॥  
 तत प्रसारणकीलवालनात् सरल यथा ।  
 वाहुवल्लभमान च भवेत्सम्यक् स्वभावत ॥७५॥  
 शुण्डालमध्ये धूमप्रसारणार्थं यथाविधि ।  
 यन्त्राणा मूलतस्पष्ट कीलकान् परिकल्पयेत् ॥७६॥  
 यन्त्रस्य धूमशुण्डालमुखाद बहि प्रसारणे ।  
 पुनश्चुण्डालमुखतो बाह्यवातापकर्षणे ॥७७॥  
 यथा भवेत् तथा चक्रद्वय कीलकसयुतम् ।  
 सन्धारयेत् सप्रमाण शुण्डाले सरल यथा ॥७८॥

फैलाने—खोलने और संकोच करने में उपयुक्त दो कीले भी धूमनेवाले कील शंकुओं से सुहृद लगादे । उपर्यंहार कील से शुण्डालकम से चक्र की भाँति यन्त्रमूल में संकुचित हो जाता है तुन शाक्खुल—गोलपूर की भाँति प्रसारणकील चलाने से सरल—सीधा भुजा के समान लम्बा स्वभावत हो जाता है । शुण्डाल के बीचमें धूम भरेन—सद्भवित फैलाने पुन शुण्डालमुख से बाहिरी वायु को खीचने में जैसे हो सके चक्र कीलों से युक्त ठोक शुण्डाल में लगादे ॥७३—७८॥

यथा जलापकर्षणयन्त्रकीलं तथेव हि ।  
 तच्चकन्नमणार्थाय योजयेत्कीलकत्रयम् ॥७९॥  
 एतत्सम्भ्रमणार्थेव वेगादधूमं प्रधावति ।  
 एतत्सयोजनाऽचक्रयो शुण्डालान्तरे कृमात् ॥८०॥  
 गमागमीभवेद्वगातेन वातापकर्षणम् ।  
 धूमप्रसारण चैव भवेदेव न सशय ॥८१॥  
 अष्टाशीत्युत्तरशतलिङ्कवातापकर्षणम् ।  
 धूमप्रसारण चैव तावदेव मुहूर्मुहृ ॥८२॥  
 एकदा चक्रगमनागमनाद्वेगतो भवेत् ।  
 धूमप्रसारण यस्मिन् दिशि शुण्डालतो भवेत् ॥८३॥

† 'भवेत्' किया वचनव्यत्ययेत् ।

तस्मिन्नेव? विमानस्य गमन वेगतो भवेत् ।

आवर्तने चोऽर्बेषुखगमनेषि तथैव च ॥८४॥

आपोमुखाभिगमने कीलसञ्चालनात् स्वत ।

यथा शुण्डालस(?) छेत्स्तथा यानः प्रधावति ॥८५॥

जिससे कि जलपक्षर्षणयन्त्र-जल के खीचनेवाले यन्त्र कील उस चक्र के भ्रमणार्थी तीन लगावे, इसके भ्रमण से ही वेग से धूम दौड़ता है इसके लगाने से दोनों चक्रों में शुण्डाल के अन्दर गमन आगमन हो उससे बात का खीचना बन सके । इससे धूम का प्रसारण फैलना या निकलना भी नि संशय होता है : १८८ लिङ्क (दीपी) में वायु का खीचना बन जायगा और धूम का निकलना भी निरन्तर उतना ही एकवार वेग से चक्र के गमन और आगमन से हो जावेगा । यथा धूम का निकलना जिस दिशा में शुण्डाल से वेग से होता उसी दिशा में? वेग से विमान का गमन हो, धूमने या लौटने अर्थात् करने नीचे जाने का कार्य कीलसञ्चालन से स्वत हो जावेगा, जैसे शुण्डाल का सङ्केत होता है वैसे विमानयान प्राप्ति करता है ॥८६—८५॥

यस्माच्छुण्डालान्तर्गतचक्रवेगात्प्रचालनम् ।

तस्माच्छास्त्रोक्तिविधिना कृत्वा शुण्डालान् क्रमात् ॥८६॥

प्रतिधूमोदगमन्त्रमूलदेशे पृथक् पृथक् ।

द्वी द्वी सन्धारयेत्कीलशङ्कुभिसुठुठ यथा ॥८७॥

धूमप्रसारणानालस्तम्भमूलेपृथ्याविधि ।

दक्षिणोत्तरयोस्तद्वृत्वंविश्वमयोरपि ॥८८॥

सन्ध्यारयेदेवमेव प्रतिपाश्वं दृढ यथा ।

अन्तर्वाहीणवेगद्वयमन्यातपयो क्रमात् ॥८९॥

सम्यद् निवारयितु विधिवद् यन्त्रोपरि क्रमात् ।

षट्सप्त्याकोष्मपालोहाकुर्यादावरण दृढम् ॥९०॥

यन्त्रस्थोष्ठर्वधोभागप्रदेशयो पाश्वंयोरपि ।

यथा स्याद् धूमसञ्चार कीलकान् परिकल्पयेत् ॥९१॥

एव धूमोदगम यन्त्र कर्तव्य सावधानत ।

एतान्यन्त्राणि चत्वारिंशत्कृत्वा सुदृढ यथा ॥९२॥

स्थापयेत्वीठकेन्द्रेषु सम्यगाकर्त्तकीलकात् ।

एतत्सहायतो व्योमयान सञ्चरति क्रमात् ॥ ९३ ॥

इति धूमोदगमन्त्र ॥

जिससे कि शुण्डाल के अन्दर चक्रवेग से व्योमयान का प्रचालन होता है अत शास्त्रोक्तिविधि से क्रम से शुण्डाल बना कर ( उनमें से ) प्रत्येक धूमोदगम यन्त्र के मूलदेश में पृथक् पृथक् दो दो शुण्डालों को दृढ कील शंकुओं से लगाए, धूम प्रसारणानालस्तम्भ मूल में भी यथाविधि, दक्षिण उत्तर

मैं उसी भाँति पूर्व पश्चिम में भी लगावे, हसी प्रकार प्रतिपार्श्वभाग मैं लगावे अन्दर बाहिर के दोनों दल्लावेग अन्तिम आतप के सम्यक हृष्टाने को यन्त्र के ऊपर कम से, छही संख्या बाले उभय्या लोहे से यन्त्र के ऊपर नीचे भाग प्रदेशों में और पार्श्व भागों में हृष्ट आवरण करे, जिससे धूमसज्जार हो इस प्रकार कील युक्त करे। इस प्रकार धूमोदूगम यन्त्र सावधानता से बनाना चाहिये, इन ४० यन्त्रों को सुट्ट बना कर पीठकेन्द्रों में धूमने वाली कील से स्थापित करे इनकी सहायता से व्योमयान गति करता है ॥ ८६-८३ ॥ धूमोदूगम यन्त्रविषय समाप्त हो गया ॥

अथ विशुद्धन्त्रनिर्णयः—अब विशुद्धन्त्र का निर्णय देते हैं—

तदुकं यन्त्रसर्वस्ये—वह यह यह यन्त्रसर्वस्य में कहा है—

संघर्षणं पाकजन्यं जलपातं तथैव हि ।

सायोजकः किरणजन्यमित्यादीनि शास्त्रतः ॥ ६४ ॥

द्वात्रिशदिति प्रोक्षाणं विशुद्धन्त्राण्यथाकमम् ।

एतेषु व्योमयानोपयुक्तं सायोजकं भवेत् ॥ ६५ ॥

एतेनैव प्रकृतव्यं विशुद्धन्त्रं यथाविषि ।

शक्तितन्त्रे यथाप्रोक्षकमगस्त्येन महर्षिणा ॥ ६६ ॥

संघर्षणं, पाकजन्यं, जलपातं, सायोजकं, किरणजन्यं इत्यादि ३२ विशुद्धन्त्र शास्त्र से कहे हैं इनमें व्योमयान के ऊपरी सायोजक है इससे ही विशुद्धन्त्र बनाना चाहिये जैसा कि महर्षि अगस्त्य ने शक्तितन्त्र में कहा है ॥ ६४-६६ ॥

उक्तं हि शक्तितन्त्रे—कहा ही है शक्तितन्त्र में—

पूर्वोक्तसांयोजकलोहेन पीठं यथाविषि ।

पञ्चर्त्तिशद्वितस्त्यावृताकारेणाथवा हृष्टम् ॥ ६७ ॥

कृत्वा पीठ ततस्तस्मिन् प्रादक्षिण्यकमेण तु ।

कल्पयेत्पञ्चकेन्द्राणि तन्मध्ये चैककेन्द्रकम् ॥ ६८ ॥

वितस्तिपञ्चकात्तरं कुर्यात्केन्द्रद्ययन्तरे ।

केन्द्रस्त्यानुसारेण कुर्यात् पात्राण्यथाकमम् ॥ ६९ ॥

चतुर्वितस्त्यायाम च वितस्तिदयमुन्नतम् ।

यथाकुम्भान्तरालं स्यात्तथैवास्यान्तरालकम् ॥ १०० ॥

पूर्वोक्त सांयोजक लोहे से यथाविषि पीठ बनावे, ३५ बालिशत गोलाकार से पीठ बना कर उसमें धूम के कम से पांच केन्द्र बनावे उनके बीच में एक केन्द्र ५ बालिशत के अन्दर से दो केन्द्रों में, केन्द्र संख्यावृत्तार पात्र बनावे, ४ बालिशत लम्बा २ बालिशत उठा दुड़ा जैसे घडे का भीतरी भाग—अबकाश हो जैसा अवकाश रखे ॥ ६७-१०० ॥

\* 'हांयोजिकम्' (मूल पाठ) परन्तु भागे सर्वत्र 'सांयोजक' पाठ है।

कुर्यादेव पात्रमूलाकारं पश्चाद् यथाविधि ।  
 वितस्त्वये कायामक च वितस्त्वये कोन्नत तथा ॥ १०१ ॥  
 नालवत्कल्पवित्वाय तस्योपरि दृढ़ यथा ।  
 सन्धारयेद् यथाछिद् पात्रमध्य भवेदिति ॥ १०२ ॥  
 चतुर्वितस्त्वयामेन वर्तु लाकारत कमात् ।  
 तन्नालोध्वं मुख कुर्यात्सुदृढ मनोहरम् ॥ १०३ ॥  
 पश्चान्मयूखकेशास्थमयूगचर्म सुशोधितम् ।  
 आदृत्य भारमात् एणोत्पन्नद्रावकपूरिते ॥ १०४ ॥  
 भाण्डे निधाय विधिवत् पाचयेद् यामपञ्चकम् ।  
 सम्पक् सक्षालयित्वाय शुद्धशीतकवारिणा ॥ १०५ ॥

इस प्रकार पात्रमूलाकार बन का पीछे यथाविधि १ बालिशत ऊँचा नाल के समान बना कर उसके ऊपर ऐसे दृढ़ युक्त करदे जिससे नाल का छिद्र पात्र के मध्य में हो जावे । ४ बालिशत लम्बाई से गोलाकार उस नाल का ऊपरमुख मोहर दृढ़ करे पश्चात् मयूखकेश नाम सुग (सम्भवतः केसी सिंह) के चर्म मुरोधित ज्ञार को लेकर आनुष्णा कन्तृश-जोडिष्ट रुग्म से उत्पन्न द्रावक से भरे पात्र में रख कर विधिवत् ५ प्रहर तक पकावे फिर शुद्ध शीत जल से धोकर—॥ १०१-१०५ ॥

ज्योतिर्मुखी काव्यवेल्ली सारस्वतमत परम् ।  
 एतेषा बीजतस्तैल समाहरेत् पृथक् पृथक् ॥ १०६ ॥  
 त्रिसप्तबोडशाशप्रकारेरणीकघटे क्रमात् ।  
 सम्मेत्य पश्चात् कारस्य द्रावक च यथाविधि ॥ १०७ ॥  
 चतुष्पृष्ठं भगागाय तस्मिन् सम्मेलयेत् पुनः ।  
 तच्चर्मं पुनरादाय एतत्तेले नियोजयेत् ॥ १०८ ॥  
 पश्चात् सूर्यपुटे दद्याच्चतुर्विशद्विनावधि ।  
 रक्तवर्णं (?) स्था (था ?) लतल्य तच्चर्मणि भवेत् क्रमात् ॥ १०९ ॥  
 पूर्वोक्तपात्रानालस्य मुखचिद्द्राकृतिर्यथा ।  
 प्रचिद्द्रव्य तच्चर्मं तस्मिन् पञ्चरन्धाणि कारयेत् ॥ ११० ॥

ज्योतिर्मुखी-मालकंगानी, करेला, सारस्वत-बाणी ? इनके बीज से निकले तैल पृथक् पृथक् लावे, तीन सात सोलह अंशों में क्रमशः लेकर घडे में मिला कर ज्ञार का द्रावक भी यथाविधि ६४ वें का १ भागारा उसमें मिलावे पुनः उस चर्म को लेकर तैल में २४ दिन तक नियुक्त करे-तर करे पश्चात् सूर्यपुट में दे दे-पूर्ण में रख दे जब स्थाल-इण्डी का नीचे का भाग रक्त बण्ण उस चर्म पर हो जावे पूर्वोक्त यन्त्रनाल के मुखचिद्र की आकृति जैसी थी, उस चर्म को छेदकर उसमें पांच छिद्र करे—॥ १०६-११० ॥

पश्चात् समन्तात् तत्पात्रमुखे छिद्र दृढ़ यथा ।  
 आच्छाया तच्चर्मं पश्चाद् बन्धयेच्छड्कुमि. क्रमात् ॥ १११ ॥

एव क्रमेरीव कृत्वा पञ्चपात्राण्यथाविधि ।  
 पीठस्थपञ्चकेन्द्रेषु स्थापयेत्कीलकशाङ्कुभिः ॥ ११२ ॥  
 पञ्चान्मूत्रं ग (१?) देभाना षोडशद्वौणसम्मितम् ।  
 लिङ्ग्योडशकेगालान् सुट्ठ खनिजोऽब्द्वान् ॥ ११३ ॥  
 तथैव लवणालिङ्ग्यवय चैव तत परम् ।  
 लिङ्गद्वयं शुद्धसारं शुद्धं लिङ्गद्वयं रविम् ॥ ११४ ॥  
 पूरयेत् पूर्वदिक्पात्रे ततदभागानुसारत ।  
 एव सम्पूर्यं प्राचीदिक्पात्रे पञ्चात् तथैव हि ॥ ११५ ॥

फिर पात्रमुख में हुए छिद्र को ढां सब और से ढक कर चर्म को शंकुओं से बाह्य दे पञ्चात् पीठस्थ पांच केन्द्रों में पांच यन्त्र कीलशंकुओं से स्थापित कर दे । फिर गर्यों का मूत्र १६ द्रोण (मण) परिमाण १६ लिङ्ग (डिप्री) उच्चाता परिमाण खनिज से उत्तरन अङ्गार तथा ३ लिङ्ग परिमाण लवण २ लिङ्ग शुद्ध सारे सर्पविष, २ लिङ्ग रवि-तान्त्रा या आख बृहत्, पूर्व दिशा के यन्त्र में भर दे उस उसके भागानुसार से इस प्रकार पूर्व पात्र में भर कर—॥ १११-११५ ॥

पञ्चात् पश्चिमदिक्पात्रे वक्ष्यमाणान् प्रपूरयेत् ।  
 सप्तविद्युदगममणिं प्राणकारत्रयोदश ॥ ११६ ॥  
 द्वाविशज्ज्वलिङ्गाणा (१?) च सम्मेल्य विधिवत्तत ।  
 यन्त्रे सम्पूर्यं विधिवदाहरेद् द्रावक कमात् ॥ ११७ ॥  
 भागद्वयं चोष्टमूत्रं द्रावकस्यैकभागकम् ।  
 पूरयित्वा प्रतीचीदिग्भाण्डे सम्यक् प्रमाणत ॥ ११८ ॥  
 पञ्चात्खड्गमध्यास्थीनि पञ्चाशलिंग्मेव हि ।  
 लिङ्गशिराद् गन्धक च चित्तचाकारस्तथैव हि ॥ ११९ ॥  
 लिङ्ग्योडशक तद्ददयस्कान्तमत परम् ।  
 अष्टाविशलिंगमात्रे तन्मूत्रे सन्त्योजयेत् ॥ १२० ॥

पञ्चात् पश्चिम दिशा वाले पात्र में आगे कहे जाने वाले पदार्थों को भर दे, ७ भाग विद्युद्-गममणि—चुम्बक १३ भाग प्राणकार—नवसादर, २२ भाग शश की विञ्जा एक पात्र में विधिवत् मिला कर यन्त्र में भर कर द्रावक-अर्के निकाल फिर २ भाग ऊरट का मूत्र द्रावक का एक भाग पश्चिम दिशावाले पात्र में भर कर पञ्चात् ५० लिङ्ग गोण्ड मूग की हृद्बिंदा ३० लिङ्ग गन्धक, १६ लिङ्ग विंचाकार—अमली का ज्ञार, २ लिङ्ग अयस्कान्त, २८ लिङ्ग प्रमाण मूत्र में ढालेदै-मिलादै ॥ ११६-१२० ॥

पञ्चात् सप्तदशोत्तरशतस्त्यात्मकं पुनः ।  
 तडिनित्रमणिं तस्मिन् स्थापयेन्मध्यभागके ॥ १२१ ॥  
 एव सम्पूर्यं विधिवत् पश्चिमे केन्द्रपात्रके ।  
 वक्ष्यमाणपदार्थाश्चोत्तरपात्रे प्रपूरयेत् ॥ १२२ ॥

ततोपामागं वीजाना तैलमेकादशांशकम् ।  
 सर्पास्यबीजतैलं च द्वार्चिशाशा तथैव हि ॥ १२३ ॥  
 चत्वारिंशदयस्कान्तैलाशा च यथाक्रमम् ।  
 अयुतराशीतिभागाशागजमूत्रे नियोजयेत् ॥ १२४ ॥  
 तैलत्रयतीयाशादधिक गजमूत्रकम् ।  
 मेलयित्वा सप्रमाणामुदीची केन्द्रस्थिते ॥ १२५ ॥

पश्चात् ११७ संख्या तदिनमणि ? को मध्यभाग वाले में रखे, इस प्रकार पश्चिम केन्द्रपात्र में भर कर पुनः उत्तर पात्र में कहे जाने वाले पदार्थों को भरे कि अपामार्ग—चिद्वचिडे के बीजों का तैल ११ भाग ३२ अंश सर्पास्य बीज—सर्पास्य ? नागकेसर बीज का तैल ५० भाग अयस्कान्त का तैल ८२ गजमूत्र—हाथी के मूत्र में डाल दे फिर तीनों तैलों के तृतीय अंश से अधिक हाथी का मूत्र मिलाकर उत्तर दिशा के केन्द्र में स्थित हुए—॥ १२१—१२५ ॥

पात्रे सम्पूर्यित्वाथ पश्चात् तस्मिन् यथाविधि ।  
 पारद सेहिकक्षार तथा पार्वणिसत्त्वकम् ॥ १२६ ॥  
 त्रिशद्विशत्पञ्चविंशतिपलभागान् पृथक् पृथक् ।  
 प्रत्येक तोलयित्वाथ सम्यक् सम्पूर्येत् क्रमात् ॥ १२७ ॥  
 मणिप्रकारे रेणीकाषु त्रितस रुग्यात्मक शिवम् ।  
 स्थापयेद् भास्करमणि तन्मध्ये तैलशीघ्रितम् ॥ १२८ ॥  
 एवमुत्तरकेन्द्रस्थपात्रे वस्तुप्रपूरणम् ।  
 कृत्वा दक्षिणकेन्द्रस्थपात्रेष्वेव यथाविधि ॥ १२९ ॥  
 द्वादशश्चैकर्विशत्पौड्यभागाशकां क्रमात् ।  
 ग्रन्थिद्रावक ( च ) पञ्चमुखीद्रावकमेव च ॥ १३० ॥  
 इवेतामुखाद्रावक च मेलयित्वा यथाविधि ।  
 गोमूत्रे द्रवभागाशात्पञ्चभागाधिके क्रमात् ॥ १३१ ॥

पात्र में भर कर पश्चात् उसमें यथाविधि पाग, सैहिक ज्ञार, बड़ी कटेली का ज्ञार, पार्वणि-सत्त्व—वंशसत्त्व—वंशलोचन ? या जिसके पर्व पर्व में वैसा ही अङ्ग हो ईख की भाँति, लल रंग, लम्बे पचे, लाल फूल, सूक्ष्म काटे वाला, सर्पविष विनाशक, कडवे सार वाला कृष्णपत्र में खिलने वाला ( देखो काफी १४ ल्होक ७८-८० ) पार्वणि वृक्ष होता है ये तीनों ३०, २०, २५ पत्र अर्थात् १२०, ८०, १०० तोला क्रम से भागों को पृथक् पृथक् प्रयेक तोल कर भली प्रकार भर दे, मणि प्रकार से उक आठ सौ संख्यात्मक तैल से शोधित कल्याण कर मास्करमणि—सूर्यकान्त मणि को उसके मध्य में शापित करे। इस प्रकार उत्तर केन्द्र में स्थित पात्र में बहु प्रपूरण करके दक्षिण केन्द्रस्थ पात्र में भी यथाविधि १२, २१, १६ भाग रूप क्रम से प्रथिद्रावक—पिण्यता मूत्ररस, वासारस, इवेत शरपुंखा रस या इवेतगुज्जा रस यथाविधि मिला कर उक द्रव भागांशों से ५ भाग अधिक अर्थात् ५४ भाग गोमूत्र में क्रम से—॥ १२६—१३१ ॥

सयोज्य पूर्वोक्तपात्रे पूरयेत्प्रमाणतः ।  
 ज्योतिर्मर्यूखकन्दं सप्तचत्वारिंशतिस्तथा ॥ १३२ ॥  
 अष्टविशलिलङ्क कान्तलोह चाष्टादशात्मकम् ।  
 द्वात्रिशलिलङ्कप्रमाणकुडुपं दशसंख्यकम् ॥ १३३ ॥  
 तोलित्वाथ तत्पात्रे योजयित्वा तथैव हि ।  
 द्विनवत्यात्मक ज्योतिर्मणिकीर्विशेषितम् ॥ १३४ ॥  
 तस्मिन् स्थापयेत्पश्चाच्चाकायणिमत यथा ।  
 एव दक्षिणकेन्द्रस्थपात्रे वस्तुप्रपूरणम् ॥ १३५ ॥  
 कृत्वाय मध्यकेन्द्रस्थपात्रे शक्ति प्रपूरयेत् ।  
 कर्तव्यं पञ्चपलग्राहकलोहैव शास्त्रतः ॥ १३६ ॥  
 विद्युत्सम्पूरणार्थं शक्तिपूरकपात्रकम् ।

पूर्वे पात्र में मिळा कर भरदे, ज्योतिर्मर्यूख कन्दः ४५, १८ संख्या वाला कान्तलोहा, २८, १० संख्या वाला कुडुपः ? ३२, तोल कर उस पात्र में डाल कर ४२ संख्या में ज्योतिर्मणि—आस्त ? के चीर में शोधित उसमें रस्त दे, चाकायणिं के मतानुसार इस दक्षिण केन्द्र पात्र में वस्तु भर कर मध्यकेन्द्रस्थ पात्र में शक्ति को भरे चपलग्राहक लोहै से विद्युत् को भरने के लिये शक्तिपूरक पात्र करना चाहिए ॥ १३२-१३६ ॥

चपलग्राहकुङ्कं लोहतन्त्रे—चपलग्राहक लोहा कहा है लोहतन्त्र में—  
 चूर्णं प्रावश्वेतनिर्यासमूलकाचा तथैव हि ॥ १३७ ॥  
 मधुशुणिडककन्दर्पकर्कटत्वम्बराटिकान् ।  
 कद्मुलोनिर्यासकं चेत्पैतवं सशोध्य शास्त्रतः ॥ १३८ ॥  
 वसुद्रुबिभनकशत्रदिग्बाणामिन्महत्कमात् ।  
 टद्मुण्डं द्वादशाश च सत्तोत्प्य विधिवत् तथा ॥ १३९ ॥  
 उरणास्यास्यमूष्यायां तत्तद्वागानुसारतः ।  
 सम्पूर्यं विधिवत् पश्चात् कुण्डे कुण्डोदराभिष्ठे ॥ १४० ॥  
 सस्थाप्य त्रिमुखीभस्त्राद घमनेत् सम्यग्यथाविधि ।  
 सप्तशोडवोत्तरचतुशशतकक्ष्योषणवेगतः ॥ १४१ ॥  
 सगृहा तद्रस यन्त्रयुक्ते सम्पूरयेच्छनेः ।  
 चपलग्राहक लोह भवेत्पश्चाद दृढं मृदु ॥ १४२ ॥

चूना, प्राव श्वेते—श्वेत प्राव—सङ्कमरम, निर्यास—लाल, मृत—सोरठ मिट्ठी, काच, मधु-शुणिडक कन्दर्प—हाथी शुण्डा वृक्ष का मूल ? कर्कटवक्—बिलव वृक्ष की छाल, कौंडी, कंकोल निर्यास—शीतल चीजों का गोन्द । इन्हें शाख से शोध कर ८, ११, ७, २८, १०, ५(७), ३, ५ भागों को लेकर सुहागा १२ भाग तोल कर विधिवत उरणास्यास्यमूषा पात्र में उनके भागानुसार भर कर कुरडोदर नामक कुण्ड

मैं रख कर तीन मुख वाली भक्ता से घमन करे ४२३ दर्जे की उच्छता के बेग से तपाकर—गता कर उस गले रस को यन्त्रमुख में धोरे से भर दे यह चपलप्राइक लोहा हो जावे ॥ १३७—१४२ ॥

**शक्तिपूरकपात्रनिर्णय—शक्तिपूरक पात्र का निर्णय—**

वित्तिस्तपद्मकायाम विस्त्यष्टकमुन्नतम् ।

अर्धचन्द्राकृति पीठ गात्रमेकवित्तिस्तकम् ॥ १४३ ॥

चपलयाहकलहेनैव कुर्याद् यथाविधि ।

शक्तिपूरकपात्र तन्मध्ये संस्थापयेत् क्रमात् ॥ १४४ ॥

पात्रमूल बृहत्कुम्भाकारवद् वर्तुल तथा ।

द्रोणवन्मुखभाग च कल्पयित्वा यथाविधि ॥ १४५ ॥

एतदाकारतः कावकवच तस्य कारयेत् ।

वित्तिस्तत्रयमायाम षड्वित्तस्त्युन्नत तथा ॥ १४६ ॥

नालद्य प्रकर्तव्य द्रोणवसुट्ठ यथा ।

स्थापयेत् तत्पात्रमध्ये दक्षिणोत्तरत क्रमात् ॥ १४७ ॥

५ वालिशत लम्बा च वालिशत ऊँचा अर्धचन्द्राकार वाला नीचे का भाग १ वालिशत मोटा चपलप्राइक लोहे का शक्तिपूरक पात्र यथाविधि करे, उसके बीच में पात्रमूल बडे घडे के आकारजैसा गोल कलश की भाँति मुखभाग बनाकर ऐसे आकार में कांच का क्षच उसका बनावे, ३ वालिशत लम्बा ६ वालिशत उडा हुआ तथा दो नाल कलश की भाँति हड़ करने चाहिए, उन्हें पात्र के मध्य में दक्षिण और उत्तर के क्रम से स्थापित करे ॥ १४३—१४७ ॥

चक्रद्वय चौभयनालमध्ये स्थापयेत् क्रमात् ।

तयोरावरणा कुर्यात् कावनेनैवाथ पूर्वबत् ॥ १४८ ॥

चक्रयोरमयोमध्ये नालयोर्बाह्यत क्रमात् ।

सन्धिकील कल्पयित्वा स्थापयेत् सरल यथा ॥ १४९ ॥

भ्रमणात् सन्धिकीलस्य नालयोर्भयोरपि ।

चक्रारिण आययेद् वेगात् तेन शक्तस्त्वर्धना भवेत् ॥ १५० ॥

चतुर्विक्षु स्थितविद्युत्यात्रमूलाद् यथाविधि ।

मध्यपात्रस्थनालद्वयमूलावधि क्रमात् ॥ १५१ ॥

नालद्वयमयस्कान्तलोहेन रचित तत ।

षड्गुलायामयुक्त सन्धान कारयेदय ॥ १५२ ॥

दो नालों के मध्य में दो चक्र स्थापित करे उन चक्रों का कांच से आवरण पूर्व जैसा करे, दोनों चक्रों के बीच में नालों की बाहिरी ओर क्रमशः सन्धिकील लगा कर सरल रखें, सन्धिकील के भ्रमण से दोनों नालों के बक को बेग से चुमावे इससे चारों दिशाओं में स्थित विशुद्धत्र मूल से मध्यपात्रस्थ दो नालों के मूल के अधिक्रम से शक्ति उर्घवामी हो जावेगी, दो नालें अयस्कान्त से रखे पुनः ६ अंगुल लम्बा जोड़ लगावे ॥ १४८—१५२ ॥

वेष्टयेद् रुक्मृगचर्मं नालद्योपरि ।  
 तस्योपरि पुनः पटूतन्तुर्वा पटमेव वा ॥ १५३ ॥  
 वेष्टयेत्सुहृदं सम्यक् पश्चात् तन्नालयो क्रमात् ।  
 कृत्वा वज्रमुखो ताम्रतन्त्रीन् द्रावकशोधितान् ॥ १५४ ॥  
 एकंकनालान्तराले द्वौ द्वौ तन्त्रीन् नियोजयेत् ।  
 तत्तन्त्रीन् शक्तिपूरकपात्रनालद्यान्तरे ॥ १५५ ॥  
 सन्धारयेत्समाहृत्य काचकुप्तिकपूर्वकम् ।  
 शक्तिपूरकपात्रेय पारमष्टपलं न्यसेत् ॥ १५६ ॥  
 एकनवत्युत्तरान्त्रिशतसंख्याकालम् तत् ।  
 विद्युन्मुखमणिं ताम्रतन्त्रीभिं परिवेष्टितम् ॥ १५७ ॥  
 सद्योगकीलकपुत्रं तस्मिन् सन्धारयेत् क्रमात् ।  
 पश्चात् पूर्वोक्तालस्थतन्त्रीनाहृत्य यत्नत ॥ १५८ ॥

उन दोनों नालों के ऊपर रुखचर्म—काले हरिण के चर्म को लपेट दे फिर उसके भी ऊपर पटतन्तु—सूत या पटवस्त्र ही उन नालों पर सुहृद लपेट दे फिर द्रावक में शुद्ध की हुई वज्रमुखी ताम्रतन्त्रीयों को अर्थात् वज्रमुखी ताम्बे की तारों को एक एक नाल के अन्दर दो दो काले तारों को नियुक्त करे—फिर करे जो कि शक्तिपूरक पात्रस्थ दो नालें हैं उनके अन्दर कांच की कुपिं—आवरण (बल्ब जैसे) के साथ लगावे । शक्तिपूरक पात्र में पारा आठ पल—३२ तोला रख दे, तीन सौ इक्यानन्दे ३६१ सख्या वाली विद्युन्मुखमणिं को ताम्बे की तारों से लपेट संयोग कीलक युक्त उसमें लगा दे फिर पूर्वोक्त नालों की तारों को लेकर यन्त्र से—॥ १५३—१५८ ॥

विद्युन्मुखमणोस्यायोजनकीलकतन्त्रिपुरुषं ।  
 सन्धारयेद् हठ काचक कुरन्धमुखेन हि ॥ १५९ ॥  
 एव कृत्वा मध्यपात्रं विहायाथ पुनः क्रमात् ।  
 ग्रवशिष्टेषु पात्रं षु पृथक् पृथग्यथाविधिं ॥ १६० ॥  
 मन्थानवत् स्थितौ द्वौ द्वौ मथनोन्मथनभित्तौ ।  
 स्थापयेत्कीलकस्तम्भी सरलभ्रमणं यथा ॥ १६१ ॥  
 पात्राणां मध्यकेन्द्रे षु शास्त्रोक्तेनैव वर्तमानं ।  
 ग्रयस्कान्तेन वा नोचेच्छक्तिकन्येन वा कृतान् ॥ १६२ ॥  
 स्तम्भाद् स्थापयेत् तेषु एकंकं च पृथक् पृथक् ।  
 वितस्तित्रयमीन्नत्य गात्रमेकवितस्तिकम् ॥ १६३ ॥

विद्युन्मुखमणिं—इन्यनेमो? की संयोजक कील वाली तारों में कांच को कुरन्ध मुख—नीचे भूमि वाले छिद्रमुख से इदं जोड़ दे या कांच के दो कोशा वाले छिद्रमुख से ऊपर कहे तारों को जोड़ दे । ऐसा करके मध्य पात्र को छोड़ कर अन्य अवशिष्ट पात्रों में यथाविधि पृथक् पृथक् मन्थनसाधन के समान स्थित दो दो मथन उन्मय नामक कील स्तम्भ लगावे जिससे मध्यकेन्द्रों में वर्तमान पात्रों का

शास्त्रोक्त मार्ग से सखल भ्रमण हो सके अथवा अयस्कान्त से या शक्तिक्षय से किये स्तम्भों को उनमें  
एक एक स्थापित करे । ३ वालिशत् ऊँचाई १ वालिशत् मोटाई—॥ १५६-१६३ ॥

एकेकस्तम्भप्रमाणामिति शास्त्रविनिरांय ।  
मथनोन्मथनयन्त्रपूर्वभागे यथाक्रमम् ॥ १६४ ॥  
उत्तेपणापद्मेपणचक्रकीलान् पृथक् पृथक् ।  
सन्धारयेत् ततो मध्यस्तम्भस्थानाद् यथाक्रमम् ॥ १६५ ॥  
उत्तेपणापद्मेपणकीलावधिसुशोधितम् ।  
ग्रन्थाङ्गुलायामनालमेक सन्धारयेद् दण्डम् ॥ १६६ ॥  
पश्चात्पञ्चाङ्गुलायामचक्राणि मुहुडान्यपि ।  
कृत्वा जलाहरणयन्त्रचक्रवन्मनोहरम् ॥ १६७ ॥  
सन्धारयेद् यथाशास्त्रं पञ्चसल्याकमेण तु ।  
कीलकेस्तरलैस्तम्भङ्गनालस्थोभयपाशयो ॥ १६८ ॥  
ततशक्तिस्तर्वात् तद्गुलदृश्यमानत ।  
पट्टिकाद् कारयित्वाय शोषयित्वा यथाविधि ॥ १६९ ॥  
आवृत्तनालान्तर्गतचक्राण्यारभ्य शास्त्रत ।  
मथनोन्मथनयन्त्रवामदक्षिणापाशयो ॥ १७० ॥  
सास्त्वितोत्तेपणापद्मेपणचक्रान्तरावधि ।  
मथनोन्मथनयन्त्रोभयपात्रस्थकेन्द्रयो ॥ १७१ ॥

एक एक स्तम्भ का प्रमाण है यह शास्त्र का निरैय है, मथनोन्मथन यन्त्र के पूर्व भाग में  
यथाक्रम उत्तेपण—ऊपर फैकने अपत्तेपण नीचे फैकने की चक्रकीले पृथक् पृथक् लगावे, मध्यस्तम्भ स्थान  
से यथाक्रम उत्तेपण अपत्तेपण की कील तक सुरोधित द अङ्गुल लम्बा एक नाल लगावे, पश्चात् ५  
अङ्गुल लम्बे सुट्ट चक्र भी जलाहरण—चक्र—राहट की भाँति मनोहर बनाकर शास्त्रानुसार सखल कीलों  
नाल के दोनों पासों में लगावे । फिर शक्तिक्षय लोहे से २ अङ्गुल माप की पट्टिकाएं बना कर और  
यथाविधि शोष कर जूमने वाले नाल के अन्तर्गत चक्रों को आरब्ध कर शास्त्र से मथन-उन्मथन यन्त्र  
बाएं दाएं चक्रों की अवधि तक मथनोन्मथन यन्त्र के दोनों पात्रों के केन्द्र में—॥ १६४-१७१ ॥

( आगे देखो कापी संख्या १६ )

### हस्तलेख कारी संख्या १६—

सस्थितत्रिचकमुखस्तम्भकीलकयोः कमात् ।

संयोज्य विविवत्पश्चात् स्तम्भस्थप्रतिनालयो ॥ १७३ ॥

पाश्वंयोरुभयोर्मध्ये चानुलोमविलोमत ।

सन्धारयेद् आमरणकीलकात् सुहुङं यथा ॥ १७४ ॥

एतत्कीलकभ्रमणाद् दधिनिर्मन्त्वने यथा ।

मन्थानरञ्जुग्रहणाहस्ती वेगात् पुन् पुन् ॥ १७५ ॥

ऊर्ध्वाधीभागयोस्सम्यगनुलोमविलोमत ।

सभ्रामयेत् तथा नालोभयपालवस्थपट्टिका (म?) ॥ १७६ ॥

ऊर्ध्वाधीभागयोस्सम्यगभ्रामयेद् वेगतः कमात् ।

पश्चाद् दर्पणशास्त्रोक्तृष्णाकर्णणदर्पणात् ॥ १७७ ॥

उलूखलोपरि न्यस्तवेणुपात्राकृतियथा ।

कुर्याच्चत्वारि पात्राणि चतुष्पात्रोपरि कमात् ॥ १७८ ॥

विधिवद् योजयेत् सम्पद् मुखस्थाने पुथक् पुथक् ।

—स्थित तीन चक्रमुख वाली दो स्तम्भकीलों में कम से संयुक्त कर पश्चात् स्तम्भस्थ प्रतिनाल के पाश्वों में अनुलोम विलोम रीति से घुमनेवाली कीलों को ढट लगादे इन कीलों के भ्रमण से वही मध्यने में उसे मन्थन ढोरी पकड़े हुए हाथ बेग से चार चार ऊपर नीचे भागों में अनुलोम विलोम—सीधे उलटे ढंग से बुमाव वैसे ही नालों के दोनों ओर वाली पट्टिका ऊपर नीचे भागों में सम्यक् बेग से बुमावे पश्चात् दर्पणशास्त्र में कहे छृष्णाकर्णदर्पण—सुर्य या सूर्यकरण को खींच लेने वाले दर्पण—सूर्यकान्त से चार पात्र करे और चार पातों के ऊपर कम से विधिवत् सम्पद् मुखस्थान में युक्त करे ऊखल के ऊपर रख बांस पात्राकृति के समान— ॥ १७३—१७८ ॥

पात्रलक्षणं ललेनेकम्—पात्रलक्षण लल आचार्य ने कहा है—

ग्रादावष्टाङ्गुलायाम वितस्यैकोन्नत तथा ॥ १७९ ॥

कृत्वा तन्मध्यदेशेष शास्त्रोक्तेनैव वर्त्मना ।

वितस्तिद्वयमायामं वड्वितस्त्युल्तं तथा ॥ १८० ॥

कल्पयित्वा तदन्ते वड्वितस्त्यायामविस्तृतम् ।

\* संख्या कारी १८ से भागे के कम से है ।

कुर्यान्मुखबिलं चैवं नाललक्षणमीरितम् ॥ १६१ ॥

वेणुक्षारं कांचपात्रे पञ्चविशतिपतं तत् ।

सम्पूर्यं विधिवत् तस्मिन् संशुद्धद्रावकं क्रमात् ॥ १६२ ॥

पञ्चविशाकुत्तरविशतस्स्थात्मकं तथा ।

शालीकारेण सयोज्य निक्षिपेदशुपामणिम् ॥ १६३ ॥

आदि में ८ अङ्गगुल लम्बा १ वालिशत् ऊँचा उसके मध्य देश में शास्त्रमार्ग से बनाकर उसके अन्त में २ वालिशत् लम्बा, ६ वालिशत् ऊँचा बनाकर उसका ६ वालिशत् लम्बा मुखभिल करे यह नाल का लक्षण कहा है । वेणुक्षार—वैस का चार २५ पल अधीर्त १०० तोले कांचपात्र में भरकर विधिवत् उसमें शुद्ध द्रावकों से ३२५ पल १ शालीतार से मिलाकर अशुगामणि सयोकान्त ? को डालावे—॥ १६४—१६५ ॥

पञ्चच्छालीशुण सम्यक् तस्योपरि प्रमाणतः ।

आच्छाद्य प्रतिपात्रस्य मुखभिले हृष्टं यथा ॥ १६४ ॥

सन्धारयेत् कीलकाभ्या सूर्याभिमुखत क्रमात् ।

एभिराकर्षितास्सम्यक् किरणासर्वतोमुखा ॥ १६५ ॥

पञ्चोत्तरशतकक्षयप्रसारोष्णेन सयुता ।

चतुष्पात्रेषु वेगेन प्रयह प्रविशन्ति हि ॥ १६६ ॥

एव कमाद् द्वादशाहमातपे तापयेद् यदि ।

प्रशीत्युत्तरसाहस्रलिङ्गविद्युत् प्रजायते ॥ १६७ ॥

प्रतिपात्रेष्वेष्व शक्तिस्सलभते ध्रुवम् ।

एतच्छक्ति समाहृत्य शक्तिपूरकपात्रके ॥ १६८ ॥

सन्नियोजयितु पञ्चादयस्कान्तस्य लोहतः ।

कृत्वा षड्गुलायामनालानापात्रमूलत ॥ १६९ ॥

आहृत्य शक्तिपूरकपात्रे सन्धारयेत् क्रमात् ।

कवचं कारयेत् पञ्चात् तेषा रुक्मिणी ॥ १७० ॥

पञ्चात् शालीकृष्ण उसके ऊपर प्रभाए से ढककर प्रयेक पात्र के मुखभाग पर दो कीलों से सूर्य की ओर युक्त करदे, इनसे सब ओर से आकर्षित हुईं किरणें १०५ दर्जे की उष्णता से युक्त हुई चारों पात्रों में वेग से प्रतिदिन प्रविष्ट होती हैं इस प्रकार १२ दिन धूप में यदि तपाने वो एक सहस्र अरसी डिग्री की विद्युत् उत्पन्न हो जाती है प्रत्येक पात्र में भी इस प्रकार शक्ति मिल जाती है, इस शक्ति को लेकर शक्तिपूरकपात्र-शक्ति भरनेवाले यन्त्र में नियुक्त करने को अस्कान्त लोहे से पात्र के मूल तक ६ अङ्गगुल लम्बे नाल करके शक्ति पूरकपात्र में लेकर जोड़दे लगावे उनके ऊपर आवरण रुह—कृष्ण-इरिण के चर्म से करावे—बनावे ॥ १६४—१६० ॥

तस्योपरि विशेषेण वेष्टयेत् पट्टवस्त्रतः ।

तत्तन्तुभिर्वा विधिवत् ततो नालान्तरे क्रमात् ॥ १६१ ॥

शुद्धवज्जमुखताप्रतन्त्रीदयं सुवर्चसम् ।  
 शक्तिपूरकपात्रेय यथा संयोजित भवेत् ॥ १६२ ॥  
 तथा सन्धारयेत्सम्यक् प्रतिनालेप्यथाविषि ।  
 शक्तिपूरकपात्रेय रसं शतपले त्यसेत् ॥ १६३ ॥  
 पश्चादेकनवत्युत्तरविशतात्मक शिवम् ।  
 विद्युन्मुखमणि पूर्वोक्तन्त्रीपरिवेष्टितम् ॥ १६४ ॥  
 तस्मिन्निधाय विधिवत् पश्चात्तन्माणिण तन्त्रिषु ।  
 पूर्वोक्त नालस्थतन्त्रीसम्यक् संयोजयेद् दृढम् ॥ १६५ ॥  
 चतुष्पात्रस्थितात् शुद्धबुरतैल प्रलेपिताम् ।  
 सम्भ्रामयेद् वेगतो मध्यनोन्मथनकीलकान् ॥ १६६ ॥

उसके ऊपरी भाग को रेशमी बख या उसके धारों से लपेट दे फिर कभ से नालों के अन्दर शुद्ध वज्जमुख तारों की मुंदर दो तारों को शक्तिपूरकपात्र में युक्त कर दिया जावे ऐसे प्रत्येक नाल में लगादे । शक्तिपूरकपात्र में १०० पल अर्थात् ४०० तोला पारा डालादे, फिर उन तारों से लपेटी हुई ३९१ मुंदर विद्युन्मणि को उसमें रखकर पश्चात् मणितारों में पूर्वोक्त नालतारों को भली भाँति लगादे, चारों पारों में स्थित चुरतैल-तिलतैल मा नस्तीग्नवध्रुव्य के तैल से मध्यनोन्मथन कीलों को चिकनी करके वेग से छुआवे—॥ १६१-१६६ ॥

कथ्यद्विषातेऽलावेगाद् भवेत्कीलकभ्रमो यदि ।  
 चतुष्पात्रस्थमूलेभुङ्ग पाचितेष्वशुभिः क्रमान् ॥ १६७ ॥  
 मध्यनोन्मथनकीलकाणि च (?) यथाकमम् ।  
 यथा भवेद् द्विसहस्रकश्योषण वेगतो भृशम् ॥ १६८ ॥  
 तन्मूलानि विशेषणे दधिवन्मन्यथन्ति हि ।  
 एतेन प्रतिपात्रे छत्रतिलङ्घप्रमाणतः ॥ १६९ ॥  
 वेगादाविभवेद् विद्युच्छक्षिशुद्धातिवेगिनी ।  
 आचतुष्पात्रमूलाश्रादाविद्युत्पूरकान्तरे ॥ २०० ॥  
 सन्धारितकान्तलोहनालान्तर्गततन्त्रिभिः ।  
 एतच्छक्षित समाहृत्य शक्तिपूरकपात्रके ॥ २०१ ॥  
 सम्पूरयेत् सप्रमाणण सावधानेन चेतसा ।  
 तच्छक्षित तत्रत्यमणिण पात्रे सगृह्य पूर्यति ॥ २०२ ॥

यदि मध्यनोन्मथन कीलों का घूमना २०० दर्जे की उषणाता से हो तो किरणों से पके चारों पात्रस्थ मूलों में मध्यनोन्मथ चक्र २००० दर्जे की उषणाता से वेग के लें वह मूल विशेषत दूरी मध्यने की भाँति मध्यन करती है उससे प्रत्येक पात्र में ८०० छिपी प्रमाणण के वेग से अतिवेगिनी विद्युत्शक्ति प्रकट हो जाती है चारों पात्रों के मूलाप से विद्युत्पूरकपात्र के अन्दर तक चक्षते हुए कान्त लोहनालान्तर्गत

तारोद्वारा इस शक्ति को लेकर पूरकपात्र में साधान चित्त से सप्रमाण भरदें, वहाँ की मणि उस शक्ति को पात्र में संभृत कर भर देती है ॥ १६७—२०२ ॥

शक्तिपूरकपात्रस्य पुरोभागे तत परम् ।  
 वितस्तिपञ्चकायामं वितस्तित्रयमुन्नतम् ॥२०३॥  
 कुम्भवद् वर्तुलाकार पात्रमेक न्यगेद दृढम् ।  
 तत्पात्र वेष्टयेत्सम्यग् वारिद्वक्षस्य चर्मणा ॥२०४॥  
 सार्वकालं यतो वारि तस्मिन् प्रवहति स्वयम् ।  
 ततो वारिप्रतिनिधि वारिचर्मनिरूपितम् ॥२०५॥  
 एतेन पात्रस्य जलावरणे प्रभवद् यथा ।  
 तथैव वारिद्वक्षस्य चर्मणा भवति श्रुतम् ॥२०६॥  
 सन्धार्यं पश्चात् तत्पात्रे सप्रमाण यथाविधि ।  
 शिखावलीद्वाकवस्य द्वादशाश तथैव हि ॥२०७॥  
 ग्रष्टादशाशायस्कान्तद्रावक तदनन्तरम् ।  
 वज्रचुम्बकद्रावस्य द्वाविशाश यथाक्रमम् ॥२०८॥  
 सम्पूर्यं काचपात्रेषु स्थापयेत् सुहृदं यथा ।

शक्तिपूरक यन्त्र के सामनेवाले भाग में ५. वालिश्त लम्बा ३. वालिश्त ऊँचा घड़ के समान गोल पात्र रखदे उस पात्र को भली प्रकार वारिद्वक्ष—हीवरद्वक्ष की छाल से लपेट दे, जिससे कि सर्वकाल उसमें स्वयं वारि—जल बहाता है तब ही वारि—जल का प्रतिनिधि वारिचर्म कहा गया है । इससे पात्र का जलावरण होता है वैसे वारिद्वक्ष के चर्म से यह ध्रुव होजाता है फिर उस पात्र में यथाविधि सप्रमाण रखकर शिखावली द्रावक—(शिखी) चित्रकवृक्ष ? या अपामार्ग ? के द्रावक में या (शिखिकएठ) नीलायथो के द्रावक का १२ अंश १८ अंश अयस्कान्तद्रावक पुन २२ अंश वज्रचुम्बक-द्रावक काचपात्रों में सुहृद भरकर रखदेना ॥२०३—२०८॥

पूर्वोक्तकाचावरणेहोनालस्य तन्त्रिभि ॥२०६॥  
 शक्तिपूरकपात्रादाहृत्य शक्ति यथाविधि ।  
 पात्रस्यद्रवपात्रेषु सम्यक् पूरयितुं कमात् ॥२१०॥  
 एकं कनासे चत्वारि यन्त्रघटसशोधितास्तत ।  
 काचचकमुखात्सम्यक् सन्धार्याय यथाविधि ॥२११॥  
 पूर्वोक्तपात्रान्तरस्थकाचपात्रेषु द्रावके ।  
 सम्पूर्यं पश्चात् तत्पात्रमूलात् तन्त्रीद्य कमात् ॥२१२॥  
 शक्तिमार्हितुं वाह्ये कीलैसंयोजयेद दृढम् ।  
 पुनस्तत्कीलकाभ्या ततन्त्रीद्यमृजुयंथा ॥२१३॥

समाहृत्यातिसरलालाचकं कुरयोगतः ।

प्रादक्षिण्ये कमाद् याने ज्ञामोदगमपुरो भुवि ॥२१४॥

स्थितभुज्युकलोहस्य नालान्तर्गतन्त्रिभिः ।

सन्धाय विधिवत् पश्चात् प्रतिज्ञामोदगमान्तरे ॥२१५॥

पूर्वोक्त काचावरणशाली लोहालालेके तारोंसे शक्तिको यथाविधि लेकर पात्रस्थ द्रवपात्रों में कम से भली भाँति भरने को एक एक तारोंसे शक्तिको यथाविधि लेकर पात्रस्थ द्रवपात्रों में अन्दर रखे काचपात्रों में द्रावक में भरकर फिर उस पात्रमूल से दो तारों कम से शक्ति को स्थित भरने के लिये कीलों से बाहिर लगा दिए फिर उन दोनों कीलों से उन दोनों तारों को सरल लेकर अतिसरल कांचकल्कुरयोग से—कांच घुण्डीबाले योगा से धूमाकर यान में धूम को निकालने वाले यन्त्र के सामने धूमि में स्थित सुख्यु लोहे की नालों के अन्दरवाले तारों से विधिवत् जोडकर प्रत्येक धूम को निकालने वाले यन्त्र के अन्दर—॥ २०८—२१५ ॥

स्थितविद्युद्धर्षकमणिकीलकेषु यथाक्रमम् ।

शक्ति सयोजयेत् ताभ्या सप्रमाणाण यथोचितम् ॥२१६॥

एव ज्ञामोदगमनालालस्तम्भस्ये च यथाविधि ।

उक्तविद्युद्धर्षकमणिकीलकै स्तम्भिन्योजयेत् ॥२१७॥

एतेन सर्वत्र विद्युद्धर्षाप्तिस्त्याद् व्योमयानके ।

तस्माद् विद्युत्यन्तमेव कृत्वा शास्त्रानुसारतः ॥२१८॥

वामभागे विमानस्य स्थापयेत् सुहृद यथा । इत्यादि

—स्थित हुए विद्युद्धर्षणमणिं की कीलों में यथाक्रम शक्ति को उन दो तारों से यथोचित युक्त करे, इस प्रकार धूमोदगमनाल के स्तम्भ में भी यथाविधि उक्त विद्युद्धर्षकमणिं की कीलों से संयुक्त करे जोड़ दे । इससे व्योमयान में सर्वत्र विद्युत् की व्याप्ति होजावे, अतः शास्त्रानुसार ही विद्युत्यन्त करके विमान के वामभाग में सुहृद स्थापित करें ॥२१६—२१८॥

अथ वातप्रसारणयन्त्रनिर्णयः—अब वातप्रसारणयन्त्र का निर्णय है—

उक्तं हि क्रियासारे—कहा ही है क्रियासर प्रन्थ या प्रकरण में—

विमानोक्तेष्टपणार्थाय खपथे शास्त्रत क्रमात् ।

वातप्रसारण नाम यन्त्र शास्त्रेषु वर्णितम् ॥२१९॥

इत्युक्त्वाद् यन्त्रमध्य सप्रहेण निरूपयते ।

एतद्यन्त्रं वातमित्रलोहादेव प्रकल्पयेत् ॥२२०॥

अन्यथा यदि कुर्वति तत्कषणान्ताशमेष्वते ॥२२१॥

आकाशमार्ग में विमान को ऊपर डठाने के लिये शास्त्रानुसार क्रम से वातप्रसारण नाम का यन्त्र शास्त्रों में कहा है । ऐसा कहे जाने से अब यन्त्र संचेप में कहा जाता है, यह यन्त्र वातमित्र लोहे से ही बनावे अन्यथा करेगा तो नाश को प्राप्त हो जावेगा ॥२१६—२२१॥

वातमित्रलोहमुक्तं लोहतन्त्रे—वातमित्रलोह कहा है लोहतन्त्र में—  
 रसाञ्जनिकभागाशास्त्रयोदश तथैव हि ।  
 प्रभञ्जनस्य भौगास्तु सप्तविशदितीरिता ॥२२१॥  
 पराङ्मुक्तशस्य भागासप्तविशदिति कीर्तिता ।  
 एतानि सप्तस्यमूषायां तत्तद्वागानुसारत ॥२२३॥  
 सम्पूर्यं विषिवच्चकमुखकुण्डे यथाविधि ।  
 संस्थाय पश्चाद् वारणास्यभस्त्राद् वेगेन शास्त्रत ॥२२४॥  
 धमनेत् षोडशोत्तरद्विशतकक्षयोषणामानत ।  
 समीकरणयन्त्रेण तद्रसं परिपूरयेत् ॥२२५॥  
 एव कुते वातमित्रलोहं भवति नान्यथा ।  
 एतेनैव हि लोहेत् कुर्याद् यन्त्राणि शास्त्रत ॥२२६॥

रसाञ्जनिक—रसेत् १३ भाग तथा प्रभञ्जन ? के २७ भाग पराङ्मुक्ता ? के ३७ भाग कहे ।  
 इनको सप्तस्यमूषा—कृतिमोत्तल में उनके भागानुसार भरकर विषिवच्चकमुखकुण्ड में यथाविधि स्थापित  
 करके पश्चात् वारणास्य हाथीमुख जैसी भवता—धौंकी से २१६ दर्जे की उछाता से धोक समीकरण  
 यन्त्र में विघ्ने द्वाक्षो भरवे ऐसा करने पर वातमित्रलोह होजाता है अन्यथा नहीं यन्त्र ऐसे लोहे से  
 शास्त्रानुसार करे ॥२२२—२२६॥

आदौ पीठस्ततो नालस्तम्भयन्त्रस्तथैव च ।  
 वातप्रपूरकचक्कीलकानि तत् परम् ॥२२७॥  
 वाताकर्वणभस्त्रिकामुखयन्त्रमतस्थथा ।  
 मुखसङ्कोचविकासनकीलकी तदनन्तरम् ॥२२८॥  
 सकीलकयातायातनालश्चर्व तथैव हि ।  
 यन्त्राणा कवच तद्वातस्तम्भास्त्रथैव हि ॥२२९॥  
 वातोदग्मास्थनालश्च भस्त्रिकोमुखेव च ।  
 तथैव वातपूरककीलकानि तत् परम् ॥२३०॥  
 वातनिरसनपङ्क्तीलकानीति द्वादश ।  
 एतानि यन्त्रस्याङ्गानीति यथाक्रमम् ॥२३१॥

प्रथम पीठ बनावे फिर नालस्तम्भयन्त्र उसके पश्चात् वातप्रपूरकचक्कीले पुन वाताकर्वण  
 भस्त्रिकामुखयन्त्र तथा उसके पीछे मुख के सङ्कोच विकास करने वाली दो कीले फिर कीलोंसहित याता-  
 यात नाल, यन्त्रों का कवच, उसी प्रकार वातस्तम्भ भी, वातोदग्मास्थनाल भस्त्रिकोमुख भी उसी प्रकार  
 वातपूरककीले पुन वातनिरसनपङ्क्त—आरापञ्चक की कीले । ये यन्त्र के अङ्ग यथाक्रम वर्णित किए  
 हैं ॥२२७-२३१॥

अथ पीठनिर्णयः—अब पीठ का निर्णय करते हैं—

षड्वितस्त्यायामक च प्रात्रमेकवितस्तिकम् ।

चतुरश्च वर्तुल वा पीठ कुर्याद् यथाविषि ॥ २३२ ॥

त्रिचकनालस्तम्भसस्थापनार्थं यथाविषि ।

कुर्यात्केन्द्रद्वय पीठे दक्षिणोत्तरयोः क्रमात् ॥ २३३ ॥

६ वालिशत लम्बा १ वालिशत मोटा छौकोर या गोल पीठ संस्थापनार्थं दो केन्द्र पीठ में दक्षिण उत्तर में क्रम से करे ॥ २३२-२३३ ॥

त्रिचकनालस्तम्भयुक्तं यानविन्दौ-त्रिचकनालस्तम्भ यानविन्दु में कहा है-

वितस्तित्रयमायामी वितस्त्यष्टकमुन्नतौ ।

नालस्तम्भो कल्पयित्वा केन्द्रयोरुभयोः क्रमात् ॥ २३४ ॥

संस्थापयेत् ततो नालस्तम्भयोः मूँलत क्रमात् ।

कल्पयेदावृत्तकीलरन्ध्राणि शीण्यथाविषि ॥ २३५ ॥

तेषु सन्धारयेत् पश्चात् क्रमात् तत्कीलकान् दृढम् ।

३ वालिशत लम्बे-चौडे ८ वालिशत ऊँचे दो नालस्तम्भ बनाकर (पीठ के) दोनों केन्द्रोंमें संस्थापित करदे लगादे फिर दोनों नालस्तम्भों के मूल से क्रमशः तीन घूमनेवाली या गोल कीलों के छिद्र उन छिद्रों में उन कीलों को जोड़ दे (फिट कर दे) ॥ २३४-२३५ ॥

तदुक्तं यानविन्दौ-वह यह यानविन्दु में कहा है-

वितस्त्यैकायामयुक्तं वितस्तिद्वयमुन्नतम् ॥ २३६ ॥

सीत्कारीनालवक्तुत्वा योजयेत् स्तम्भरन्ध्रके ।

चक्राणिं कारयेत् श्रीणिं वितस्त्यायामतस्ततः ॥ २३७ ॥

दन्तं कूकचब्दं सम्यग्युक्तानि सुट्ठान्यथा ।

अनुलोमविलोमाभ्यामूष्ठव्यधोगमनं यथा ॥ २३८ ॥

तथा नालान्तरे सम्यग्योजयेत् कीलकैस्सह ।

वातपूरकनालं तु चक्रमध्ये निवेशयेत् ॥ २३९ ॥

कीलचक्रमणाच्चक्रभ्रमणं भवति स्वतः ।

वातपूरकनालस्य तेन सञ्चलनं भवेत् ॥ २४० ॥

१ वालिशत लम्बा चौडा २ वालिशत डठा हुआ-ऊँचा सीत्कारीनाल-वायु को खीचती हुई सीता करनेवाली नाल जैसी बनाकर स्तम्भ के छिद्र में लगादे, तीन चक्र १ वालिशत लम्बे सुट्ठ बनावे दान्तों से युक्त आरे की भाँति, जिससे अनुलोम विलोम से ऊपर नीचे गमन हो। नालों के अन्दर भली प्रकार कीलों से युक्त करदे और वातपूरक नाल को चक्रों के मध्य में लगादे कीलों के घूमने से चक्रों का घूमना स्वतः होगा इससे वातपूरक नाल का चलना होगा।

ऊष्ठव्यधोगमनान्तालो वेगाद् वायुं प्रकर्षति ।

स्तम्भद्वयस्य मूलायात् पूर्वपरिचयमपाद्ययोः ॥ २४१ ॥

वातपूरकचक्रकीलकान्धेवं नियोजयेत् ।  
 वाताकर्षणभस्त्रिकामुख्यन्त्राण्यत परम् ॥२४२॥

वातपूरकचक्रकीलकेभ्यसन्धारयेत् क्रमात् ।

ऊपर नीचे नाल के चलने से नालदेग से बायु को खींचता है, दोनों स्तम्भों मूलाप्र से पूर्व और पश्चिम में वातपूरक चक्र की कीलों से इस प्रकार करे, इससे आगे वाताकर्षण भस्त्रिकामुख्यन्त्रों को वातपूरक चक्र की कीलों से जोड़दें ॥२४१-२४२॥

भस्त्रिकामुख्यन्त्रयुक्तं बुडिलेन—भस्त्रिकामुख्यन्त्र कहा है तुडिल आचार्य ने—

चक्रएष्टमृगचमं समाहृत्य यथाविधि ॥२४३॥  
 सशोध्य पुत्रजीविकातैलेनाथ यथाक्रमम् ।  
 पाचयेत् त्रिदिन पश्चात् क्षालयेच्छुद्वारिणा ॥२४४॥  
 गजदन्तिकतैलेन लेपयित्वा भृहर्षुहु ।  
 ग्रातये स्थापयेत् पञ्चवासराणि तत परम् ॥२४५॥  
 पद्मविस्तिप्रमाणेन पश्चाद् यन्त्र प्रकल्पयेत् ।  
 यन्त्रमूलस्य विस्तारो वितस्तित्रयमुच्यते ॥२४६॥  
 तन्मध्यदेशविस्तारो वितस्तीना चतुर्भवेत् ।  
 तमस्त्ये दशविस्तारो वितस्त्यैकमितीरितम् ॥२४७॥  
 भस्त्रिकामुखदेश रुद्धोचनविकासकम् ।  
 अनुलोभविलोमाभ्या स्थापयेत् कीलकद्यम् ॥२४८॥  
 कीलकद्य भ्रामण्याद् यातायात यथा भवेत् ।  
 सस्थापयेदेकदण्डमेतन्मध्ये तथा क्रमात् ॥२४९॥  
 वेगात्सञ्चालन तद्वस्तम्भन च तथैव हि ।  
 यथाभवेत् तथा कर्तु स्थापयेत् कीलकद्यम् ॥२५०॥

चक्रएष्टमृग—चक्रदण्डमृग—वराह—सुवर ? का चर्म लेकर यथाविधि पुत्रजीवक-जीयापोता के तैल से यथाक्रम तीन दिन तक पकावे फिर शुद्ध जल से प्रक्षालित कर-गजदन्तिका ओषधि के तैल का पुन उन लेप करके पांच दिन तक धूर में रखे फिर ६ बालिशत यन्त्र बनावे यन्त्र के मूल का विस्तार ३ बालिशत उसके मध्यदेश का विस्तार ४ बालिशत अन्तबाले देश का विस्तार १ बालिशत कहा है । भस्त्रिका के मुखदेश में सझोच विकास के साथन दो कीलों अनुलोभविलोभ रीति से स्थापित करे, दानों कीलों के पुमाने से जिस प्रकार यातायात हो सके इस प्रकार उनके मध्य में एक दण्ड लगावे फिर वेग से चालन और स्तम्भन हो सके ऐसा करने को दो कीलें स्थापित करे ॥२४३-२५०॥

कीलकभ्रामण्याद् यातायातदण्डप्रचालनम् ।  
 भवेत्तद्वेगतस्सम्यग्भस्त्रिकामुखचालनम् ॥२५१॥

वाताकर्षणालस्य यातायातमपि क्रमात् ।  
 भस्त्रिकामुखवाताकर्षणालप्रकर्षणात् ॥२५२॥  
 प्रभवेद् वेगतो वाताकर्षणं तन्मुखान्तरात् ।  
 एव त्रिचकनालस्तम्भेतु वातापकर्षणम् ॥२५३॥  
 यथा भवेत् तथा सर्वकीलकानि यथाक्रमम् ।  
 सन्धारयेद् विशेषेण तत्स्थानेषु शास्त्रतः ॥२५४॥  
 विशक्तक्षयोद्भावेगेन कीलकाना परिभ्रमः ।  
 त्रिचकनालस्तम्भेतु यथा भवति तत्कर्षणात् ॥२५५॥  
 क्रमात् सञ्जायते वायुरुत्तरालालास्वभावत् ।  
 शतप्रेङ्गामानेन तथैव हि विशेषतः ॥२५६॥  
 भस्त्रिकामुखयत्रे भ्यश्चापि वायुस्स्वभावत् ।  
 जायते द्विसहस्रप्रेङ्गामानेन निर्मल ॥२५७॥  
 क्रमादेतद्वायुवेगादपि यान प्रधावति ।  
 तस्मात् प्रकल्प्य विधिद् यन्त्राणि द्वादश क्रमात् ॥२५८॥

कीलों के भ्रमण से यातायात दृष्ट का प्रचालन हो जावे उसके वेग से भस्त्रिकामुख का चालन हो जाता है वाताकर्षनाल का भी यातायात क्रम से भस्त्रिकामुखवाताकर्षणाल को खींचने से वाताकर्षण उस नाल के मुख में से होने लगे, इस प्रकार तीन चक्रों के नालस्तम्भों में धात का खींचना जैसे हो वैसे सारी कीलों को उन उन स्थानों में शास्त्र से, २० दर्जे की उल्लंतवेग से कीलों का घूमना तीन चक्रों के नालस्तम्भों में तत्कर्षण क्रम से हो जाता है, वायु नाल के अन्दर से स्वभावत सौ प्रेङ्गण-भूल-वेग-अश्ववेग-अश्वगति के मान से प्रकट हो जाता है भस्त्रिकामुख यन्त्रों से भी स्वभावत वायु दो सहस्र अश्वगति मान से निर्मल वायु चलता है। इस वायु-वेग से भी यान दौड़ता है अत १२ यन्त्रों को विविधियन् अनाकर—॥२५१—२५८॥

विमानस्य चर्तुर्दिशु वातोदगमपुरो भुवि ।  
 एककपाद्वेद् यन्त्राणि त्रीयि नियोजयेत् ॥२५९॥  
 कुर्यादावरणं तेषा तत्त्वानानुसारतः ।  
 वितस्तित्रयमायाम् वितस्तित्रादशोन्मतम् ॥२६०॥  
 यथा भवेत् तथानालस्तम्भात् द्वादश कल्पयेत् ।  
 पूर्वोक्त्यन्त्रावरणोर्ध्वप्रदेशे पृथक् पृथक् ॥२६१॥  
 वेगाद् वातोत्सेपणार्थं स्तम्भान् संस्थापयेद् दृढम् ।  
 षट्शतोत्तरद्विसहस्रप्रेङ्गाप्रमाणत ॥२६२॥  
 एकं कस्तम्भतो वायुरुद्धर्वं गच्छति वेगतः ।  
 कालानुसारतो वायुर्विदापक्षितं भवेत् ॥२६३॥

तावदेव गृहीत स्यात् प्रतियन्त्रमुखान्तरात् ।  
 तस्मात् पृथक् पृथग्यन्त्राणीति शास्त्रे वर्णितम् ॥२६४॥  
 विमानस्योर्ध्वंगमनमेतेनापि भविष्यति ।  
 वायूपतिकम् व्यष्ट्या मन्त्रे रेव निरूपितम् ॥२६५॥

विमान की चारों दिशाओं में वातोदूरगमयन के सम्मुख भूमि की ओर एक एक पार्श्वभाग में तीन यन्त्र लगावे, उत्तर का आवरण भी उस उसके मान से करे । ३ वालिशत लम्बा चौड़ा १२ वालिशत ऊंचे जैसे हो ऐसे १२ नात स्थानों को वातावे पूर्वोक्त यन्त्रावरण के ऊपरि प्रदेश में पृथक् पृथक्। वेग से वात के ऊपर फेंकने के लिये स्थानों को इदं संस्थापित करे २६०० अश्वगति के मान से । एक एक स्थान से वायु वेग से ऊपर जाता है कालानुसार जितना वायु अपेक्षित होना चाहिए उतना ही प्रत्येक यन्त्रमुख में से लिया जावे । अतः पृथक् पृथक् यन्त्र है वह शास्त्र में वर्णित है । विमान की ऊर्ध्वंगमन—ऊपर जाना इससे भी हो जायगा, वायु की ऊर्तिका क्रम व्यष्टिरूप से यन्त्रोद्धारा ऐसे निरूपित किया है ॥२५६—२६५॥

समष्ट्या वातमाहृतुं वृहस्तस्मभ प्रचक्षते ।  
 चर्तुर्वितस्यायाम विशद्वितस्त्युन्नत तथा ॥२६६॥  
 वातोदूरगमालस्तम्भ कृत्वा पश्चाद् यथाविधि ।  
 यन्त्राणां मध्यकेन्द्रे श स्थापयेत्युडं यथा ॥२६७॥  
 भस्त्रिकोन्मुख्यन्त्राणिं स्तम्भमूले नियोजयेत् ।  
 यन्त्राणां वातमाकृष्य स्तम्भे पूर्वितु कृमात् ॥२६८॥  
 यन्त्रादिस्तम्भमूलान्तं तत्तद्रेखानुसारत ।  
 वाताकर्षणानालानि समाहृत्य यथाविधि ॥२६९॥  
 स्तम्भमूलान्तरे सम्यक् सम्यार्थ्य यथाक्रमम् ।  
 वातपूरककीलानि तत्तनालमुखान्तरे ॥२७०॥

समष्टिरूप से वायु को आवरण करने के लिये वृहस्तस्मभ चक्र करते हैं वह ४० वालिशत लम्बा चौड़ा ३० वालिशत ऊंचा वातोदूरगमानालस्तम्भ करके—यानाकर पश्चात् यथाविधि यन्त्रों के मध्यकेन्द्र में सुट्ट थापित करे । यन्त्रों के वायु को आवर्तित कर—खीचर स्तम्भ में भरने को क्रम से भस्त्रिकोन्मुख्ययन्त्रों को स्तम्भ के मूल में लगावे यन्त्रों से लेकर स्तम्भमूल तक उस उसकी रेखा के अनुसार वाताकर्षणालालों को यथाविधि लेकर स्तम्भमूल के अन्दर सम्यक् यथाक्रम जोड़कर वातपूरक कीलों को उस उस नालमुख के अन्दर—

स योज्य विधिवत् पश्चानालस्तम्भमूलान्तरे ।  
 अष्टाङ्गुलायाममुखविल कृत्वा यथाविधि ॥२७१॥  
 तस्योपरि यथाशास्त्र वितस्त्येकोन्नत तथा ।  
 वितस्तित्रयमायाम मुख्यन्त्र नियोजयेत् ॥२७२॥

एतत्पात्राद् बहिर्याति वातस्तम्भान्तरे स्थितः ।  
 वायुवेगाद् विशेषेण तरङ्गाकारवत् स्वतः ॥२७३॥  
 पश्चाद् धूमोद्गमयन्त्रस्थितस्त्रूपप्रसारणाम् ।  
 वातप्रसारणे यन्त्रे स्तद्वदेव यथाविषि ॥२७४॥  
 तद्वान्त्रस्थितवातस्य क्रमाद् धूमोद्गमे यथा ।  
 भवेत् प्रवेशस्तरलात् तथा शास्त्रविदानतः ॥२७५॥

विधिवत् युक्त करके फिर नालस्तम्भमुख के अन्दर अंगुल बड़ा मुख छिद्र उसके ऊपर यथाशास्त्र १ बालिश्ट ऊँचा ३ बालिश्ट लम्बा चौड़ा मुख्यात्रा—ढक्कन लगादे वातस्तम्भ के अन्दर स्थित वायु इस पात्र से वेग से तरङ्गाकार की भाँति स्वतः बाहिर जाता है। पश्चात् धूमोद्गमयन्त्रस्थित धूम का प्रसारण यन्त्रों से उत्तीर्ण भाँति होता है, उस यन्त्र में स्थित वात का धूमोद्गम में जैसे सलता से प्रवेश हो उस प्रकार शास्त्रविदान से—

प्रिचक्नालकौलाश न सन्धार्यथ यथाक्रमम् ।  
 तत्कीलकर्यं याकाम धूम वा वायुमेव वा ॥२७६॥  
 समाकृष्याय विधिवत् तत्तकालानुसारतः ।  
 उपयोगकृत् भवेत् सम्यग्येषु सप्रमाणतः ॥२७७॥  
 एतद्वान्त्रस्य विधिवच्चतुर्दिशु यथाक्रमम् ।  
 वातनिरसनपञ्चक्राणि स्थापयेदथ ॥ २७८ ॥  
 एतच्चक्राणि वेगेन भ्रामयेद् यदि कीलके ।  
 वायु निराकृत्य पश्चाद् व्योमयान् प्रधावति ॥ २७९ ॥  
 तेन सर्वत्र वेगेन निरातङ्कः यथा तथा ।

तीन चक्रों की नालकोलों को यथाक्रम लगाकर उन कीलों से यथेच्छ धूंप को या वायु को स्त्रीचक्र विधिवत् कालानुसार यथेष्ट मात्रा में भलीभाँति उपयोग कर सके। इस यन्त्र की चारों दिशाओं में यथाक्रम वातनिरसनपञ्च—वायु निकालने के चपटे अरांसंयुक्त चक्रों या पेंचचक्रों को स्थापित करे, इन चक्रों को यदि कीलों से वेग से बुमावे तो व्योमयान वायु को निकाल कर उस वेग से निरातङ्क निर्भय सर्वत्र दौड़ा है ॥ १७६—१७८ ॥

अथ विमानावरणानिरंयः—अथ विमान के आवरण का निरंय करते हैं—

आवृत्य धूमोद्गमयन्त्राणि कुड्यान्यथाविषि ॥ २८० ॥  
 विमानावरणं कर्तुं कुर्याच्छकुनवक्तमात् ।  
 सुन्दरास्यविमानस्यावरणं च यथाविषि ॥ २८१ ॥  
 राजलोहैवैव कुर्याद्विन्द्या निष्कलं भवेत् ।  
 पश्चादावरणं यावद्गृहसंस्था विशीयते ॥ २८२ ॥  
 तावत्संस्थानुसारेण विभज्याय यथाक्रमम् ।

कुर्याद् गृहाणि विघ्वत्पूर्वोक्तशकुने यथा ॥ २८३ ॥  
 द्वार्तिशदङ्गयन्नारणा स्थानानि च यथाक्रमम् ।  
 चातुर्मुखौष्म्यकंयन्त्रस्थापनार्थं यथाविधि ॥ २८४ ॥  
 तदगृहाणा मध्यदेशे चतुरथाकृत्यथा ।  
 त्रिशद्वितस्थायामप्राञ्ज (झ?) ए परिकल्पयेत् ॥ २८५ ॥  
 अत्रैव स्थापयेत्स्मयक् चातुर्मुखौष्म्यन्त्रकम् ।

भूमोदगमयन्त्रों को ढक का विमान का आवरण—आच्छादन करने को शकुनविमान की भाँति कुट्टा—दीवारें बनावें सुन्दर विमान का आवरण भी यथाविधि राजलोह से ही करे अत्यधा निषेकत हो जावे । फिर घरों—कमरों की जितनी संख्या कही हो उतनी संख्या में आवरण यथाक्रम विभागण करे उतनी संख्या में घर भी शकुनविमान की भाँति ३२ अङ्गयन्त्रों के स्थान भी यथाक्रम करे, चारमुखवाला यथाविधि औष्म्यक यन्त्र स्थापनार्थ उन घरों के मध्य देश में चोकोर ३० बालिशत लम्बा चौड़ा प्राञ्जण—आङ्गन खल—फरार बनावे यहाँ ही चातुर्मुखौष्म्ययन्त्र स्थापित करे ॥ २८०-२८५ ॥

एतदुक्तं यन्त्रसर्वं स्वे—यह यन्त्रसर्वं स्व में कहा है—

चातुर्मुखौष्म्ययन्त्ररचना कुण्डोदरेण हि ॥ २८६ ॥  
 कर्तव्यमिति शास्त्रेषु प्रवदन्ति मनीषिणः ।

चातुर्मुखौष्म्ययन्त्ररचना कुण्डोदर लोहे से करनी चाहिए ऐसा शास्त्रों में मनीषीज्ञन कहते हैं ॥ २८६ ॥

कुण्डोदरलोहसुक्तं लोहसर्वरवे—कुण्डोदर लोहा कहा है लोहसर्वस्व मन्थ में—

सोमकञ्चुकशुण्डललोहानक्षशुद्धान् यथाविधि ॥ २८७ ॥  
 क्रमात्तिशतपञ्चत्वारिंशद्विशाशत क्रमात् ।  
 सम्पूर्यं पदमसूपाया कुण्डे छत्रमुखामिधे ॥ २८८ ॥  
 सस्थाप्य बासुकी भस्त्रात्सम्यग्वेगाद् यथाविधि ।  
 षोडशोत्तरसप्तशतोष्टकश्यप्रमाणतः ॥ २८९ ॥  
 ग्रानेत्रान्त गालयित्वा यन्ते समूरयेच्छने ।  
 एव कुते नीलवर्णं सुरूक्षम् भारवर्जितम् ॥ २९० ॥  
 द्विसहस्रकश्योष्णवेगसहं सुरुचं दृढम् ।  
 सहस्रान्तिशतघनीभिरच्छेदं चातिशीतलम् ॥ २९१ ॥  
 भवेत् कुण्डोदर नामलोहं कृतवर्गजम् ।  
 एतल्लोहेन विघ्वत् कुर्यात् यन्त्र मनोहरम् ॥ २९२ ॥  
 एतदोष्म्ययन्त्राणा रचनादो विनिर्णितम् ।

\* 'पूताकोटो याठ. परन्तु लुष्टाकंलोहत्रय विशोषितम्' हस्तलेखापाठ ।

सोम, कञ्जुक, शुण्डाल लोहों को यथाविधि शुद्ध करके क्रम से ३०, ४५, २० अंशों में ले पश्चमूषा यन्त्र में छत्रमुखनामककुण्ड में रखकर वायुकी—सर्परूप लम्बी भविका से ७५६ दर्जे की उष्णता से नेत्रपर्यन्त गलाकर धीरे से यन्त्र में भर दे ऐसा करने पर नीले रंग का भारहित अति सूक्ष्म दो सहस्र दर्जे की उष्णता वेग सहने तक सुन्दर चमक वाला शतधि सहस्रधनी तोपों से अच्छेच शीतल हो जावे तो कुण्डोदर लोहा कुतवर्ग किए हुए—बनाए हुए वर्ग में होनेवाला हो इस लोहे से विधिवत् यन्त्र मनोहर बनावे । यह औच्य यत्रों की रचनाविधि में निर्णय है ॥ २८७—२८२ ॥

अथ यन्त्राङ्गनिर्णयं—अब यन्त्राङ्गों का निर्णय करते हैं—

आदौ पोठस्तया धूमपूरकुण्डस्तयेव हि ।

जलकोशस्तो वह्निकोशस्तचेव तत् परम् ॥ २८३ ॥

गोपुरावरणा पश्चात्जलकोशोपरि क्रमात् ।

धूमप्रसारणस्तम्भनालाल्यचक्रद्वयम् ॥ २८४ ॥

वातायनशलाकानि पदचक्राण्यत् क्रमात् ।

आवृत्तचक्रकीलं च उष्णप्रमापक तत् ॥ २८५ ॥

वेगप्रमापक तद्वक्तलप्रमापक तत् ।

रवप्रसारणकीलकनालं (च?) तयेव हि ॥ २८६ ॥

प्रथम पीठ फिर धूमपूर कुण्ड जलकोश फिर अग्निकोश उससे आगे गोपुरावरण—गवाच का आवरण जलकोश के ऊपर का आवरण, धूमप्रसारण स्तम्भनाल नामक दो चक्र नातायन की शलाकाएं पश्चचक्र, धूमने वाले चक्र की कील उष्णता का मापक, शब्दप्रसारण यन्त्र तथा कील की नाल भी ॥ २८३—२८६ ॥

सान्तर्दण्डाधातनाला वातभस्त्राण्यत परम् ।

दीर्घशुण्डलनालाश्व ताप्रनालद्वय तत् ॥ २८७ ॥

वातविभजनचक्रकीलकान्यपि च क्रमात् ।

एतान्यदाशदाङ्गीनीत्याहुरोष्यक्यन्त्रके ॥ २८८ ॥

पञ्चविशद्वितस्त्युन्त विस्तारेपि च क्रमात् ।

तावत्प्रमाणत पीठ कूर्माकार प्रकल्पयेत् ॥ २८९ ॥

पीठादौ रचयेदग्निकोश पश्चाद् यथाविधि ।

जलकोश पीठमध्ये कल्पयेदत्र शास्त्रत ॥ ३०० ॥

धूमपूरकोश च पीठान्ते परिकल्पयेत् ।

अन्दर के दण्डे से आघात-ठोकर देने वाले नाल, वात भस्त्रिकाएं-धोकनियां, दीर्घशुण्डाल-नाल—लम्बी शुण्ड वाली नालें, दो तान्वे की नालें फिर वात को विभक्त करने वाले चक्रों की कीलें भी क्रम से, ये १८ अङ्क औच्य यन्त्र के हैं । २५ बालिश ऊँचा और लम्बा चौड़ा भी उतना ही कूर्माकार कल्पये के आकार का पीठ बनावे । पीठ के आदि में अग्निकोश फिर पीठ के मध्य में जलकोश पीठ के अन्त में धूमपूरक कोश शास्त्रानुसार बनावे ॥ २८७—३०० ॥

कोशत्रयलचणमुक्तं बुद्धिलेन—तीनों कोशों का लक्षण बुद्धिले ने कहा है—  
अथाग्निकोशनिर्णय—अब अग्निकोश का निर्णय देते हैं—

र्वा माङ्गौलिक तिग्म समभाग यथाविधि ॥ ३०१ ॥  
लोहे कुण्डोदरे सम्यद् मेलवित्वा तत परम् ।  
पट्टिकः कारयेत् सम्यग्दगुलवयगात्रत ॥ ३०२ ॥  
सगृह्य पट्टिकामेका कोशकेन्द्रोपरि कमात् ।  
पीठे सम्यक् परिस्तीर्य समीकृत्वा यथाविधि ॥ ३०३ ॥  
तत्त्वेन्द्रप्रमाणेन कोशान् सम्यक् प्रकल्पयेत् ।  
चतुर्वितस्त्यायाम च पड़वितस्त्युभृत तथा ॥ ३०४ ॥  
पीठादिकेन्द्रे विधिवदनिकोश प्रकल्पयेत् ।  
इज्जालानयवा काठान् तस्मिन् सयोजनाय हि ॥ ३०५ ॥  
कोशस्य प्रथमे भागे कुल्याकारेण शास्त्रत ।  
कल्पयेत् पट्टिकामञ्चमेक कुड्यवयाग्निवतम् ॥ ३०६ ॥  
कोशद्वितीयभागेनिजवलनार्थ यथाविधि ।  
त्रिकोणाकारत कुण्ड कारयेत् सप्रमाणत ॥ ३०७ ॥  
भस्मेगलपतनार्थ तदवोभागत कमात् ।  
कुण्डमन्यत्रकर्तव्य शलाकाच्छादित यथा ॥ ३०८ ॥  
कुण्डद्वयान्तराले तु पट्टिका सप्रमाणत ।  
सन्ध्यारयेत् कीलकाद्येचालनार्थ यथा भवेत् ॥ ३०९ ॥  
प्रसारणोपसहारी पट्टिकाया यथाकमम् ।  
कीलसञ्चालनात् सम्यग्यथा स्थात् सरल यथा ॥ ३१० ॥

रवि—ताम्बा, माङ्गौलिक ?, तिग्म ?, समान भाग लेकर कुण्डोदर लोहे में मिला कर पट्टिकाएं  
२ अंगुल मोटी बनाए, एक पट्टिका लेकर कोशकेन्द्र के ऊपर पीठ पर फैला कर समान करके उस उस  
केन्द्रप्रमाण से कोशों को बनावे, ४ बालिश लम्बा ६ बालिश ऊंचा पीठ के आदि केन्द्र में विविवत  
अग्निकोश बनावे, अंगारे—कोयले या काष्ठ उसमें खसने को कोश के प्रथम भाग में कुल्याकार एक  
पट्टिकामंच ३ भित्तियों से युक्त बनावे। कोश के दूसरे भाग में अग्नि जलाने के लिए त्रिकोणाकार कुण्ड  
सप्रमाण बनावे अंगारों की भस्म गिरने के अर्थ उसके नीचे भाग में एक अन्य कुण्ड शलाकाओं से  
आच्छादित करना चाहिए दोनों कुण्डों के बीच में माप से पट्टिका लगा दे कील आदियों से चलाने के  
लिए पट्टिका का फैलाना—चलाना, उपसंहार करना—हटाना बन्द करना यथाक्रम कील के सञ्चालन से  
जैसे आच्छा सरल हो सके—॥ ३०१—३१० ॥

अग्निज्वलनकुण्डान्तप्रदेशेय यथाविधि ।

आदौ मध्ये तथा चान्ते चकारिणीष्ट्याकमम् ॥ ३११ ॥

स योजयेत् कीलकाद्यरनुलोमविलोमतः ।  
 कीलसञ्चालनाच्चक्रभ्रमण स्थाद् यथा तथा ॥ ३१२ ॥  
 अग्निं ज्वालोन्मुखं कर्तुं प्रथमचकमीरितम् ।  
 मन्दमध्यमगाद्जवालाप्रकाशार्थमेव हि ॥ ३१३ ॥  
 द्वितीयचकमित्याहुस्तृतीय तु यथाक्रमम् ।  
 समीकरणाकार्यार्थं स्थापित स्थाद् यथाक्रमम् ॥ ३१४ ॥  
 अग्निकोशोपरि पुन नालमेक दृढ यथा ।  
 स्थापयेत् पट्टिकामध्ये ततो नालान्तरे क्रमात् ॥ ३१५ ॥

अग्निं जलने के कुण्डपर्यन्त प्रदेश में यथाविधि आदि मध्य तथा अन्त में तीन चक यथाक्रम संयुक्त करे कील आदियों से अनुलोम विक्षेप रीति से ज़िससे कि कील के सञ्चालन से चकों का भ्रमण हो सके । अग्नि को जलनेमुख करने को प्रथमचक कहा है, मन्द मध्य तीव्र ज्वाला प्रकाशार्थ ही द्वितीय चक को कहा है, तृतीय चक को यथाक्रम समीकरण कार्यार्थ—शान्त करणार्थ यथाक्रम स्थापित किया है । फिर अग्निकोश के ऊपर एक नाल दृढ स्थापित करे फिर पट्टिका के मध्य नाल के अन्दर क्रम से—॥ ३१६—३१५ ॥

प्रदक्षिणावृत्तवक्रतन्त्रीसन्धारयेत् तत ।  
 नालवत् पट्टिका तस्योपर्याच्छाद्य प्रमाणतः ॥ ३१६ ॥  
 घूमाकर्षणानाल च कल्पयित्वा तत परम् ।  
 अग्निकोशान्तभागे सस्थापयित्वा यथाविधि ॥ ३१७ ॥  
 पूर्वोक्तवक्रतन्त्रीमुखप्रदेशे नियोजयेत् ।  
 अनेधू म सामाहृत्य जलकोशे नियन्त्रिति ॥ ३१८ ॥  
 अग्निकोशाज्जलकोशावरणान्तं यथाविधि ।  
 जलनालानि सर्वत्र योजयेत् सप्तसप्तया ॥ ३१९ ॥  
 जलकोशावरणदेशे सर्वत्रात्यन्तवेगतः ।  
 पञ्चसहस्रलिङ्गोष्णव्याप्तिरेतेभवेत् क्रमात् ॥ ३२० ॥

—धूमने वाली टेढ़ी तारों को लगावे, नाल की भाँति पट्टिका को उसके ऊपर प्रमाण से ढक्कर घूमाकर्षण नाल भी बना कर अग्निकोश पर्यन्त भाग में यथाविधि संस्थापित करके पूर्वोक्त टेढ़ी तारों के मुख प्रदेश में जोड़ दे । अग्नि के धूप को लेकर जल कोश में नियन्त्रित करता है अग्निकोश से जलकोश पर्यन्त यथाविधि सात जलनालों को सर्वत्र लगावे, जलकोश के आवरण प्रदेश में सर्वत्र अत्यन्त वेग से इनसे पांच सहस्र लिङ्ग-डिग्री की उष्टुता व्याप्ति हो जावे ॥ ३१६—३२० ॥

तेन तप्त जल पश्चादौष्म्य घूमाकृति लभेत् ।  
 जलकोशप्रमाणं तु वितस्त्यष्टकमुच्यते ॥ ३२१ ॥  
 त्रिचक्रकीलनालानि जलकोशे यथाक्रमम् ।

त्रीणि सन्धारयेत्साम्यात् सुषुद्ध सरल यथा ॥ ३२२ ॥

जलौम्यधूमबन्धनार्थं प्रथम चक्रकीलकम् ।

धूमराशि कल्पयितुं द्वितीय चक्रमीरितम् ॥ ३२३ ॥

तत्पुरोभागस्थधूमकुण्डकोशेतिवेगतः ।

पूरणार्थं धूमराशेस्त्रीय चक्रमीरितम् ॥ ३२४ ॥

धूमपूरककोशाद्यडवितस्त्यायामसम्मितम् ।

चतुर्वितस्त्युत्थतं स्यादिति शास्त्रविनिर्णयं ॥ ३२५ ॥

उससे तत्पुरुषा जल और्म्य धूम—गरम धूआं रूप हो जावे, जलकोश द बालिशत कहा जाता है, तीन चक्रकील की तीन नाले जलकोश में समान सरल लगा दे । जलौम्य धूम के रोकने को प्रथम चक्रकील है, धूमराशि को समर्थ करने को दूसरा चक्र कहा है, उसके सामने वाले भाग के धूमकुण्ड कोश में अतिवेग से धूमराशि के पूरणार्थ तृतीय चक्र कहा है । धूमपूरक कोश द बालिशत लम्बा ४ बालिशत ऊंचा यह शास्त्र का निर्णय है ॥ ३२१-३२५ ॥

ओर्म्यधूम पूरयितुं धूमकोशे यथाविधि ।

चक्रकीलकान् विशेषेण स्थापयेत् सप्रमाणत ॥ ३२६ ॥

जलकोशोपरि ततो गोपुराकारत क्रमात् ।

कुर्यादावरणं सम्यक् सुषुद्ध सरल यथा ॥ ३२७ ॥

एतदावरणास्योद्घाटने सम्बन्धनेपि च ।

यथा स्वात् सरल तदत् कीलकानि नियोजयेत् ॥ ३२८ ॥

धूमपूरककोशस्य पुरोभागे यथाविधि ।

यथेष्ट धूमसञ्चोदनार्थं तदबन्धनाय च ॥ ३२९ ॥

सरन्ध पट्टिकाचकद्य तत्र नियोजयेत् ।

एतचक्रभ्रमणार्थं सरल स्याद् यथा तथा ॥ ३३० ॥

धूमकोश में ओर्म्य धूम—गरम धूआ भरने को यथाविधि चक्रकीलों को सप्रमाण विशेषरूप से स्थापित करे फिर जलकोश के ऊपर गोपुर-गवाह आवरण—दक्षकन सरल ढढ कर दे, इस आवरण के खोलने और बन्द करने में सरलता हो इस प्रकार कीले नियुक्त करे, धूमपूरक कोश के सामने वाले भाग में यथाविधि यथेष्ट धूम को धकेलने और बन्द करने को छिक्किसहित हो पट्टिका चक्र नियुक्त करे, इस चक्र के भ्रमणार्थ जैसे सरलता हो जैसे—॥ ३२६-३३० ॥

सन्धारयेद् भ्रामणिककीलकान्सुषुद्धान् क्रमात् ।

धूमपूरककुण्डस्य पूर्वभागे तत परम ॥ ३३१ ॥

वातायनशलाकानष्टाङ्गुलान् मानतस्तत ।

एकमेकाङ्गुलप्रदेशे सस्थापयेद् हठम् ॥ ३३२ ॥

ततो यन्त्रपुरोभागे मध्ये चोर्ध्वेष्यव कमात् ।  
 पाश्वंयोहभयोऽचैव यथाकालानुसारतः ॥ ३३३ ॥  
 सर्वत्र धूमोदागम च स्तम्भन च यथा भवेत् ।  
 पश्चाचक्राकारकीलान् तत्तत्स्थानेषु शास्त्रतः ॥ ३३४ ॥  
 द्वी द्वी सन्धारयेत्सम्यक् पश्चात् तत्पृष्ठभागत ।  
 काष्ठप्रक्षेपणार्थ्य इज्जालान् वा यथोचितम् ॥ ३३५ ॥

घुमानेवालो कीलों को क्रम से सुदृढ युक्त करे फिर धूमपूरक कुण्ड के सामनेवाले भाग में अंगुल मापवाली वातायनशालाकान् एक एक को एक एक अंगुल प्रदेश में हृष्ट स्थापित करे फिर यन्त्र के सामनेवाले भाग में यथा भाग में और कठ्ठे भाग में नीचे भाग में भी क्रम से स्थापित करे तथा दोनों पाश्वों में समयानुसार करे । सर्वत्र धूएं का निकलना और रोक देना जिससे बन जावे । पश्चाचक के आकारवाली कीलों को उन उन स्थानों में स्थान्त्र से दो दो कीलें लगावे फिर पृष्ठभाग में काष्ठ फैलने के लिये या अंगारो—कोल्हों को यथोचित ढालने के लिये ॥ ३३१—३३५ ॥

सार्ववित्स्त्यायामेन विल कुर्याद् यथाविधि ।  
 कवाटोद्घाटनार्थार्थ्य विलद्वारस्य शास्त्रत ॥ ३३६ ॥  
 यथा स्थात्सरल तद्वक्तीलकान् सन्नियोजयेत् ।  
 उष्णप्रमापक यन्त्र तथा वेगप्रमापकम् ॥ ३३७ ॥  
 दक्षिणोत्तरयोः पश्चात् तत्कीलस्य यथाक्रमम् ।  
 मनुष्यवत्प्रवचन कुर्वन्त मुस्फुट कमात् ॥ ३३८ ॥  
 कालप्रमापक यन्त्र तथा तस्योर्ध्वेभागके ।  
 सस्थापयेद् हृष्ट पश्चाद् दसभागे तर्थव हि ॥ ३३९ ॥  
 द्वादशोत्तरद्विशत्युत्सहस्रसहस्र्यका ।  
 यथा शब्दरवतरङ्गोत्पत्तिर्वेगत कमात् ॥ ३४० ॥

—डेढ बालित लम्बा चौड़ा छिद्र यथाविधि करे, विलद्वार के किवाहों को खोलने के अर्थ शास्त्रानुसार जैसे सलता हो वैसी कीलों—पेंच लगावें । उष्णता का मापनेवाला वेग का मापनेवाला यन्त्र दक्षिण और उत्तर में लगावे, मनुष्य की भाँति सुस्फुट बोलते हुए यन्त्र, कालप्रमापक यन्त्र को उसके ऊपर भागमें लगावे पश्चात् दक्षिण भाग में १२१२ संख्या में शब्द की गूंज तरफ़ की उत्पत्ति वेग से हो जावे ॥ ३३६—३४० ॥

छोटिकावच्छकाले बहिर्याति तथास्थितम् ।  
 रवप्रसारण नाम कीलनाल नियोजयेत् ॥ ३४१ ॥  
 विमानस्य प्रसरणे स्तम्भने च तर्थव हि ।  
 वेगातिवेगापायेषु एतत्साङ्गेतकुञ्जवेत् ॥ ३४२ ॥  
 स्तम्भनादीन् पश्चासङ्केतान् निर्दर्शयितुं पुनः ।

सकीलकानि विधिवन्मुखरन्ध्राणि पञ्चधा ॥३४३॥

रवप्रसारणो छृत्वा स्थापयेत् कीलकानि हि ।

एकैकीलभ्रमणादेकैकमुखरन्ध्रक ॥३४४॥

एकैकसाङ्केतरवो वेगान्निस्सरति क्रमात् ।

साङ्केतकस्वररवश्रवणादेव तत्कणात् ॥३४५॥

—चुटकी बजाने जितने समय में वैसा स्थित वाहिर निकल जाता है, शब्दप्रसारण कील को भी नियुक्त करदे, इसी प्रकार विमान के चलाने रोकने में भी कील लगावे। वेग अतिवेग और उनके कम करने की भी यह सकेत करनेशाली हो। स्तम्भन आदि पांच संकेतों को प्रदर्शित करने के लिये कीलों-सहित पाच प्रकार के मुख्यांकित शब्द प्रसारणयन्त्र में क्रक्के कीलों स्थापित करे, एक एक कील के भ्रमण से एक एक मुख छिद्र एक एक संकेतवाले स्वर शब्द शब्दण से तत्कण्ण—॥३४१—३४५॥

पूर्वोक्तप्रसङ्गोत्तम् स्तम्भनालाद् यान् यथाकृमम् ।

विजायन्ते विशेषण रवयेदात् पृथक् पृथक् ॥३४६॥

एतद्वन्नस्य विधिवत्सार्वयोहभयो क्रमात् ।

पड्गुलायामयूतमुक्ते तु यथाविधि ॥३४७॥

पद्विशतिवितस्तीना प्रमाणेन विनिर्मिती ।

आघातनालो मुट्ठो पञ्चात् सन्वारयेत् ततः ॥३४८॥

पञ्चाङ्गुलायामलोहदण्डो नालद्वयान्तरे ।

सन्वारयेद् यथाशास्त्र नालमानानुसारत ॥३४९॥

आदिमध्यावसानेषु नालयोहभयो क्रमात् ।

परिभ्रमणाचक्रकीलकान्यथ यथाकृमात् ॥३५०॥

पूर्वोक्त पांच जिन संकेत स्तम्भनाल से यथाक्रम विशेषरूप से शब्दभेद पृथक् पृथक् जाने जाते हैं, इस यन्त्र के दोनों पार्श्वों में क्रम से ६ अंगुल लम्बाई से युक्त ऊंचाई यथाविधि २६ वालिशत प्रमाण से बनाये दो आघातनाल सुट्ठु परचात् लगावे, पांच अंगुल लम्बे दो लोहदण्ड दोनों नालों के नालमाणानुसार अन्दर लगादे। आदि में मध्य में और अन्त में दोनों नालों की भ्रमण चक्रकीलों भी ॥३४६—३५०॥

सन्वारयेद् दृढं तेषा परिभ्रमणत क्रमात् ।

नालद्वयान्तरे सम्यदण्डाधातो भविष्यति ॥३५१॥

एतेनापि व्योमयानगमन वेगतो भवेत् ।

सकीलवातभस्त्रिकाञ्च वाताहताय हि ॥३५२॥

पूर्वोक्तनालमुखयोस्सम्यक् सन्वारयेद् दृढम् ।

तेन नालान्तरे वाताधातश्चाप्यतिवेगत ॥३५३॥

‡ “सुनी सुपो भवन्तीति जस् स्थाने शस्” विभक्तिव्यत्यय प्रमाण स्थाने द्वितीया ।

भवेत् तेन व्योमयानवेग स्याद् विगुणं क्रमात् ।

पञ्चादीष्मधूमकोशचतुष्पादवेष्टयि क्रमात् ॥३५४॥

यथा वातोदगमयन्ते शुण्डलास्सम्प्रतिष्ठिता ।

तथैवावृत्त चक्रकीलकं स्वस्थापयेद् हठम् ॥३५५॥

—लगावे, उनके प्रभिमण्ण—घूमने से दो नालों के अन्दर बाले दण्ड को आघात होगा इससे भी व्योमयान वेग से चलता है । कीलसिंहत वायु की भविक्राएं बात को धकेलने के लिये पूर्वोक्त दो नालमुखों में सम्यक् लगावे इससे नालके अन्दर बालका आघात अतिवेग से होगा, इससे भी व्योमयान का वेग दिगुण हो जावे परवान और्ध्वमधूमकोश चारों पाश्वों में भी कम से जैसे वातोदगमयन्त्र में शुण्डल रखे हैं वैसे ही घूमनेवालों चक्रकीलों से हठ स्थापित करे ॥३५१-३५५॥

ओर्ध्वमधूम पूर्वायिता शुण्डलेषु यथाविधि ।

कीलकभ्रमणाद् यस्मिन् कस्मिन् वा दिश्यथाक्रमम् ॥३५६॥

शुण्डलसाङ्के तवशात् सरल गमन यथा ।

भवेद् वेगेन यानस्य ततोर्ध्वमुखतः क्रमात् ॥३५७॥

स्तम्भने गमने चैव अनुकूल यथा भवेत् ।

सन्धारयेद् भ्रामकचक्रकीलकाव् यथाविधि ॥३५८॥

शुण्डलस्य तिरोभावप्रकाशो च यथा भवेत् ।

कीलकार्तिं तथा तत्र सम्यक् सन्धारयेत् तत् ॥३५९॥

हृतीयवर्गंताभ्रस्य नालद्वय सुशोधितम् ।

यन्त्रस्यानिजलधूमकोशादारभ्य शास्त्रतः ॥३६०॥

और्ध्वमधूम—गरम धूम को शुण्डलसंकेत के बशा से यान का सरल गमन वेगसे हो तब ऊर्ध्वमुख के कम से स्तम्भन में यथाक्रम शुण्डलसंकेत के बशा से यान का सरल गमन वेगसे हो अतः भ्रामक चक्रकीलों को लगावे, शुण्डल के तिरोभाव—सङ्कोच और प्रकाश—फैलाव भी जिससे हो सके वैसे कीले लगावे । हृतीय वर्ग के ताम्बे की दो नाल सुशोधित यन्त्र के अपनि जल धूमवाले कोश से आरम्भ करके शास्त्रातुसार—

अत्युषुणवेगोपसहारार्थं सर्वत्र पाशयो ।

सवेष्टय विधिवत् पञ्चात् कीलकं स्मृद्ध यथा ॥३६१॥

सन्धारयेत् ततोर्ध्वमुखये नालद्वय ग्रसेत् ।

विमानस्य पुरोभागस्थितवायुविभूतेन ॥३६२॥

वातविभाजनचक्रकीलकान्यपि शास्त्रतः ।

सस्थापयेद् यथाकाल वातस्थायनुसारतः ॥३६३॥

एव चातुर्मुखो(?) सम्यक्यन्त्र कृत्वा यथाविधि ।

विमानमध्यप्रदेशे स्थापयेत् सुदृढं यथा ॥३६४॥

\* तत ऊर्ध्वमुखतः, अत 'ततः' शब्दस्य विसर्गसोरे पुनरेकादेवासन्निराखः ।

ग्रधोभागस्थयन्त्राणा वातधूमो ( १? ) अन्यके क्रमात् ।  
विमानस्थोष्यंगमन भवत्येव न सशय ॥ ३६५ ॥

अथवत् उत्पादेवा के उपसंहारार्थ सर्वत्र पारदी में विधिवत् लपेटकर पश्चात् कीलों से सुट्ठ बन्द करे तुन आत्मणावेग को दो नाले प्रसर्ते—रोक लें । विमान के समुख भाग में स्थित वायु के विभजन में वात को विभक्त करने वाली कीलों को भी शास्त्र से यथावसर वातसंख्या के अनुसार संस्थापित करे । इस चतुर्मुखी औषध्यक बन्त्र को यथाविधि बनाकर विमानके मध्यप्रदेशमें सुट्ठ स्थापित करे, अधोभागाथ यन्त्रो—वातधूमोंयन्यकों से कमश निःसंशय विमान का ऊर्ध्वगमन होता है ॥ ३६१-३६५ ॥

पश्चात् विमानगमने धूमादीना यथाक्रमम् ।  
वेगप्रमाणा निश्चित्य गणितागमत क्रमात् ॥ ३६६ ॥  
गमने व्योमयानस्य वेगमत्र निरूप्यते ।  
छोटिकावच्छिन्नकाले यन्त्राद् धूमोदगमात् स्वतः ॥ ३६७ ॥  
लिङ्काना द्विसहस्र च शत पश्चात् त्रयोदश ।  
एतत्प्रमाणातो धूमवेगस्सञ्जायते ध्रुवम् ॥ ३६८ ॥  
तथैव वातप्रसारणायन्त्रादपि च क्रमात् ।  
पञ्चशतोत्तरद्विसहस्रलिङ्कप्रमाणात् ॥ ३६९ ॥  
छोटिकावच्छिन्नकाले वातवेग प्रजायते ।  
तथैव नालस्तम्भाच्च लिङ्काना षट्शत क्रमात् ॥ ३७० ॥  
वायुवेगस्स्वभावेन जायते नात्र सशय ।

पश्चात् विमान के गमन में—बजाने में धूम आदि का वेगप्रमाण यथाक्रम गणितशास्त्र से निश्चय करके व्योमयान के गमन में यहां वेग निरूपित किया जाता है—दिस्याया जाता है । चुटकी बजाने जितने काल में धूमोदगम यन्त्र से स्वतः दो सहस्र एक सौ तेरह २११३ लिङ्क (डिपी) प्रमाण से धूमवेग हो जाता है, इसी प्रकार वातप्रसारणयन्त्र से भी २५०० लिङ्क (डिपी) से चुटकी बजाने जितने समय में वायु का वेग हो जाता है ऐसे ही नालस्तम्भ से भी ६०० लिङ्क (डिपी) वायुवेग निःसंशय स्वभाव से हो जाता है ॥ ३६६—३७० ॥

एवप्रकारतो पीठस्थावोन्त्रे पृथक् पृथक् ॥ ३७१ ॥  
वातो ( १? ) अप्यधूमवेगाइच उत्पदान्ते धशान्तरात् ।  
एवमेव व्योमयानस्थोष्यंगमेवि च क्रमात् ॥ ३७२ ॥  
चातुर्मुखोष्यकयन्त्राच्चौप्यवेगस्स्वभावत् ।  
चतुर्दशतोत्तरद्विसहस्रलिङ्कप्रमाणात् ॥ ३७३ ॥  
छोटिकावच्छिन्नकाले जायते नात्र संशय ।  
चातुर्मुखोष्यवेगाच्च वातधूमोष्यकैस्तथा ॥ ३७४ ॥

शुण्डालैहच तथा कीलकादिभि प्रेरितं कमात् ।

घटिकावच्छिन्नकाले योजनानां चतुश्शतम् ॥ ३७५ ॥

विमान वेगतो याति नात्र कार्या विचारणा ।

एवं सुन्दरयानस्य आकाररचनाविधि ॥ ३७६ ॥

आलोड्य पूर्वशास्त्राणि यथामति निरूपित (निरूपितम्?) ।

इसी रीति से पीठस्थ अधोयन्त्रों से पृथक् पृथक् बातीप्य धूम के वेग ज्ञान में ही उत्पन्न होते हैं । इसी प्रकार व्योमयान के ऊर्ध्वभाग में भी क्रम से चतुर्मुखी और्यक्यकथन्त्र से और्यप्यवेग स्वभावतः ३४०० लिङ्ग (डिपी) प्रमाण से वेग चुटकी बजाने जितने समय में निःसंशय हो जाता है । चातुर्मुखीप्य वेग से बातधूमीप्यकों और शुण्डालों से तथा कील आदि से प्रेरित विमान घडीमात्र काल में चार सौ योजन (१६०० कोस एवं एक घण्टे में ४००० कोस) वेग से जाता है इसमें विचार करने की आव नहीं । इस सुन्दरविमान के आकाररचना की विधि पूर्वशास्त्रों का आलोडन करके यथामति निरूपित की है ॥३७१-३७६॥

हस्तलेख कारी संख्या २०—

अथ रुक्मविमाननिर्णयः—अब रुक्मविमान का निर्णय कहते हैं—

रुक्मश्च ॥ अ० २ अधि० ४ स० ६ १ ॥

एवमुक्त्वा सुन्दराल्यविमान शास्त्रत कमात् ।

इदानी रुक्मविमानस्सप्तात्सप्तकर्ते ॥१॥

इस प्रकार सुन्दरनामक विमान शास्त्र से कमशः कहकर अब रुक्मविमान संचेष से कहते हैं ।

विमानबोधकपदद्वयमस्मिन्निरूपितम् ।

तत्रादिमपदाद् व्योमयाननाम निदर्शितम् ॥२॥

समुच्चार्याविदाधो द्वितीयपदतस्मृत ।

एव सामान्यत प्रोक्तस्त्रार्थस्सप्तेण तु ॥३॥

विमानबोधक दो पद यहाँ निरूपित किए हैं उनमें आदिमपद से व्योमयान—विमान का नाम दिखलाया दूसरे पद से सुन्दरनामक का बोध किया गया है, इस प्रकार सामान्यत संचेष से सूत्रार्थ कहा अब उसका विशेषार्थ शास्त्र से कमशः कहा जाता है ॥२—३॥

विमानो रुक्मवर्णत्वान्नामा रुक्म इतीरित ॥४॥

राजलोहदेव रुक्मविमानमपि कारयेत् ।

पाकभेदाद् राजलोहे रुक्मवर्णविकारता ॥५॥

यथा भवेत् तथा कुर्याच्छास्त्रोक्तेनैव मार्गंत ।

अन्यथा निष्फल याति नात्र कार्या विचारणा ॥६॥

रुक्म (सुनेहा) वर्ण होने से विमान रुक्म नाम का कहा है । राजलोहे से ही रुक्म विमान अवश्य बनाना चाहिए, पाकभेद से राजलोह में रुक्मवर्णविकारता जैसे ही जावे वैसे शास्त्रकृत मार्ग से बनावे अन्यथा निष्फलता की प्राप्त हो जाता है इसमें विचारणा—शक्ता न करनी चाहिए ॥५—६॥

उक्तं हि यानविन्दो—कहा ही है यानविन्दु ग्रन्थ में—

आदो कृत्वा स्वर्णवर्णं राजलोहस्य शास्त्रतः ।

पश्चादाकाररचना कुर्याद् यानस्य च क्रमात् ॥७॥ इत्यादि

आदि में राजलोहे का शास्त्रविधि से स्वर्णवर्ण करके पश्चात् विमानयान की आकाररचना रुक्म से करे ॥७॥

वर्णस्वरूपमुक्तं वर्णसर्वस्वे—वर्णस्वरूप कहा है वर्णसर्वस्व में—  
 प्राणक्षारचतुष्ट्य च चणकमारण्यकं कोमलम्,  
 द्वार्तिशच्छशकन्दसत्वममलमष्टादशाश तथा ।  
 विशच्छोदितनागमव्युदितरेखामुख षोडश,  
 पश्चान्मालिकपटकदिव्यममल पश्चानन विशति ॥५॥  
 पार पश्चादशाश्विशदमल क्षारत्रय ।  
 विशतिर्व्योम सप्तदशाष्ट हसगरद पश्चामुतं षोडश ।  
 एतान् द्रावकयन्त्रकोशकुहरे संपूर्यं पश्चाद् यथा-  
 शास्त्र द्रावकमाहरेद् दिमुखरन्धाभ्यां यथापाकतः ॥६॥  
 पश्चात् कुण्डमुखान्तरे सुविमले तद्राजलोह पुनः ।  
 मूषाया परिपूर्यं तत्र विधिवत् सस्थाप्य भस्त्रामुखात् ।  
 सञ्जाल्याष्टशतोष्णएकक्षयरयतस्सगृह्य पश्चात् सुधी ।  
 यन्त्रास्ये वरगर्भमध्यकुहरे संपूर्यं सशोधयेत् ॥७॥  
 एव कृत्वा राजलोहं पश्चात् सप्ताहयेद् यदि ।  
 शुद्धस्वरंवदाभाति तल्लोहं सुट्ठ मुदु ॥८॥  
 एतेनैव प्रकतंव्य विमानाकारमध्यमुतम् ।  
 अत्यन्तमुन्दर सर्वहृदं भवति ध्रुवम् ॥९॥

प्राणक्षार—नवसादर या मूत्रज्ञारक ४ भाग, कोमल आरण्यक चणक—कोमल गोखरू  
 ३२ भाग, अमल शशकन्दसत्व—लोधसत्व १८ भाग, शोधा हुआ नाग—सीसा २० भाग, अधिव—  
 समुद्र में प्रकट हुआ रेखामुख—समुद्रफेन या शङ्ख ? १६ भाग, पश्चात् मालिक—सोनामालीधातु  
 ६ भाग, पश्चानन ? (लोहा ?) २० भाग, पारा १५ भाग, विमल तीर्णों क्षार सउजीखार यवज्ञार सुहागा  
 समान सब २८ भाग, अध्रक २० भाग, हस—रूपाधातु ? १७ भाग, गरद—वसनाभ—बछनाग ८ भाग,  
 पश्चामुत ?—दूध दही मधु शर्करा घृत ? १६ भाग, उनको द्रावक यन्त्रकोश के गुप्तस्थान में भरकर पश्चात्  
 यथाशास्त्र पाक हो जाने पर द्रावक को दो मुखरत्नों—दो मुखिणिओं से लेते । पश्चात् शुद्ध कुण्डमुख के  
 अन्दर उस राजलोहे को मूषा बोतल में भरकर विधिवत् स्थापित कर भवामुख से ८० दर्जे की उच्छित  
 के बेग से सुवुद्धिमान् संगृहीत करके यन्त्र के मुख में आवृत्त करनेवाले गर्भमध्य छिरवाले में भरकर  
 शोषे इस प्रकार करके राजलोहे को लेते वह लोहा शुद्ध स्वर्ण जैसा लगता है मुदु ढठ हो जाता है  
 इसी राजलोहे से विमानाकार अद्भुत करना चाहिए यह अत्यन्त मुद्र रहस्यप्रद निश्चय होता है ॥१०॥

अथ पीठनिरीयः—अथ पीठनिरीय कहते हैं—

पीठ रुक्मिविमानस्य क्रमांकार प्रकल्पयेत् ।  
 विस्तिसदृशायाम् गात्रमेकवितस्तिकम् ॥११॥

\* नृसार नरसार—प्राण, प्राणनामक क्षार या प्राणी का क्षार मूर्त्र “लोहद्रावकस्तथा” (२८तरझिणी) ।

† चणकद्रुम चणकदृष्टि वर्णे कल वाला ।

यथेष्टमथवा कुर्यात् सुषुणं सुप्रनोहरम् ।  
 पीठाधीभागदेशेष्टदिक्षु पश्चाद् यथाकमय् ॥१४॥  
 वितस्तिद्वादशायामकेन्द्रस्थानान् पृथक् पृथक् ।  
 गणितोऽविद्वानेन कल्पयित्वा यथाविधि ॥१५॥  
 एकं केन्द्रस्थानेय चच्छुपुटमुखान् दृढात् ।  
 कीलकान् स्थापयेत्सम्यग्ढमावृतकीलकं ॥१६॥  
 पश्चादय पिण्डक्राण्यद्विक्रेतु युग्मतः ।  
 सयोजयेद् यथैकस्मिन् प्रभवेदेकस्थितिं ॥१७॥

रुद्रमधिमान का पीठ कूमोकार बनावे, सहस्र वालिशत लम्बा चौडा १ वालिश मोटा अथवा यथेष्ट सुट्ट मनोहर बनावे । पश्चात् पीठ के अधोभाग देश में आठों दिशाओं में यथाकम १२ वालिश लावे केन्द्रस्थानों के पृथक् पृथक् गणितोऽविद्वान से यथाविधि बनाकर एक एक केन्द्रस्थान में चच्छुपुटमुखाले कीलों को लगावे फिर घृमेवाली या गोल कीलों से आठ कीलों में दो दो करके लोहपिण्ड-चक्रों को—स्थूलमोटे चक्रों को लगावे जिससे एक में एक की संस्थिति हो ॥ १३-१७ ॥

अथश्चकनिर्णयः—लोहचक्रों का निर्णय कहते हैं—  
 अथश्चकपिण्डलक्षणमुक्तं लल्लेन—लोहचकपिण्ड का लक्षण लल्ल ने कहा है—

वितस्तिद्वादशायाम कुड्कुट्टाकभारकम् ।

वर्तु नाकारत कुर्यात् पिण्डेषणायन्त्रवत् ॥१८॥ इत्यादि ॥

१२ वालिशत लम्बा चौडा द कुट्टु ? भारवाला गोलाकार चक्री के पाट की भाँति करे ॥१८॥  
 पश्चात्तचक्रकाणि विधिवच्चच्छुपुटमुखान्तरे ।

सम्यक् सन्धारयेद्वद्मष्टदिक्षु पृथक् पृथक् ॥१९॥

एकं कायश्चकपिण्डमूलकेन्द्राद् यथाविधि ।

आविच्छुकीलपर्यन्तं नालावरणत कमात् ॥२०॥

सन्धारयेच्छुलतन्त्रयस्सर्वत्र कीलकं ।

पूर्वोक्तप्रश्नकपिण्डस्थानपाश्वे पृथक् पृथक् ॥२१॥

फिर चक्रों-अथ पिण्डहक्रों को विधिवत् चच्छुपुटमुख-चूंच आकार के सम्पुटहप में आठों दिशाओं में पृथक् पृथक् संयुक्त करे । एक एक लोहचकपिण्ड के मूलकेन्द्र से यथाविधि विच्छुत कील तक कमशा नालावरण से शुक्लातन्त्रियों-जंजीरहप तारों को कीलों से पूर्व कहे लोहचकपिण्डस्थान के पाश्वे में पृथक् पृथक् सङ्कृत करे ॥१६-२१॥

बटिणिकासम्भनिर्णयः—बटिणिका-बटन या शुएडी के सम्बन्ध का निर्णय—

वितस्तयैकायामयुकान् चतुर्वितस्तिरुप्रतान् ।

स्तम्भान् संस्थापयेत्तेषु कीलकान् तन्त्रिवाहकान् ॥२२॥

सन्धारयेद् हठ पश्चात्तचिकनालाविधिकमात् ।

अष्टाङ्गुलायामचक्राण्युभयोः पाश्वयोः हठम् ॥२३॥

सतन्त्रीणि यथाशास्त्र मध्यभागे च योजयेत् ।

आविद्युत्रालमारभ्य चक्राण्यावृत्य च क्रमात् ॥२४॥

आहृत्य शृङ्गलाकारतन्त्रीस्तम्भान्तरे दृढम् ।

अन्त कीलमुखे सम्पर्योजयेत्सरल यथा ॥२५॥

एक बालिशत लम्बाई से युक्त मोटे चार बालिशत ऊंचे ऊपर लम्बे स्तम्भों को संस्थापित करे, उनमें तार लेजानेवाली कीलों को भी ढंड लगावे परचात् शक्तिनाल के अवधिकम से दोनों पार्श्वों में दूर गुल लम्बे ऊंचे चक्र तारसहित यथाशास्त्र मध्य में लगावे । विद्युत की नाल से लेकर कम से चक्रों को धोकर—चक्रों के ऊपर से लाकर शृङ्गलाकार—जंजीर जैसी तारों को स्तम्भ के अन्दर भीतरी कीलमुख में सम्यक् सरल युक्त करे ॥२४-२५॥

पश्चाच्छ्वयकवृत् तस्योपरि कीलसमन्वितम् ।

सस्थापयेद् बटनिकामन्तरावृत्तकुद्मलाम् ॥२६॥

तस्मिन्श्वद्गुष्ठविक्षेपादन्तसञ्चलन यथा ।

तथा भ्रामकचक्राणि कीलकैसह योजयेत् ॥२७॥

यथा बटरिंगोपर्यंडगुष्ठविक्षेपणं भवेत् ।

तत्करणात् स्तम्भान्तरस्थचक्रकीलान्यथाक्रमात् ॥२८॥

परिभ्रमन्ति वेगेन विद्युत्सयोजनात् स्वत ।

पुनर्विद्युत्नालमुखाच्छक्रकीलान्यथाक्रमम् ॥२९॥

एतत्प्रेक्षणतस्म्यभ्राम्यन्ते शक्तियोगत ।

एतेन पञ्चसहस्रलिङ्गवेग प्रजायते ॥३०॥

फिर पात्र ( गितास आदि ) की भाँति उस स्तम्भ के ऊपर कील से युक्त बटनिका-बटन या छुट्ठी अन्दर घुमने वाले कुद्मल-आधे खिले फूल के समानाका वाले पेंच ( चांडी ) से चिरी हुई को संस्थापित करे, उसमें अंगृहे के विनेप से-अंगृहे द्वारा दबाने से अन्दर सञ्चलन-गति जिससे ही जावे इस रीति घुमने वाले चक्रकीलों के साथ युक्त कर दे कि जैसे ही बटन या छुट्ठी के ऊपर अंगृहे का दबाव हो तो तुरन्त स्तम्भके अन्दर स्थित चक्रों की कीलें-पेंच यथाक्रम से विद्युतके संबोगसे स्वतः वेग से घुमने लगते हैं-घुमने लगें । फिर विद्युत के नालमुख से कीलें यथाक्रम इस प्रेक्षण-भूलाने साधन से सम्यक् शक्तियोग से घुमते हैं, इससे पांच सहस्र लिङ्ग ( डिपी ) का वेग उत्पन्न हो जाता है ॥ २६-३० ॥

अथ विमानोद्दीयनादिनिर्णय—अथ विमान के उडने आदि का निर्णय—

एतच्छक्रघाकर्षणेन पीठाधस्ताद् यथाक्रमम् ।

आकुञ्जितान्यय पिण्डचक्राणि प्रभवन्ति हि ॥ ३१ ॥

तच्चक्रस्ताडित पीठ ऊँचं गच्छति लोक्रमात् ।

पीठोपरिस्थचक्रस्तम्भस्थकीलप्रचालनात् ॥ ३२ ॥

अत्यन्तवेगतस्तम्भभ्रमणं प्रभवेत् क्रमात् ।

तेनोध्वंगमनं वेगात् स्तम्भाना भवति स्वतः ॥ ३३ ॥

आरोहणावरोहणकमात् सव्यापसव्यत ।

शक्तिसंयोजनात् सम्यग्भ्राष्ट्येव मुद्दुर्मुद्दुः ॥ ३४ ॥

चक्रताङ्गतोषस्तात् स्तम्भाकर्षणोपरि ।

उड्डीयोड्डीय वेगेन विमान खपथे क्रमात् ॥ ३५ ॥

यात्यूर्ध्वं सरलात् सम्यगतिगम्भीरतस्वयम् ।

एतेनोर्ध्वं विमानस्य खपथारोहण भवेत् ॥ ३६ ॥

इस वेगरूप शक्ति के आकर्षण से पीठ के नीचे स्थित लोहिण्ड चक्र खीचे हुए हो जाते हैं उन चक्रों से ताढ़ित पीठ के ऊपर आकाश में क्रम से चला जाता है, फिर पीठ के ऊपर स्थित चक्रसम्मर्थ कील प्रचालन से अत्यन्त वेग से स्तम्भ का भ्रमण होता है उससे वेग से स्तम्भों का स्वतः ऊर्ध्वं गमन होता है। आरोहण—ऊर जाने अवरोहण—नीचे आने के क्रम से दाएं बाएं से शक्ति को युक्त करने से पुनः पुनः सम्यक् धूमते हैं, चक्रताङ्ग द्वारा नीचे से ऊपर स्तम्भ के आकर्षण से विमान वेग से उड़ कर आकाश मार्ग में क्रम से ऊपर सम्यक् सरलता और गम्भीरता से चला जाता है इससे विमान का आकाश मार्ग में आरोहण हो जाते—हो जाता है ॥ ३१—३६ ॥

अथ गमनोपयुक्तविद्युन्नालक्षकाणि—अथ गमन में उपयुक्त विद्युत् की नालों के चक्र कहते हैं—

पीठस्थोपरि शास्त्रोक्तसम्भायेखानुसारत ।

विहायैकवितस्यन्तराय नालद्वायान्तरे ॥ ३७ ॥

विद्युत्प्रालानि विधिवत् सचकूरण्य यथाकूमम् ।

सन्धारयेद् विशेषण ओतप्रोतात्मन तत ॥ ३८ ॥

एककविद्युन्नालस्य पाश्वर्णोहभयोर्पि ।

वितस्तिद्वयमायाम वितस्त्वयेकोन्त तथा ॥ ३९ ॥

कल्पयित्वा दन्तचक्राण्यथ तेषा परस्परम् ।

सम्मेलयित्वा विधिवत् कीलसम्भ्रापकैस्तथा ॥ ४० ॥

विद्युत्तन्त्रीसमाहृय एतकीलमार्गत ।

प्रतिचक्रोपरि यथा सम्यक् सन्धारयेत् क्रमात् ॥ ४१ ॥

प्रतिविद्युन्नालपूले विद्युत्सञ्चोदनाय हि ।

वितस्तिद्वयमायाम वितस्तिद्वयमुन्नतम् ॥ ४२ ॥

एककचक्र सरल स्थापयेत् नन्त्रसयुतम् ।

विहाय विश्वन्नालानि मध्ये स्तम्भ नियोजयेत् ॥ ४३ ॥

शास्त्र में कही संख्यारेखा—विचारधारा के अनुसार पीठ के ऊपर दो नालों के अन्दर एक एक बालिशत का अन्तराय भेद—दूरी छोड़ कर चक्रसहित विद्युन्नालें यथाक्रम विधिवत लगावें, विशेषत ओत-प्रोत रूप से फिर एक एक विद्युन्नाल के दोनों पार्श्वों में भी २ बालिशत लम्बा २ बालिशत ऊंचे दन्त-

चक्रो—दान्तों वाले चक्र बना कर उनका परस्पर सम्मेल करके—परस्पर एक दूसरे से दान्तों द्वारा फँसा कर घूमने वाली कीलों से विद्युत् के तारों को लेकर इन कीलों के मार्ग से प्रयोक चक्र पर क्रम से ठोक ठीक युक्त करे । प्रत्येक विद्युत्ताल के मूल में विद्युत् को प्रेरित करने के लिए ३ वालिश्ट लम्फा ३ वालिश्ट ऊंचा एक एक चक्र तारसहित सरल स्थापित करे, २० नालों को छोड़ कर मध्य में स्तम्भ नियुक्त करे ॥ ३७-४३ ॥

उक्तं हि नारायणो—कहा हो है नारायण ने—

चतुर्वितस्त्यायाम च तावदेवोन्नतं तथा ।  
 स्तम्भं कृत्वाथ तन्मध्ये वितस्तिद्वयमानत ॥ ४४ ॥  
 आस्यवत्कल्पयेत् सम्यक् त्रिवा तस्मिन् यथाविधि ।  
 विभज्य समभागेन पश्चात् स्थानत्रये क्रमात् ॥ ४५ ॥  
 कीलकानि यथाशास्त्रं तत्र तत्र नियोजयेत् ।  
 चक्रप्रदक्षसमायुक्तं काचकद्विभारन्वितम् ॥ ४६ ॥  
 सनालकड़कुब्रुत तन्त्रीद्रयसमन्वितम् ।  
 विद्युच्युक्तधार्कर्षणार्थं स्थापयेत् कीलकद्रव्यम् ॥ ४७ ॥  
 स्तम्भस्य प्रथमे भागे एव सन्धार्यं कीलके ।  
 द्वितीयभागे तच्छक्तिप्रेषणार्थं यथाविधि ॥ ४८ ॥  
 चक्रप्रदक्षकसयुक्तं काचावरणसमुत्तम् ।  
 नालद्वयेन सयुक्तं तन्त्रीद्रयसमन्वितम् ॥ ४९ ॥  
 शक्तिप्रवाहतन्त्रयोर्मुखलप्रदेशी त्रिदण्डकम् ।  
 सम्मेवितान्तस्तचयकं वेगिनीतैलसयुतम् ॥ ५० ॥  
 पञ्चास्यकीलक सम्यक् स्थापयेत् सुहृदं यथा ।

४ वालिश्ट लम्फा ४ वालिश्ट ही ऊंचा स्तम्भ पीठ के मध्य में बना कर २ वालिश्ट मान से मुख की भाँति तीन प्रकार की उसमें समान भाग का विभाग करके तीन स्थानों में कीलें यथाशास्त्र वहां नियुक्त करे ६ चक्रों से युक्त काचकंकुशो—काच के मुखों ( दीपरक्षकों ? ) से युक्त नालसहित चर्मावरण से विरो हुए दो तारों से युक्त दो कीलें विद्युत् शक्ति के आकर्षणार्थं लगावे । स्तम्भ के प्रथम भाग में इस प्रकार दो कीलें लगा कर द्वितीय भाग में उस शक्ति के पहुँचाने प्रेरित करने के लिए यथाविधि पाच चक्रों से युक्त काचावरणसहित दो नालों के साथ दो तारों से युक्त शक्तिप्रवाहक दो तारों के मूल-प्रदेश में तीन दख्तों वाले प्रेरित किए अन्दर चषक—पात्र वेगिनी तैल जिसमें हो पाच मुख वाले कील को सम्यक् ढं लगायित रखिए ॥ ४४-५० ॥

शक्तिप्रवाहसंघटनेन वेगाद् यथाक्रमम् ॥ ५१ ॥  
 तत्रत्यचक्रभ्रमणं भवेद् वेगाद् यथाक्रमात् ।  
 तथा सन्धारयेत् कीलकानि दृतीये यथाक्रमम् ॥ ५२ ॥

प्रथमास्य समारम्भ तृतीयास्यान्तरावधि ।

अन्योन्यससर्गचक्रकीलकेसरलं यथा ॥ ५३ ॥

सन्धायं पश्चात् स्तम्भास्यपुरोभागे हठ यथा ।

बृहच्चक्रं च विविवत् स्थापयेद् गुरुक (गम्भ ?) कीलके ॥ ५४ ॥

एव प्रतिस्तम्भमूले क्रमात् सम्यक् पृथक् पृथक् ।

चक्राणिं स्थापयेत् तेषामुपरिष्ठात् समन्तत ॥ ५५ ॥

शक्तिप्रवाह के मेल संघर्ष से यथाक्रम वेग से वहां का चक्रभ्रमणेग से हो जावे ऐसे तृतीय भाग में दो कीले लगावे, प्रथममुखके आरम्भकर तृतीय मुखके अन्दर तक अन्योन्य संसर्ग कीलों से सरल लगाकर फिर स्तम्भमूले के सामने के भाग में हठ बढ़ बढ़ चक्र विविवत् गुरु-गांठ कीलों से स्थापित करे। इस प्रकार प्रति स्तम्भमूल में क्रम से पृथक् पृथक् चक्र स्थापित करे उनके ऊपर सब ओर से—॥ ५१-५३ ॥

पट्टिका योजयेत् सम्यक् चतुरडगुलविस्तृताम् ।

ससर्गचक्रकीलादाविशुद्धान्त्रमुखावधि ॥ ५६ ॥

तन्त्रीद्रिय समाहृत्य विद्युदाकरणाय हि ।

शक्तिप्रवाहनालस्य मुखकीले नियोजयेत् ॥ ५७ ॥

तत्काल अभ्यरणाच्छक्तिस्तन्त्रीमार्गनुसारत ।

ससर्गचक्रकीलकेमार्गद्वारा यथाक्रमम् ॥ ५८ ॥

समागमत्यातिवेगेन स्तम्भमूलस्य कीलक्रम् ।

प्रविशय(च) तत्कालद्वारा चक्राणि भ्रमन्ति हि ॥ ५९ ॥

बृहच्चक्रभ्रमणेतो सन्धिचक्राण्यपि क्रमात् ।

परस्पर आमन्ति नालदण्डेषु वेगत ॥ ६० ॥

चार अंगुल चौड़ी पट्टिका भली प्रकार युक्त करे, संसर्ग चक्रकील से लेकर विद्युत्यन्त्र के मुख तक विशुद्ध के आकर्षण के लिए दो तारों को लेकर शक्ति प्रवाह नाल के मुख कील में नियुक्त करे उम कील के भ्रमण से शक्ति तारमण के अनुसार संसर्ग चक्रकील के भार्ग द्वारा यथाक्रम अतिवेग से आकर स्तम्भमूलस्य कील को प्रविष्ट हो वस कील के द्वारा चक्र धूमते हैं, बड़े चक्र भ्रमण से सन्धिचक्र भी परस्पर क्रम से नालदण्डों में वेग से धूमते हैं ॥ ५६-६० ॥

पञ्चामयकीलके सम्यक्षक्तिस्तसम्प्रविशेत् क्रमात् ।

अन्तश्चवकसविष्टुवेगिनीतैलत पुन ॥ ६१ ॥

तच्छक्तिविस्तृता वेगात् प्रेति नालद्वयान्तरात् ।

सर्वत्र व्याप्त्य दण्डस्यसवेचकाण्याक्रमम् ॥ ६२ ॥

आमयत्यतिवेगेन शक्तिचालनचक्रवत् ।

एतेन पञ्चविशत्सहस्रलिङ्गप्रमाणत ॥ ६३ ॥

वेगस्सजायते तस्माद् विमान घटिकान्तरे ।  
 पञ्चोत्तरशतकोशपर्यन्तं धावति हृष्णम् ॥ ६४ ॥  
 एवं कृत्वा विमानस्य गमनाभिमुख कमात् ।  
 दिशाभिमुखीकृतुं कीलकान्युच्यन्तेषुना ॥ ६५ ॥

पाञ्च मुख वाली कील में सम्बद्ध शक्तिक्रम से प्रविष्ट हो जावे, भीतरी पात्र में रखे वेगिनीतैल से फिर वह शक्ति विस्तृत हो वेग से दो नालों में से प्रगति करती है बाहिर जाती है सर्वत्र दण्डयथ सब चक्रों को कृमश वेग से शक्तिचालन की भाँति त्रुमाती है इससे २५ सहज लिङ्ग ( डिपी ) के प्रमाण से वेग हो जाता है उससे विमान एक छडी के अन्दर १०५ कोश दौड़ता है इस प्रकार विमान का गमन लक्ष्य करके दिशा को अभिमुख करने के लिए अब कीले कही जाती है ॥ ६१-६५ ॥

ईशान्यादिकमात्वीठस्याष्टदिक्षु यथाक्रमम् ।  
 वितस्तीना पञ्चवदशोन्नतमायामतस्तथा ॥ ६६ ॥  
 वितस्तिद्वयमान च स्तम्भ कुर्याद् हृष्ण यथा ।  
 वितस्तिदशकादेकस्तम्भवत् सख्यया कमात् ॥ ६७ ॥  
 सङ्गुण्यं पोठदेशेथ यावत्संख्या भविष्यति ।  
 तावत्सख्यानुसारेरण स्तम्भानु पूर्वोक्तवद् हृष्णान् ॥ ६८ ॥  
 कल्पयित्वाथ सुस्थाप्य पञ्चकण्ठा ( षटो ? ) उवलान्वितान् ।  
 अभ्रकेन हृष्णान् पश्चात् तेषामुपरि शास्त्रत ॥ ६९ ॥  
 यानाङ्गसर्वस्थानानि गृहकुञ्जादिकानपि ।  
 पूर्वोक्तस्तु ( रु ? ) क व्योमयानवत् कारयेत् कमात् ॥ ७० ॥  
 गृहेष्युक्तसामप्रथश्चाभ्रकादेव कारयेत् ।  
 अन्यथा निष्कलमिति प्रवदन्ति मनीषिण ॥ ७१ ॥

पीठ की ईशानी आदि आठ दिशाओं—विशेषपदिशाओं में यथाक्रम १५ बालिशत कंचा लम्बा चौड़ा मोटा २ बालिशत मान में हृष्ण सम्भ करे १० बालिशत का एक स्तम्भ जैसा सख्या से गुणा कर दश दश क्रम कर निर्दिष्ट कर पीठ देश में जितनी संख्या होगी उतनी संख्यानुसार स्तम्भ बना कर संस्थापित कर पांच कण्ठ—( विष्णुते के ) केन्द्र या कारणे भास्त्रानुसू ज्वला—दोषित—प्रकाश से युक्त अध्रक से बने पिर उनके ऊपर शास्त्रानुसार यानाङ्गों के संवर्यान घर कमरे भित्ति आदि भी पूर्वोक्त स्तुतक—स्तुतम् व्योमयान की भाँति कृमश करावे, घर की उपगुह सामग्री भी अध्रक से करावे अन्यथा निष्कल है ऐसा मनीषी कहते हैं ॥ ६६-७१ ॥

तदुक्तं क्रियासारे—वह कहा है क्रियासार प्रथं मे—  
 शारग्रावक्ष पञ्चविशत् तवैव दिवद्वासत्त्वं त्रिशतिश्चाष्टविशद् ।  
 गुञ्जाक्षार टड्कण द्वादशांश रोद्रीमूलं चाष्टभाग समग्रम् ॥ ७२ ॥

चान्द्रीपृष्ठकारभेकाशकं च शून्यं च पश्चात् पाकशुद्ध शताशम् ।

सम्भूर्योत्तात् कूर्मभूषामुखेय पश्चकुण्डे स्थाय भस्त्रामुखेन ॥ ७३ ॥

सङ्गाल्याष्टशतकध्योपावेगात् पश्चात् यन्त्रे पूरयेद् वेगतोय ॥ इत्यादि ॥

**शारामाव—**शारामाव—ग्रावचार—पत्थर का चार अर्धांत चूना २५ भाग, द्विवङ्कासन्व—कमीस ? ३० भाग, गुजाचार २८ भाग, सुडाग ४२ भाग, रौद्रीमूल शङ्ख जटा ८ भाग, श्वेत कण्ठकारी के फूलों का चार १ भाग पश्चात् पाक शुद्ध शून्य—आकाश—अध्रक १०० भाग इन सब को लेकर कूर्मभूषा मुख लापयन्त्र में भर कर पश्चाकार कुण्डे में रख कर भस्त्रामुख से ८०० दर्जे की उच्छ्रणा के वेग से गलाकर तुरन्त यन्त्र में ढाल दे ॥ इत्यादि ॥

एव कुतेऽन्नकशुद्धः सर्वं कार्यं धनो हृद ।

अत्यन्तमूदुलदिव्यत्रयैश्च सुविराजित ॥ ७४ ॥

हर्षप्रदश्च सर्वेषां प्रभवेन्नात्र सशय ।

स्तम्भकुण्ड्यगृहादीनि एतेनैव प्रकल्पयेत् ॥ ७५ ॥

कल्पयित्वा व्योमयाने गृहाद्याशास्त्रतस्तत ।

व्योमयान प्रेरथितु सर्वेदिक्षु यथोचितम् ॥ ७६ ॥

परिवर्तनावर्तनकीलकानि यथाक्रमम् ।

यानादिमध्यान्त्यभागेष्वद्विक्षु यथाक्रमम् ॥ ७७ ॥

तत्तस्थानेषु विधिवत्स्थापयेत्सुदृढं यथा ॥ ७८ ॥

इस प्रकार करने पर अध्रक शुद्ध सर्व कार्य योग्य हृद अत्यन्त नरम अद्भुत रंगों से युक्त सम्पन्न सब का हर्षप्रद हो जाओगा इसमें संशय नहीं । स्तम्भ, भित्ति, घर-कमरे आदि इसी से करने चाहिए । विमान में घर आदि शास्त्र से रखकर फिर विमान को सब दिशाओं में यथोचित चलाने को धुमाने लौटाने वाली कीलों को यथाक्रम विमान के आदि सभ्य अन्तिम भागों में आठ दिशाओं में यथाक्रम उन उन स्थानों में विधिवत् सुदृढं स्थापित करे ॥ ७४-७८ ॥

परिवर्तनावर्तनकीलकश्वरूपमुक्तं लल्लेन—धुमाने—लौटानेवाली कीलों का स्वरूप लल्ल ने कहा है—

यानसम्प्रेषणार्थाय मार्गन्मार्गन्तरं प्रति ।

परिवर्तनावर्तनकीलकानि यथाक्रमम् ॥ ७९ ॥

सन्धारयेदव्यदिक्षु विमानस्य हृद यथा ।

पूर्वापरविभागेन कर्तव्य कीलकद्वयम् ॥ ८० ॥

उभयोर्मेलनं पश्चात् कुर्यात् सम्बद्धं हया ॥ ८१ ॥

व्योमयान प्रेरथितु भवेत् तेन यथोचितम् ।

सव्याप्तसंयतस्तस्मयिविमान वेगतस्त्वयम् ॥ ८२ ॥

तस्मात् परिवर्तनावर्तनकीलमितीरितम् ॥ ८३ ॥

परिवर्तनावर्तनार्थं पश्चात् तस्य यथाविधि ।  
 पीठमूले चतुर्विश्वर्धचन्द्राकारतः क्रमात् ॥ ६४ ॥  
 वितस्तिद्वयमायाम वितस्तिद्वयमुन्नतम् ।  
 नाल कृत्वाय विधिवत् तन्मध्ये स्थापयेत् क्रमात् ॥ ६५ ॥  
 चतुररुद्गुलायामलोहशलाकान् मृतुलान् ततः ।  
 नालान्तरस्योभयपाइव्योस्सवोजयेत् ततः ॥ ६६ ॥

एक मार्ग से दूसरे मार्ग के प्रति विमान को प्रेरित करने के लिये परिवर्तन आवर्तन कीले अर्थात् युमाने लौटाने की साधनभूत कीलों को यथाक्रम विमान की आठों दिशाओं में ढरूप में युक्त करे । पूर्व पश्चिम के विमान से दो कीलों को लगाना चाहिए, जिन दोनों का भेत्र करे उससे विमान प्रेरित हो जावेगा—चलाने योग्य हो जावेगा । दायं बायं विमान वेग से चले—चल पडेगा । उन कीलों के भ्रमण से जिससे दिन रात दौड़ता है अतः परिवर्तन आवर्तन कील कहा है । परिवर्तन आवर्तन के लिये फिर यथाविधि उसके पीठमूल में चारों दिशाओं में कूमशः अर्धचन्द्राकार २ बालिशत् लम्बा २ बालिशत् ऊंचा विधिवत् नाल बनाकर उसके मध्य में क्रम से स्थापित करे, ४ अरुद्गुल मृतुल-कोमल लम्बी लोहशलाकाओं को नालों के अन्दर वाले दोनों पारवों में लगावे ॥ ६६—६६ ॥

वितस्त्यायामतस्तद्वितस्त्युन्नतेव च ।  
 कृत्वा सरलचक्राणि तेषु सन्धारयेत् क्रमात् ॥ ६७ ॥  
 मृदुकुञ्जुरतन्त्याश्च तेषामुपरि शास्त्रतः ।  
 सवेष्टयेदासमन्तात् सरल च दृढं यथा ॥ ६८ ॥  
 एव क्रमेण विधिवच्चतुर्दिक्षु यथाक्रमम् ।  
 अर्धचन्द्राकारनालान् पीठस्य स्थापयेद् दृढम् ॥ ६९ ॥  
 ततो नालस्थचक्राणा भ्रमणायातिक्षेपत ।  
 आदिमध्यावसानेषु नालाना सप्रमाणात् ॥ ७० ॥  
 बृहचक्राणि विधिवस्त्यापयेत् सृष्ट यथा ।  
 नालाश्रयबृहचक्रभ्रमणाद् वेगतः क्रमात् ॥ ७१ ॥  
 नालान्तर्गतचक्राणि भ्रामयन्ति परस्परम् ।  
 तदेवेनाथ तत्कीलशङ्कवच्च यथाक्रमम् ॥ ७२ ॥  
 पीठे मध्ये तथा चान्तरे पन्थानाभिमुखं यथा ।  
 तथाबृत्य स्वयं पश्चाद् यानमावर्तयिष्यति ॥ ७३ ॥  
 तस्मात् तत्पर्य वेगेन विमानो धावति स्वयम् ।  
 तस्मादेतत्कीलकानि स्थापयेदिति वर्णितम् ॥ ७४ ॥

बालिशत्भर लम्बे बालिशत्भर ऊंचे सरलचक्र बनाकर उन में क्रम से कोमल काचकुञ्जुबाले तार से मंगुक्त करे उन चक्रों के ऊपर सब और सरल ढरूप में लपेटे इस प्रकार क्रम से विधिवत् यथाक्रम पीठ की चारों दिशाओं में अर्धचन्द्राकार नालों को दृढ़ स्थापित करे । फिर नालस्थ चक्रों के

भ्रमण के लिये अतिवेग से नालों के आदि मध्य अन्त में प्रमाण से बड़े चक्र विभिन्न सुदृढ़ स्थापित करे । नाल के अप्रभाग में स्थित बड़े चक्र के भ्रमण से वेग से नाल के अन्दर बाले चक्र परस्पर एक दूसरे को घुमाते हैं, उस वेग से वे कीलशारक्कु—कील कटे यथाक्रम पीठ में मध्य में अन्त में मालों के सम्मुख घूमते हैं उनके साथ घूम कर स्वयं विमानयान घूम जायगा अतः मार्ग में वेग से विमान स्वयं दौड़ता है अत कीलों को स्थापित करे यह वर्णित किया है ॥ ८७—८४ ॥

अथ शुटिकापद्वरनिर्णय —अथ शुटिका पद्वर का निर्णय करते हैं—

विश्वास्ति—यहाँ से अगले विषय त्रिपुरविमान से पूर्व का बहुत सा अन्य भाग मध्य में होना चाहिए ( स्वामी विश्वासुनि )



हस्तलेख कापी संख्या २१—

(यह हस्तलेख कापी संख्या २३ है परन्तु यह भाग ( मैटर ) हस्तकापीसंख्या २५ से पूर्व का है २३, फिर २२ फिर २१ होना चाहिए । २० के पश्चात् २१ जो हस्तलेख रजिस्टर में है वह नस्तुतः २३ संख्या है उसके मध्य में बहुत भाग ( मैटर ) शेष है वह कहां है ? कुछ पता नहीं )

त्रिपुरोष ॥ अ० २ श० १ ॥ १

बो० ब०

शकुनार्थासिंहिकान्तविमानानि यथाविधि ।  
उक्त्वेदानी त्रिपुरविमानसम्यक् प्रचक्षते ॥१॥  
ग्रस्य त्रिपुरविमानस्यावरणानि त्रय कमात् ।  
एकं कावरणस्यात् पुरमित्यभिषीयते ॥२॥  
पुरत्रयेण सयुक्तं विमान त्रिपुर विदुः ।  
भास्कराशुसमुद्भूतशक्तशा सचोदित भवेत् ॥३॥

शकुन विमान को आदि बना सिंहिक विमान के अन्त तक + यथाविधि कहकर अब त्रिपुर विमान कहते हैं, इस त्रिपुर विमान के क्रम से तीन आवरण हैं एक एक आवरण का नाम पुर कहा जाता है, तीन पुरों से संयुक्त होने से विमान को त्रिपुर जाना है, सूर्यकिरणों से प्रकट हुई शक्ति से प्रेरित होता है चलता है ॥३॥

नारायणोपि—नारायण आचार्य भी कहते हैं—

पृथिव्यप्स्वन्तरक्षेत्रु स्वाङ्गभेदात् स्वभावत ।

यस्समर्थो भवेद् गन्तु तमाहुस्त्रिपुर बुधा ॥४॥

पृथिवी जलों में अन्तरिक्षों में अपने अङ्गों के भेद से स्वभावतः जो जाने को—चलने को समर्थ हो उसे ज्ञानी जन त्रिपुर कहते हैं ॥४॥

भागत्रय भवेदस्य त्रिपुरस्य यथाक्रमम् ।

तेषु प्रथमभागस्य सञ्चारः पृथिवीतते ॥५॥

द्वितीयभागसञ्चारो जलस्यान्तर्बंहिः कमात् ।

तृतीयभागसञ्चारारस्त्वन्तरिक्षे भवेत् स्वतः ॥६॥

† सिंहिक पर्यंत २० विमान होते हैं यहां तक का वरणन कहा है ? पुम है ? ।

एकधा कीलकै स्सम्यग्भागत्रयमत कमात् ।  
 एकीकृत्य यथाशास्त्र चोदयेद् यदि ले इवतः ॥७॥  
 एकस्वरूपतस्सम्यविमानस्त्रिपुराभिधः ।  
 साङ्केतकानुसारेण वेगात् सञ्चरति द्रुवम् ॥८॥  
 पृथिव्यप्स्वत्तरिक्षेषु गमनार्थं यथाविधि ।  
 त्रिधा विभज्यते ब्योमयानशास्त्रविधानतः ॥९॥  
 तेषादिमविभागस्य रचनाविवरूप्यते ।  
 त्रिशोत्रेण लोहेन त्रिपुरं कारयेत् सुधी ॥१०॥  
 अन्यथा निष्कल यातीत्याहुलोहित्विदा वरा ।  
 तस्मादादौ त्रिशोत्राव्यप्लोह् सम्पादयेन्नर ॥११॥

त्रिपुरविमान के यथाक्रम तीन भाग होते हैं उनमें प्रथम भाग का सञ्चार पृथिवी तल पर, दूसरे भाग का गमन जल के अन्दर बाहिर कम से, तीसरे भाग का सञ्चार तो आकाश में शत होता है। एक साथ कीलों से सम्यक् तीनों भागों को यथाशास्त्र एक करके—मिलाकर यदि आकाश में प्रेरित किया जावे तो एक स्वरूप हुआ त्रिपुर—विमान सङ्केत करनेवाले पुर्वे से वेग से निरिखत चलता है। पृथिवी पर जलों में आकाश में जाने के लिये शास्त्र से यथाविधि तीन प्रकार से विभक्त हो जाता है। उनमें प्रथम विमान की रचनाविधि कही जाती है कि त्रिशोत्र लोहे से ही त्रुदिमान जन त्रिपुर विमान करावे, नहीं तो निष्कलता को प्राप्त हो जाता है ऐसा उत्तम लोहावेता जन कहते हैं अत आदि में त्रिशोत्रनामक लोहे को तैयार करे ॥५—११॥

त्रिशोत्रलोहमुकु शाकटायेन—त्रिशोत्र लोहा कहा है शाकटायन ने—

दश रोचिधमीलोहृ कान्तमित्रोष्ट एव च ।

षोडशशो वज्रमुखश्चेति भागवित्तिर्यं ॥१२॥

एतद्वाग्नानुसारेण लोहत्रयमत परम् ।

मूषामुखे वितिक्षिप्य तस्मिन् पश्चाद् यथाक्रमम् ॥१३॥

ठङ्क्षण पञ्च (च) तदृत् त्रैशिक सप्त एव च ।

एकादश अपशिको पञ्च माण्डलिकस्तथा ॥१४॥

स्त्रक पारदश्चैव त्रीणि त्रीणि पृथक् पृथक् ।

सम्यक् संयोज्य विधिवत् कुण्डे पदममुखे दृढम् ॥१५॥

एकत्रिशोत्तरयद्वानकक्षयोष्णवेगतः ।

त्रिमुखीभस्त्रिकात् सम्यग् गालयेदतिवेगतः ॥१६॥

१० भाग रोचिधमीलोहा—कान्त लोहा ?, ८ भाग कान्तमित्र लोहा—मुण्ड लोहा ?, १६ भाग वज्रमुख लोहा—त्रैशिक लोहा ? इस प्रकार भागानुसार तीनों लोहे मूषा योतक के मुख में छालकर फिर उसमें सुहागा ५ भाग, त्रैशिक—त्रैशिक त्रैशिक के काटों का जार ? या त्रिशोत्रनामक लोहा का सार यवज्ञार ७ भाग, अपशिक ? ११ भाग, माण्डलिक—मण्डल—चक्रक

सामुद्रिक नल प्रसिद्ध उसका ज्ञात या चूणे ? ५ भाग, स्वचक-सञ्ज्ञार ३ भाग, पारा ३ भाग ।  
इन्हें भली प्रकार मिलाकर पद्ममुख कुण्ड में ६२१ दर्जे की उपयोग वेग से त्रिमुखी भवित्वा  
से वेग से गलावे ॥१२-१३॥

तदगलितरस पञ्चाद यन्त्रास्ये पूरयेच्छन् ।

समीकृत चेन्मुडुल केकापिन्छसमप्रभम् ॥१७॥

अदाह्यमञ्चेष्य (प्रबोध्य) च भारविवर्जितम् ।

जलाग्निवातातपाद्यैर्मेद्य नाशवर्जितम् ॥१८॥

शुद्ध सूक्ष्मस्वरूप च भवेल्लोह त्रिणेत्रकम् ॥१९॥ इत्यादि

इस गलाएं हुए लोहरस को यन्त्रमुख में धीरे से भर दे बायावर कर देने पर सूटु मोशपुच्छ  
के समान आगा नीलाभ तथा अताप्य अच्छेष्य अत्रोऽय भाररहित हो, जल अग्निं वायु धूप आदि से  
विकृत न होनेवाला नाशरहित शुद्ध सूक्ष्मस्वरूप त्रिणेत्र लोहा हो जावे ॥१७-१९॥

यथेष्ट कारयेत् पीठ त्रिणेत्रा यथाविधि ।

निर्दर्शनार्थं पीठप्रसागामन्त्र प्रचक्षते ॥२०॥

वितस्तितशतमायाम वितस्तित्रयगात्रकम् ।

वर्तुल कारयेत् पीठ चतुरखमधापि वा ॥२१॥

पीठस्य पश्चिमे भागे वितस्तीना तु विशति ।

विहाय पश्चात् पीठे वितस्तिदशकान्तरात् ॥२२॥

कुर्यादशीतिसंख्याकान् केन्द्ररेखान् यथाकमम् ।

चक्रद्रोणिकसंन्वानायाथ तत्तत्रप्रमाणात् ॥२३॥

वितस्त्यशीतिदीर्घं च वितस्तित्रयविस्तृतम् ।

वितस्तितपञ्चकौन्तत्यमाकारे जलद्रोणिवत् ॥२४॥

एव क्रमेण कर्तव्यं जलद्रोणियंथा तथा ।

पश्चात् सन्वादयेद् द्रो (१०)सीन् केन्द्ररेखासु शास्त्रत ॥२५॥

त्रिणेत्र लोहे से यथेष्ट पीठ बनावे, यहां निर्दर्शनार्थं पीठप्रसागा कहते हैं । १०० बालिश्त  
लम्बा ३ बालिश्त मोटाई में गोल या चौकोर पीठ बनावे । पीठ के पिछले भाग में २० बालिश्त  
छोड़कर १० बालिश्त के अन्तर पर पीठ में ८० संख्या में केन्द्ररेखाएं यथाकम चक्रद्रोणिक  
चक्ररूप इष्टेद पात्र—धूमने वाले पात्र जोड़ने के लिये प्रमाणा से करें, ८० बालिश्त लम्बा ३ बालिश्त  
चौड़ा ५ बालिश्त ऊंचा आकार में जलद्रोणिं की भाँति कम से करे जलद्रोणिं जैसे द्रोणियों को केन्द्र  
रेखाओं में लगावे ॥२०-२५॥

द्रोणीनामुपरि भागे वितस्तित्रयविस्तृतम् ।

स्त्रिद्रं कुर्यादासमन्तात् सर्वत्र विधिवत् कमात् ॥२३॥

स्वान्तर्गतानि चक्राण्यूर्ध्वमाकृत्यातिवेगतः ।

चक्राण्यहस्यानि यथा तथावरणात् कृमात् ॥२७॥

चक्राष्टोभागमाकृम्य स्वयं स्थित्वा यथाकृमम् ।  
 पुनस्स्वस्थानमासाद्य भूमी चक्रप्रसारणम् ॥२६॥  
 यथा भवेत् तथा कीलकानि तेषु प्रकल्पयेत् ।  
 चक्राणां कल्पयेत् पञ्चादीषादण्डान् यथाविधि ॥२७॥  
 विशुद्धाकुञ्जनार्थाय तेष्वाकुञ्जनकीलकान् ।  
 प्रतिदण्डे यथाशास्त्र मध्यकेन्द्रे नियोजयेत् ॥३०॥  
 सार्धद्रव्यवितस्त्युन्नत वितस्त्यैकगात्रकम् ।  
 ईषादण्डप्रमाणा स्याच्चकमाणा (न?) प्रकीर्त्यते ॥३१॥  
 वितस्तित्रयमायाम गात्रमेकवितस्तिकम् ।  
 षडर वाथ सप्तार पञ्चार वा यथोचितम् ॥३२॥  
 प्रकल्प्य नेम्या सन्धार्थं मुरीकावरणा तथा ।  
 चक्रान्त्यभागे चतुर्दशुलमुत्सुज्य शास्त्रत ॥३३॥

द्रोणियों के ऊपरवाले भाग में ३ बालिश घेरे का छिद्र सर्वत्र विधि से करे, अपने अन्तर्गत चक्रों को अति वेग से ऊपर खीचकर अदृश्य चक्रों को जैसे तैसे आवरण से कमश चक्रों के नीचले भाग को आक्रमित कर स्वयं यथाक्रम स्थित होकर पुन अपने स्थान को प्राप्त हो भूमि में चक्रप्रमाण करना जैसे हो कीलों को उनमें लगावे । परचान् चक्रों के ईषादण्ड—बम—चूल दण्डों को यथाविधि विशुद्ध के आकर्षणार्थ उनमें आकर्षण कीले प्रतिदण्ड में यथाशास्त्र मध्य केन्द्र में लगावे अदाई बालिशत मोटा ईषादण्ड का माप होना चाहिए । चक्र का माप कहा जाता है १ बालिश मोटा ६ अरेवाला या ७ अरेवाला पांच अरेवाला या यथोचित बनाकर नेमि में लगाकर मुरीका ? का आवरण तथा चक्र के अन्तिम भाग में ४ अंगुल छोड़कर शास्त्र से—॥२६-३३॥

रन्ध्रमन्त प्रकल्पत्र्य काचावरणतः क्रमात् ।  
 एव सर्वत्र चक्राणा कारयेद् वर्तुल यथा ॥३४॥  
 चक्रद्रोण्यन्तरे चक्राण्यतानि द्वादश क्रमात् ।  
 सन्धारयेद् यथेष्ट वा पट् चतुर्व्याप्त एव च ॥३५॥  
 सोमकान्तास्यलोहस्य तन्त्रीशशक्तयपकर्षणे ।  
 चक्रान्तस्थितरन्ध्रेषु सन्धारयेत् पृथक् पृथक् ॥३६॥  
 एकं कचकमध्येयं विशुद्धाधातकीलकान् ।  
 सयोजयेत् ततस्तेषु छिद्रप्रसारणकीलकान् ॥३७॥  
 सन्धाय तच्चालनार्थं चक्रकीलमतः परम् ।  
 स्थापयेत् तस्योऽवंभागे यथा स्वाभिमुख भवेत् ॥३८॥  
 साङ्केतकानुसारेण क्रमाच्चक्राणि चालयेत् ।

सर्वेषा चक्रद्वौणीनामुपरिष्ठान्तरे क्रमात् ॥३६॥

सन्धारयेत् सोमकान्ततन्त्राद्यमत् परम् ।

पूर्वपश्चिमदेशेष चक्राणा सन्धिकीलके ॥४०॥

काचावरण से इस प्रकार सब चक्रों का अन्वर गोल छिद्र करना चाहिए । चक्रोंयों के अन्वर ये १२ चक्र क्रम से लगावे या यथेष्ट ६, ४, या ८, सोमकान्त लोह ?--ताम्बा ? की तारों को शक्ति के खींचने में चक्रों के अन्व में स्थित छिद्रों में पृथक् पृथक् लगादे एक एक चक्र के मध्य विशु त् को ठोकर देने वाली प्रेरित करने वाली कीलों को लगावे फिर उनमें दिशाप्रासारण कीलों को लगाकर उनके चलाने को चक्रकील उसके ऊर्ध्व भाग में अपने सामने स्थापित करे संकेतप्रेरक साधन के अनुसार चक्रों को चलाने सब चक्रोंयों के ऊपर अन्वर सोमकान्त लोह--ताम्बा ? की दो तार पूर्वपश्चिम स्थानों में और चक्रों के सन्धिकीलों में लगावे ॥३८-४०॥

आसन्धिकीलमारभ्य तन्त्रयन्तं सर्वत क्रमात् ।

विशु लक्ष्मतथाकर्षणार्थं शलाकान् सन्धियोजयेत् ॥४१॥

सर्वचक्रद्वौण्याद्वभागेष्वपि (च) यथाक्रमम् ।

तन्त्रधन्तर्पत्तशक्तिं तच्छलाकैरपकृष्य च ॥४२॥

चोदयेत् सर्वचक्राणामुपरिष्ठाद् यथाविधि ।

चक्राणोभागदेशेष चक्रान्तर्गतं तन्त्रिभि ॥४३॥

चोदयेद् वेगतशक्तिं तत्त्वकीलकचालनात् ।

पर्वतारोहणे तिर्यग्मानादौ विशेषत ॥४४॥

चक्रोर्ध्वधि प्रदेशस्थाशक्तिवेगप्रचोदनात् ।

विमानो याति वेगेन शक्तथाकुञ्जनत् क्रमात् ॥४५॥

सन्धिकील से लेकर तार के अन्त तक सब ओर क्रम से विशु त् शक्ति के आकर्षणार्थ शलाकाओं को लगावे सब द्वोणीचक्रों के ऊपर भागों में भी यथाक्रम तारों के अन्तर्गत शक्ति को उसकी शलाकाओं से खींच कर सब चक्रों के ऊपर यथाविधि प्रेरित करे । चक्रों के नीचले भाग में चक्रों के अन्तर्गत तारों से वेग से शक्ति को कील चला कर प्रेरित करे विशेषत पर्वत पर चढ़ने तिक्ष्णे चलाने आदि में चक्रों के ऊपर नीचे देश में स्थित शक्ति के वेग की प्रेरणा से विमान वेग से शक्ति के खींचने से क्रमशः जाता है गति करता है ॥ ४१-४५ ॥

चक्रोर्ध्वशक्तयाकर्षणावशक्तिप्रसारणात् ।

यथा यथा प्रगन्तय गच्छयेव तथा स्वत ॥ ४६ ॥

तिर्यङ्चनादौ चक्राणा पुरस्ताव्वक्तीलकान् ।

सन्धारयेद् यथाशास्त्रं सुहृद् सरल यथा ॥ ४७ ॥

वेगप्रचोदने सूक्ष्मकीलकद्यमप्यथ ।

सङ्केतकीलचक्रस्योभयपाश्वे हृष्ट यथा ॥ ४८ ॥

सन्धारयेत् तेन शक्तिर्यावदेगमपेक्षितम् ।

तावहत्रमाणवेगेन विमानो गन्तुमर्हति ॥ ४६ ॥

तत्कीलकशलाकस्थचक्रपट्टिकयो क्रमात् ।

अनुलोभविलोमाभ्या शक्तिमार्गमुखान्तरे ॥ ५० ॥

चक्रों की ऊपर शक्ति के आकर्षण से नीचे वाली शक्ति के चालू करने से जैसे जैसे खत. गन्तव्य पर जाता ही है, चक्रों की तिरछी आदि गति में सामने की चक्रीलों को सरल मुटुड यथाशाल युक्त करे, वेग से प्रेरित करने में दोनों सूक्ष्म कीलों को भी सङ्केत कील वाले चक्र के दोनों पाश्वों में लगावे इससे जितने वेग की शक्ति आवश्यक होगी उनसे प्रमाण से विमान चल सकता है उन कीलों की शालाकाओं में स्थित दो चक्रटिकाओं में क्रम से अनुलोम विलोम द्वारा शक्तिमार्ग के मुख के अन्दर—॥ ४६-५० ॥

तत्तत्कालानुसारेण कीलद्वयचालनात् ।

न्यूनाधिक्यस्थितिशक्तिर्यथाकाम भवेत् क्रमात् ॥ ५१ ॥

तथैव तिर्यगमनादी विमानस्य शास्त्रत ।

शक्तिप्रसारणमुखबन्धनकीलक तत ॥ ५२ ॥

सन्धारयेत् तेन शक्तिस्तिर्यथगमनमेघते ।

विमानस्य गतिस्तेन तिर्यग्भवति हि ध्रुवम् ॥ ५३ ॥

तत्कीलकस्यानुलोमभामणात् पूर्ववस्त्वत ।

विद्युत्प्रसारणमुखबन्धनस्यापकर्षणात् ॥ ५४ ॥

भवेत् पश्चाद् यथापूर्वं सरलाद् गमन यथा ।

विद्युदकर्षणार्थ्य शक्तिस्थानान्तरात् तथा ॥ ५५ ॥

उस उस कालानुसार दो कीलों के चलाने से शक्ति की न्यून या अधिक स्थिति जैसी अभीष्ट हो वैसी क्रम से हो जावे, ऐसे ही विमान की तिरछी गति आदि में शाल से शक्ति के प्रसारण—छोड़ने और मुख बाधने की कील को लगावे इससे शक्ति तिरछी गति को प्राप्त होती है निश्चय विमान की तिर्यक—तिरछी गति हो जाती है उस कील के अनुलोम प्रमाण से पूर्व की भाँति खत विशुद्ध त के चालू करने मुख बाधने के साधन के खीचने से यथापूर्व सरल गमन होवे, विशुद्ध आकर्षणार्थ शक्ति-स्थानों में से—॥ ५१-५५ ॥

सन्धारयेद् यथाशास्त्र नालमेकं सत्रककम् ।

तन्मीद्वयसमाविष्टं पीठमूलान्तरे क्रमात् ॥ ५६ ॥

सस्थापयेत् पञ्चमुखचक्रकीलमुखान्तरात् ।

तत्कीलमध्यस्थतन्मीद्वयमतः परम् (तथा) ॥ ५७ ॥

सम्मेलयेचक्रकीलध्वंधरस्थितन्मीर्यथाविधि ।

यथा प्रमाणतद्विक्षितमेतत्तन्मीमुखान्तरात् ॥ ५८ ॥

समाकृष्ण्याथ विधिवचक्रोधवीष्म.प्रदेशके ।

सञ्चोदयेद् यथाकाम काचकुर्पिकमध्यत. ॥ ५६ ॥

तेन वेगात् प्रवलन चकाणा प्रभवेत् कृमात् ।

पश्चाद् विमानशमन भवेत् साकेततस्त्वयम् ॥ ६० ॥

यथाशास्त्र चक्रहित एक पीठ मूल के अन्दर नाल लगावे जो कि दो तारों से युक्त हो, पांच-मुख चक्रों के लिमुकों के अन्दर से उन कीलों के मध्यस्थित दो तार संस्थापित करे चक्र के ऊपर नीचे स्थित दो तारों को यथाविधि मिलावे यथा प्रमाणा शाक्त इन तारों के मुख से खोच कर विधिवत् चक्रों के ऊपर नीचे प्रवेश में यथेष्टु प्रेरित करे काचकुर्पी में से इससे वेग से चक्रों का चलना क्रमसः हो जावे पश्चात् सङ्केत साधन से व्यवह विमान का चलना हो जावे ॥ ५६-६० ॥

पश्चादावरण कुर्याच्चवक्त्रोण्युपरिक्रमात् ।

पीठाकृतप्रदेशस्थद्रोणीरेखा द्रव्यान्तरे ॥ ६१ ॥

एकक्षतम्भवत् सर्वद्रोणीसन्धिषु शाक्तत ।

स्तम्भप्रतिष्ठा कृत्वाथ तेषामुपर्यथाकृमम् ॥ ६२ ॥

शोधिताभ्रकासमग्रीसहायेन दृढ़ यथा ।

कुर्यादावरण शिल्पशास्त्रमार्गनुसारत ॥ ६३ ॥

पश्चात् चक्र द्रोणी के ऊपर क्रम से आवरण करे, पीठ के आवृत्त प्रवेश में स्थित दो द्रोणियों के रेखामध्य एक एक स्तम्भ की भाँति सब द्रोणी सन्धियों में शास्त्रानुसार स्तम्भप्रतिष्ठा करके अनन्तर उनके ऊपर यथाक्रम शोधित अभ्रक सामग्री की सहायता से शिल्पशास्त्रमार्गनुसार हड़ आवरण करे ॥ ६१-६३ ॥

शुद्धाम्बरात्मद्वि ॥ अ० २, दू० २ ॥ १

बो० दू०

विमानरचना शुद्धव्योमेनंव प्रकल्पयेत् ।

अन्यथा निष्फल यातीयुक्त सूत्रे यथाविधि ॥ ६४ ॥

प्रसिद्धियोतनार्थय हिकार परिकीर्तित ।

तस्माद् यानोम्बरेणैव करंव्यमिति निर्णितम् ॥ ६५ ॥

विमान की रचना शुद्ध अभ्रक से ही करनी चाहिये अन्यथा निष्फलता को प्राप्त होता है ऐसा सूत्र में कहा है प्रसिद्ध योतनार्थ हि शब्द कहा गया है अतः विमान अभ्रक से ही करना चाहिये यह निर्णाय किया है ॥ ६४-६५ ॥

अभ्रकलज्जणमुक्तं धातुसर्वस्वे—अभ्रक लज्जण कहा है धातुसर्वस्व में—

चत्वार्यंत्रकज्जातिस्स्याद् ब्रह्मक्षत्रादिमेदत ॥ ६६ ॥

इवेताभ्रको ब्रह्मजाति क्षत्रियो रक्तवर्णक ।

पीताभ्रको वैश्यजाति कृष्णश्छादाभ्रको भवेत् ॥ ६७ ॥

ब्रह्माभ्रकप्रभेदास्तु भवेत् षोडशधा कृमात् ।  
रक्ताभ्रको द्वादशप्रभेदेन सुविराजित ॥ ६८ ॥

वैश्यजा तिस्सप्लाषा स्याच्छद्रः पञ्चदश कमात् ।

आहत्य पञ्चाशद शेदाइशन्यस्याहर्मनीषिणः ॥ ६६ ॥

ब्राह्मण चत्रिय आदि भेद से अधक की चार जाति हैं। इन्हें अधक ब्राह्मण, रक्त अधक चत्रिय, पीत अधक वैश्य और कृष्णा अधक शूद्र हैं। ब्राह्मण अधक के १६ भेद हैं चत्रिय अधक के १२ भेद वैश्य अधक के ७ भेद और शूद्र अधक ४५ भेद का है। इस प्रकार मिलाकर ५० भेद अधक के मनोधी जनों ने कहे हैं ॥६६-६७॥

उक्त हि शौनकीय—शौनकीय सूत्र में कहा ही है—

अथाम्बरस्वरूप विद्यास्यामोसा चत्वारो वर्णा ब्रह्मक्षिणीविद्यश्याद्-  
भेदात् । तेषा प्रभेदा पञ्चवाग्नु तत्र ब्रह्मजातिष्ठोडश क्षिणियजातिद्विदश वैश्य-  
जातिसम्पत्त शूद्रजाति पञ्चदशाहृत्य पञ्चवाशत् तेषा नामान्यनुभिमित्याम ।  
ब्रह्माम्बरस्य रव्यम्बरभ्राजकरीचित्पुरुषटीकिविभिन्नकवचंजगभकोशाम्बर-  
सौवर्चलमोमकामृतनेत्रवैयम्भुक्तुरन्दद्रास्यपञ्चोदरस्कमगर्भाद्विते षोडश  
नामानि भवन्ति । अथ शुण्डीकराम्बररेखास्योदुम्बरभ्रदकपञ्चास्याशु-  
मुखरक्तेत्रमिगगर्भकरोहिणकसोमांशकोर्मिकश्चेति द्वादश रवताभ्रकनामानि  
भवन्ति । वैश्याभ्रकस्य कृष्णमुखश्यामरेखगरलकोशपञ्चधाराम्बरीषकमणि-  
गर्भकौञ्चास्य इति सप्त नामवेधानि भवन्तीति । अथ शूद्रस्य गोमुखकन्दुरक-  
शीण्डिकमुखास्यविषयगर्भमण्डकैलगर्भरेखास्यपार्शिंगिकराकुशक्रपाणादद्वैषिक-  
रक्तवैष्णवकरसप्राहुक्त्वराहुकिकश्चेति पञ्चदशानामवेधानि भवन्तीति ॥ ७० ॥

अब अध्रक के स्वरूप का आल्यान कहेंगे। इसके चार वर्ण ब्राह्मण, तत्त्विय, वैश्य, शूद्र भेद से उनके ५० प्रकार होते हैं उनमें ब्राह्मण १६ तत्त्विय १२ वैश्य ७ और शूद्र ४५ हैं मिला कर ५० हैं, उनके नामों को कहेंगे। ब्राह्मण अध्रक के रवि, अम्बर, भाजक, रेचितमक, पुष्टिरीक, विरजिक, वल्लगम, कोशाम्बर, सौवर्चल, सोमक, असूतनेत्र, शैयमुख, कुर्म, रुद्राय, पञ्चोद्र, रुक्मिन्द, ये १६ नाम होते हैं। और शुण्डीरक, शास्वर, रेखास्य, औरुम्बर, भद्रक, पञ्चास्य, अंगुमुख, रक्षेन्त्र, मणिगर्भ, रोहणिक, सोमांशक, कौर्मिक ये रक्षाध्रक—तत्त्विय अध्रक के नाम हैं। वैश्य अध्रक के कृष्णमुख, श्यामरेख, गरलकोश, पञ्चवार, अम्बरीषक, मणिगर्भ, कौशिलाय ये ७ नाम होते हैं। और शूद्र अध्रक के गोमुख, कन्दुक, शैयिङ्क, मुग्धास्य, विषयगर्भ, मण्डुक, तैलगर्भ, रेखास्य, पार्वणिक, राक्षशुक, प्राणद, द्रौपिणिक, रक्षवृक्ष, रसपात्रक, ब्राह्मणारिक ये १५ नाम होते हैं ॥ ७० ॥

पण्डीको रोहणिक पञ्चधारइच्छा द्वौगिक ।

चातर्वर्णकमात् तेषु व्योमयानकियाहंका ॥ ७१ ॥

चत्वार्थेवे विशेषेणा यावसामप्त्यकर्मणि ।

शास्त्रज्ञै बहुधा प्रोक्तास्त्रम्यक श्रेष्ठतमा इति ॥७३ ॥

तस्मात् सर्वं प्रयत्नेन यानमेतैः प्रकल्पयेत् ।  
 पूर्वोक्ताभ्रकमादाय यानसामग्रधर्कर्मणे ॥ ७३ ॥  
 आदी सशोधयेत् सप्तदिनं शास्त्रविषयानतः ।

अभ्रक के चारों बणों में क्रमसे पुण्डरीक, रोइणिक, पञ्चधार, ट्रैणिक ये चार अभ्रक विमान-क्रिया के योग्य हैं, ये चारों विशेषरूप से विमानसामग्री के कार्य में शास्त्रज्ञों ने बहुधा श्रेष्ठ कहे हैं । अतः सर्वं प्रयत्नं से इनसे ही विमान कार्य करें, पूर्वोक्त अभ्रक लेकर यानसामग्री कर्म में प्रथम ७ दिन तक शोधन करें ॥ ७१-७३ ॥

शोधनाक्रमसुकं संस्काररत्नाकरे—शोधनाक्रम संस्काररत्नाकर में कहा है—

स्कन्धारको शारणिकश्च पिङ्जुली वरटिका टड्हाएकाकजिङ्गिका शैवालिनो  
 रीढ़िकवारसारदौवारिकोशम्बररञ्जकं च । एतात् समाहृत्य पृथक् पृथक्  
 क्रूमात् सम्पूर्णयेद् द्रावणायन्त्रकास्ये ॥ ७४ ॥  
 पृथक् पृथक् द्रावकमाहरेच्छनै पश्चाद् घटे काचमये प्रपूरयेत् ॥ ७५ ॥

॥ इत्यादि ॥

स्कन्धारक—स्कन्धा—र—शालपर्णी में रहनेवाला ज्ञार या स्कन्ध-अरक=अरकस्कन्ध=पित्तपापदे का स्कन्ध लकड़ी ? शारणिक—शारणा—जयन्ती ( जैत ) का ज्ञार या प्रसारणी गव्यप्रसारणी का तैल ?, पिङ्जुली—पिङ्जर=हरिताळ ?, कौशी, सुहागा, कांकड़ा—गुण्जा ?, शैवालिनी—काई ?, रीढ़िक—स्ट्रेजटा, ज्ञार, सार—यवज्ञार, दौवारिक ?, शम्बर—लोध, रञ्जक—कशीता । इनको पृथक् पृथक् लेकर द्रावक यन्त्र मुख में ढाल दें पृथक् पृथक् धीरे धीरे ले ले काच के घड़े में भर दें ॥ ७४-७५ ॥

एतेष्वकेकजातीयद्रावकेणा यथाविधि ।

अस्मवर शोधयेत् तस्मात् तद्विधि परिचक्षते ॥ ७६ ॥

चूर्णायित्वाऽभ्रक सम्यक् स्कन्धारद्रावकेन्यसेत् ।

पाचनायन्त्रकोशीय पूरयेत् तदस पुन् ॥ ७७ ॥

त्रिदिनं पाचयेदग्नो विद्युता त्रिदिनं पचेन् ।

समाहृत्याय विधिवत् कास्यपात्रे पुनर्न्यसेत् ॥ ७८ ॥

तस्मिन् शारणिकद्रावं सम्मेल्याथ दिनत्रयम् ।

आतपे विन्यसेत् पश्चात् पिङ्जुलीद्रावक तथा ॥ ७९ ॥

सम्पूर्णं भूपुटे पञ्च दिनानि स्थापयेत् तत् ।

समुद्धृत्य पुन् कास्यपात्रे संस्थाप्य शार्कत ॥ ८० ॥

इन में एक एक जातीय द्रावक से यथाविधि अभ्रक को शोधे अतः उसकी विधि कहते हैं । अभ्रक को भली प्रकार वारीक पीस कर भली प्रकार स्कन्धार द्रावक—शालपर्णी के या पित्तपापदे के द्राव में ढाल दें, पाचनायन्त्रकोश में फिर उस रस को भर दें अग्नि में तीन दिन तक पकावे विद्युत् से तीन दिन पकावे विधिवत् कांसे पात्र में फिर छोड़ दें उस में शारणिक द्राव-जयन्ती का द्राव

मिला कर तीन दिन तक धूप में रखे पश्चात् पिक्जुली द्रावक भर कर भूषुट में—भूमि में छिपावे ५ दिन स्थापित करे फिर निकाल कर कासे के पात्र में शास्त्रानुसार स्थापित करके—॥७६—८०॥

वराटिकाद्रावकं च पूरयित्वा यथाविधि ।  
पाचयेद् भूषरे यन्त्रे दिनमेकमत्. परम् ॥ ८१ ॥  
समुद्धृत्य पुनः कास्यपात्रे निक्षिप्य सर्षपे ।  
सम्मेल्य टङ्कणद्रावकं तस्मिन् सम्प्रपूरयेत् ॥ ८२ ॥  
पश्चादर्जुनवृक्षस्य काष्ठात् सन्दाहा यत्नतः ।  
खदिराङ्गारमध्ये (तु) स्थापयेत् त्रिदिन ततः ॥ ८३ ॥  
पूर्ववत् पुनरादाय कास्यपात्रमत्. परम् ।  
सम्पूर्येद् द्रावकाकर्जह्निकाया प्रमाणतः ॥ ८४ ॥  
चतुर्दश्यां तथा पीरंगमास्या चैव यथाक्रमम् ।  
राकामध्ये न्यसेद् रात्रिद्वय पश्चात् समाहरेत् ॥ ८५ ॥

कौड़ी का द्राव भर कर यथाविधि १ दिन तक भूधर—भूमि के खड़े यन्त्र में पकावे, पुनः कासे के पात्र में डाल कर सरसों से मिला कर सुदागाद्रावक उसमें डाल दे पश्चात् अर्जुन वृक्ष के काढ़ों को जला कर यत्न से खेर के अङ्गों के मध्य में ३ दिन स्थापित करे पुनः कास्यपात्र को लेकर कारकजह्निका के द्रावक से भर कर चतुर्दशी में या पौरीमासी में यथाक्रम गाका—पौरीमासी और प्रतिपदा दो रात्रि तक रखे पश्चात् ले ले ॥ ८१—८५ ॥

पुनस्तंत्रपात्रमानीय संग्राह्याभूकमुक्तमम् ।  
सम्यक् सक्षालयेदुष्णावारिणा तदनन्तरम् ॥ ८६ ॥  
कास्यपात्रे पुन शिष्टपात्र नीवार मेलयेत् क्रमात् ।  
पश्चात्क्षेत्रविलीनद्रावकं तस्मिन् पूरयेत् ततः ॥ ८७ ॥  
सन्ध्यसेन्मृत्सिनकामध्ये दिनषट्क्रमतः परम् ।  
सगृह्य पूर्ववत् सम्यक् प्रक्षाल्य तदनन्तरम् ॥ ८८ ॥  
कास्यपात्रे विनिक्षिप्य रोट्रिकद्रावक क्रमात् ।  
सम्पूर्य विधिवत् कुण्डे शुष्कगोमयपिण्डकैः ॥ ८९ ॥  
पुट दद्याद् वितर्सतीना चतुष्षष्टिप्रमाणतः ।  
ततोभूकं समाहृत्य तिलतैले विनिक्षिपेत् ॥ ९० ॥

फिर उस पात्र को लाका उत्तम अध्रक निकाल कर अनन्तर भली प्रकार गरम जल से प्रचाल ले—बो ले पुनः कासे के पात्र में डाल कर नीवार—नीवार नाम का धान ?, मिलावे पश्चात् शैवालिनीद्राव उस में भर दे फिर छः दिन सौराष्ट्र मृतिका या प्रशस्त मृतिका में डाले फिर पूर्व की भाति लेकर धो कर कासे के पात्र में डाल कर क्रम से रोट्रिक द्राव में बड़े कुण्ड में विधिवत् भर कर सूखे गोमय उपलों से ६४ बालिश का पुट देवे । फिर अध्रक को लेकर तिलों के तैल में डाल दे ॥८५—९०॥

न्यसेत् सार्थदिन तस्मिन् पश्चात् संगृहा चातपे ।  
 उदयास्तपर्यन्त सत्तापाय यथाविधि ॥६१॥  
 प्रक्षाल्य कास्यपात्रेय प्रक्षिपेच्छुदमभ्रकम् ।  
 क्षारसारद्रावकं च वतूरीबीजमिश्रितम् ॥६२॥  
 सम्पूर्णं कुण्डलीपत्रराशिमध्ये यथाविधि ।  
 विनिक्षिप्य पचेत् पश्चात् पुनस्गृह्य शास्त्रत ॥६३॥  
 पूर्वपात्रे विनिक्षिप्य न्यसेद् दौवारिकद्रवम् ।  
 तुषाराङ्गारतस्सम्यक् पाचयित्वा दिन ततः ॥६४॥  
 यदभूक् समाहृत्य कास्यपात्रे निधाय हि ।  
 शम्बरद्रावक तस्मिन् सम्पूर्णं त्रिदिन ततः ॥६५॥

डेढ़ दिन उसमें पढ़ा रहने वे पश्चात् लेकर भूप में उदय से अस्तपर्यन्त यथाविधि तपाकर घोकर कांसे के पात्र में शुद्ध अभ्रक को डालदे धतूरे के बीज से मिश्रित चारसार द्रावक को कुण्डलीपत्र गिलो के पत्तों के ढेर में द्रावकर डालकर पकाकर फिर लेकर पूर्वपात्र में डालकर दौवारिक द्रव ? डालदे, तुषोवाले अङ्गरों से दिनभर पकाकर उस अभ्रक को लेकर कांसे के पात्र में रखकर शम्बरद्रावक को उसमें भरकर तीन दिन ६०—६५॥

चतुरेकाशक्पूर रमभूके मन्निवेशयेत् ।  
 पश्चान्मन्यानयन्त्रय क्षिप्त्व कोशमुखान्तरे ॥६६॥  
 मथन कारयेदेकदिन सम्यग्यथाविधि ।  
 तदभूक् समाहृत्य पाचयित्वोष्णावरिणा ॥६७॥  
 सिहास्यवज्जम्पाया पूरयित्वा तथेव हि ।  
 विन्यसेद् रङ्गजकद्राव टङ्कण त्रिपल तथा ॥६८॥  
 पलत्रय शिलाक्षार पलमेक तु सूरणाम् ।  
 कंगोटक पञ्चपल वृषल पलसप्तकम् ॥६९॥  
 कूर्मटङ्कणक चाष्टपल रौहिणक दण ।  
 शम्बर विशतिपल मुचुकुन्दं पलत्रयम् ॥७०॥

चतुर्थ अभ्रक में काशक्पूर डालदे पश्चात् मन्धान यन्त्र के कोशमुख में डालकर एक दिन भली प्रकार मन्धन करे, उस अभ्रक को लेकर गरम जल से पकाकर सिंहास्य वज्रमूर्या में भरकर रङ्गक-द्रावक भरे सुहागा ३ पल ( १२ तोला ) शिला चार—चूना ३ पल ( १२ तोला ) सूरण—शूरणकन्द १ पल ( ४ तोला ), कंगोटक ?—शीतल चीनी ? ५ पल ( २० तोला ), वृषल—गृज्ञन—गाजर शलजम ७ पल कूर्म ? टङ्कण सुहागा ८ पल रौहिणक—जाल चन्दन १० पल शम्बर २० पल, मुचुकुन्द—मुचुकुन्दनामक कूर्म का वृक्ष है उसके फूल मूल ३ पल—॥ ६६—७० ॥

एतात् संशोध्य विधिवत् तस्मिन् सम्युर्य मानतः ।

कुण्डे सिंहमुखे स्थाप्य इज्जलान् परिपूर्याणि ॥ १०१ ॥

पञ्चास्यकूर्मभस्त्रेणा गालयेदतिवेगत ।

यथाष्टशतकश्योष्णावेगस्स्थाद् गालने तथा ॥ १०२ ॥

सम्यक् सङ्खाल्य विधिवद् यन्त्रास्ये तद्रस न्यसेत् ।

एवकृतेत्यन्तशुद्ध वैद्यूयसमवर्चसम् ॥ १०३ ॥

अत्यन्तलघुमच्छेदमदाह्य नाशर्वजितम् ।

भेदच्छुद्धाभ्रक तेन विमान कारयेद् हठम् ॥ १०४ ॥ इत्यादि ॥

—इनको विधिवत् शोधकर उसमें माप से भर कर सिंहमुख कुण्ड में रखकर अंगों को भरकर पांच मुखवाली कूर्मभस्त्रे से अतिवेग से गालावे जिससे गालने में ८०० दर्जे की उष्णता का वेग हो भली प्रकार गताकर यन्त्र के मुख में उस रस-विघ्ने द्वारा रख दे । ऐसा करने पर अत्यन्त शुद्ध वैद्यूयमणि के समान तेजवाला अत्यन्त हल्का अच्छेद्य अदाहा नाशरहित हो शुद्ध अभ्रक है उस से विमान करावे ॥ १०१—१०४ ॥

एवमभ्रकसंशुद्धिकममुक्त्वा यथाविधि ।

इदानी यानसामग्रथस्सद्ग्रहेण प्रचक्षते ॥ १०५ ॥

वितस्तिद्वयग्रात्राश्च वितस्तित्रयमुन्नतान् ।

नानावित्रसमायुक्तान् नानावर्णविराजितान् ॥ १०६ ॥

दृढानशीतिस्थायाकान् स्तम्भानादी प्रकल्पयेत् ।

एकंकस्तम्भमादाय पूर्वोक्तद्वीणिणसन्धिषु ॥ १०७ ॥

सर्वत्र स्थापयेत् पश्चात् कीलकंसुदृढं यथा ।

द्रोणीप्राणाणामीनन्त्यान्वितस्तिदशविस्तृतान् ॥ १०८ ॥

पट्टिकान् कल्पयित्वाथ स्तम्भानामुपरि क्रमात् ।

समाच्छादाय सर्वत्रावृत्तशकुभिरेव हि ॥ १०९ ॥

बध्नीयात् सुदृढं सम्यग् द्विमुखीकोलकंस्तया ।

बध्नीयात् दावरणपट्टिकाश्च यथाविधि ॥ ११० ॥

इस प्रकार अभ्रक से शुद्धिकम को यथाविधि कह कर इस समय यानसामग्री संज्ञेय से कहते हैं, २ वालिश्त मोटे ३ वालिश्त ऊंचे भिन्न भिन्न चित्रों से युक्त नाना रंगों से विराजित हठ ८० संख्या स्तम्भ आदि में बनाने चाहिए, एक एक स्तम्भ को लेकर पूर्व कही द्रोणिणियों में सब जगह स्थापित कर दे, परचात् कीलों से सुदृढ बना दे । द्रोणि का प्रमाण १० वालिश्त लम्बी पट्टिकाएं बना कर स्तम्भों के ऊपर ढक कर सर्वत्र धूमनेवाले शंकुओं से बाष्ठ दे तथा मुख वाली कीलों से भी बान्धे उन आवरण पट्टिकाओं को भी यथाविधि बान्धे ॥ १०५—११० ॥

यन्त्रपवेशनार्थं सामग्रीसस्थापनाय च ।

यथा सङ्कल्पित कर्ता तर्यत्र विधिवत् क्रमात् । १११ ॥

कुर्याच्चित्रविचित्राणि गृहाण्यस्मिन् हठानि हि ।

यथा दृश्यं परेषा स्थात् तथावरणाकीलकं ॥ ११२ ॥

कवाटान् स्थापयेत् तद्वद् वातायनमुखानपि ।

सर्वत्र गृहमध्येष्टदिक्षु शास्त्रानुसारत् ॥ ११३ ॥

कीलसञ्चालनेनाशु गृहसम्भ्रमणं यथा ।

भवेत् तथावृत्तचक्रकीलकान् स्थापयेत् कृमात् ॥ ११४ ॥

प्रसारणातिरोधानं चकाणा प्रभवेद् यथा ।

तथा कीलसञ्चालन कृत्वा पश्चाद् यथाकृमम् ॥ ११५ ॥

चालक यात्रियों के बैठने के अर्थ और सामग्री रखने के लिए, जैसे कर्ता ने सङ्कलित किया वैसे ही विधिवत् कम से चित्र विधित्र घर इसमें स्थिर करे, जैसे दूसरों का दृश्य सामने आ जावे ऐसे आवरण कीलों से किंचाढ लगावे खिडकियों के मुख भी सर्वत्र घर के मध्य आठ दिशाओं में शास्त्रानुसार कील चलाने से शीघ्र घर का भ्रमण जिससे हो जावे वैसे घूमने वाले चक्रों की कीलें लगावे प्रसारण-खोलने और तिरोधान-बन्द होना चक्रों का हो जावे ऐसे कील को सन्धान करके यथाक्रम ॥ १११-११५ ॥

चक्राणि स्थापयेद् द्वोणीद्वयमध्यस्थसन्धिषु ।

सम्मूरणाकर्षणार्थं तथा सञ्चोदनाय हि ॥ ११६ ॥

वाताकर्षणालानि सचक्राणि तथैव हि ।

भवित्वकामुखयुक्तानि विस्तृतास्यान्यथाकृमम् ॥ ११७ ॥

विशद्विहाय सन्धिद्वयकेन्द्राण्यथाविधि ।

सस्थापयेत् ततस्तन्मुखपुरोभागतो मुदु ॥ ११८ ॥

पुरोवातापातकचक्राण्यपि सर्वत्र कीलकं ।

अध प्रसारणे वायु तद्वद्वर्धप्रवोदने ॥ ११९ ॥

द्विमुखीनालचक्राणि यानावृतप्रदेशके ।

त्रिशट्टिनस्थन्तराय कृत्वा शास्त्रप्रमाणतः ॥ १२० ॥

दो द्वेषियों की मध्यस्थ सन्धियों में सम्पूरण और आकर्षण के अर्थ तथा प्रेरणा देने के लिए चक्रसहित वाताकर्षण नाल भव्यामुख दो सन्धियों के केन्द्र २० विस्तार में छोड़ कर उनके मुख के सामने भाग संस्थापित करे । सामने के वायु को आचात देने वाले चक्रों सर्वत्र कीलों से वायु को नीचे लाने ऊपर प्रेरित करने में दो मुख वाले नाल चक्रों को विमान के घिरे या घूमने वाले प्रदेश में ३० वालिशत अन्तर छोड़ कर शास्त्र प्रमाण से—॥ ११६-१०० ॥

सर्वत्र स्थापयेत् पश्चाद् यानाधोभागदेशके ।

वेणीतन्मीसमायुक्तान्यपिण्डान् यथाक्रमम् ॥ १२१ ॥

विमानाकाशगमनकाले सयोजितु कृमात् ।

अष्टुदिक्षु तथा मध्ये कीलकान् नव कर्त्तयेत् ॥ १२२ ॥

वितस्तिसप्तकोन्नत्यं प्रथमावरणं दृष्टम् ।

कल्पयित्वाथ विधिवद् यावदावरण भवेत् ॥ १२३ ॥

तावत्सर्वत्र सुहृदान् नलिकाकीलान् (?) वरान् ।

ग्रहणार्थं मध्ययानपीठस्थ्य सुहृष्ट यथा ॥ १२४ ॥

कृत्वा वितस्तिदशकान्तर सर्वत्र शास्त्रत ।

विशद्वितस्त्यन्तरायाम मध्यदेशे तर्यते हि ॥ १२५ ॥

सर्वत्र विमान के नीचे भाग जाले देश में स्थापित करे, वेणी तन्त्री—वेणी के आकाश के तारों या चिन्मासूचक तोरों को जोहपिण्डों को यथाक्रम विमान के आकाश गमन काल में जोड़ने की क्रम से द दिशाओं में तथा मध्य में उत्तम ह कीलों को मध्य यान पीठ के ग्रहणार्थं शास्त्रानुसार १० बालिशत का अन्तर करके मध्य देश में २० वितस्ति अन्तर पर लम्बा—॥ १२१—१२५ ॥

स्थापयेत् सुहृष्ट पश्चात् कीलकाना मुखान्तरे ।

सचकतन्त्रीविधिवद् योजयेत् सुहृष्ट यथा ॥ १२६ ॥

प्रतिकीलमुखे तन्त्रिष्य चञ्चपुटद्वय यथा ।

न्यभावेनोर्ध्वमुखतः विस्तृत स्याद् यथा तथा ॥ १२७ ॥

सम्मे (स्मि?)लीकरणं पूर्वपरभागद्वयो क्रमात् ।

यथा भवेत् तथा तन्त्रीकीलकान् परिकल्पयेत् ॥ १२८ ॥

न्यगुलीकरणं चैव तद्विक्षण यथा ।

छत्रीवत् प्रभवेचक्कीलकान् कल्पयेत्तथा ॥ १२९ ॥

न्यगुलीकरणे तेषामुपरिष्ठात् समन्तत ।

प्रभवेत् पटावरणं यथा चोर्ध्वमुखान्तरात् ॥ १३० ॥

—सुहृष्ट स्थापित करे । पश्चात् कीलों के मुख के अन्दर विधिवत् चक्रसहित दो तारों को सुहृष्ट जोडे, प्रथेक कील के मुख में तार में दो चञ्चपुट जैसे देसे हो अलग होने से—पुट खुलने से ऊँचे-मुख से विस्तृत हो जावे मिलाना पूर्व छिले दोनों भागों का क्रम से जिससे वैसे तारों की कीलों को लगावे । संकुचित करना बन्द करना और उसी भांति विकसित करना खोलना छत्री की भांति हो ऐसे चक्रों की कीलों को बनावे, सङ्कोच करने बन्द करने में उनका ऊपर पटावरण समान हो जिससे ऊर्ध्वमुख अन्दर से युक्त करे ॥ १२६—१३० ॥

तथा पट चोर्ध्वमुखे योजयेत् कीलकस्सह ।

तिरोधान पटस्याथ यथा स्याद् गृहविस्तृते ॥ १३१ ॥

प्रथमावरणमेव कृत्वा पश्चात् यथाविधि ।

द्वितीयावरणं कुर्यात् त्रिणोत्रेण ननोहरम् ॥ १३२ ॥

तथा पट को ऊपर के मुख में कीलों से लगावे, पट का हडा देना घर के विस्तार के निमित्त है । इस प्रकार प्रथमावरण बना कर पश्चात् यथाविधि दूसरा सुन्दर आवरण त्रिणोत्र लोहे से करे ॥ १३१—१३२ ॥

तदुपरि चान्यत् ॥ अ० २, स० ३ ॥ १

बो० दृ०

प्रथमावरणस्यैवमुक्तवाय रचनाविधिम् ।  
द्वितीयावरणरचनाविधिरस्मिन् प्रकीर्त्यते ॥ १३३ ॥  
प्रथमावरणस्योपर्यथाशास्त्रं यथाकृमम् ।  
अन्यदावरणं कुर्यादिति सूत्रविनिणीय ॥ १३४ ॥  
प्रथमावरणात् किञ्चिद्ग्रस्त्वमावरणं यथा ।  
तथा द्वितीयावरणं कर्तव्यमिति वर्णितम् ॥ १३५ ॥  
वितरितशतकायाम् यदि स्यात् प्रथमाङ्गाम् ।  
वितस्त्वयशीत्यायामं स्याद् द्वितीयावरणं तथा ॥ १३६ ॥  
वितस्त्वयशीत्यायामं च वितस्तित्रयगात्रकम् ।  
द्वितीयावरणोठं त्रिगोत्रेणैव कल्पयेत् ॥ १३७ ॥

प्रथम आवरण की इस प्रकार रचनाविधि कह कर द्वितीय आवरण की रचनाविधि इसमें कही जाती है। प्रथम आवरण के ऊपर यथाशास्त्रं यथाकृमम् अन्य आवरण करे यह सूत्र का निरीय है। प्रथम आवरण से कुछ छोटा आवरण वैसा दूसरा आवरण करना चाहिए यह कहा है, प्रथम अङ्ग-आवरण यदि १०० बालिश्त लम्बा हो तो दूसरा आवरण ८० बालिश्त लम्बा ३ बालिश्त मोटा दूसरे आवरण का पीठ त्रिगोत्र लोहे से बनावे ॥ १३३-१३७ ॥

पीठस्याघ प्रदेशोय प्रथमावरणोपरि ।  
सयोजनार्थं विधिवत् कीलकानि हठ यथा ॥ १३८ ॥  
प्रथमावरणे यावत्स्यां स्यात् तावदेव हि ।  
सन्ध्वारयेद् यथाकामं सर्वत्राधीमुखान्यथ ॥ १३९ ॥  
कीलकद्वयस्योजनार्थं शास्त्रानुसारतः ।  
कीलीय्रहणयोग्यानि हस्तचक्राण्यपि क्रमात् ॥ १४० ॥  
कीलपक्ष्यनुसारेणोभयत्र च यथाक्रमम् ।  
कीलकानि स्थापयित्वा तेषामन्तरतस्ततः ॥ १४१ ॥  
सचक्कनालान् सर्वत्र सतन्त्रीन् योजयेद् हठम् ।  
विद्युत्स्थानमुखात् लेतु विद्युत्संयोजन यथा ॥ १४२ ॥  
भवेत् तथा वृहच्चक्कीलकं सरल हठम् ।  
विद्युत्स्थानमुखे सार्धवितस्त्वत्तरतः क्रमात् ॥-१४३ ॥  
स्थापयित्वा तदारभ्य नालचक्रोपरि क्रमात् ।  
मुसूक्षमा मृदुला शुदा कनिष्ठाङ्गुलमानतः ॥ १४४ ॥

ठोड़े के नीचले प्रदेश में और प्रथम आवरण के ऊपर लगाने को कीले हठ प्रथम आवरण में

जितनी संख्या हो उतने ही लगावे यथेष्ट सर्वत्र नीचे मुख बाली दो कीलों के लगाने को शास्त्रानुसार कीली से प्रहृण करने योग्य हृस्तचक—मरदूकहृस्त चक ? भी क्रम से कील पंकि के अनुसार दोनों ओर यथाक्रम कीलें स्थापित करके उनके अन्दर से चकसहित तारों को लगावे, विद्युत् स्थान मुख से उनमें विद्युत् का संयोग जिससे हो जावे ऐसे सरल बड़े चक की कील विद्युत् पात्र के मुख में डेढ़ बालिशत अन्दर से या अन्त से ? स्थापित करके उससे आरम्भ कर नातचकू के ऊपर क्रम से सुसूक्ष्म मुदु शुद्ध करिष्ठा और गुली के समान— ॥ १४८-१४९ ॥

पट्टिका योजयेत् कीलकान्त सम्यग्यथाविधि ।

पश्चात् कीलकपक्षीना मुखसम्बिधु शास्त्रतः ॥ १४५ ॥

व्यत्यस्तहृस्तवद् वेगादूर्ध्वमागत्य सर्वतः ।

पूर्वोत्तरावरणकीलकमाहृत्य पक्षितः ॥ १४६ ॥

अन्योन्य योजयित्वाव वधनीयात् सुट्ट यथा ।

अंततोष्वं मुखसप्तस्यकीलकानि पृथक् पृथक् ॥ १४७ ॥

सस्थापयेत् तत्सर्वकीलकभ्रमणाय हि ।

पूर्वोक्तविद्युतावस्थ पुरोभागस्थकीलकात् ॥ १४८ ॥

तदन्तर्गतबृहच्छकभ्रमण भवेद् यथा ।

तथा प्रसारयेद् विद्युच्छ्रिं तदुपर कमात् ॥ १४९ ॥

शक्तिवेगानुसारेण तच्छकभ्रमण भवेत् ।

एतच्छकूस्य भ्रमण दशवार यथा भवेत् ॥ १५० ॥

तत्पुरोभागस्थयकभ्रमण वेगतो भवेत् ।

तेन नालस्थवकाणि सर्वाण्यपि यथाक्रमम् ॥ १५१ ॥

भ्रामयन्ति वेगेन कीलपक्षिमुखाविधि ।

—पट्टिका लगावे कील के अन्त में यथाविधि, पश्चात् कीलपक्षियों के मुख सन्धिस्थानों में शास्त्र से उलटे हाथ बाले वेग से ऊपर सर्वतः आकर पूर्वीतर के आवरण की कीली को लेकर पंकि से एक दूसरे में भिला कर सुट्ट बान्ध दे भिला कर सुट्ट मुख सप्तस्य कीलें पृथक् पृथक् सम्यग्यथापित करे किर सब कीलों के भ्रमण के लिए पूर्वोक्त विद्युत्यत्व के सम्मुख भाग में वर्तमान कील से उसके अन्दर के बड़े चक्र का भ्रमण जिससे हो जावे वैसे उसके ऊपर विद्युत् शक्ति को प्रसारित करे शक्ति के वेगानुसार वह चक्रभ्रमण हो जावे। इस चक्र का भ्रमण दश वार जिससे हो जावे। उसके सामने बाले चक्र का भ्रमण वेग से हो इससे नालस्थ सब चक्र भी कीली पंकि के मुख तक वेग से घूमते हैं ॥ १४५-१५१ ॥

पश्चात् विद्युत्यमुखसप्तस्यकीलकमार्गतः ॥ १५२ ॥

तच्छ्रिं चोदयेद् वेगात् तेन कीलकान्तरात् स्वयम् ।

तत्कीलहृस्तस्सर्वत्र अनुलोमविलोमतः ॥ १५३ ॥

ऊर्ध्वमागत्य वेगेनावरणद्यकीलकान् ।

समाहृत्याथ सम्मेल्य बध्नाति मुहूर्णं यथा ॥ १५४ ॥  
 पूर्वोत्तरावरणयोः सन्धिसम्मेलनं यथा ।  
 विद्युदाकर्षणेनाशु प्रभवेत् सर्वतः क्रमात् ॥ १५५ ॥  
 तथा पञ्चास्यमायूरकीलकानि नियोजयेत् ।  
 सन्धिसम्मेलनं तेन प्रभवेशात् संशय ॥ १५६ ॥  
 तत्पृथक्करणार्थार्थं पुनः कालानुसारतः ।  
 सर्वत्र शक्त्यपकर्षणकीलानपि पूर्ववत् ॥ १५७ ॥  
 शक्तिप्रबोदनयनत्रवेत् संस्थापयेत् क्रमात् ।

पश्चात् ऊर्ध्वमुख से सर्पाश्य कील मारी से उस शक्ति को बेग से प्रेरित करे उससे स्वर्यं कील के अन्दर से वह कील हाथ सर्वत्र अनुलोम विलोम से ऊपर आकर बेग से दो आवरणों की कीलों को पकड़ कर मिला कर सुट्ट बान्धता है जिससे पूर्व और उत्तर आवरण में सन्धि का सम्मेलन—मेल संयोग विद्युत के आकर्षण से शीघ्र सब और क्रम से ही जावे वैसे पञ्चास्य—पञ्चमुख वाली मायूर कीली भोर के आकार के पेंच को लगावे, उससे सन्धि सम्मेलन हो जावे इसमें संशय नहीं। फिर कालानुसार आलग करने के लिए सर्वत्र शक्त्याकर्षण—शक्ति को खीचने वाली कीलों को भी पूर्व की भाँति शक्तिप्रेरक यन्त्रों में ही क्रम से संस्थापित कर दे ॥ १५२—१५७ ॥

१५८ का पूर्वार्द्ध विषय अभूरा रहा, अतः कुछ श्लोक मध्य में अन्य होकर पश्चात् इस्तलेख कापी संस्था २२ पश्चात् २१ वस्तुतः कापी २३ का भाग (मैटर) होना चाहिये ।



कापी संख्या २२—

(यह हस्तलेख कापीसंख्या २२ है त्रिपुरविमान का शेष प्रतीत होता है जो हस्तलेख कापी २३ वस्तुतः कापी २१) के पीछे जाना चाहिए—

जलान्तर्गमने पूर्वावरणस्य यथाविधि ॥१॥  
सर्वचक्रोपसहार कृत्वा पश्चाद् यथाक्रमम् ।  
चक्रद्रोष्यावरण प्रकुर्याद् यानादध क्रमात् ॥२॥  
जलनिर्बन्धनार्थाय आमूलाग्रं यथाविधि ।  
कुर्यादावरण क्षीरीपटतसुड्ड यथा ॥२॥  
वितस्त्यायामतस्तदद् वितस्त्यवर्धन तथा ।  
मण्डूकहस्तवत् कुर्याच्चक्राणि सुट्ठान्यथा ॥४॥  
चतुर्गुलगात्राश्च द्वादशाऽगुलमुन्नतान् ।  
लोहदण्डान् कल्पयित्वा तेषामग्रे यथाविधि ॥५॥  
मण्डूकहस्तचक्राणि योजयेत् कीलकं स्सह ।

(त्रिपुर विमान के) जल के अन्दर जाने के निमित्त पूर्व आवरण—पृथिवी पर चलने वाले आवरण के सब चक्रों का उत्संहार—संकोच करके उनके गतिक्रम को रोककर परचात् यथाक्रम विमान के नीचे चक्रद्रोषी चक्रों के आधारस्थान का आवरण करे जल के बान्धने के लिये आगे पीछे तक यथाविधि लीरीचूकों के दूध का गोन्द से बने पट से सुट्ठां आवरण करे । १ बालिश्त लम्बे चौडे आगे वालिश्त मोटे चक्र मेंडक के हाथ के समान बनावे, ३ अंगुल ऊंचे लम्बे लोहदण्डों को बनाकर उनके आगे यथाविधि मण्डूकहस्तचक्रों को कीलों से युक्त करे—॥१-५॥

सर्वत्र चक्रद्रोषीना पार्श्वयोरभयोरपि ॥६॥  
द्रोण्यन्तर्गतचक्राणा सन्धिस्थानसमानत ।  
सस्यापयेल्लोहदण्डान् सचकादच यथाविधि ॥७॥  
सुट्ठान् सरलान् चक्रकीलकान्तर्गतान्यथ ।  
तथा दण्डद्वयं चक्रसयुत कीलकं स्सह ॥८॥  
आहूदत्वं पूर्वोक्तचक्रदण्डसन्धिमुखान्तरात् ।  
विमानपुरतस्तद्वत्पाश्वंयोरभयोरपि ॥९॥

सलिलोत्सेपणार्थाय स्थापयेत् कीलकं हृषम् ।  
शक्तिसञ्चोदनादादिकीलकभ्रमणं भवेत् ॥१०॥

—सर्वत्र चक्रद्रोणियों के दोनों पार्श्वों में भी । द्रोणियों के भीतरी चक्रों के सन्धिस्थान की सहायता से सरल चक्रकीलों के अन्तर्गत चक्रसंहित लोहादण्डों को संस्थापित करे । चक्र-संयुक्त कीलों से दो दण्डों को पूर्वोक्त चक्रदण्डसंयुक्तमुख के अन्दर से निकालकर विमान के सामने से दोनों पार्श्वों से जल के हटाने के लिये कीलों से ढट लगावे, इस प्रकार शक्तिप्रेरणा से आदि कीलों—पेंचों का भ्रमण होगा ॥६—१०॥

तच्चक्वेगात्सर्वेषां चक्रणां भ्रमणं भवेत् ।  
जलस्थोत्क्षेपणं तेन आसमन्ताद् यथाकमम् ॥११॥  
प्रभवेदतिवेगेन तस्माद् यान् प्रधावति ।  
एव क्रमेण विधिवद्वर्चरणापादर्वयो ॥१२॥  
सन्धारयेन्नलाभातकक्षणिं सुहृडान्यथ ।  
ऊर्ध्ववाताकर्षणार्थं क्षीरीपटविनिमिताद् ॥१३॥  
षड्गुलायामावतानान् द्रावकशोधिताद् ।  
पूर्वोक्तप्रथमावरणास्यसर्वगृहान्तरात् ॥१४॥  
ऊर्ध्वविररणोर्ध्वमुखपर्यन्तं सरल यथा ।  
सन्धाररयेद् ढट पश्चात् तमुखेषु यथाविधि ॥१५॥

उस चक्रवेग से सब चक्रों का भ्रमण हो जावे उससे जल का उत्क्षेपण ऊपर हटाना सब और से यथाकम वेग से होकर विमानयान दौड़ता है, इस प्रकार कम से विधिवत ऊपर के आवरण के दोनों पार्श्वों में नाल को आघात पहुंचाने वाले सुट्ठ चक ऊपर के वायु को खींचने के लिये लगावे लीपट से बने द्रावक शोधित ६ अंगुल लम्बे चौड़े वात-नालों को पूर्वोक्त प्रथम आवरणस्य सर्व घरों—कमरों (चक कोणों) के अन्दर से ऊपर के आवरण के ऊपर वाले मुख तक सरल लगावे, पश्चात् उन मुखों में यथाविधि—॥११-१५॥

प्रदक्षिणावर्तलोहमुखानि स्थापयेत् तत् ।  
वातपूरणकीलानि तत्तत्पाश्वें नियोजयेत् ॥१६॥  
ऊर्ध्ववाताकर्षणार्थं सीत्कारीकीलकान्यपि ।  
सन्धारयेद् विशेषेण सर्वत्र सुट्ठ यथा ॥१७॥  
नालपूरितवायुश्च सीत्कार्याकर्षणोद्भव ।  
द्वितीयावरणामारम्यं प्रथमावरणाविधि ॥१८॥  
यथा प्रसरणं वेगात्प्रभवेत्सर्वतोमुखम् ।  
तथा सयोजयेचककीलकानि यथाकमम् ॥१९॥

शक्तिसङ्घोदनातत्कीलकचकस्य भ्रमणम् ।

तेन वातद्वयं सम्यक् क्रमादावरणद्वये ॥२०॥

सम्पूर्यंत्यतिवेर्गेन यन्हुणा तेन भूरिशः ।

मुखावह भवेत् तस्मिन् सर्वेषां युगपत् क्रमात् ॥२१॥

घूमने वाले लोहमुख स्थापित करे फिर वातपूककीलों को उनके पाश्वों में लगावे, ऊर की बायु के खींचने को सीकारी सीत—बायुचूषण करने वाली कीलों को भी सर्वत्र विशेषरूप से लगावे, सीकारी के आवरण—से प्रकट हुआ बायु नाल में भरा हुआ द्वितीय आवरण से लेकर प्रथम आवरण की अवधि तक होता है, उसका जैसे सर्वतोमुख वेगसे प्रसार हो बैसा यथाक्रम कील युक्त करे। शक्ति के प्रेरण से उस कीलचक्र का घूमना होता है, इससे बायुरं कम से दोनों आवरणों में अतिवेग से भर जाती है इससे उसमें सब चालक और यात्रियों को एक साथ बहुत सुखद होवे—होता है ॥१६—२१॥

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन वातनालान्नियोजयेत् ।

वातनालावरणद्वयमध्ये यथाविधि ॥२२॥

सस्थाप्य पश्चादावरणोर्धर्वपाश्वे सम यथा ।

दक्षिणोत्तरभागेषु चतुर्दिक्षु यथाक्रमम् ॥२३॥

विकासनोपस्थारकीलकान् चक्रस्युतान् ।

मुहूर्दान् सरलाइवं स्थापयेच्छक्तिवक्त्वमात् ॥२४॥

पूर्वोत्तरावरणयोस्सन्धिस्थाने यथाविधि ।

एकं कावरणस्याय पृथक् करणहेतुकान् ॥२५॥

जटातन्मीसमायुक्तचक्रीलकान् पृथक् पृथक् ।

सर्वत्र स्थापयेत् सम्पूर्यतस्तिदशकान्तरे ॥२६॥

अतः सर्वप्रयत्न से वातनालों को लगावे, दोनों वातनालावरणों के मध्य में यथाविधि संस्थापित करके श्वात् आवरण के ऊपर पाश्व में भी समान दण्डिणा उत्तर भागों में चारों दिशाओं में यथाक्रम विकासन—फैलाने उपसंहार—संकोच करने वाली कीलों को चक्रसहित टड सरल शक्ति की भाँति स्थापित करे पूर्वोत्तर आवरण के सन्धिस्थान भी यथाविधि एक एक आवरण के पृथक् करने के हेतुरूप जटा तारों-जटारूप में परसर ऐंठा पाए हुए पूर्प तारों से युक्त चक्रकीलों को पृथक् पृथक् सर्वत्र १० बालिश्ल के अन्वर स्थापित करे ॥२२—२६॥

शक्तिसङ्घोदनात् कीलचक्राणा भ्रमणं यथा ।

तथा तन्त्रं समाहृत्य शक्तिस्थानाद् यथाक्रमम् ॥२७॥

चक्रकीलकमूलान्तं सम्यक् सञ्चोदयेद् दण्डम् ।

तेन विद्युतप्रसरणं कुर्यादुक्तप्रमाणतः ॥२८॥

तच्छक्तिचोदनात्कीलचक्राणा भ्रमणं भवेत् ।

तस्मादावरणमेदः पृथक् पृथग् यथाक्रमम् ॥२९॥

युगपत्रभवेत्सम्यक् पृथिव्याकाशमार्गतः ।  
यथेष्टु वेगतश्चावरणो यन्तु भवेत् स्वत ॥३०॥

शक्ति की प्रेरणा से कीलचक्रों का भ्रमण जैसे हो वैसे शक्तिस्थान से—मीटर तार को लेकर यथाक्रम चक्र की कील के मूलतक भजी प्रकार भ्रेति करे उससे उक्त प्रभ्रमण से विशुद्ध का फैलाव करे, उस शक्तिप्रेरण से कीलचक्रों का भ्रमण होवे । इससे पृथक् पृथक् पृथिवी और आकाश के मार्ग सम्बन्धी आवरणों का भेद एक साथ हो जावे फिर यथेष्टु दोनों आवरणों में वेग से जाना हो सके ॥२६-३०॥

पश्चाद् द्वितीयावरणोपरि शास्त्रप्रमाणत ।  
यन्त्रुपवेशनार्थीय वस्तुप्रक्षेपणाय च ॥३१॥  
गृहारिणि कल्पयेच्चित्रविचित्राणि यथाकमम् ।  
बातायनवाचाद्या पूर्वावरणवत्कमात् ॥३२॥  
यथादृश्य भवेद् वाह्ये कर्तव्यास्तत्र(च)तथा ।  
पश्चादावरणाकुड्याना समन्ताद् यथाकमम् ॥३३॥  
सर्वंत्र कारयेत् पीठावरणाप्ने दृढ़ यथा ।  
वितस्तिस्तप्तकौन्तत्य गात्रे त्वर्धवितस्तिकम् ॥३४॥  
सर्वंत्र कुड्यप्रमाणेमेव शास्त्रे निरूपितम् ।  
तृतीयावरणाद् विशुद्धप्रग्राह्यं यथाविधि ॥३५॥  
विशुद्धप्रकपात्रेण समुत्त तन्त्रपूर्वकम् ।  
पश्चाद्भागगृहे स्तम्भदय स्थापयेत्सुदृढम् ॥३६॥

पश्चात् दूसरे आवरण के ऊपर शास्त्रप्रमाण से चालक और यात्रियों के ढैठने के लिये चित्रविचित्र कमरे बनावे खिलडी किवाड आदि पूर्व आवरण की भाँति ऐसे करने चाहिए जिससे वाहिर का दिखलाई पड़ जावे फिर सब और आवरण भित्तियों का भी पीठ के अग्र में दृढ़ उ वालिश्त मोटा सर्वंत्र भित्ति का प्रमाण ऐसा शास्त्र में निरूपित किया है । तीसरे आवरण से विशुद्ध के संग्रहार्थ विशुद्धक पात्र से संयुक्त तारसहित पिछले भाग में कमरे में दो स्तम्भ दृढ़लूप से लगावे—॥३१-३६॥

ध्वस्तम्भ पुरोभागे स्थापयेत् सुनुठ यथा ।  
घण्टाद्वय च तन्मूले कास्यलोहविनिर्मितम् ॥५८॥  
यःत् एका कालसङ्क्लेषनिर्णयार्थं यथाविधि ।  
कन्तु घण्टारवत्र तत्र स्थापयेत् सरल दृढम् ॥३८॥  
वेणीतन्त्र समादाय गृहकुळयोपरि कमात् ।-  
सर्वंत्र योजयेत् पश्चात् सकीलकं सरलं यथा ॥३९॥  
अत्यन्तानर्थकार्यारिणि यदा यत्र भवेत् तदा ।

† भवेत्=वचनव्यत्यय ।

हस्ताद् संगृष्ट तत्रयवेणीतन्त्र प्रकर्षयेत् ॥४०॥

विमान के सामने वाले भाग में ध्वजस्तम्भ सुट्ठु द्यापित करे, उस स्तम्भ के मूल में हो घण्टे भी कासे लोहे के बने हुए चालक और यात्रियों के कालसङ्कुत के अर्थ घण्टानाद करने को वहाँ सरल द्यापित करे, वेणीतन्त्री—विन्ता सूचिकाळ ढोरी जैसी तार कीलसहित को लेकर घर—कमरे की भित्ति के ऊर कम से सब साल जगह लगावे। अत्यन्त अनर्थकार्य जब जहाँ हो वेणीतन्त्र को स्तीच हो—॥ ३७—४० ॥

तेन विजायते कृत्य शीघ्र यानाधिकारिणा ।  
 ततो यानाधिकारी तु वेगादागत्य तद गृहम् ॥ ४१ ॥  
 विचार्यं तत्रत्यानर्थकारणं न्यायतस्त्वयम् ।  
 समाधान करोत्यस्माद् वेणीतन्त्र नियोजयेत् ॥ ४२ ॥  
 भाषाकर्षणायन्त्राणि भावाकर्षणाकान्यपि ।  
 दिवप्रदर्शकयन्त्राणि कालप्रमाणान्यपि ॥ ४३ ॥  
 शीतोषणप्रमापकयन्त्रान्यपि विशेषत् ।  
 सतन्त्रीकीलकं सम्यक् पूर्वपित्तमयो क्रमात् ॥ ४४ ॥  
 सस्थापयेत् ततोऽत्यन्तवातवर्पतिपादिभि ।  
 अत्यन्तोपद्रव व्योमयानस्य प्रभवेद् यदि ॥ ४५ ॥  
 तन्त्रिवारयितु यन्त्रत्रय पश्चाद् यथाविधि ।

इस से यानाधिकारी द्वारा जान लिया जाता है, तब वह यानाधिकारी शीघ्र उस कमरे में आकर और अनर्थकारण का युक्ति से विचार कर समाधान करता है अतः वेणीतन्त्री लगानी चाहिए। भाषण को खींचने वाले यन्त्र, भाव को खींचने वाले यन्त्र, दिशाप्रदर्शक यन्त्र, कालप्रमाणक यन्त्र, शीत और उष्णता को मापने वाले यन्त्र भी विशेषतः तारों और कीलों के साथ आगे पीछे लगावे—संस्थापित करे। फिर अत्यन्त वात वर्षा आत्मपत्र—धूप आदि से विमान का अत्यन्त बिगाड़ हो तो उसके निवारणार्थ तीन यन्त्र पीछे यथाविधि—॥४१—४५॥

पूर्वपित्तमयोश्चेव तथा शिखरपाशवर्योः ॥ ४६ ॥  
 सस्थापयेत् क्रमात् सम्यक् पृथक् पृथग्यथाक्रमम् ।  
 इलोकस्थादिपदात् सम्यग्निमस्हारकादय ॥ ४७ ॥  
 प्रोक्तास्थु पालनार्थीय विमानस्य यथाक्रमम् ।  
 उक्त हि यन्त्रसर्वस्ये यन्त्रत्रय यथाविधि ॥ ४८ ॥  
 सर्वेषां सुखवोधाय तान्येवात्र प्रचक्षते ।  
 श्यास्थावातनिरसनयन्त्र तद्गमनोहरम् ॥ ४९ ॥

\* “वेणु विन्तायाम्” ( म्वादि० )

सूर्योत्तोपसंहारयन्त्रं चैव ततः परम् ।

अति वर्षोत्तोपसंहारयन्त्रं चेति त्रिष्णा स्मृतम् ॥५०॥

आगे पीछे तथा शिखर और दोनों पाशबों में क्रमशः पृथक् पृथक् संस्थापित करे । “वातवर्षात्तपादि” (४५) ल्लोक में आदिवद से हिमसंहारक शीतनाशक आदि ये सब विमान के रक्षार्थ यथाक्रम कहे गये हैं । तीनों यन्त्र संतर्भव में यथाविधि कहे हैं । सबके मुगम ज्ञान के लिये वे यहाँ कहते हैं जोकि व्यास्यवातनिरसनयन्त्र—तीन मुख वाला बायुनिकालने का यन्त्र, दूसरा सूर्योत्तोपसंहार यन्त्र—सूर्य की धूर को रोकने वाला यन्त्र, तीसरा अतिवर्षोत्तोपसंहार यन्त्र—अति वर्षा का प्रतिकार करने वाला यन्त्र, यह तीन प्रकार के कहे हैं ॥४६-५०॥

प्रोक्तं शास्त्रे यथा तेषामाकाररचनादयः ।

तथा सगृहा विश्वित् सग्रहेणात्र वर्यंते ॥५१॥

आदौ व्रचास्यवातनिरसनयन्त्रं यथाविधि ।

प्रोच्यते शास्त्रतस्म्यक् सग्रहेण यथामति ।

वारुणेन लोहेन तद्यन्त्रं परिकल्पेत् ॥५२॥

इति यन्त्रविदा वादः यन्त्रशास्त्रे निरूपितः ।

शास्त्र में उनके आकार रचना आदि जैसे कहे हैं वैसे एकत्र कर संचेप से यहाँ वर्णित करते हैं । प्रथम व्रचास्यवातनिरसनयन्त्र—तीन मुख वाला बायु निकालने वाला यन्त्र यथाविधि शास्त्र से यथामति संचेप से कहा जाता है कि वारुण लोहे से उस यन्त्र को बनावे । यह यन्त्रवेत्ताओं का वाद—वक्तव्य विषय यन्त्रशास्त्र में निरूपित किया है ॥५१-५२॥

वारिपञ्चविषारिटञ्चर्णजालिकाप्रविशोदरान् ।

वारिरञ्चकक्षारसनकक्षोणामञ्जुलगोधरान् ॥५३॥

वारुणास्यकपार्वणारुणकाकतुण्डकभूधरान् ।

वारुणाप्रकक्षारसूरणकुण्डलीमुखलोधरान् ॥५४॥

वारिकुडमलशारिकारसपञ्चवाणसहोदरान् ।

वार्धपञ्चकमाक्षिकाष्ठकवातकञ्चिकोदरान् ॥५५॥

वालुकाञ्जनकुकुटाण्डकामुखलोदृष्टकान् ।

वीरुधारससिहिकामुखक्लमंजञ्जमसूरिकान् ॥५६॥

शुद्धनेतान् समाहृत्य शूषाया परिपूर्याय ।

स्थापयित्वा पदमुखकुण्डे सम्यग् यथाविधि ॥५७॥

पञ्चास्यभस्त्रिकात् सप्तशतकक्षयोष्णवेगत् ।

गालयित्वाथ यन्त्रास्ये तद्रसं पूरयेच्छन् ॥५८॥

ऋज्वीकण्णयन्त्रस्थकीलक्स्तद्रसं क्रमात् ।

समीकृत चेन्मुदुलं धूम्रवरणं तथैव हि ॥५९॥

प्रत्यन्तलधुवातातपाद्यैरच्छेषमेव च ।  
 प्रभवेद् वारुण लोह सुड्ड मुमनोहरम् ॥६०॥  
 प्रधास्यवातनिरसनयन्त्र तेन प्रकल्पयेत् ।  
 आदो कुर्याल्लोहशुद्धि पश्चादाकारकल्पनाम् ॥६१॥

वारिपङ्कु—मुग्नभववाता का मूल ? विषारि—करञ्जुवा, सुहागा, जालिका—लोहा, अन्न—अम्लवेतस, विषोदर—विषनिन्दु—कुचला ?, वारिपङ्कवक्तार—अन्नकतार या समुद्र लवण ? या जलज्ञार, सामुद्रिक लवण ५ भाग, सततकोशण—सप्तशोण—७ भाग सिन्दूर, मजीठ, गोधर—मनःशिला ? वारुणास्थक—वरणा वृक्ष के मूल का सत्त्व ?, पार्वण अरुण—अर्क ?, कामतुरङ्ग—काला अगर, भूषर—पर्वत ?, वारुणाप्रक इवेताभ्रक, चार—सउजीज्ञार, कुण्डलीमुख—गुह्यचीसत्त्व या कौडबमूल ?, लोधर—लोध, वारिकुइमल—सुगन्ध वाला फूल, शारिकारस—शालिचावल का रस या अनन्तमूल का रस ? पद्म, वाणसद्वार ? वर्दिपङ्कवक्त—सीसा ५ भाग, स्वर्णमाचिक द भाग, वातक—पटशण या मूर्वलता, किणि-कोदर—कंगुनी मालकंगनी ? बालुका—रेता, अञ्जन—सुरमा या रसोत, कुकुटापङ्क—शल्यतो बीज या मुर्मु के अणडे ?, कार्मुखीमल-कामुं कीमल—खदिरमल—कल्या, लोध, बीरुषा रस ? सिंहिकामुख—कटेली सत्त्व या मूल, कुर्मजङ्घ—कोई ओवधि ?, मसूरिक ? इन सब शुद्ध वस्तुओं को मूषा मृतिकादि से बनी विशिष्ट बोतल में भरकर पद्मामुखकुण्ड में सथाविष्ठ रखकर पांचमुखवाली भस्त्रा से ७०० दर्जे की उष्णता देग से गलाकर पन्त्रमुख में उस द्रवरस को धोरे से भरकर क्रजुकरणयन्त्र में स्थित कीलों से उस रस को क्रम से बराबर किया हुआ मुदुल धूम्रांगवाला, अत्यन्त हलका बायु धूप आदि से अच्छेद्य हो जावे यह वारुण लोहा अच्छा दृढ सुन्दर है त्रयास्यवातनिरसनयन्त्र इससे बनाना चाहिए, प्रथम लोहशुद्धि करे पश्चात् आकाररचना करे ॥५३-५१॥

शुद्धिकमसुकृतं कियासारे—शुद्धिकम कियासार में कहा है—

शुण्डीरद्रावकात् सम्यक् पाचनायन्त्रतः क्रमात् ।  
 पाचयेत् विदिनं पश्चात् कुटिणीयन्त्रतः पुनः ॥६२॥  
 पटवक्तारयेत् सम्यक् पटिका सुड्ड यथा ।  
 वातारिकन्दनिर्यास कृत्वा पश्चाद् यथाविधि ॥६३॥  
 तत्पटिकोपर्यङ्गुलप्रमाणेन समग्रतः ।  
 विलेप्य तापनायन्त्रे तापयेत् प्रधामामात्रकम् ॥६४॥  
 पश्चात् संगृह्य विधिवस्तुतार वायुर तथा ।  
 जिन्मित्रितफणिकीर समभाग यथाकमम् ॥६५॥  
 भाण्डे निक्षिप्य विधिवत्पाचनायन्त्रतः क्रमात् ।  
 पश्चात् पश्चात् सग्राहयेच्छनैः ॥६६॥

<sup>‡</sup> वरपङ्क

† त्रिया—ज्या छान्दस इकारलोग ‘यन्नाप्यथाक्रमम्’ की भाँति ।

गुण्डीद्रावक—हस्ती गुण्डी छूत के रस से पकाने के यन्त्र से ३ दिन पकावे पश्चात् कुट्टियों  
यन्त्र से पट-बल्क की भाँति सम्यक् सुखद पट्टिका बनावे, वातारिकद के निर्याम—सुरणकद के ? गान्ध  
चेप से बनाकर पश्चात् यथाविधि उस पट्टिका के ऊपर १ अंगुल लेप करके तापयन्त्र में तीन प्रहर तारवे  
पश्चात् विधिवत् लेकर मृत्खार—सौराष्ट्र शृतिका या रहज्ञार ?, वागुर—शागुण—कमरक, जिन्मित्रि ?  
फणिकीर अकीम या फणि ओवधि का दृध समान भाग यथाक्रम पात्र में ढालकर विधिवत् पाचनायन्त्र  
से १ दिन तक पकावे फिर लेले—।६२-६६॥

निर्यास प्रभवेलाक्षारासवद्रक्षवण्ठं ।  
तनिर्यासिनाथ सम्यक् पट्टिका लेपयेत् क्रमात् ॥६७॥  
पुनश्च तापनायन्त्रे तापयेद् यामात्रकम् ।  
पुनः सगृह्य तल्लोहमातपे शोषयेदिनम् ॥६८॥  
तत् कण्टकहेरडधवलोदरचारकान् ।  
तिलाश समभागेन मेलयित्वा यथाविधि ॥६९॥  
तैलाहरण्यन्त्रे गा तैलमाहृत्य तत्परम् ।  
तत्पट्टिका लेपयित्वा दद्यात् सूर्यपुटे क्रमात् ॥७०॥

निर्यास लाजारस की भाँति लाल रंग वाला हो जावे, उस निर्यास से पट्टिका को लेप दे पुनः  
तापनायन्त्र में १ प्रहरभर तापावे फिर उस लोहे को धूप में दिनभर सुखावे । गोखरू, हेरण्ड ? घबलो-  
दर—धव या धव और लोदर—लोधर—लोध्र—लोध, चारक—पियाल, तैल निकालने के यन्त्र से तैल  
निकाल कर उस पट्टिका पर लेप करके सूर्यपुट में दे दे—धूप में रखवे—।६७-७०॥

दिनत्रयमत्ससम्यग्ज्ञारे तापयेद् दिनम् ।  
पश्चात् कञ्जोलनिर्यासमेकाद्युलप्रमाणात् ॥७१॥  
लेपयित्वा मणीन् सम्यक् शुद्धाव वातकुठारकान् ।  
अद्गुण्डमात्राद् तस्मिन्नासमन्ताद् योजयेत् क्रमात् ॥७२॥  
तत्समादाय विधिवत् खदिराङ्गारकुण्डके ।  
न्यसेद् यामत्रय तेन वज्रवत् प्रभवेत् स्वयम् ॥७३॥  
एतल्लोहेन कवच यानमानानुसारत । ।  
कृत्वा मूले तथा मध्ये चान्ते चैव यथाक्रमम् ॥७४॥  
प्रसारणतिरोधानकीलकाति न्यसेत् तत् । ।  
अन्तःप्रावरणे नालतन्त्रीमूलाद् यथाविधि ॥७५॥

तीन दिन तक । फिर अंगार में दिन भर तापावे, कंकोल—शीतलचीनी के गोन्द का लेप एक  
अंगुल मोटा करके सम्यक् शुद्ध अंगुष्ठ परिमाणवाली वातकुठारक मणियों को उसमें सब ओर कम से  
लगावे फिर उसे लेकर विधिवत् लैर अगारों के कुण्ड में तीन प्रहर तक रख दे उससे वज्र जैसा हो जावे,  
इस लोहे से यान के मापानुसार कवच बनाकर मूल में मध्य में और अन्त में यथाक्रम

सोलने और बन्द करने की कीलों को लगावे फिर यथाविधि अन्दर आजे आवरण ( परदे ) में—  
नालतारों के मूल से—॥७१-७५॥

यथाशक्ति प्रसरणं भवेत् सम्यक् तथा क्रमात् ।  
विद्युद्यन्त्रं समाहृत्य नालकीलान्तरे क्रमात् ॥७६॥  
तत्त्वीमेकां समाहृत्य नालकीलान्तरे क्रमात् ।  
सयोजयेत् तेन विद्युत् व्याप्त्य सर्वत्र वेगत ॥७७॥  
पट्टिकोपरि विन्यस्तमणिगमन्तरे क्रमात् ।  
स्वयं प्रविश्य तच्छक्तधा मिलिता सती वेगत ॥७८॥  
पट्टिकोपरि सर्वत्र व्याप्त्य सच(अ?)लता ब्रजेत् ।  
महाप्रलयकालीनवायुवद् वेगत क्रमात् ॥७९॥  
प्रचण्डमारुतसम्यगिवमानोपरि वीजति ।  
तदा तद्वायुवेगस्तम्भन कृतवा समग्रत ॥८०॥  
त्रिधा विभज्य तद्वायु प्रेषयेद्वृत्तोम्बरे ।

यथाशक्ति क्रमशः प्रसार हो जावे । विद्युद्यन्त्र से लेकर भीतरी आवरण तक एक तार को लेकर नालकील के अन्दर क्रम से जोडे उससे सर्वत्र विद्युत् वेग से व्याप्त होकर पट्टिका के ऊपर लगी मणियों के अन्दर गम्भ में स्वयं प्रविष्ट होकर उस शक्ति से मिली हुई वेग से पट्टिका के ऊपर सर्वत्र व्याप्त होकर गति को प्राप्त हो जावे । पुनः महाप्रलयकालीन वायु की भाँति वेग से प्रचण्ड वायु खूब विमान के ऊपर घूमती है तब उस वायु के वेग का समग्र स्तम्भन करके तीन प्रकार से विभक्त कर उस वायु को ऊपर आकाश में फेंक दे ॥ ७६-८० ॥

एतद्वातप्रेरणार्थं यानस्योपरि शास्त्रत ॥ ८१ ॥  
सचककीलकैस्सम्यक् सीतकारी भस्त्रिकादिवत् ।  
सर्पस्यकीलतृतीय कल्पयित्वा यथाविधि ॥ ८२ ॥  
सस्थापयेत् मुसरल हठ चावृत्तशाङ्कुभिः ॥  
वायुस्त्वभावाक्लुनुसाराद्रव्व गच्छेद यथाक्रमम् ॥ ८३ ॥  
तदा सम्भ्रामयेत् सर्पस्यकीलकत्रय क्रमात् ।  
पश्चाद् वेगेन तद्वायु पूर्वोक्तास्यत्रय ततः ॥ ८४ ॥  
सर्पवद् वायुमाकृष्ण्य तत्तद्रागानुसारतः ।  
स्वमुखैनैव वेगेनोर्ध्वं ले प्रेषयति स्वतः ॥ ८५ ॥  
एतेन वायुनिशेष लय याति खमण्डले ।  
तस्मादपायं वातेन यानस्य न भवेत् ध्रुवम् ॥ ८६ ॥

\* स्वभागानु ( हस्तलिखितपाठः ) ।

इस वायु को फेंकने के लिए शाकानुसार यान के ऊपर चक्रसहित कीलों से सेतीकारी भस्त्रिका की भाँति सर्वमुखवाली तीन कीलों—पेंचों को यथाविधि बनाकर सरल हठ गोल या घूमनेवाले शंकुओं से संस्थापित कर दे, वायु स्वभावानुसार यथाक्रम ऊपर चला जावेगा तब तीनों सर्वमुखी कीलों—पेंचों को घुमावे पश्चात् पूर्वोक्त तीनों सर्वमुख सर्प की भाँति वायु को ल्होच कर उस उस के भागानुसार सर्वमुख से ही वेग से ऊपर आकाश में फेंक देता है इससे वायु सर्वथा आकाशमण्डल में लय को प्राप्त हो जाता है अतः वायुद्वारा विमान का नाश या विगड़ निश्चित न हो ॥ ८१-८६ ॥

तस्माद् यानस्य वातापायविनाशो भविष्यति ।

अनायासाद् याति पश्चाद् विमानस्तरल यथा ॥ ८७ ॥

अतो विमानावरणत्रयेष्वेव प्रकल्पयेत् ।

वातोपसहारयन्त्रमेवमुक्त्वा यथाविधि ॥ ८८ ॥

अथ वर्षोपसहारयन्त्रमद्य प्रचक्षते ।

वर्षोपसहारयन्त्र क्रौञ्चकेनव प्रकल्पयेत् ॥ ८९ ॥

अत विमान यान वातसम्बन्धी उपद्रव का अनायास विनाश हो जावेगा, पश्चात् विमान सरलता से गति करता है चलता है उड़ता है। अतः विमान के तीनों आवरणों में ऐसा करे। इस प्रकार यथाविधि वातोपसंहार यन्त्र कह कर अथ वर्षोपसंहार यन्त्र कहते हैं, वर्षोपसंहार यन्त्र क्रौञ्चक लोह से बनावे ॥ ८०-८६ ॥

उक्तं हि क्रियासारे—कहा ही है क्रियासार मन्त्र में—

यदद्रवप्राणतशक्तीर्जलस्यापहरेत्स्वत् ।

तत् क्रौञ्चिकलोहमिति प्रवदन्ति मनीषिण ॥ ६० ॥

वर्षोपसहारयन्त्रमत्सतेनवे कल्पयेत् । इत्यादि ॥

जिससे कि जल की द्रव (पत्रोपन) प्राणेन (गीला करना) शक्तियों को नष्ट करदे, उसे क्रौञ्चिक लोह मनीषी कहते हैं वर्षोपसंहार यन्त्र अतः इससे बनावे ॥ ६० ॥

ययोक्त यन्त्रसर्वस्वे क्रौञ्चलोहविनीर्णय ॥ ६१ ॥

तथेवात्र प्रवश्यामि क्रौञ्चिकस्य यथाविधि ।

ज्योतिर्मुख ऋष्यक च हस्तुण्ड सुधारकम् ॥ ६२ ॥

वसुरुद्राकाञ्चिभागान् तर्यव च पुनः क्रमात् ।

टङ्गुरं संकत चूर्णमौर्वार रुक तथा ॥ ६३ ॥

पटोलक वार्धुर्विकं चेते सप्त यथाक्रमम् ।

वसुवेदार्काञ्चिभागान्तारशैलविभागतः ॥ ६४ ॥

संयोज्य मूलास्यमध्ये स्वापयेत् पद्यकुण्डके ।

द्वादशोत्तरपञ्चशतकक्षयोज्ञप्रमाणातः ॥ ६५ ॥

जैसा कि यन्त्रसर्वस्व में क्रौञ्चिक लोह निर्णय है वैसे ही यहां मैं यथाविधि क्रौञ्चिक का कथन कहूँगा। ज्योतिर्मुख-चित्रक वृक्ष का मूल द्वाग, ऋष्यक-तान्त्रा ११ भाग, हंसतुरद्ध-हंसराजमूल ?

१२ भाग, सुधारक-सुधार कपूर ७ भाग, पुन. सुहागा ८ भाग, सैकत-श्वेतकटकारी का सत्त्व या रस या रेत १ ४ भाग, चूना १२ भाग, ककड़ी स्वरबृजा के थीज या तैल ३ भाग, रुक्म-हरिणशृङ्ख या रुक्म कोई शोषणीय या पारा ५ भाग, पटोल-परवल ५ या २७ भाग, वार्ष्युषिक-समुद्रफेन या द्रोणीलबण १ भाग ? ये सात पदार्थ मिला कर मूषामुख कृत्रिम बोतल में रख देव पद्मकुण्ड में ५१२ दर्जे कीउ-गता प्रमाण से—॥ ६१-६५ ॥

गालियत्वातिवेगेन त्रिमुखीभस्त्रिकामुखात् ।

समीकरणयन्त्रास्ये तद्रस पूरयेच्छने ॥ ६६ ॥

एव कृतेयत्नमुदु मधुवर्णं दृढं रुचम् ।

वर्धविच्छेदनकरं वर्षवातातपामिनभिः ॥ ६७ ॥

अभेद्यमुद्दण्डगर्भं च विषनाशकरं शिवम् ।

जलद्रवप्राणानाश्वशकत्याकर्येणादीक्षितम् ॥ ६८ ॥

प्रभवेत् कौञ्चिकं लोहं सर्वजन्तुविषापहम् ।

एतल्लोहेन कर्तव्यं यन्त्रं वर्षोपसंहारकम् ॥ ६९ ॥

तुलसीस्वरमपुद्धासग्नित्रिजटापञ्चकण्टकी ।

एतेषा वीजत्तेलेन लोहं सन्ताप्य शास्त्रत ॥ १०० ॥

त्रिमुखी भस्त्रामुख से देवा से गला कर समानीकरण यन्त्र के मुख में उस रिंघले रस को धीरे से भर दे ऐसा करने पर अत्यन्त मुदु मधुवर्णशाला दृढं चमककदाव वर्षों का विच्छेद करने वाला वर्षों वायु धूप से भेदन करने योग्य उद्धारवाच विषनाशक कल्याणकर जल का द्रव(पतलापन) प्राणन (गीलापन) नामक शार्कियों के आकर्षणी की शक्ति से युक्त कौञ्चिक लोहा सब जन्तुओं के विष का नाशक है । इस लोहे से वर्षोपसंहारक यन्त्र बनाना चाहिये । तुलसी, रुक्म, धनुरा, नागकेसर ?, शरुँखा, चित्रक, त्रिजटा—विलव, पञ्चकटकी—? के वीजों के तेल से लोहे को गरम करके—॥ ६६-१०० ॥

पश्चाद् यन्त्रं यथाशास्त्रं कल्पयेद्यान्यथा भवेत् ।

तल्लोहं कुट्टिणीयन्त्रात् पट्टिका कारयेत् ततः ॥ १०१ ॥

वितस्तिद्वयमायाम् पद्वितस्त्युप्रत तथा ।

एकं कस्मिन्नेकनालं यथा सयोजितु भवेत् ॥ १०२ ॥

कल्पयेत् मुद्दादान् नालाद् यावदानोनन्त तथा ।

विमानावरणस्याप्ते नालसयोजनाय हि ॥ १०३ ॥

वितस्तित्रयमायामनालान् पश्चाद् यथाकमम् ।

सन्धारयेदासमन्तात् सकीलान् मुट्ठ यथा ॥ १०४ ॥

तथैव यानोर्ध्वभागेऽप्येवमेव नियोजयेत् ।

चण्णनिर्यसिमादाय नालानामुपरि कमात् ॥ १०५ ॥

पश्चात् यथाशास्त्रं यन्त्रं ( वर्षोपसंहार यन्त्र ) बनावे तो ठीक होगा । उस लोहे को कुट्टिणी यन्त्र से पट्टिका के रूप में बना दे । २ अलिशत लम्बा ६ अलिशत ऊँचा एक एक में एक नाल जैसे संयुक्त

कर सके ऐसे सुट्ट नालों को लगावे जितना ऊँचा विमान हो, विमान के आवरण के आगे नाल लगाने के लिए तीन बालिश लगावे नाल यथाक्रम लगावे यात के पीछे यथाक्रम कील के साथ लगावे ऐसे ही विमान के ऊपर भी लगावे चण्णनिर्यास—चने का गोद ? नाल के ऊपर क्रम से—॥ १०१-१०५ ॥

एकाइड्युलप्रमाणेन सम्यक् सलेपयेत् ततः ।

वज्जगभंद्रावकेण(?) पुनस्तदुपरि क्रमात् ॥ १०६ ॥

निवार लेपयेत् तेन वज्जवत् सुट्ट भवेत् ।

तन्नालोपरि सर्वंत्र द्वादशाऽग्नलमन्तरम् ॥ १०७ ॥

पृथक् पृथक् कल्पयित्वा सिञ्जीरवज्जिमित्रिष्य ।

विन्यस्य यामार्धकाल पावकेन प्रतापयेत् ॥ १०८ ॥

द्रवप्राणनशत्वाकर्षणदक्षान् जलस्य हि ।

अद्गुण्ठमात्रान् पञ्चास्यमरीन् व्याघ्रवशकीन् ॥ १०९ ॥

पूर्वोक्तसिञ्जीरवज्जोपरि सन्धारयेद् दृढम् ।

पश्चान्नालान् समाहृत्य व्योमयानोपरिक्रमात् ॥ ११० ॥

ऊष्मधिष्ठाभागनालास्थमुखरन्द्रेषु कीलकै ।

अष्टुदिक्षु क्रमात् सम्यग्योजयेत् सुट्ट यथा ॥ १११ ॥

—एक अंगुल प्रमाण से सम्यक् लेप करे, फिर वज्जगभंद्रावक—वज्जद्रुम स्तुही (थहर) द्राव दूध से या उसके बीज रस या वज्जबीजक—लताकरञ्जी ज्ञार रस से ३ बार लेप करे वज्ज जैसा ढट हो जावे । उस नाल के ऊपर १२ अंगुल के अन्तर पर पृथक् पृथक् बना कर सिञ्जीरवज्ज ? ले मिश्रित रख कर आवे प्रहर अविन से तपावे, जल का द्रव प्राणनशक्ति के आकर्षण में समर्थ अंगुठे के परिमाण में व्याघ्रवशकरी पञ्चास्य मणियों—विंह से उत्पन्न मणियों—गन्धमाजार के अण्डकोष ? को सिञ्जीरवज्ज के ऊपर लगा दे फिर नालों को लेकर विमान के ऊपर क्रम से ऊपर नीचे की नालों के मुखबिंद्रों में आठ दिशाओं में कीलों से सम्यक् ढट लगा दे ॥ १०६-१११ ॥

प्रसारणोपसहारकीलकान् चक्रसुतान् ।

एक कनालमूलप्रेशो सस्थायेत् क्रमात् ॥ ११२ ॥

विद्युत्न्त्र समारभ्य याननालान्तरावधि ।

काचनालान्तरादेकतन्त्रीमाहृत्य शास्त्रत ॥ ११३ ॥

सयोजयेत् सर्वनालान्तरे सम्यग्यथाक्रमम् ।

पश्चान्नालेष्वष्टुदिक्षु तन्त्रया विद्युद् यथाविधि ॥ ११४ ॥

शनैस्स प्रेषयेद् वेगात् तेन शब्द प्रजायते ।

मणिशाक्षिनस्ततो वेगात् समागत्य यथाक्रमम् ॥ ११५ ॥

प्रसारण और उपसंहार करे बाली चक्रसहित कीलों को एक एक नाल के मुखस्थान में कम से संसाधित कर दे, विद्युत्न्त्र से लेकर विमान की नाल के अन्दर तक काचनाल के भीतर दे एक तार को शास्त्रानुसार सब नालों के अन्दर सम्यक् यथाक्रम पश्चात् नालों में आठ दिशाओं में तार से

विशु त् यथा विधि धीरे से वेग से प्रविष्ट हो जावे उससे शब्द उत्पन्न होता है। मणिशक्ति वेग से यथाक्रम आकर—॥ ११२-११५ ॥

विशुच्छक्ति समाहृत्य नालानामुपरि क्रमात् ।  
आसमन्ताद् व्यापयित्वा स्वस्मिन् सन्धारयेत् तत् ॥ ११६ ॥  
शक्तिद्वय मिलित्वाय सर्वत्र मणिषु क्रमात् ।  
प्रविश्य वेगात् प्राणनद्रवशक्तीविशेषत् ॥ ११७ ॥  
द्वेषा विभज्योद्दर्शमुख स्वतो भूत्वा यथाक्रमम् ।  
विमानोपरि सर्वत्र व्यायतेष्य स्वशक्तिं ॥ ११८ ॥  
तत्रत्यवात्वारणमाक्रम्य स्वेन तेजसा ।  
वायुमण्डलमध्यस्थद्रवप्राणनयोः क्रमात् ॥ ११९ ॥  
द्वेषा विभज्यते शक्ति तेन वायुर्लघुत्वताम् ।  
प्राप्य मेघजलासारस्थितशक्तिद्वय क्रमात् ॥ १२० ॥

—विशु त् शक्ति को लेकर क्रम से नालों के ऊपर सब और व्याप्त होकर आपने अन्दर धारण कर ले फिर दोनों शक्तियाँ—मणिशक्ति और विशु त् शक्ति मिल कर सर्वत्र मणियों में प्रविष्ट होकर वेग से प्राणन द्रव शक्तियों को विशेषत, दो भागों में कक्षे स्वतः ऊर्ध्वमुख होकर यथाक्रम विमान के ऊर रस्त्र त्रयाक्रम से व्याप्त जाती हैं वहाँ के बातावरण—वायु के धेरे को या वायुमण्डल पर आपने तेज से आक्रमण कर उस वायुमण्डल के मध्य में स्थित क्रम से द्रव—पतलापन और प्राणन-गीलापन रूप में स्थित शक्ति को दो रूपों में विभक्त कर देती है उससे वायु हल्केपन को प्राप्त हो मेघजलप्रपात की दोनों शक्तियों—द्रव और प्राणन शक्तियों को क्रम से—॥ ११६-१२० ॥

वेगेनाक्षिणु शक्तो न भवेद् बलहीनतः ।  
वर्ष्मेषधपुरोवात्वायाप्तिर्यानोपरि क्रमात् ॥ १२१ ॥  
पतत्यक्ष्मदातिवेगेन तदा तत्रत्य वायुता ।  
ससर्गं प्रभवेत् पश्चात् परस्परविरोधतः ॥ १२२ ॥  
तस्य द्रवप्राणनख्यशक्तिद्वयमतः परम् ।  
द्विषा विभज्यते तस्माद् कर्वं सशास्त्रिति क्रमात् ॥ १२३ ॥  
तेन यानस्य विच्छिन्निर्भवेत् तु कदाचन ।  
तस्मात् सर्वं प्रयत्नेन यन्त्र वर्षोपहारकम् ॥ १२४ ॥  
विमानोपरि सयोज्यमिति शास्त्रनिराण्य ।  
यन्ता सम्पर्चिवदिवैतद्रहस्य यानमुत्सज्जेत् ॥ १२५ ॥  
मन्यथा निष्कल याति विमानश्च विनश्यति ।  
वर्षोपसहारयन्त्रमेवमुक्त्वा यथाविधि ॥ १२६ ॥

सूर्यांतपोपसहारयन्त्रमया प्रचक्षते ।  
 सूर्यांतपोपसहारयन्त्र शास्त्रविधानतः ॥ १२७ ॥  
 आतपाशनलोहेत कर्तव्यमिति निर्णयितम् ।

वेग से खीचने—लेने को समर्थ न हो सके बलहीन होने से । अतः वरसने वाले मेघ का पुरोवात—पुरी हवा की व्याप्ति विमान के ऊर कूप से अतिवेग से जब गिरती है तब बहां की विमान सम्बन्धी अनुकूल बनाई वायु के साथ संसर्ग-संघटक टक्कर हो जावे पश्चात् परस्पर विरोध से फिर उस पूर्व वायु में जल की द्रवणशक्ति—पतलापन की शक्ति और प्राणन शक्ति—गीलेपन की शक्ति दोनों पृथक् पृथक् हो जाती हैं तब वर्षा शान्त हो जाती है इससे कभी भी विमान की चक्षि न होगी, अतः संवेदयन्त्र से वर्षोपसहार यन्त्र विमान के ऊर लगाना चाहिये यह निर्देश है । विमान का चालक इस रहस्य को भनी प्रकार जान कर विमान को चलावे अन्यथा निष्कर्तवा को प्राप्त होता है और विमान विनष्ट हो जाता है । वर्षोपसंहार यन्त्र इस प्रकार यथाविधि कह कर सूर्यांतपोपसंहार को अव कहते हैं, सूर्यांतपो-पसंहार यन्त्र शास्त्रविधान से आतपाशन लोहे से करना चाहिए यह निर्णय है ॥ १२१-१२७ ॥

तदुक्तं क्रियासारे—यह क्रियासार प्रथा या प्रकरण में कहा है—

आतपाशनलोहेत सूर्यांतपनिवारारणम् ॥ १२८ ॥  
 तस्मादातपसंहारयन्त्र तेनैव कल्पयेत् ॥ इति  
 एतलोहस्वरूप तु लोहतन्त्रे निरूपितम् ॥ १२९ ॥  
 तत्सगृह्यात्र विधिवत् सग्रहेण निरूप्यते ।  
 श्रीवार्षिक कौशिकगारुड च सौभद्रक चान्द्रिक सर्पनेत्रम् ।  
 शृङ्गाटक सौम्यक चित्रलोह विश्वोदर पञ्चमुख विरिच्छ्रिम् ॥ १३० ॥  
 एतद्वादशलोहानि समभागान् यथाविधि ।  
 सगृह्य पदमसूवाया विनिश्चित्य पुन क्रमात् ॥ १३१ ॥  
 टङ्कण सन्तभाग च पञ्चमाश तु चौलिकम् ।  
 वराटिकाक्षारपट्क कुञ्जरं द्वादशाक्षम् ॥ १३२ ॥  
 नवाश सैकत शुद्ध कूर्म च चतुर्युग्मम् ।  
 बोडशाश तु त्रुटिल दावाश पौधिणक क्रमात् ॥ १३३ ॥

आतपाशन लोहे से सर्व के आतप—धूप का निवारण होता है अतः इससे ही आतपसंहार यन्त्र बनावे । इस लोहे का स्वरूप कहा है लोहतन्त्र में, उसे लेकर विधिवत् संप्रह से कहा जाता है । श्रीवार्षिक, कौशिक, गारुड, सौभद्र, चान्द्रिक, सर्पनेत्र, शृङ्गाटक, सौम्यक, चित्रलोह, विश्वोदर, पञ्चमुख, विरिच्छ्रिम् । ये १२ लोहे समान भाग लेकर यथाविधि पदमसूवा यन्त्र में डाल कर पुनः सुधागा ७ भाग, चौलिक—चौरिक—चौरपुणी या चौलकी—नारङ्गी ५ भाग, वराटिका ज्ञार—कौटी ज्ञार ६ भाग, कुञ्जर—पीपल कट्टक चाप ? १२ भाग, शुद्ध सैकत—रेत या खाएङ्ग ? ६ भाग, कूर्म ४ भाग, त्रुटिल—छोटी इलायची या खस तुण ? १६ भाग, पौधिणक—पूषा—पाठा ? १० भाग ॥ १२८-१३३ ॥

एतान्यष्टपदार्थानि मूषाया पूरयेत् तत ।  
 तन्मूषा नलिकाकुण्डे स्थापयित्वा यथाविधि ॥ १३४ ॥  
 पञ्चविशोत्तरसप्तशतकश्योष्ठग्नेवेगत ।  
 मूषकास्थमस्त्रिकात् सम्यग्धनेदतिवेगत ॥ १३५ ॥  
 समीकरणयत्रेत तदस पूरयेत् क्रमात् ।  
 एव कृतेत्यन्तशुद्ध पिङ्गल भारवजितम् ॥ १३६ ॥  
 अदाह्यमच्छेष्यक च अत्यन्तमुद्गुल दृढम् ।  
 आतपाशनलोह स्यात् सर्वोषणपरिहारकम् ॥ १३७ ॥ |इत्यादि ॥  
 सूर्यात्पोपसंहारयन्त्र शास्त्रविधानतः ।  
 आतपाशनलोहेनैव कर्तव्य न चान्यथा ॥ १३८ ॥ |

ये आठ पदार्थ मूषा—कृत्रिम बोतल में भर दे उस मूषा को नलिकाकुण्ड में यथाविधि रखकर ७२५ दर्जे की उष्णता वेग से मूषकमुख भग्निका से वेग से भली प्रकार धोके उस रिघले रस को समान करने वाले यन्त्र में भर दे ऐसा करने पर अन्तश्चुद्ध योग्यी रंग का भाररहित अताप्य अच्छेष्य अत्यन्त मुदु हृष्ट आतपाशन लोहा हो जावे समस्त उष्णता का नाशक सूर्यात्पोपसंहारयन्त्र शास्त्रविधान से आतपाशन लोहे से ही करना चाहिए अन्यथा नहीं ॥ १३८—१३९ ॥

तदुक्तं यन्त्रसर्वस्वे—वह कहा है यन्त्रसर्वस्व में—  
 आतपाशनलोहयुद्धि कृत्वा यथाविधि ।  
 पश्चाद् यन्त्र प्रकर्तव्यमन्यथा निष्कल भवेत् ॥ १३९ ॥

आतपाशन लोह की यथाविधि शुद्धि करके पश्चात् यन्त्र बनाना चाहिए अन्यथा निष्कल हो जावे ॥ १३९ ॥

शुद्धिक्रममुक्तं कियासारे—शुद्धिक्रम कहा है क्रियासार ग्रन्थ में—

अश्वत्यचूलकदलीभीरिणी वाडवा तथा ।  
 त्रिमुखी त्रिजटा गुज्जा शेरिणी च पटोलिका ॥ १४० ॥  
 एतेषा त्वचमानीय चूर्णकृत्य तत परम् ।  
 भाडे सम्पूर्य विधिवत् तदशाश जल न्यसेत् ॥ १४१ ॥  
 पाचयेत् पाचनायन्त्रे दशैक व्याधमाहरेत् ।  
 पश्चाद् विडारलवण संधव चोषर तथा ॥ १४२ ॥  
 बुडिलक्षारक माचीपत्रक्षारमत परम् ।  
 शुद्धप्रणालायण्डक सामुद्रं च शास्त्रतः ॥ १४३ ॥

पीपल, आम, केला, जीरणी—विरनी, बाढवा—अध्यगन्ध ? या बाणहा ? मुन्जरुण या नीलकमल, त्रिमुखी ? त्रिजटा—विल्व, गुड्जा—रत्ति चोटली, शेरिणी ?, पटोलिका—परवल । इन बूजों की छाल लाकर चूर्ण करके पात्र में भर कर विधिवत् उनसे दशगुणा जल ढाल दे पाचन यन्त्र में पकावे

पक कर क्वाथ दशर्षा भाग रह जाने पर उसमें विदार लवण्य—विहलवण्य, सैंधालवण्य, चपर—रह मृत्तिका लबल शोरा, बुडिल छार ?, माचीपत्र छार—काकमाची—मकोय का छार, शुद्र पांच प्राण छार—मनुष्य गौ घोड़ा गशा बकरी के मूत्रों का छार या नीसादर टङ्कण सज्जीक्षार बवक्षार पलाशाक्षार, समुद्र लवण्य—॥ १४०—१४३ ॥

एतान्येकादशाक्षाराराण्याहृत्य समभागतः ।

द्रवाकर्षण्यन्त्रास्ये सन्निवेश्य यथाकमम् ॥ १४४ ॥

पाकं कृत्वाथ विधिवदाहरेद् द्रावक तत ।

पूर्वोक्तव्याथगादाय तदव्यद्रावकं तथा ॥ १४५ ॥

सम्मेल्य विधिवत् पाचनयन्त्रास्ये नियोजयेत् ।

आतपाशनलोहं च तस्मिन्निकिप्य शास्त्रतः ॥ १४६ ॥

पाचित्वा पञ्चदिन पश्चात् सगृह्य वारिणा ।

क्षालित्वाथ मधुना लेप कुर्यात् समग्रतः ॥ १४७ ॥

चण्डातपे श्यहमात्रं शोवित्वा यथाविधि ।

पश्चात् प्रक्षाल्य विधिवत् तेन यन्त्रं प्रकल्पयेत् ॥ १४८ ॥

इन ११ ज्ञारों को समान भाग में लेकर द्रव खींचने वाले यन्त्र में यथाकम रख कर पका कर विधिवत् द्रावक ले ले पूर्व कहा क्वाथ लेकर उसका आया द्रावक उसमें मिला कर पाचन यन्त्र के मुख में ढाल दे और आतपाशन लोहा भी उसमें शाश्वानुसार ढाल कर पांच दिन पका कर लेकर जल से धोकर सब पर मधु से लेप कर दे प्रचरण धूप में तीन दिन सुखा कर यथाविधि पश्चात् जल में निकाल कर उससे विधिवत् यन्त्र बनावे ॥ १४४—१४८ ॥

( यहां से आगे हस्तलेख २१ कापी का भाग ( मैटर ) सङ्केत होता है जो वस्तुतः कापी संस्था २३ है सो आगे देते हैं )



वस्तुतः कापी संख्या २३—

(यह इत्तलेख कापी संख्या २१ है)

शुद्धातपाशनं लोह संगृह्य विधिवत् ततः ।  
पट्टिका कारयित्वाऽथ कुट्टिणीयन्त्रत कमात् ॥ ३०२ ॥  
वितस्तिद्वयमायाम् वितस्तिद्वयविस्तृतम् ।  
अङ्गुलत्रयगात्र च चतुरश्वमध्यापि वा ॥ ३०३ ॥  
वतुल कारयेत् पीठ तस्योपरि यथाक्रमम् ।  
वितस्त्येकायाममात्रं वितस्तिपञ्चकोन्नतम् ॥ ३०४ ॥  
नालत्रय स्थापितव्य धमनीदण्डवत् क्रमात् ।  
त्रिभुजाकारवत् पश्चात् तस्याधस्युद्धं यथा ॥ ३०५ ॥  
विस्तृतस्य काचमय स्थापयेत् कुट्टिकात्रयम् ।  
एकैकनालान्तरे चैकक च सुट्ठं यथा ॥ ३०६ ॥

शुद्धातपाशन नाम के लोहे को लेकर उससे विधिवत् पट्टिका बना कर पुनः कुट्टिणी यन्त्रः  
से २ बालिशत लम्बा २ बालिशत चौड़ा ३ अङ्गुल मोटा चौरस या गोल पीठ करावे उसके ऊपर यथाक्रम  
१ बालिशत लम्बे ५ बालिशत ऊंचे तीन नाल धमनीदण्ड जैसे स्थापित करने चाहिए । त्रिभुजाकारवाला  
उनके नीचे सुट्ठु खुले मुखबाले काचमय तीन कुट्टिकाएं—सुसज्जिएं एक एक नाल के अन्दर एक एक  
सुट्ठ लगा दें ॥ ३०२-३०६ ॥

तेषु सम्पूरयेत् सोमद्रावकं प्रस्थमात्रकम् ।  
एकविशोत्तरशतस्थ्याकान् द्रवशोधितान् ॥ ३०७ ॥  
ग्रीष्मोपसहारमणीनेके क तेषु योजयेत् ।  
पश्चाद् वितस्तिदशकायाम वतुलत. क्रमात् ॥ ३०८ ॥  
छत्रवत् कल्पयेत् पूर्वोक्तोहेनैव शास्त्रतः ।  
त्रिदण्डनालोपरिष्टाद् यथा सन्धारितुं भवेत् ॥ ३०९ ॥

\* यह संख्या ३०७ से आरम्भ होनी चाहिए यर्योकि कापी २१ के १५८ इलोक कापी २२ के १४८ इलोक  
सब ३०६ हुए ।

\* कुट्टिणी शक्तियन्त्र कापी ६ में ।

तथा प्रदक्षिणावर्तकीलकान् सुहृदात् कमात् ।  
 सम्प्रक् प्रकल्पयेत् श्रीणि छव्या(त्र?) सम्भव्य यथा ॥ ३१० ॥  
 प्रदक्षिणावर्तकीलकोपर्यंपि यथाकमम् ।  
 वितस्त्वर्थप्रमाणेत कलपयेत् तस्य शास्त्रत ॥ ३११ ॥

उन नालों में एक सेर सोमदावक—चन्द्रवाकमणि या श्वेत खदिरस (कथारस) ? १२१ ग्रीष्मोपसंहारक मणियों तेज से शोधी हुईं एक उन में लगावे, पश्चात् १० वालिशत लम्बा गोलाकार छड़ी की भाँति बनावे पूर्वोक्त लोहे से ही शास्त्रानुसार जिससे कि त्रिदण्ड नाल के ऊपर जैसे ढाका जावे—छां दिया जावे तथा घूमने वाली सुदृढ़ तोन कीलों को कम से घूमने वाली कीलों के ऊपर आधा वालिशत प्रमाण से छड़ी में छुट्ट लगावे ॥ ३१२-३११ ॥

तस्योपरि यथाकाम वितस्तित्रयगात्रकम् ।  
 कुर्यात् त्रिकलशान् स्थाल्याकारानाथ यथाविधि ॥ ३१२ ॥  
 सन्धारयित्वा तन्मध्ये वर्तुलान् चालपट्टिकान् ।  
 सस्थापयेत् तदुपरि शुद्धं शीतप्रसारणम् ॥ ३१३ ॥  
 पञ्चाशीतुत्तरशतसूल्याकं यन्मणित्रयम् ।  
 सस्थाप्य विधिवत् पश्चात् तेषामुपर्यथाकृमम् ॥ ३१४ ॥  
 द्रुणिणाकाभ्रकचक्रारिणि कीलकैसह योजयेत् ।  
 चन्द्रिकातूलिकात् तेषां कुर्यादावरण कमात् ॥ ३१५ ॥

उम पर यथेष्ट ३ वालिशत गात्र-लम्बे चौड़े तीन कलश पतीली के आकारवाले लगा कर उनके मध्य में गोल चलने वाली पट्टिकाओं को संस्थापित करे उन के ऊपर शुद्ध शीत प्रसार करनेवाली १८५ संख्या में तीन मणियों को विधिवत् स्थापित करके उनके ऊपर यथाकम कुण्डा अभ्रक के चक्रों को कीलों से युक्त करे उनका चन्द्रिका-तूल-श्वेतकण्ठकारी के धास से या शालमलि कपास से या चन्द्रिकार-चन्द्री की हुई हुई की तह से आवरण करे ॥ ३१२-३१५ ॥

तस्योपरिष्टान्मञ्जूषद्रवपात्र नियोजयेत् ।  
 आत्मोप्लोपसहारमणि तस्मिन्नियोजयेत् ॥ ३१६ ॥  
 तथैवोष्मापहारकाभ्रकचक्राण्यथाविधि ।  
 प्रदक्षिणावर्तदन्तयुक्तान्यतिहृदान्यथ ॥ ३१७ ॥  
 भ्रामणीदण्डकीलकसयुक्तानि पुरोभुवि ।  
 सस्थाप्य वेगात् तत्कीलभूमणार्थं पुन कमात् ॥ ३१८ ॥  
 त्रिचक्रकौलकं तस्मिन् योजयेत् सरल यथा ।  
 तच्चलानाद् भवेच्छत्रभ्रमण वेगत कमात् ॥ ३१९ ॥  
 तेनात्पोष्टाभ्रमण भवेच्छत्रानुसारतः ।  
 पश्चात्प्रणापहारकाभ्रकचक्राण्यथाकृमम् ॥ ३२० ॥

इसके ऊपर मञ्जूषद्रव—मजीठ रस ? का पात्र रखे उसमें आतपोष्णोपसंहार मणि हाले या लगावे रखे, इसी प्रकार ऊर्मिता को हटाने वाले अध्रकचकों को यथाविधि धूरने वाले दान्तेयुक सामने भूमि पर आमरणी—जुमाने वाले दण्डकीलों से संयुक्त को संस्थापित करके पुनः कील झमणार्थ त्रिचकील को उसमें सरलता से नियुक्त करे उसके घलाने से छत्रध्रमण वेग से होता है उस से छत्रानुसार आत-पोष्णाध्रमण होते पश्चात् उपणितपहारक अध्रकचक यथाक्रम—॥ ३१६-३२० ॥

स्प्राह्येदातपोष्णोपसंहारमणिः पश्चात् स्वतेजसा ॥ ३२१ ॥

तच्छ्रक्तिमपहृत्य स्वमुखतः पिबति कमात् ।  
मञ्जूषद्रावकं पश्चात्तच्छ्रक्तिवेगतः पुनः ॥ ३२२ ॥

समाहृत्यातिशीतस्वभावं तस्या यथाविधि ।  
शैत्यव्रतं प्राप्य तच्छ्रक्तिं पश्चाद् वेगात्स्वभावतः ॥ ३२३ ॥

वायुमण्डलमासाद्य तत्रैव लयमेष्ठे ।  
तत्पाद् यानस्यातपोष्णोपसंहारयन्त्रं प्रभवेत् कमात् ॥ ३२४ ॥

तेनात्यन्तसुखं यानयन्त्रूणा प्रभवेत् ततः ।  
स्थापयेदातपोष्णोपहारयन्त्रं यथाविधि ॥ ३२५ ॥

अपनी शक्ति से आतपोष्णाशक्ति को वेग से ले ले—ले लेगा पश्चात् आतपोष्णोपसंहारमणिः स्वतेज से उस शक्ति को लेकर अपने मुख से रीती है पश्चात् मञ्जूषद्रावक उस शक्ति को वेग से एकत्र कर उसके लिए अतिशीत स्वभाव को देता है वह शक्ति शीतता को प्राप्त कर वेग से स्वभावतः वायु-मण्डल को प्राप्त होकर वहां ही लय को प्राप्त हो जाता है अतः यान की आतपोष्णता की निवृत्ति ही जाती है इस विमान के नायक—यात्रियों को मुख होता है अतः आतपोष्णोपसंहार मन्त्र स्थापित करे ॥ ३२१-३२५ ॥

अन्यथा यन्त्रूणा कष्टं भवत्येव न सशयः ।

एवमुक्त्वातपोष्णोपहारयन्त्रं यथाविधि ॥ ३२६ ॥

यानवृत्तीयावरणरचनाविधिरुच्यते ।

प्रथमावरणे पूर्वं द्वितीयावरणस्य हि ॥ ३२७ ॥

स्थापानार्थं यथासन्धानकीलानि यथाविधि ।

स्थापितानि तथैवास्तिमनु द्वितीयावरणेऽपि च ॥ ३२८ ॥

दृतीयावरणस्थापनार्थं चैव यथाक्रमम् ।

सन्धारेत्कीलकानि सर्वतस्सुहृदान्यथा ॥ ३२९ ॥

दृतीयावरणपीठाश्च प्रदेशोप्यथाक्रमम् ।

ऊर्ध्वांशोभागकीलानां यथा संयोजनं भवेत् ॥ ३३० ॥

अन्यथा नायक यात्रियों को कष्ट होता ही है इसमें संशय नहीं। इस प्रकार आतपोष्णोपसंहार यन्त्र यथाविधि कहकर विमान के दृतीय आवरण की रचनाविधि कही जाती है। प्रथम आवरण के ऊपर

द्वितीय आवरण के स्थापनार्थ जोड के अनुसार कीले स्थापित की हैं वैसे ही द्वितीय आवरण में भी दृतीय आवरण की स्थापना के अर्थ यथाक्रम सुहृद कीले लगावे। दृतीय आवरण के पीठ के नीचे प्रवेश में भी यथाक्रम ऊपर नीचे के भागों की कीलों का संयोजन हो जावे ॥ ३२६-३३० ॥

कीलकानि तथा सम्यक् सुहृद कलपयेत् क्रमात् ।

द्वितीयावरणात्पञ्चवितस्त्वन् यथा दृढम् ॥ ३३१ ॥

चतुरस्त् वर्तुल वा दृतीयावरणस्य च ।

पीठ कृत्वा तदुपरि द्वितीयावरणे यथा ॥ ३३२ ॥

तथैवाचापि कर्तव्य गृहकुङ्घादयः क्रमात् ।

दृतीयावरणास्येषान्यरिभागे यथाविधि ॥ ३३३ ॥

विद्युयन्त्रस्थापनार्थं चतुरस्त् सकीलकम् ।

सोमाङ्कुलोहेतु क्रमात् कुर्यादवरण दृढम् ॥ ३३४ ॥

तस्मिन् सस्थापयेद् विद्युयन्त्रं शास्त्रोक्तवर्तमना ।

उस प्रकार कीले सुहृद सम्यक् क्रम से लगावे, दृतीय आवरण का पीठ चौकोर या गोल करके उसके ऊपर जैसे द्वितीय आवरण पर करने की भाँति यहां भी करना चाहिये क्रम से कमरे भित्ति आदि दृतीय आवरण के इशानी दिशा भाग में यथाविधि विद्युयन्त्र स्थापनार्थ चौकोर कीलसहित आवरण सोमाङ्कुल लोहे से करे, उसमें शाकोल विधि से विद्युयन्त्र स्थापित करे ॥ ३३१-३३४ ॥

सोमाङ्कुलोहमुक्तं लोहतन्त्रे—सोमाङ्कुलोहा कहा है लोहतन्त्र में—

नांगं पञ्चास्यकं चैव सप्तमं रविवेच च ।

नवमं चुम्बुकं तद्वज्ञलिकात्वक् शराणिकम् ॥ ३३५ ॥

टङ्गुराणं च समालोडय समभागान् यथाक्रमम् ।

सर्पास्यमूषामध्येयं पूरयित्वा यथाविधि ॥ ३३६ ॥

नागकुण्डान्ते रथाय इज्जलात् परिपूर्यं च ।

त्रिपञ्चाशादुत्तरविशतकक्षयोष्णामानत ॥ ३३७ ॥

सप्तवर्षान्तेच्छामुखभस्त्राद् वेगेन शास्त्रत ।

समीकरण्यन्त्रेत् तद्रसं परिपूर्येत् ॥ ३३८ ॥

पञ्चादत्यन्तमूदुलं विदुग्रामं दृढं लघु ।

सोमाङ्कुलोहं भवति अविनाशं मनोहरम् ॥ ३३९ ॥ इत्यादि ॥

सीसा, पञ्चास्य—लोह विशेष ? रवि—ताम्बा प्रत्येक ७ भाग, चुम्बुक ६ भाग, नलिकात्वक्—नली की छाल, शराणिक—शरणा—प्रसारिणी का ज्ञात या शराटिक—खरिपर्णी—दुर्बाध सैर या कस्तु, सुहागा इनके समान भागों को भित्ता कर सर्वाय-सर्वमुख कृत्रिमबोतल के अन्दर यथाविधि भरकर नाग-कुण्ड के अन्वर रख कर अंगारे भर कर ४५३ दर्जे की उच्चता से शरामुख भवता से बेग से जोके उस पिंजले रस को समीकरण्य बन्ने में भर दे फिर वह अत्यन्त मृदु विष्युत् को गंभीर से लिप द्वारा स्थिर रहने शक्ता मनोहर सोमाङ्कुलोहा हो जाता है ॥ ३३५-३३९ ॥

तल्लोहं कुट्टिणीयन्नात् पट्टिकां कारयेत् ततः ।  
 वितस्तिशयमायाम् वितस्त्यष्टकमुप्रतम् ॥ ३४० ॥  
 दोलाकारेरणीकपात्र कृत्वा तस्य मुखोपरि ।  
 आच्छादा पट्टिकामेका वधीयात् कीलकेहं दम् ॥ ३४१ ॥  
 सार्ववितस्तिप्रसाणायाम् छिद्रद्वय कमात् ।  
 पूर्वोत्तरविभागाभ्या कृत्वा तस्मिन् यथाविधि ॥ ३४२ ॥  
 स्थापयेद् विद्युदागारे कीलकेसुदृढं यथा ।  
 तद्रव्याघ्रप्रदेशेष्य दोलामध्ये यथाकमम् ॥ ३४३ ॥  
 पीठद्वयं कीलयुक्तं स्थापयेत् तावदेव हि ।  
 वितस्तिद्वयमायाम् चतुर्वितस्तिरूपतम् ॥ ३४४ ॥  
 पिङ्जुलीपात्रं कुर्यात् पात्रद्वयमत् परम् ।  
 षड्गुलायामयुक्तात् वितस्त्येकोन्नतान् तथा ॥ ३४५ ॥  
 कृत्वाष्टुचक्षान् पश्चात् पात्रोहमयोरपि ।  
 चतुर्दिक्षु यथाशास्त्रं स्थापयेत् सुदृढं कमात् ॥ ३४६ ॥

उस लोहे को कुट्टिणी यन्न से पट्टिका बना दे, ३ बालिशत लम्बा चौडा = बालिशत ऊँचा दोलाकार यन्न करके उसके मुख पर पट्टिका ढक कर कीलों से ढट बिद्युदागार—विजली घर में रख दे, उसमें ढेढ बालिशत लम्बे दो छिद्र पूर्व उत्तर भागों में काढ़े कीलों से ढट बिद्युदागार—विजली घर में रख दे, उन छिद्रों के नीचे प्रदेश में दोलामध्य यथाकम पीठ कीलयुक्त स्थापित करे उतने ही २ बालिशत लम्बे चौडे ४ ऊँचे पिङ्जुलीपात्र—बत्तीपात्र—इपक की भाति दो पात्र करे पुनः ६ अंगुल लम्बे १ बालिशत ऊँचे ८ पात्रों (गिलास जैसों) को दोनों पातों पर चारों दिशाओं में शास्त्रानुसार ढट यथापित करदे—॥३४०-३४६॥

एकैकपात्रे चषकचतुष्टयमितीरितम् ।  
 एतच्चषकमध्ये तु अन्योन्यस्तर्णन् यथा ॥ ३४७ ॥  
 बृहच्चषकमेककं स्थापयेत् पात्रयोः कमात् ।  
 पात्रद्वयमुखे पश्चात् पञ्चछिद्रसमवितम् ॥ ३४८ ॥  
 एकैकपट्टिका सम्पर्कं कीलंसन्धारयेद् दृढम् ।  
 एतत्पत्रद्वयं दोलामुखरध्रद्वये क्रमात् ॥ ३४९ ॥  
 प्रवेशय तत्रत्यपीठमध्यदेशे न्यसेद् दृढम् ।  
 पञ्चाङ्गुलायामयुतान् तथैवाष्टाङ्गुलोन्नतान् ॥ ३५० ॥  
 इक्षुयन्नादिवन्मन्थून् सदन्तानष्टं कारयेत् ।  
 एकैकपात्रान्तरस्त्यचक्षेषु यथाकमम् ॥ ३५१ ॥  
 चतुर्दिक्षु यथाशास्त्रं चतुर्मन्थून् नियोजयेत् ।  
 तथैव मध्यमन्थानद्वयं ताभ्या घन यथा ॥ ३५२ ॥

कृत्वा तन्मन्थुमध्येय स्थापयेन्मध्यरन्ध्रतः ।

यथान्योन्यत्पर्वान् स्यात्तथा सन्धारयेद् दृढम् ॥ ३५३ ॥

एक एक पात्र पर चार चयक ( गिलास पात्र ) हों ऐसा कहा है । इन चयकों के मध्य में अन्योन्य स्पर्श हो । दो पात्रों पर एक एक बड़ा चयक रखे पश्चात् दो पात्रों के मुख पर पांच छिद्रों से युक्त एक एक पट्टिका सम्यक् कीलों से जोड़ दे । दोनों पात्र दोलामुख के दोनों छिद्रों में प्रविष्ट कर—तुवा कर वहाँ के पीठ के मध्य देश में दृढ़ रख दे । पांच अंगुल लम्बाई से युक्त तथा आठ अंगुल से ऊँचे हङ्कु यन्त्र ( ईख पीड़ने के कोलहु ) आदि के समान दानांसोंसहित आठ मन्त्र—मथन साधनों को करावे, एक एक पात्र अन्दर से चयकों में यथाक्रम चारों दिशाओं में शाकानुसार ४ मन्त्र लगावे वैसे दो मध्य मध्यान लगावे उत दोनों से घन—मथित वस्तु करके उसे मन्त्र के मध्य में मध्य छिद्र से स्थापित कर दे जिससे अन्योन्य स्पर्श इनका हो जावे ॥ ३४७-३५३ ॥

पात्रद्वयमुखछिद्रद्वारेणीव प्रवेशयेत् ।

मध्यस्थ मन्थुदण्डस्थोपरिभागे यथाविधि ॥ ३५४ ॥

सर्वमन्थुसमाशो यथा स्यात् तदवेत हि ।

सन्धारयेचक्रावर्तकीलकं सुदृढं यथा ॥ ३५५ ॥

मध्यमन्थुभ्रामणेन सर्वमन्थुभ्रमो यथा ।

भवेत् तथा प्रकर्तव्यं तेषा कीलकः क्रमात् ॥ ३५६ ॥

अथ यन्त्रमुखाद् विद्युच्छक्षिं सूर्याशुभि कमात् ॥ ३५७ ॥

समाहतुं विशेषेण उपायः परिकीर्तयेत् ।

पूर्वोक्तदोलामध्यस्थपात्रयोहरारि कमात् ॥ ३५८ ॥

द्विनवत्युत्तरशतसल्याकेनैव हि कमात् ।

किरणाकर्णणादसदिष्टनालान् प्रकल्पयेत् ॥ ३५९ ॥

पश्चादेकैकपात्रोपर्यन्थ नालैः प्रकल्पितान् ।

स्तम्भान् स्थापयेत् सम्यक् चतुर्विक्षु यथाक्रमम् ॥ ३६० ॥

दोनों पात्रों के मुख वाले छिद्रों से प्रविष्ट करे, मध्यस्थ मन्थुदण्ड के ऊपर भाग में यथाविधि सर्वमन्थु समावेश जैसे हो वैसे ही चक्र को छुमाने वाली कील को ढृट लगावे, मध्य के मन्त्र के छुमाने से सारे मन्त्रों का धूमना जिससे हो जावे उनकी कीलों से वैसे करन चाहिए । यन्त्रमुख से विश्वात् शक्ति को सूर्यकिरणों से ले लेने को विशेष रूप से वयाय कहा जाता है । पूर्वोक्त दोलामध्यस्थ पात्रों के ऊपर १६३ संल्याक्रम से ही किरणाकर्णण आदर्श से द नालौं को बनावे, पश्चात् एक एक पात्र के ऊपर नालौं से सम्बद्ध किये स्तम्भों को चारों दिशाओं में स्थापित करे ॥ ३५४-३६० ॥

तेषामुपरि पञ्चास्यकर्णिकान् स्थापयेत् कमात् ।

स्वमुकुशाशारणं तेषु पूरयित्वा ततः परम् ॥ ३६१ ॥

विद्युताकर्षकमरीन् तेषु सन्धारयेद् दृढम् ॥

पूर्वोक्तांशुपदर्शणावरणं चोपरिकमात् ॥ ३६२ ॥

कृत्वा तदूर्ध्वं पञ्चशिखराकारगोपुरम् ।  
 कुर्यादेकं कृशिखरमुखे चञ्चूपुटाकृतिम् ॥ ३६३ ॥  
 कल्पयित्वा ततस्तस्मिन् सिङ्गीरकमणीनय ।  
 स्थापयेदशुवाहकमणीनपि यथाविविध ॥ ३६४ ॥  
 अंशुमित्रमणि मध्यशिखाप्रे दृढं यथा ।  
 चतुर्मणीनामुपरि गोभिलोकविधानतः ॥ ३६५ ॥

उन स्तम्भों के ऊपर पञ्चशिखर कर्णफूल—? उनमें स्तम्भपुरुषशण—सुनहरे शर का शण भरकर विशुद्धकर्णण मणियों को उनमें लगा दें, पूर्व कहे अंशुप दर्पण आवरण को ऊपर करके उसके ऊपर पांच शिखर आकार वाला गोपुर—गवाज्ञ फरोखा करें, एक एक शिखरमुख पर चञ्चूपुट—चंच की आकृति जैसा बनाकर उसमें सिङ्गीरक ? मणियों को स्थापित करे अशुवाहक मणियों को भी लगावें, बीच के शिखराप्र में चारों मणियों के ऊपर अंशुमित्रमणि—सूर्यकान्त मणि ? को गोभिल के विधान से लगावें ॥ ३६१—३६५ ॥

षड्गुलायामयुक्त वितस्तित्रयमुन्नतम् ।  
 किरणाकर्णणादराति कृत नालचतुष्टयम् ॥ ३६६ ॥  
 स्थापयित्वा तदुपरि द्रावकं श्वोवितान्यथ ।  
 चतुर्वितस्त्यायामयुतमुखपात्राण्यथाविधि ॥ ३६७ ॥  
 सन्धारयेच्छुकुलीरच्छुदारिणि दृढात् यथा ।  
 तेषु सम्पूर्वदेव रुद्रजटावाल प्रमाणतः ॥ ३६८ ॥  
 भ्रामणीषुटिकान्तेषु विन्यसेन्मध्यकेन्द्रके ।  
 किरणाकर्णण वेगाद भ्रामणीषुटिकास्ततः ॥ ३६९ ॥  
 कृत्वा तनालमार्णण अन्तः प्रेषयति क्रमात् ।  
 शिखराग्रस्थमणाय तच्छक्ति पिबति क्रमात् ॥ ३७० ॥

६ अंगुल लम्बाई से युक्त ३ बालिशत ऊंचा किरणाकर्णण दर्पण से किए हुए ४ नालें स्थापित करके उनके ऊपर द्रावकों से शुद्ध किए हुए छिद्रहित ४ बालिशत लम्बाई से युक्त मुखपात्रों को यथाविधि शंकुकीलों से स्थिर करें । उन पात्रोंमें रुद्रजटावाल—शंकरजटा—भ्रामणी छुटिक के बाल प्रमाण से भरदें, अन्त स्थानों में भ्रामणी छुटिका मध्यकेन्द्र में लगावें । किरणाकर्णण वेग से भ्रामणी छुटिका करके उनके नालभाग से अन्दर प्रेरित करता है शिखराग्रस्थित मणियां उस शक्ति को पीती हैं ॥ ३६६—३७० ॥

तदन्त स्थितसिङ्गीरमणिष्ठापि तथेव हि ।  
 अंशुमित्रमणिणश्चैव तच्छक्तिपकर्षति ॥ ३७१ ॥  
 तच्छक्तिमधुपादशविरण परिगृह्य च ।  
 विद्युदाकर्षकमणिणसन्धौ नियोजयेत् ॥ ३७२ ॥  
 पश्चादन्तस्थितकर्णिकास्तां सम्यक् समाहरेत् ।  
 तदष्टस्थितदण्डेषु मध्यदण्डाग्रतः क्रमात् ॥ ३७३ ॥

शक्ति सम्प्रेषयेत् सम्यवेगेन स्वीयतेजसा ।

मध्यदण्डभ्रामणेन मन्थनां भ्रमण भवेत् ॥३७४॥

भ्रमणाद् द्रावके शक्तिः प्रविश्याथ यथाकृमम् ।

तत्रत्यमणिभिसम्यगकुष्ठा नजति करणात् ॥३७५॥

उनके अन्दर स्थित सिङ्जीरमणि ? भी वै से ही अंशुमित्रमणि भी उस शक्ति को स्त्रीचत्ति है, उस शक्ति को अंशुदर्शन के आवरण को लेकर विद्युदाकरणमणि सन्धि में नियुक्त करदे, परचात् अन्दर स्थित कर्णिकाओं—छल्लों या फूलदार पेंचों को । उस शक्ति को सम्यक् लेले उनके नीचे बाले दरणों में मध्य दण्डाप्र से शक्ति को वेग से स्वीयतेज से प्रेरित करदे, मध्य दण्ड के घुमाने से मन्थाओं—मन्थन साधनों का भ्रमण होता है भ्रमण से द्रावक शक्ति प्रविष्ट होकर यथाक्रम वहाँ की मणियों से तुरन्त खींची हुई गति करती है ॥३७१—३७५॥

तद्वेगान्मायायसम्यगभ्रामयन्त्यतिवेगतः ।

तद्वेगाञ्छक्षतेरुत्पत्तिरत्यन्तं प्रभवेत् क्रमात् ॥३७६॥

एकछोटिकावचिन्द्रनकाले शक्तिः स्वभावतः ।

श्रीश्चित्युत्तरसहवलिङ्गमात्र भवेत्स्वतः ॥३७७॥

दोलामुखस्थगणपयन्त्रेणाथ यथाविधि ।

समाकृत्याथ तच्छक्ति स्थापयेनमध्यकेन्द्रके ॥३७८॥

उसके वेग से मणियां अतिवेग से घूमती हैं उनके वेग से शक्ति की अत्यन्त उत्पत्ति हो जाती है, एक चुटकी बजाने मात्र काल में स्वभावतः शक्ति १००० लिङ्ग (डिशी) मात्रा में स्वतः हो जावे दोलामुखस्थित गणपयन्त्र से यथाविधि उस शक्ति को स्त्रीचकर मध्य केन्द्र में स्थापित करदे ॥३७६-३७८॥

अथ गणपयन्त्रवरुणपमाह स एष—अब गणपय यन्त्र के स्वरूप को उसने ही कहा है—

वितस्त्यकायामयुक्तं वितस्त्यत्रयमुत्रम् ।

कुर्याद् विच्छेष्वराकारयन्त्रमेकं यथाविधि ॥३७९॥

तदुत्तमाञ्जल्लुप्तीराकारवद् वकृत क्रमात् ।

कावावरणासंयुक्तमन्तस्तन्त्रिसमायुतम् ॥३८०॥

नालमेकं प्रकल्प्याथ दोलामुखस्थकीलके ।

सन्धायार्गणपकण्ठनाभ्यन्तं पाश्वयोर्देयो ॥३८१॥

१ बालिशत लम्बाई युक्त २ बालिशत ऊंचा विच्छेष्वराकार वाला—गणपति आकार वाला एक यन्त्र यथाविधि, उसका ऊपर का आकार शुण्डीराकार वाला—हाथी शूण्डाकार वाला क्रमशः वाला बनावे, काष के आवरण से युक्त अन्दर—तारोंसहित एक नाल बनाकर दोलामुख में स्थित कील में लगाकर गणपयन्त्र के करण नाभि तक दोनों पाश्वों में लगावे ॥२७६—३८१॥

अङ्गुलत्रयविस्तारं दन्तचक्राणि योजयेत् ।

तथेव तत्कण्ठदेहे त्रहचक्रं च स्थापयेत् ॥३८२॥

† शक्तिवत्पत्तिः ? (हस्तलेखपाठः) ।

करमध्यादागताया। शक्तेश्चलनवेगत ।

दृहचक् स्वभावेन भ्राम्यते वेगतः क्रमात् ॥३५३॥

तद्वेगतोन्नश्चक्राणा भ्रमण स्पाद् यथाक्रमम् ।

तथा कीलकसन्धानं कारयेद् विधिवत् ततः ॥३५४॥

आवृत्ततन्त्रं तन्मध्ये कुण्डलीवत् प्रकल्पयेत् ।

तन्मध्ये स्पत्वष्टिशङ्क (शङ्क ?) तिसिंहिकाभिषम् ॥३५५॥

३ अंगुल चौडे बडे दानों वाले चक लगावे, उसी भाँति उसके कण्ठ देश में बढ़ा चक स्थापित करे, कर—शुरू हो देश से आई हुई शक्ति के चलनवेग—गतिवेग से बढ़ा चक स्वभाव से वेग से घूमता है उसके वेग से अन्दर के चकों का भ्रमण यथाक्रम हो जावे इस प्रकार कील जोड़ना चाहिए। घूमने वाला तार उसके मध्य में कुण्डली की भाँति रखे उसके मध्य में शङ्क सिंहिक नाम का ऊपर से पीठ बाला हो ॥३५२—३५५॥

कृव्यादलोहावरणासयुक्त स्थापयेद् दृढम् ।

जीवावकद्वावक च पञ्चचञ्चूप्रमाणात् ॥३५६॥

सम्पूर्यं तस्मिन् सप्तदशोत्तरद्विशतात्मकम् ।

भासुख्यामुखं नाम मणि सवोजयेत् ततः ॥३५७॥

अङ्गुलद्वयमायामद्वत्रीन् पञ्च प्रकल्प्य च ।

बृहदृज्ञीप्रमाणात् पञ्चाशुभिमत्णीन् क्रमात् ॥३५८॥

सन्धारयेत् पञ्च छत्रीशिखरेषु यथाक्रमम् ।

एकोभ्याय तत्पञ्चद्विणो भ्रामयन्त्यथा ॥३५९॥

तथा कीलकसन्धानं कृत्वा शङ्कोपरि न्यसेत् ।

अंगुपादशिवरणं तेषामुपरि कल्पयेत् ॥३६०॥

कन्याद लोहे—तीक्ष्ण जाति लोहे—ताम्बा मिल लोहे के आवरण से युक्त स्थापित करे, जीवावक—शङ्क ? के द्वावक ५ चूचू—चूचू—चमच ? या एरेड प्रमाण ? प्रमाण से भरकर उससे २१७ भासुख ? प्रामुख ? मणि को लगावे । २ अंगुल लभ्मी ५ छत्रियों को युक्त करे बड़ी गुज्जा—रस्ते के माप की ५ अंगुमित्र—सूर्यकात मणियों को पांच छत्रियों के शिखर पर लगावे जड़े फिर वे छत्रियों को मिलकर घुमाती हैं उस कील को लगाकर शङ्क के ऊपर इसे अंशुप दर्पण का आवरण उनके ऊपर रखे ॥३६६—३६०॥

तस्मूर्यंकिरणान्तस्थशर्कि स्वस्मिन् स्वभावतः ।

चतुरशीतिलङ्कप्रमाणवेगं स्वशक्तितः ॥३६१॥

एकछोटिकावच्छिकालेनाकृष्ण तान् पिवेत् ।

पश्चादावरणादर्शस्थितशर्कि स्वतेजसा ॥३६२॥

पूर्वोक्तछत्रीशिखरस्थिता ये मणिः क्रमात् ।

† चक्षु या शङ्क पाठ होवे चाहिए। इसके ३६० में शङ्क है, यह शङ्क यहाँ भी रखा है।

ते समाकृष्य तच्छ्रिंकं पिबन्त्यत्यन्तवेगत ॥३६३॥

पश्चात्त्विकिवेगेन मरणयो आमयन्ति हि ।

एतदभुमण्टः पञ्च छत्रयोपि भूमन्ति हि ॥३६४॥

एतेनैकछोटिकावच्छिन्नकालेऽतिवेगतः ।

सहस्रलिङ्गप्रमाणविद्युत् सज्जायते क्रमात् ॥३६५॥

उन सूर्यकिरणों के अन्दर स्थित शक्ति को स्वभावतः अपने अन्दर ८४ लिङ्ग (डिग्री) प्रमाण का वेग चुटकी बजाने मात्र समय में खींच कर उड़ती ही ले, पश्चात् आवरण आदर्श में स्थित शक्ति को अपने तेज से पूर्व कही छात्री शिखरों में स्थित वे मणियां उस शक्ति को खींच कर वेग से लेती हैं—लेती हैं पश्चात् शक्ति वेग से मणियां घूमती हैं एक चुटकी बजाने समय में सहस्र लिङ्ग (डिग्री) की बिजुली उत्पन्न हो जाती है ॥३६१-३६५॥

शहूस्थद्रावकं पश्चात् तच्छ्रिंकमपकर्षति ।

द्रावकस्थमणिः पश्चात् स्वपूर्वमुखत क्रमात् ॥३६६॥

समाकृष्याय तच्छ्रिंकं वेगात् पिबति तत्करणात् ।

ततस्तत्परिष्मुखाच्छक्ति प्रवहति स्वतः ॥३६७॥

कार्यनिर्वहणायाथ तच्छ्रिंकं तन्नीभिः क्रमात् ।

समाहृत्यातिवेगेन यत्र कुत्रापि वा नर ॥३६८॥

नियोज्य तत्तक्षयेतु उपयोक्तुं भवेद् ध्रुवम् ।

एतद्वेगपरिज्ञाने यन्त्र वेगप्रमाणपक्षम् ॥३६९॥

स्थापयेत् तद्वृष्णुप्रमाणपक्षमपि क्रमात् ।

कालप्रमाणपकं चैव तत्तत्त्वाने यथाविधि ॥४००॥

एतद् यन्त्रत्रयं विद्युत्यन्त्रस्थानेषि योजयेत् ।

पश्चात् उस शक्ति को शहू में स्थित द्रावक खींच लेता है फिर द्रावक में स्थित मणि अपने पूर्व आगले मुख से क्रमशः खींचकर उस शक्ति को वेग से तुरन्त नी लेती है फिर पिछले मुख से स्वतः निकालती है, कार्यनिर्वह—कार्यस्थान के लिए उस शक्ति को तारों से लेकर वेग से मनुष्य जहाँ कहीं भी युक्त करके फिट् करके कार्यों में निरिचत उपयोग करने को समर्थ हो जावे । इस वेगपरिज्ञान में वेगप्रमाणक यन्त्र रखे और उसकी उपण्टा का मापक यन्त्र भी तथा कालप्रमाणक यन्त्र भी उस उस स्थान में यथाविधि रखे, ये दीन यन्त्र विद्युत्यन्त्र के स्थान में भी लगावे ॥३६६-३४०॥ इति ॥

॥ समाप्त ॥

विज्ञप्ति—यहाँ तक प्रथम प्राप्त था आगे इसके और प्रथम भाग है या नहीं यह कुछ नहीं कहा जा सकता ॥

स्वामी ब्रह्ममुनि परिवाजक

१६६-१६५॥१०॥

